☞ इसकी रजिस्टरी ऐक्ट २५ सन् १८६७ ई० के अनुसार कराईगई है

ॐ

नारायणी शिक्षा

अर्थात्

ग्रहस्थाश्रम

प्रथम भाग

जिसमें

वेदादि सत्य शास्त्रानुसार ग्रहस्थाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों की व्याख्या है कि जिसपर चलने से शारीरिक सामाजिक और आत्मोन्नति अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति होती है

जिसको

मुझ चिम्मनलाल वैश्य कासगंज निवासी ने सर्वोपकारार्थ प्रकाशित किया

आर्य्यदर्पण प्रेस शाहजहांपुर में
मुंशी बख़्तावरसिंह के प्रबन्ध से मुद्रित हुई

सन् १८९७ ई०

तीयवार १००० पुस्तक] [मूल्य प्रति पुस्तक ६५

ॐ

नारायणी शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम का द्वितीय एडीशन

ईश्वर को कोटानुकोटि धन्यवाद देने के पश्चात् सर्व सज्जनों पर प्रकट हो कि इस पुस्तक का प्रथम एडीशन पांच वर्ष के पूर्ण परिश्रम के पश्चात् सन १८९१ ई० में प्रकाशित हुआ था, उस समय मुझ अल्प बुद्धि को तनिक भी निश्चय न था कि सर्व मान्य पुरुष और साधारण जन मेरी इस पुस्तक का इतना मान्य करेंगे कि जितना आप सुजनों ने किया, जिसका मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूं और इस द्वितीय एडीशन को आप की सेवा में भेंट करता हूं आशा है कि आप इसको स्वीकार करेंगे, और मेरे विशेष परिश्रम का परिचय देकर मेरे उत्साह को बढावेंगे।

मेरी अब सर्व महाशयों से यही प्रार्थना है कि एक वार प्रेम पूर्वक इसका अवश्य ही पाठ कर दोषों को दोषवत् त्याग गुणों का प्रचार करें, जिसमें संसार का कल्याण हो, हे परमेश्वर आप सर्व सामर्थ्यवान हैं, आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिये, आप तेजस्वरूप हैं, उसी में से कुछ हम भारत वासियों को भी प्रदान कीजिये, हे परमात्मन् आप ज्ञानमय हैं, उसमें से कुछ हम अज्ञानियों को भी प्रसाद दीजिये।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणस्त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

हे जगदीश! आप माता हो, पिता हो, बन्धु हो, सखा हो, विद्या भी आप ही हो, जो कुछ हो सब आप ही हो, सब आप ही का राज्य है, इसलिये मन काया वचन इन्द्रियां बुद्धि आत्मा सब मैं आप के ही अर्पण करता हूं।

आप ही भारत संतान का उद्धार करनेवाले हो, टुक इधर को भी दया दृष्टि कर दीजिये जिससे हम सब ऐक्यता और प्रेम के साथ सुधर्म में प्रवृत्त होजावें जिससे भारत भूमि स्वर्णमय दृष्टि आने लगे।

कोठी भाई रामचरण मन्नीलाल रईस,
तिलहर जिला शाहजहांपुर

आपका शुभचिन्तक,
चिम्मनलाल वैश्य

ॐ

मङ्गलाचरणम्

द्यौः शान्ति रन्तरिक्षः शान्तिः पृथिवी शान्ति
रोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिः
विश्वेदेवाः शान्ति र्ब्रह्म शान्तिः सर्वं ँ शान्ति
शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥

अर्थ—(द्यौशां०) हे सर्व शक्तिमान् आप की भक्ति और कृपा से [द्यौ] जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है वह सब दिन हम को सुखदायक हों, तथा जो आकाश में पृथ्वी जल औषधि बनस्पति बटादि वृक्ष, संसार के सब विद्वान् ब्रह्म जो वेद यह सब पदार्थ और इन से भिन्न भी जो जगत में हैं वे सब हमको सब काल में सुख देनेवाले हों, कि सब पदार्थ सब काल में हमारे अनुकूल रहें, जिससे हम लोग सुख पूर्वक रहें, हे भगवान् सब भांति से हमको विद्या, बुद्धि विज्ञान आरोग्य और सब उत्तम सहाय को कृपा से दीजिये, हमलोगों पर सब जगत को उत्तम गुण व सुख के दान से बढ़ाइये ।

यतोयतः समीहसे ततोनो अभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयनः पशुभ्यः ॥

अर्थ—[यतोयतः] हे परमेश्वर आप जिस २ देश से जगत के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस २ देश से भय रहित करिये अर्थात् किसी देश से हमको किञ्चित् भी भय न हो [शन्नः कुरु०] वैसे ही सब दिशाओं में आप की प्रजा और पशु आदि हैं उनसे भी हमको भय रहित करें, हमसे उनको सुख हो, और उनको भी हमसे भय न हो, आप की प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं उन सब के लिये जो धर्म अर्थ काम मोक्ष पदार्थ हैं वे आप की अनुग्रह से हमको शीघ्र प्राप्त होंय ।

भारती-भ
क्रमांक
विभाग

पुस्तक बनाने का कारण

ईश्वर के गुणानुवाद और धन्यवाद के पश्चात् निवेदन है कि सन् १८७१ ई० में श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज भ्रमण करते हुए कासगंज जिला एटा में विराजमान हुए और कई मास निवास कर समस्त नगर निवासियों को अपने सत्य उपदेश और व्याख्यानों से कृतार्थ किया, प्यारे सज्जन पुरुषो उक्त महात्मा के अमृत रूपी मनोहर कथन को श्रवण कर मैं भी सत्मार्ग पर जा लगा, और अपने गृह में सत्य उपदेश करने लगा, एक दिन गृहस्थाश्रम के विषय में समझा रहा था कि मेरी बहिन ने कहा कि भाई कोई ऐसी पुस्तक देवनागरी में नहीं कि जिसमें गृहस्थाश्रम के कर्तव्य कर्मों की व्याख्या हो जिसको हम सब पढ़ तदानुकूल चलकर आनन्द भोगें, मैंने विचार किया तो कोई ऐसी पुस्तक न जान पड़ी, तब मैंने कहा कि यदि शरीर वर्तमान है तो शीघ्र समस्त गृहस्थियों के अर्थ ऐसी एक पुस्तक लिखुंगा ।

मान्यवरो मैंने परमेश्वर का नाम लेकर इसके लिखने का आरम्भ करदिया परन्तु समय से किसी का चारा नहीं कि इसी बीच मेरी प्यारी बहिन का स्वर्गवास होगया, माता और चाची ने भी इस असार संसार को त्याग कर परलोक गमन किया, तदुपरांत समय ने मुझको और भी झोके दिये जिसके कारण इस पुस्तक के मुद्रित होने में देर होगई, नाम इस पुस्तक का अपनी प्यारी बहिन के ही नाम पर 'नारायणी शिक्षा' अर्थात् गृहस्थाश्रम रक्खा क्योंकि उसकी ही इच्छानुसार इस पुस्तक के रचने का आरम्भ किया था ।

प्यारे मित्रवर्गो यह वार्ता प्रत्यक्ष प्रकट है कि सब आश्रमों

को जड़ गृहस्थाश्रम ही है, यही समस्त आश्रमों का आधार है, इसी से सब का निर्वाह होता है, इसी के सुधारने से सब का सुधार होजाता है, वर्तमान समय में इस आश्रम के बिगड़ने ही के कारण सम्पूर्ण भारत का भारत होगया, क्योंकि गृहस्थाश्रम का प्रबन्ध राज्य प्रबन्ध के सदृश है जो राजा और मंत्री के सुज्ञान होने पर बड़ी सावधानी और अग्रसोची से नियमानुकूल ठीक ठीक रहसकता है, यदि उसमें किञ्चित असावधानी और चूक हो तो वह राज्य शीघ्र तितर बितर होजाता है, फिर उसका संभालना कठिन है, इसी भांति गृहरूपी राज्य का राजा पुरुष और मंत्री स्त्री हैं जिनके सुज्ञान होने से नाना भांति के सुख मिलसकते हैं, सो इस समय इन दोनों के अज्ञान होने के कारण देखिये क्या कुदशा होगई जो प्रत्यक्ष प्रकट है, कुछ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, अर्थात् सब प्रकार के ऐश्वर्य और वैभव इस लोक और परलोक के सुखों को तिलांजली दे रफूचक्कर होगये, शारीरक सामाजिक आत्मिक उन्नतियों के दर्शन स्वप्न में भी नहीं रहे, सच तो यह है कि बिना गृहस्थाश्रम के सुधरे कदापि देशोन्नति नहीं होसकती।

प्रियवरो यह वही आश्रम है कि जिसमें बड़े २ सत्य वेत्ता, कवि, गणितज्ञ, पराक्रमी, विचार शील, परोपकारादि गुणों में परिपूर्ण और शिरोमणि होगये हैं, जिनके वृत्तांत महाभारत रामायणादि इतिहासों से विदित हैं, प्यारे मित्रवर्गो इसी भूमि को पवित्र भूमि के नाम से पुकारते थे और समस्त पृथिवी के निवासी भारत वासियों के गुण गाते थे, और बड़े २ योग्य पुरुष इस देश के दर्शन कर अपना जन्म सुफल करते थे, इसलिये आओ प्यारे भाइयो सब मिलकर इस आश्रम के सुधार का उपाय

भारती-
क्रमांक
विभाग

करें, आओ प्रियवरो सब मिलकर यथाशक्ति मनसा वाचा कर्मणा अर्थात् तन मन धन से सबका सच्चा उपकार करें, जिससे यह आश्रम यथा नाम तथा गुण होजावे, और हमारे तुम्हारे मान्यवर पुरुषों के यश में धब्बा न लगे, सच्चे परोपकारियों का यही धर्म है कि इस समय कमर बांध कर खड़े होजावें और मैदान में कूद पड़ें, प्रिय भ्रातृगणों क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि पूर्वोक्त भारत बासियों ने इस भारत की उन्नति के अर्थ अपने प्राणों को समर्पण कर दिया पर आज उसकी कुदशा मेटने के विचार करने तक का हमको अवकाश नहीं मिलता, लाखों पर पानी डालते हैं परन्तु भारत अभागे के नाम कौड़ी देने में दम सूखता है, क्या हम और आप उन महर्षियों की संतान नहीं हैं कि जिन्होंने संसार के उपकारार्थ अपने प्रिय प्राणों को भी न्योछावर कर दिया था ? क्या गुरू तेगसिंह का नाम स्मरण नहीं रहा ? क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की भी सुध नहीं रही ? यदि है तो आओ सब मिलकर इस भारत के रोगों की चिकित्सा करें।

प्यारे भ्रातृगणों मेरी सामर्थ न थी जो इस कार्य को पूरा करसकता, परन्तु परमेश्वर की कृपा और परोपकारी विद्वान् महात्माओं के सहाय से यह कार्य पूर्ण होगया, इसलिये मुझको इस समय अत्यन्त प्रसन्नता है, आओ प्यारे भाई बहिनों सब मिलकर उस पिता परमात्मा सर्वव्यापक से प्रार्थना करें कि हे पिता जी अब हमपर ऐसी दया कीजिये कि हम आप की कृपा से सदा पुरुषार्थ को बढ़ाकर शुभ कर्मों के करने में उद्यत रहें और किसी प्रकार का भय चित्त में न लावें।

ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः

ॐ

स्वास्थ्य रक्षा

प्रियवरो आप ने सुना होगा कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल कारण आरोग्यता ही है जैसा कि—

धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूल कारणम् ॥

और भी कहा है कि "काया राखे धर्म" अर्थात् धर्म तभी होसक्ता है जब शरीर आरोग्य रहे क्योंकि बिना आरोग्यता सांसारिक सुखों के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते फिर पारमार्थिक सुख क्योंकर प्राप्त होसकता है, प्यारे सुजनों आरोग्यता ही से मनुष्य का चित्त प्रसन्न रहता, बुद्धि तीव्र होती, तथा मस्तक बल युक्त बना रहता है, जिससे शारीरक, सामाजिक वा आत्मिक कार्य्यों को अच्छे प्रकार कर सुखों को भोग मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं, इसलिये ऐसे उत्तम पदार्थ को खोदेना मानों मनुष्य जीवन के उद्देश का सत्यानाश मारना है, इसके उपरांत जब आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है तो फिर उसका सुधार अत्यंत कठिन होजाता है, इसलिये आरोग्य रहने के अर्थ जो परिपाटी वेदादि सत् शास्त्रों और प्रमाणीक वैद्यक ग्रन्थों में लिखी है उसके अनुकूल चलना उचित है अर्थात् नीचे लिखी हुई बातों पर सदा ध्यान रख आरोग्यता प्राप्त करना परम आवश्यक है—

(१) प्रातःकाल उठना ।

(२) शरीर की रक्षा स्वच्छता कसरत करना ।

(३) बायु
(४) पानी
(५) भोजन
} इनको रीत्यानुसार काम में लाना ।

(६) स्वच्छ बस्त्र धारण करना ।

(७) मादिक पदार्थों का सेवन न करना।

(८) वीर्य्य रक्षा करना।

(९) मकान का रीत्यानुसार होना।

(१०) सोना।

(११) टीका लगवाना।

नोट—इन का वर्णन संक्षेप से आगे है—

प्रातःकाल: उठना

यह बात तो स्पष्ट प्रकट है कि सोने को राति और जागने के अर्थ दिन बनाया है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि प्रातःकाल चार बजे उठना अति ही श्रेष्ठ है, क्योंकि उस समय की वायु बल बुद्धि की दाता होती है, इस बात को अंगरेज लोग भी मानते, मुसलमान भी स्वीकार करते, और कहते हैं कि उस समय के जागने से शरीर सुडोल होजाता और दीर्घायु होती है, परन्तु जब चिल्ले के जाड़े हों तो पांच बजे के पीछे उठना उचित है, वेद में भी प्रातःकाल उठने की आज्ञा है जैसा कि—

पुनाति ते परिस्रुतं ५ सोम ५ सूर्य्यसं दहिता।
वरिण शाश्वं ता तना ॥ य० अ० १९ मं १४ ॥

स्मृति व पुराणों में भी इसकी पुष्टता में अनेकान प्रमाण मिलते हैं और बड़े २ ज्ञानी और तत्व वेत्ताओं ने अपने २ ग्रन्थों में इस विषय के लाभों के वर्णन करने में लेखनी को दौड़ाया है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि बिना सवेरे सोये प्रातःकाल चार बजे उठ नहीं सक्ता, यदि कोई उठा भी तो नाना प्रकार की हानि होती है अर्थात् शरीर दुर्बल होजाता, आलस्य जान पड़ता व आंखों में जलन पड़ती है, इसलिये ९, १० बजे रात जाने पर सोरहना उचित है, कि जिससे प्रातःकाल का उठना लाभदायक

हो, क्योंकि प्राणी मात्र को ६ घंटे से कम सोने में मस्तक के रोग उत्पन्न होजाते हैं, आठ घंटे से अधिक सोने से शरीर में आलस्य वा भारीपन जान पड़ता तथा कार्य्यों का भी नाश होता है।

प्रातःकाल की वायु सेवन करने से मनुष्य रुष्ट पुष्ट बने रहते हैं, दीर्घायु व चतुर होते हैं, उनकी बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण होजाती है कि कठिन से कठिन आशय को भी सहज में जान लेते हैं और सदा निरोग बने रहते हैं, इसी समय बाहर बस्ती के बागों की शोभा देखने में बड़ा आनन्द मिलता है क्योंकि पेड़ों से प्राणप्रद वायु नवीन स्वच्छ निकलती है जो बाहर जानेवालों की स्वांस के साथ भीतर जाती है जिसके प्रभाव से मन कली की भांति खिलजाता और शरीर प्रफुल्लित होता है, इसलिये प्यारे भ्रातृगण वा सुजन स्त्रियो प्रातःकाल जागने का अभ्यास करो कि उपरोक्त लाभ न सहने पड़ें इस समय को लौकिक वा पारलौकिक कार्यों में व्यय करो, देखो प्रातःकाल चिड़ियां कैसी चुहचुहातीं, कोयल कूंकूं करती, मैना तोता आदि सब उस सृजनहार परमेश्वर के स्मरण में चित्त लगाते और मनुष्यों को जगाते हैं, फिर कैसे शोक का स्थान है कि हम सब से उत्तम होकर पक्षी पखेरुओं से भी निषिद्ध कार्य करें और उनके जगाने पर भी चैतन्य न हों, इन उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त प्रातःकाल सूर्य उदय से प्रथम शौचादि से निवृत होकर किंचित जल पीने से बवासीर ग्रहणी आदि रोग जाते रहते हैं और उसी समय नाक से पानी पीने से बुद्धि व दृष्टि की वृद्धि होती तथा पीनशादि रोग जाते रहते हैं, यही समय योगाभ्यास वा ईश्वराराधन वा कठिन से कठिन विषयों के विचारने के लिये नियत है, जितने सुजन और ज्ञाता आजतक हुए वह सब प्रातःकाल ही उठते थे, कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि इन अकथनीय लाभों पर भी भारत

वासी जन करवटें लेते ही लेते नौ बजादेते हैं कि जिसके कारण नाना प्रकार के क्लेशों में सदा फंसे रहते हैं।

शौच

प्रथम प्रातःकाल जग कर पाखाने जाना चाहिये, जो मनुष्य सूर्य्य उदय के पीछे दिन चढ़े पाखाने जाते हैं उनकी बुद्धि मलीन, मस्तक न्यून बल, तथा शरीर में नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, बहुधा मनुष्य आलस्य आदि में फंस कर मलमूत्रादि के वेग को रोक लेते हैं, जिससे मूत्रकृच्छ्र शिर रोग, पेंडू पीठ आदि में दर्द होने लगता है, मल के रोकने से ही रोगों की उत्पत्ति होती है, इसीप्रकार छींक डकार, हिचकी, अपानवायु आदि को भी न रोकना चाहिये, पाखाने से आकर मिट्टी से हाथ पांव को स्वच्छ जल से धोना चाहिये फिर मुख की शुद्धता के लिये नीम वा मोलसरी आदि दूध वाले पेडों की दातोन करे फिर सेंधानोन, सोंठ, भुना जीरा मिलाकर दांतों को मांजें, क्योंकि जो मनुष्य दातोन नहीं करते उनके मुंह में दुर्गन्ध आने लगती है और जो प्रति दिन मंजन नहीं लगाते उनके दांतों में नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, कहीं बादी के कारण मसूडे सूज जाते, रुधिर निकलने लगता और कभी दांतों में दर्द होता है, दांत मलिन होने से मुख की छवि को विगाड़ सभ्य मंडली में निन्दा कराते हैं, इसलिये दातोन तथा मंजन का कभी त्याग न करना चाहिये, तत्पश्चात् स्वच्छ जल से मुख को अच्छे प्रकार साफ करे, परन्तु नेत्रों को गर्म जल से कभी न धोवे।

स्नान

मंजनादि के पीछे स्नान करना चाहिये कि जिससे गर्मी का रोग, हृदय का ताप, रुधिर का कोप, शरीर की दुर्गन्धि दूर होकर कांति, तेज, बल,

प्रकाश बढ़ता, क्षुधा अच्छे प्रकार से लगती और बुध्दि चैतन्य होजाती, संपूर्ण शरीर को आराम जान पड़ता, निर्बलता तथा मार्ग के खेद को दूर करता, आलस्य को भी पास नहीं आने देता है, देखो यह बात तो सर्ब जन जानते हैं कि शरीर के ऊपर सहस्रों छिद्र हैं जिनमें बाल हैं, परन्तु यह भी निष्प्रयोजन नहीं, क्योंकि परमेश्वर ने किसी बस्तु को व्यर्थ नहीं बनाया, इन्हीं छिद्रों में से शरीर के भीतर का बिकारी पानी तथा दुर्गन्धित वायु निकलती और बाहर से उत्तम बायु जाती है, जब यह छिद्र बन्द होजावे हैं तब उपरोक्त क्रिया भी नहीं होती, इस कारण खाज, दाद, फोड़ा, फुंसी आदि रोग होकर नाना प्रकार के क्लेश देते हैं, इसलिये शरीर के स्वच्छ रहने के अर्थ प्रतिदिन स्नान करना योग्य है।

यह भी स्मरण रहे कि तरुण वा आरोग्य पुरुषों को शीतल जल से, बूढ़े दुर्बल रोगी जनों को गुनगुने जल से स्नान करना चाहिये।

हे सुजनों धर्मशास्त्र में इन्हीं कारणों से यह आज्ञा दी है कि स्नान के पश्चात् भोजन करना चाहिये, क्योंकि शरीर की बाह्य शुद्धि स्नान से होती है, शीतल जल के स्नान से रक्त पित्त नेत्र रोग जाते और गर्म पानी से वायु वा कफ के रोग होते हैं, परन्तु संधियों के बन्धन ढीले पड़जाते हैं, इसलिये गर्म पानी से खुले हुए मकान में कदापि स्नान न करना चाहिये, शिर पर पानी डालने से नेत्रों का प्रकाश, मस्तक का बल न्यून होजाता है, हां कन्धों से गर्म जल से बन्द मकान में स्नान करना उत्तम है परन्तु इस बात का प्रबन्ध सामान्य जनों से होना असम्भव है इसलिये सदा शीतल जल से स्नान करने का अभ्यास करें, परन्तु वह जल स्वच्छ हो।

स्नान करने के पश्चात् मोटे निर्मल कपड़े से शरीर को पोंछना चाहिये जिससे संपूर्ण शरीर के किसी अङ्ग में तरी न रहे इसी कारण ऐसे कपड़े

को 'अङ्गोछा' कहते हैं, यह गज़ी का होता है, गर्भिणी स्त्री को तेल लगा स्नान करना चाहिये।

पैर धोना

पैर धोने से थकावट जाती रहती, मल निकल जाता तथा स्वच्छता आती, नेत्रों को तरावत वा मनको आनन्द होता है, इस कारण जब कहीं से आया हो या जब आवश्यकता जाने पावों को धोकर पोंछले, यदि सोते समय पांव धोकर शयन करे तो अच्छे प्रकार नींद आती है, पावों में तेल लगाने से बल आता है।

व्यायाम अर्थात् कसरत

यह भी आरोग्यता का लक्षण है, परन्तु शोक वा पश्चात्ताप का स्थान है कि भारत से इसकी प्रथा बिलकुल जाती रही, भद्र पुरुष तो इसका नाम तक नहीं लेते किन्तु ऐसे जनों को असभ्य बतलाते और तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, इसी कारण दिन व दिन इसका प्रचार कम होता जाता है, एक समय ऐसा था कि यह सर्व गुणों में शिरोमणि गिना जाता था (तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत)।

मनुष्य के शरीर की बनावट घड़ी या यंत्रों के पुर्जे के समान है, यदि घड़ी को असावधानी से पड़ी रहने दें, कभी न झाड़ें फूंकें न उसके पुर्जों को साफ़ करायें तो थोड़े ही दिनों में वह बहुमूल्य घड़ी निकम्मी होजायगी और उसके सब पुर्जे बिगड़ जायंगे, जिस प्रयोजन के लिये वह बनाई गई वह कदापि सिद्ध न होगा, यही दशा मनुष्य के शरीर की भी जानो, यदि उसको स्वच्छ सुथरा बनाये रहें और उमंग साहस में नियुक्त रक्खें, स्वास्थ्य रक्षा पर ध्यान देते रहें तो संपूर्ण

शरीर का बल यथावत बना रहेगा और प्रत्येक वस्तु जिस कार्य के अर्थ बनाई गई उसमें यथावत लगी रहेगी, नहीं तो सब निकम्मी होजायंगी और ईश्वर की रचना के प्रतिकूल फल दृष्टि आवेगा अर्थात् जिस हेतु से मनुष्य का शरीर बनाया गया है वह कार्य उससे सिद्ध न होंगे।

इसीप्रकार मनुष्य का जीवन भी लोहू के चलने फिरने पर नियत है, कसरत ही ऐसी वस्तु है जो लोहू की चाल को तेज बना देती है, जिस प्रकार पानी किसी ऐसे वृक्ष को जो शीघ्र सूखजाने वाला है फिर हरा भरा करदेता है, उसी प्रकार शारीरक व्यायाम भी शरीर के किसी भाग को निकम्मा नहीं होने देता।

शारीरक बल दृढ़ रहने के अर्थ कसरत अर्थात् व्यायाम की आवश्यकता है, मनुष्य के शरीर में लोहू की चाल उस नहर के पानी के समान है जो किसी बाग में हर पटरी में होकर निकलता हुआ संपूर्ण वृक्षों की जड़ों में पहुंच सारे बाग को सींच प्रफुल्लित करता है, प्यारे भाइयो उस वाटिका में जितने हरेभरे वृक्ष, रंगबिरंग के पुष्प अपनी छवि दिखलाते, नाना भांति के फल अपनी २ सुंदरता में मन को हरते हैं, यह सब उसी पानी की माया है, यदि उसकी नालियां न खोलीजायं तो सम्पूर्ण वाटिका के पेंड बेल बूटे मुरझाजाते और फूल फल कुम्हलाकर शुष्क होजाते हैं कि जिससे उस आनन्द बाग में उदासी बरसने लगती है और मनुष्यों के नेत्रों को जो उनके देखने तथा विलोकन करने से तरावत व सुख मिलता है उसके स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, इसी के बल से प्राचीन भारतवासी पुरुष निरोग्य, सुडोल, बलवान, योधा, होगये कि जिनकी कीर्ति आजतक गाई जाती है, क्या किसी ने हनूमान, भीमसेन, अर्जुन, वालि आदि योधाओं का नाम नहीं सुना कि जिनकी ललकार से शेर कोसों भागते थे इसी

कारण भारत वासियों ने समस्त भूमण्डल को अपने आधीन करलिया था सो बर्त्तमान समय में भारत में वीर शक्ति का नाम ही रहगया है, तदनन्तर इसके अभ्यास से अन्न शीघ्र पचजाता है भूख अच्छे प्रकार से लगती है, सर्दी गरमी का सहन करसक्ता है वीर्य सम्पूर्ण शरीर में रमजाता है जिससे शरीर शोभायमान वल युक्त होजाता है, इसके उपरांन्त बादीपन से जो मुटाई होजाती है वह सब छूटजाती है, इसी भांति दुर्वल मनुष्य किसी कदर मोटा होजाता है, कसरती मनुष्य के शरीर में प्रति समय उत्साह बना रहता है, वह निर्भय होजाता है कि जिससे उसको किसी स्थान में जाने में भय नहीं लगता, इसी कारण ऐसे मनुष्य पहाड, खोह, दुर्ग, जंगल, संग्रामादि स्थानों में बेखटके चले जाते हैं और अपने मन के मनोरथ सिद्ध करके दिखलाते और गृह कार्यों को सुगमता से करलेते हैं चोर आदि को घर नहीं आने देते, सच तो यह है कि चोर ऐसे मार्ग होकर नहीं निकलते, इसके उपरांत शीघ्र बुढ़ापा व रोगादि नहीं होत, कुरूप मनुष्य भी अच्छे जान पड़ते हैं ।

जो मनुष्य दिन में सोते व व्यायाम नहीं करते आलस्य में दिन भर पड़े रहते हैं उनको अवश्य ही प्रमेह होजाता है इस हेतु इसका अभ्यास प्रति दिन करना चाहिये इन सब क्लेशों से बचने के लिये सर्कारी स्कूलों में क्रिकट आदि खेल खिलाये जाते हैं, और अब सन १८८९ ई०, से तमाम स्कूलों में डंड मुग्दड़, पटा, लेज़म, गेंद वल्ला इत्यादि सिखलाई जाती हैं।

क्यों साहिब क्या अब भी आप इसकी निन्दा करते रहेंगे जब कि विदेशी जन प्रतिष्ठा करते हैं ?

शोक वा पश्चात्ताप का स्थान है कि जिस बस्तु का हमारे प्राचीन पुरुषाओं ने मान किया, यथावत लाभ उठाया और वर्तमान समय में अन्य देशी

उसके प्रचार करने का परिश्रम करें और बुद्धि से यथावत लाभ जान पडें तिस पर भी हम उनकी ओर ध्यान न दें किन्तु निन्दा करें तो क्या यह अज्ञानता का कारण नहीं हैं ? इसलिये हे प्यारे सुजनों अब आप विचार कर अपनी अपनी सन्तानों को प्रति दिन थोडी २ कसरत का अभ्यास कराइये और आप भी कीजिये कि जिससे भारत में बीर शक्ति फिर आजावे, परन्तु कसरत में देश काल व शरीर बल का देखना उचित है, विपरीत दशा में रोग होजाने का भय है, कसरत करने के पीछे तुरन्त पानी न पीना चाहिये, हां एक घंटे उपरांत कोई बल दायक भोजन करना अभीष्ट है, जैसे गाय का दूध और मिश्री वा अन्य कोई प्रकार के लड्डू जो देश काल व प्रकृति के अनुकूल हों।

बालों का स्वच्छ करना

इसके पीछे कंघे आदि से बालों को साफ करना चाहिये कि जिससे बाल मैले न रहें क्योंकि मल के होने के कारण बाल बुरे जान पडते तथा जुएं होजाते हैं, परन्तु यह भी प्रकट हो कि इस देश वालों को शिर पर अधिक बाल रखना लाभदायक नहीं क्योंकि इस देश में गर्मी अधिक होने से नाना दोष होजाते हैं, इसलिये छोटे २ बाल रखना तथा उनको आठवें दिन मुल्तानी मिट्टी या आमले को पीस तेल में पकाकर या सरसों को पीस मलकर धोना योग्य तथा लाभदायक है ।

अञ्जन

अञ्जन प्रति दिन नेत्रों में लगाना चाहिये क्योंकि इससे खुजली, पानी आना, दर्द, वायु तथा धूप के विकार नष्ट होकर नेत्रों का प्रकाश सुन्दरता युक्त होजाता है ।

वैद्यक में बहुत प्रकार के सुरमे लिखे हैं, जिनमे से एक के बनाने की रीति हम यहां लिखते हैं—

सुरमे को आग में गरम कर त्रिफले के अर्क में सातबार बुझावे, फिर स्त्री के दूध में, तदनन्तर गोमूत्र में पांच २ वार पृथक् २ बुझाकर महीन पीसकर रखेंले ।

सुरसा सामान्यता से प्रातःकाल स्नान के पश्चात् तथा सायंकाल को लगाकर सोना चाहिये, परन्तु ध्यान रखना योग्य है कि शिर से स्नान करने के पीछे तुरन्त ही सुरमा लगाना योग्य नहीं, भोजन के पश्चात् व नवीन ज्वर में भी सुरमा नहीं लगाना चाहिये ।

अब यहां पर दृष्टि रक्षा के हितार्थ कुछ नियम लिखते हैं जिन पर अवश्य ध्यान देना चाहिये—

(१) पांव को गरम तथा शिर को ठंढा रक्खे ।

(२) जहां यथेष्ट प्रकाश न हो वहां वारीक अक्षर न देखे ।

(३) लेटे २ व चलते फिरते पुस्तक को न पढ़े ।

(४) मदिरा कदापि न पिये किन्तु तम्बाकू से भी घृणा करे ।

(५) प्रातःकाल जागने के पश्चात् तथा ग्रीष्म ऋतु में सयन करने के प्रथम आखों को शीतल जल से धोवे ।

(६) प्रातःकाल विना खाये आंखों पर जोर न डाले ।

(७) प्रति दिन संध्या समय भोजनों के पीछे गाय के दूध में मिश्री मिलाकर पीना चाहिये ।

वायु

पदार्थ विद्या से यह सिद्ध है कि जिस प्रकार पानी के बड़े २ समुद्र पृथ्वी पर हैं उसी प्रकार हवा के भी हैं, जिस भांति मछलियां पानी में रहती

और बिना उसके चंद मिनट में मरजाती हैं, इसी तरह हम भी हवा में रहते और बिना इसके हमारा जीवन नहीं होसक्ता।

हवा के बिना मनुष्य के बहुत कार्य्य नहीं होसक्ते न आग जलती, न आवाज़ सुनाई पड़ती, न वर्षा होती है।

वायु निम्न लिखित वस्तुओं से बनी है:—

(१) एक प्राणप्रद वायु अर्थात् जिस पर जीवधरियों का जीवन निर्भर है, बिना उसके वस्तुऐं नहीं जलती, यदि हवा में केवल प्राणप्रद वायु ही होती तो भी हम नहीं जीसक्ते क्योंकि यह इतनी सख्त होती कि हम न सहसक्ते, यह दोष दूर करने के लिये उस परब्रह्म परमेश्वर ने अनेक वस्तुऐं मिलाई हैं।

(२) दूसरी नयटरोजन अर्थात् जीवाक वायु, इसका गुण प्राणप्रद वायु के बिलकुल विरुद्ध है न तो इसमें वस्तुऐं जलती हैं न जीवधारियों का जीवन इसके आश्रित है, इसमें जलताहुआ दीप बुझजाता है, यह प्राण-प्रद वायु की मदद के लिये है, यह हवा में प्राणप्रद वायु से चतुर्गुण होती है।

(३) तीसरी कारबोनिकएसिडगास, यह भारी होती और बहुधा गहरे कुओं में जमा रहती है इसमें भी जलता दीप बुझजाता तथा यही स्वास में आवे तो मनुष्य मरजाता है, परन्तु बनस्पति इसके बिना जिन्दा नहीं रहतीं, इसका हवा में २५०० वां भाग रहता कि जिससे किसी को हानि नहीं पहुंच सक्ती, वनस्पति इसे खींचती तथा इसके बदले में प्राणप्रद वायु को निकालती है

(४) चौथी वस्तु हवा में पानी की भाफ हैं, यह बर्षा करती है, यदि यह हवा में न होती तो सूर्य्य की गर्मी से सब हवा गर्म होजाती तब स्वास द्वारा मनुष्यों के शरीर झुलस जाते, खून में अधिक हरारत उत्पन्न होती,

वृक्ष मुरझाजाते, इन बुराइयों को दूर करने के निमित्त उस परब्रह्म परमेश्वर ने इन सब को इस प्रकार से मिलाया कि जीवधारियों को हानिकारक न हों।

जैसे नहाने धोने से शरीर की बाहर शुद्धता होती है वैसे ही स्वांस द्वारा भीतर की शुद्धता होती, अर्थात् जब मनुष्य स्वास लेता है तो हवा अन्दर जाती है और उसमें का प्राणप्रद वायु खून में मिलजाता है जो अशुद्ध खून को साफ करता तथा शेष भाग हवा की गन्दगी को लेकर बाहर निकलजाता है, जो वायु स्वास के साथ अन्दर जाती है उसमें बहुत कम और जो बाहर आती है उसमें सौगुना कारबोनिक-एसिड गास होता है।

अब देखिये कितनी गन्दगी स्वास द्वारा बाहर आती अर्थात् प्रति समय आभ्यन्तरिक स्नान होता रहता है।

मिलने, चलने और दरख्तों से प्राणप्रद वायु के निकलने से हवा शुद्ध होती रहती है।

परमेश्वर ने नाना प्रकार के पुष्प, सुगन्धित बस्तुऐं पैदा की हैं जो हवा की गन्दगी को दूर करती है।

जितनी हवा परमेश्वरीय नियमों से विगड़ती है उतनी ही शुद्ध भी होती रहती है।

मनुष्य को प्रति दिन के कार्य्यों से जितनी वायु विगड़े उसका शुद्ध करना परमावश्यक है।

हमारे आप के नहाने धोने, आग जलाने, मल मूत्र के त्यागने से वायु खराब होजाती है, इसीलिये इन खराबियों के दूर करने के लिये कोई उपाय अवश्य सोचना चाहिये।

बिना खाये पिये चाहे मनुष्य जिन्दा भी रहसके परन्तु विना हवा के थोड़ी ही देर में मरजाता है, सब जानते हैं कि आरोग्यता के लिये शुद्ध वायु की आवश्यकता है, वायु सदा स्वांस लेने से खराब होती रहती है इसके अतिरिक्त आग जलाने, मल मूत्र त्यागने, पसीना निकलने से वायु विगड़ आरोग्यता को हानि पहुंचाती है।

यहां तक कि ऐसी हवा में रहने वाले पीले पड़जाते घबड़ाये हुए दिल रहते, तथा नाना प्रकार के रोगों में ग्रसित होजाते हैं।

जब कि हवा सदा बिगड़ी ही रहती है, तो उसका शुद्ध रखना आवश्यकीय है इसलिये परब्रह्म परमेश्वर ने हवा के शुद्ध होने के लिये नियम नियत किया है अर्थात् हवाओं का आपस में मिलना और इनके दूर करने के लिये जो प्रयत्न हमारे ऋषि मुनियों ने नियत किया है उससे अच्छा और कोई उपाय नहीं होसक्ता, अर्थात् हवन का नित्य प्रति करना कि जिसकी शिक्षा वेद शास्त्रों में भी है।

हवन करने का यही अभिप्राय है कि जितनी हवा खराब हो वह शुद्ध होजावे।

इसलिये हे प्रियवरो यदि आरोग्यता की चाह है तो नित्य प्रति हवन किया करो।

नोट—हवन के लाभ हम आगे लिखेंगे।

पानी

प्रत्येक मनुष्य को ज्ञात है कि हवा की तरह आरोग्यता के लिये पानी की भी आवश्यकता है विना इसके किसी जीवधारी का जीवन नहीं रहसक्ता, मनुष्य के शरीर में पानी का भाग दो तिहाई से भी अधिक है, अर्थात् जिसके शरीर का बोझ ७५ सेर हो उसमें ५६ सेर पानी है, यदि इतना पानी न होता

तो लोहू स्वच्छ न रहता, तथा गाढ़ा पड़जाता, जब गाढ़ा पड़जाता तब उसका चलना बंद होजाता ।

जो पानी हम पीते हैं वह लोहू में मिल कर रगों में पहुंचता है, यदि आप खराब पानी पियेंगे तो प्रत्येक रग में हानि होती जायगी जिसका अंतिम परिणाम स्वच्छता से हाथ धोना होगा, इसलिये मनुष्य मात्र को उत्तम जल पीना चाहिये, खराब पानी के पीने से नाना प्रकार के रोग होजाते हैं कि जिनसे मनुष्य को बड़े २ कष्ट उठाने पड़ते हैं।

खराब जल गाय भैंस आदि पशु पक्षियों को भी हानिकारक है अर्थात् उनके पेट में केंचुये आदि होजाते हैं, पशुओं को चैबचे, नालियों आदि का गंदा पानी कभी न पिलाना चाहिये गंदे पानी यें वस्त्रादि भी न धुलाना चाहिये जो कि मनुष्य मात्र के पहरने ओढ़ने के काम में आते हैं इनमें से दुर्गन्धित परमाणु निकलते हैं जोकि आरोग्यता को हानिकारक होते हैं, इस ओर भी ध्यान देना आवश्यकीय है ।

उत्तम पानी वह है जिसमें किसी प्रकार की सड़ी वस्तुऐं न मिली हों, न जिसमें दुर्गंधि आती हो, सब से उत्तम पानी वर्षात् का होता है और विशेष कर कुआर के महीने का पानी अत्यन्त अच्छा और लाभ दायक है, सुश्रुत में लिखा है कि कुआर के महीने की वर्षा का पानी पीना थकावट प्यास, जम्हाई जलन इत्यादि दूर करता, तथा लोहू को स्वच्छ करता व पाचन शक्ति को बढ़ाता है ।

परन्तु प्रत्येक मनुष्य को ऐसा पानी नहीं मिलसक्ता, हां, धनाढ्य जन इसका प्रबन्ध करसकते हैं कि कुआर के महीने में जब बर्षा हो तो ऊंचे पर कपड़ा तान नीचे से पानी लेकर सोने चांदी आदि के वर्तनों में रख छोड़ें ।

सामान्य जन कुए, नदी, तालाब से पानी पीते हैं, परन्तु भारत देश में

वर्त्तमान समय में ऐसी २ रीतें प्रचलित होगई हैं जिनसे उनके पानी में गंदगी उत्पन्न होजाती है, जिसके पीने से नाना प्रकार की बीमारियां उत्पन्न होजाती हैं, अतः हम उनके दूर करने के लिये उपाय लिखते हैं, उन पर ध्यान रखना प्रत्येक मनुष्य का काम है।

रोगकारक जल की पहिचान

जो जल छूने में चिकना और गाढ़ा हो किसी तरह का रंग या ऊपर उसके कुछ तेल सा मालूम होता हो तथा जिसमें दुर्गन्धि आती हो या जो जल पीतल तांवा धातु डालने से काला पड़जाय वह खराब व हानिकारक है।

नोट—(१) पानी को रात में उठ कर न पिये क्योंकि नजला होजाता है।

(२) फलादि के पश्चात् जल न पिये क्योंकि खांसी आदि रोग होजाते हैं।

कुआ बनवाना

कुए के बनवाने के समय नीचे लिखी बातों पर ध्यान रखना योग्य है—

(१) कुएँ उथले न हों अर्थात् गहरे हों, क्योंकि गहरा पानी मीठा होता है।

(२) कीचड़ या डुलाव की जगह कुआ न बनवाना चाहिये।

(३) निकास का पानी कुए में न जाने पावे।

(४) आस पास का पानी रिस २ कर न जाना चाहिये।

(५) कुए के आस पास की मुडेल कई फिट चौड़ी होनी चाहिये।

(६) कुओं के आस पास खाई न हो जिस में पानी भरा रहे।

(७) कुओं पर लोहे वा लकड़ी की जाली होना आवश्यक है, कुओं के ऊपर मनुष्य स्नान न करें न कपड़े धोयें, और न कुओं के आस पास पाखाने हों क्योंकि गंदगी रस २ कर जाती तथा पानी को बिगाड़ती है।

(८) पेड़ों के पत्ते तथा कूरा करकट न गिरने पावे कि इनके सड़ने पर पानी बिगड़ जाता है।

(९) स्वच्छ डोल व रस्सी से पानी भरना चाहिये।

तालाव

भारतवर्ष में बहुधा तालावों से पानी पीने का प्रचार है परन्तु शोक इतना है कि उसकी स्वच्छता पर किंचित् ध्यान भी नहीं देते, रात दिन जसको खराब कर फिर उसको पीते हैं, इसलिये निम्न लिखित बातों पर पूरा २ ध्यान रखना उचित है—

(१) बहुधा जन तालावों में स्नान दातोन कुल्ला भी करते हैं।

(२) अशुद्ध कपड़े उसमें धोते तथा उनका खराब पानी उसमें नचोड़देते हैं।

(३) तालावों के किनारों पर पाखाने जाते फिर उसी में शौच करते हैं।

(४) गाय भैसादि पशुओं को स्नान कराते तथा कभी २ सुअर तक घुस जाते हैं।

(५) सन आदि सड़ने को डालते हैं।

(६) जब गर्मियों में तालाव सूखजाते हैं तब उसके भीतर पाखाने जाते हैं।

(७) तालावों में वर्त्तन मांजते धोते हैं।

प्रियबरो इन बातों पर ध्यान न रखने के कारण प्रति वर्ष बीमारी का रोला भारत में पडता है, इसलिये इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, मनुष्यों को पानी पीने के लिये पृथक् और जानबरों के लिये पृथक् तालाव रखना चाहिये, परन्तु उसका भी स्वच्छ होना आवश्यक है क्योंकि खराब पानी के पीने से पशुओं को बहुत हानि होती है अतः उपरोक्त बातों का ध्यान रखना प्रत्येक तालाव के लिये उपयोगी है, किनारे पर हरे पेडों का होना भी आवश्यक है परन्तु पत्ते भीतर न जाने पावें।

नदियों का पानी

भारतवर्ष में नदियों का पानी बहुधा स्थानों पर पियाजाता है परन्तु उसकी स्वच्छता का ध्यान नहीं करते जिसके कारण नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, इन रोगों से बचने के लिये निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखना परम आवश्यक है :—

जिन बातों से तालाबों का पानी खराब होता है उन्हीं बातों से नदियों का भी पानी बिगड़जाता है, अतः उन बातों से नदियों के पानी को बचावें, तथा हैजे से मरे हुए आदमी और बच्चों को नदी में न डाले न उसके किनारे गाडे, मुर्दे जलाकर उनकी राख तथा हड्डियों को भी उसमें न डाले, इत्यादि बातों से नदियों के पानी को स्वच्छ रखना चाहिये।

दल दल का पानी पीना योग्य नहीं क्योंकि उसके पीने से बुखार आदि रोग होजाते हैं, जिस स्थान पर ऐसा ही पानी पीने को मिले तो औट कर पीना चाहिये ।

पानी को नीचे लिखी रीतों से स्वच्छ करलेना चाहिये :—

(१) फिटकरी व निर्मली को घिस कर डालें।

(२) पानी को गर्म करने से भी खराब वस्तुओं का अवगुण जाता रहता है ।

(३) थोड़ी देर पानी को वर्तन में रखने से उसमें की तिलछट बठजाती है ।

(४) बहुत प्रकरा क छन्ने बनाये गये हैं।

(५) बादाम की मींगी को पीस कर डालने से पानी स्वच्छ होजाता है।

(६) नदी के किनारे गड्ढा खोदने से पानी अच्छा मिलजाता है।

(७) बहुधा कोयलों से भी पानी को स्वच्छ करते हैं, क्या स्टेशनों पर नहीं देखा कि एक तिपाई पर पानी के तीन घड़े रक्खे होते हैं ऊपरवाले की

पेंदी में छेद होता है जिससे पानी टपक २ दूसरे में होता हुआ तीसरे घडे में जाता है, उसमें सब से ऊपर वाले घड़े में पानी और बीच के घड़े में कोयला और बालू रहती है, इस प्रकार जल को स्वच्छ करना चाहिये।

प्रियवरो कुछ ईश्वरीय नियम से भी पानी बिगड़ जाता है जैसा बहुधा जानवरों का जो उसने उत्पन्न किये हैं मर कर सड़ना और बहुधा घासें जो उसमें पैदा होती है सड़कर मिलजाती हैं उनके दूर करने का उपाय भी ईश्वर ने करदिया है अर्थात् मछलियां उत्पन्न करदी हैं जो उसकी सम्पूर्ण गंदगी को दूर करदेती हैं, उनको भी बहुधा लोग मार कर खाजाते हैं शोक है उन मनुष्यों पर जो ईश्वरीय नियम को तोड़ कर संसार के लाभ को मेटते हैं, मछलियों के भक्षण करने की हानि को आगे दिखलावेंगे।

प्रिय सज्जन पुरुषो ऊपर कही बातों का ध्यान कर पानी को साफ कर पियाकरो कि जिससे शरीर आरोग्य रहे और बुद्धि निर्मल हो।

भक्ष्याभक्ष्य का वर्णन

जिस प्रकार के भोजनों से शरीर आरोग्य रहता है और मन बुद्धि शरीर के अवयव रूप रसादि धातुओं में किसी प्रकार का दोष न हो वह स्वस्थ दशा कहाती है ऐसी दशा में रहने से ही मनुष्य सुखी रहता है और सुख धर्म का फल है अतः सर्व सज्जनों को प्रथम ऐसे ही आहार का सेवन करना चाहिये ऐसे ही आहार को भक्ष्य कहते हैं—और जिस भोजन से मन, बुद्धि, शरीर, धातुओं में विषमता हो उसको अभक्ष्य कहते हैं, अभक्ष्य भोजन करने वालों को रोगादि होकर क्लेशित करते रहते हैं और यह नाना प्रकार के दुःख अधर्म का फल हैं, इसलिये धर्मात्मा पुरुषों को ऐसे आहार का सदा त्यागन करना योग्य है।

प्रकट हो कि एक पहर के ऊपर और दो पहर के भीतर भोजन करने की आज्ञा वैद्यक शास्त्रकारों ने दी है परन्तु जब पेट में अच्छे प्रकार रस मल के पकने पर भूक लगती है वही समय बहुत ठीक है इसके पश्चात् यह भी देखने में आता है कि जो जिस समय भोजन करता है उसको उसी समय भूक लगती है हमारी समझ में दिन में १० बजे और रात में ९ बजे का समय बहुत श्रेष्ठ है परन्तु मानसिक परिश्रम करने वाले विद्यार्थियों को १० बजे से प्रथम अर्थात् कसरत करने के पश्चात् और सायंकाल को शौचादि से निश्चिन्त होकर बल-दायक पदार्थों का स्वल्प भोजन करना चाहिये भोजन करने के समय एक चौकी एक गज लंबी एक बालिस्त ऊंची चारो ओर गोल हो सन्मुख रख कर उसके ऊपर सम्पूर्ण पदार्थों को यथा योग्य रख, परमेश्वर का धन्यवाद करके आनंद पूर्वक भोजन करे।

परन्तु यह भी स्मरण रहे कि झुक कर भोजन करने में पेट दबजाने से पक्वाशय की धमनी निर्बल होजाती है जिससे भोजन ठीक समय पर नहीं पचता, इसलिये छाती उठाकर भोजन करे भोजन में न अति विलम्ब न अति शीघ्रता करनी चाहिये वरन यथावत आनंद से भोजन करे क्योंकि शरीर की आरोग्यता के लिये विशेष फल देने वाले भोजन ही हैं इसी कारण जो जैसा भोजन करते हैं उनकी वैसी ही प्रकृति होती है, गीता के अध्याय ८ श्लोक ८, ९, १० में लिखा है:—

आयुः सत्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः॥
कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनाः।
आहारा राजस्येष्टा दुःख शोकामयप्रदाः॥
यातयामंगतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपिचामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्॥

अर्थात् अवस्था, चित्त की स्थिरता, वीर्य, उत्साह, बल, आरोग्यता, उपसमात्मक सुख बढ़ाने वाला, रस वाला, कोमल तर, रस चिरकाल तक ठहरने वाला, जिसके देखने से मन प्रसन्न हो, इस प्रकार के भोजन करने से सात्विक भाव उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

अति चर्फरा, खट्टा, नोन, गरम, तीक्ष्ण, रूखे दाह करने वाले भोजन से राजसी भाव उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

जिनको बने हुए बहुत काल हुआ हो, अति ठण्ढा, सूखा, दुर्गंधि आती हो बासी, जूठा, अभक्ष्य भोजन करने सें तमोगुणी भाव उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

इस प्रकार के निषिद्ध अन्न से विशूचिकादिक रोग होजाते हैं, इसके अतिरिक्त भात के साथ सिरका, मूली के साथ दूध, वा दही, तथा दूध के साथ नीबू, न खाना चाहिये क्योंकि इससे कफ तथा बायु के विकार होजाते हैं, तथा दूध के साथ तेल के पदार्थ सेवन से कवल, खरबूजा के साथ दूध तथा आम के साथ शरवत पीना न चाहिये वरन खरबूजा के साथ शरवत और आम के साथ दूध पीना योग्य है ।

इसके अतिरिक्त भोजन नाना प्रकार के करना चाहिये कि जिससे एक प्रकार की टेव न पड़जावे जो फिर बहुत प्रकार के क्लेश देती है; भोजनों के साथ हरे साग का भी खाना अति ही श्रेष्ठ है, अधिक पानी पीने से पेट बढ़जाता तथा अग्नि मन्द होजाती है, हां भोजनों के मध्य में एक दो घूट पानी पीना भला है क्योंकि इससे अग्नि तेज होती है और अन्त में पानी पीने से अंग पुष्ट होता है, भोजनों के उपरांत थोड़ा २ पानी पीने से अन्न शीघ्र पचजाता है, जल को तांवे या मिट्टी के वर्त्तन में छान कर पीना चाहिये, जैसा कि मनु जी ने कहा है:—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥

किसी मनुष्य को दूसरे का जूठा भोजन न खाना चाहिये और न कोई जूठे मुंह किसी स्थान को जावे, न प्रातःकाल और सायंकाल के मध्य में भोजन करना चाहिये, न बारम्बार तथा अति भोजन करना योग्य है, जैसा कि मनुजी महाराज ने मनुस्मृति के अध्याय २ श्लोक ५६ में कहा है:—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्यैव तथन्तरा ।
नचैवात्यशनं कुर्य्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्॥

अर्थात् एक थाली वा परतल में अधिक मनुष्यों को भोजन करना योग्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव प्रथक् २ होता है, कोई चाहता है कि दाल भात को मिलाकर खाऊं, किसी की रुचि इसके विरुद्ध है, इसी प्रकार अन्य जनों का अन्य स्वभाव होता है; तो इस दशा में अरुचि से भोजन करना पड़ता है, अरुचि के कारण अन्न अच्छे प्रकार नहीं पचता, बहुधा मनुष्य इसी हेतु से भूखे उठ बैठते और बहुतों को नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, इसके उपरांत प्रत्येक के हाथ बारम्बार मुंह में लगते हैं फिर भोजनों में, तो एक के रोग दूसरे में प्रवेश करजाते हैं, इसी हेतु कोढ़ी को कोई अपने साथ भोजन नहीं कराता, इसके अतिरिक्त यदि एक कुटुम्ब के बीच में अन्य कोई सम्बन्धी जो दूर देश में रहता है वह गुप्त रूप से शराब मांस भक्षण करता है वा व्यभिचार में लिप्त है तो एक साथ खाने पीने से अन्य मनुष्यों की पवित्रता पर भी धब्बा लगजाता है, इन सब के उपरांत जूठा भोजन करना महा पाप है क्योंकि इससे केवल शारीरक रोग ही उत्पन्न नहीं होते वरन बुद्धि को अशुद्ध कर उसके सम्पूर्ण बल का नाश मार देता है, प्रत्यक्ष में देखलीजिये कि जो मनुष्य जूठा भोजन खाते हैं उनके मस्तक

गन्दे होते हैं कि जिससे उनको सोच विचार करने का स्वभाव बिलकुल नहीं रहता, इसका कारण यह है कि जूठा भोजन करने में स्वच्छता नहीं, बस जहां स्वच्छता व शुद्धता नहीं वहां शुद्धि बुद्धि का क्या कहना, सभ्यता शुद्धि बुद्धि का फल है फिर सभ्यता कहां, क्योंकि जूठा खाने वालों की बुद्धि मोटी होजाती है, इसी कारण मनु जी आदि ऋषियों ने जूठा खाने का निषेध किया है, अतः आर्य्य पुरुषों का यही धर्म है कि चाहे अपना लड़का ही हो उसको भी जूठा भोजन न दें, बचपन से ही झूठ तथा जूठे भोजन से घृणा करना उचित है, हमारे बहुधा स्वदेशीय बन्धु जो धर्मशास्त्रों का अवलोकन नहीं करते न कभी उनको सुनते हैं, वह अपने छोटे २ बच्चो को अपने साथ भोजन कराने वा उनका जूठा आप खाने तथा अपना पिया हुआ पानी उन्हें पिलाने में बड़ा लाड़ समझते हैं, कैसे शोक का स्थान है कि महा निंदित कर्म को लाड़ प्यार वा धर्म कार्य्य समझें तथा उनकी बुद्धि का नाश मारकर सर्वस्व का सत्यानाश करदें और उनके परम हितैषी कहलावें, हा शोक ! हा शोक !! हा शोक !!!

हाय भारत ! तेरे पवित्र यश में नाना प्रकार के धब्बे लगगये हैं क्योंकि इस देश में बहुधा मत ऐसे चलगये हैं कि जिनमें चेला चेलियों को गुरू का जूठा खाना धर्म का अंश माना है जिससे उनके जूठे टुकड़े बांटे जाते हैं वा गुरू का जूठा पानी अमृत के समान जान कर पान करते हैं, प्यारे सुजनों परीक्षा से जाना गया है कि ऐसे गुरू आत्मा और परमात्मा का नाम तक भी नहीं जानते केवल धन इकट्ठा करना, विषय भोगादि में लगे रहना आदि मलीन कर्म इन गुरुओं के परम धर्म हैं, फिर चेले महाराज का क्या कहना, इसलिये हे प्यारे सुजनों ऐसे पातकी गुरुओं से सदा बचना योग्य है ।

अति भोजन कभी न करना चाहिये कि उससे नाना प्रकार के रोग होजाते हैं आलस्य सदा बना रहता है जिसके कारण सांसारिक व पारमार्थिक कार्यों को अच्छे प्रकार नहीं करसक्ता, और संसार में ऐसे मनुष्यों की निन्दा होती है तथा सर्व जन पेटार्थी कहते हैं, जो मनुष्य सदा नियत समय पर पथ्यापथ्य अनुसार प्रमाण से भोजन करते हैं उनको 'मिताहारी' कहते हैं उन्हीं का शरीर सदा आरोग्य रहता है।

भोजन करने का स्थान पाक स्थान से पृथक् होना चाहिये जो अच्छे प्रकार सफेदी से पुता हुआ हो, तथा वहां नाना प्रकार की सुगंधित व मनोहर अनोखी वस्तु रक्खी हों, जिन से नेत्रों को आनन्द तथा मन को हर्ष हो, वहां किसी प्रकार की मलीनता न हो तथा वायु भी अच्छे प्रकार से आती जाती हो तहां सुन्दर आसन पर बैठ भोजन करना योग्य है, उस समय माता पिता स्त्री भाई मित्र पाककर्ता वैद्य के अतिरिक्त कोई न होना चाहिये क्योंकि भोजन भजन एकांत ही में अच्छा है, भोजन करने के समय में वार्त्तालाप करना अनुचित है, क्योंकि एक इन्द्री से एक समय में दो कार्य उत्तम नहीं होसक्ते किन्तु दोनों अधूरे ही रहजाते हैं, अतः एक समय में एक इन्द्री से एक ही काम लेना योग्य है, हां मित्रादि उत्तम तथा प्रसन्न करने वाली कहानियों वा प्रीति कारक बातों को सुनाते जायं तो श्रेष्ठ बात है।

भोजन को अच्छे प्रकार चबाकर खावे, कच्चे फल और बहुत तरकारी से परहेज रक्खे, इसके अतिरिक्त हैजा के दिनों में खाने का खूब विचार रक्खे।

भोजन करने के पीछे सौ पग टहलने से अन्न पचता तथा आयु की वृद्धि होती है, इसके पीछे थोड़ी देर पलंग पर लेटने से अंग पुष्ट होता तथा खुर्राटे मारने से रोग होता है, इस स्थान पर यह भी स्मरण

रहे कि दिन में भोजन करने के उपरांत पलंग पर दायें बायें करवट लेटना तथा शाम को भोजन करने के पश्चात् टहलना परम लाभदायक है।

खाने के पश्चात् ब्रेंच, स्टूल, तिपाई, कुरसी आदि पर बैठने, नींद से सोने, आग के सन्मुख बैठने, धूप में चलने दौड़ने वा घोड़े की सवारी पर चढ़ने, तथा कसरत आदि से नाना दोष उत्पन्न होते हैं, अतः भोजनों के पश्चात् एक घंटे वा अधिक सयय तक ऐसे काम न करने चाहिये, इसके उपरांत पाचन के अर्थ कोई चूरन वा शरबत न पीना चाहिये क्योंकि फिर टेव पड़जाने पर बिना चूरन आदि के पाचन नहीं होता तथा आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है, इसके अतिरिक्त अत्यन्त पानी पीना, बिना पचे भोजनों पर भोजन करना, बिना छुधा के खाना, भूख का मारना, या आधसेर के स्थान पर एक सेर खाना, अथवा अत्यन्त न्यून खाने इत्यादि कारणों से अजीर्ण वा मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं।

इन्ही कारणों से भूखा रहना अच्छा नहीं परन्तु अब वर्त्तमान समय में भूखे रहनेवालों को ही बृती कहते हैं तथा उनकी बड़ी प्रतिष्ठा होती है और वह भी अपने मन में स्वर्ग जाने की आशा रखते हैं, परन्तु प्रिय भ्रातृ गणों यह महा मिथ्या है क्योंकि सत्य शास्त्रों में बिना अजीर्ण के किसी दिन निराहार रहने की आज्ञा नहीं है, कहा है—"भूखे भक्ति होय नहिं भाई" यह प्रत्यक्ष प्रकट है कि जब नियत समय पर अन्न नहीं मिलता तो सम्पूर्ण इन्द्री मन सहित विकल होजाती हैं अर्थात् मारे क्षुधा के उदासीनता छाजाती, हांथ पावं यें शिथिलता, आंखें निकली पड़ती, प्यास के मारे कंठ सूखने लगता तया एक २ पल बर्ष समान बीतता है, भजन में मन की एकाग्रता की आवश्यकता है, क्या ऐसी दशा में मन आराम पा-सक्ता है ? फिर वृत कैसा !

इसके उपरांत भूख के मारने वा कुपथ्य भोजन खाने वा विना समय भोजन करने अथवा बिलकुल निराहार रहने से अजीर्ण अरुचि होजाती है, अग्नि मन्द पड़जाती, शरीर तथा आंखों में दर्द होने लगता है, बल बुद्धि का नाश होजाता तथा नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, तिस पर विशेषता यह है कि बालक, बूढ़े, दुर्बल, गर्भिणी आदि को भी यह व्रत कराये जाते हैं—हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!! कि जिससे नाना प्रकार के क्लेश हों उसको धर्म का चिन्ह मानाजाय, सत्य शास्त्रों और परमेश्वर की आज्ञा का कुछ विचार न किया जाय, तो क्या इसका नाम अन्धेर नहीं है तो क्या है ?

इसके उपरांत व्रत ऐसे भी हैं कि जिन में बासी भोजन खाये जाते हैं जिनको "देवी महारानी का बस्योरा कहते हैं", क्या ही आश्चर्य्य का स्थान है कि यह श्रीकृष्ण जी महाराज की आज्ञा पर भी तनिक ध्यान नहीं करते अर्थात् गीता के १२ अध्याय के १० श्लोक को नहीं विचारते जहां उन्हों ने बासी भोजन करना मना किया है कि जिससे तामसी भाव उत्पन्न होता है, अर्थात् बुद्धि मलीन होजाती है, आलस्य भरा रहता है, इसके अतिरिक्त बहुधा स्त्रियां आग्नि छोड़ देती हैं अर्थात् आग पर चढ़ा हुआ भोजन किसी प्रकार का नहीं खाती और इसको परम तप समझती हैं, ऐसी दशा में रोटी, दाल, तरकारी, गर्म दूध गुड़, मिश्री आदि कुछ नहीं खाती केवल ऋतु के फलादि पर निर्वाह करती हैं, हे प्यारी बहनों इससे तुम्हारी बड़ी हानि होजाती हैं, नाना रोग तुमको घेरे रहते, जिनसे सन्तानों को बड़े २ दुःख उठाने पड़ते हैं, प्रत्यक्ष देखो कि उन दिनों में तुम्हारी क्या दशा होजाती है, बहुधा स्त्रियां नमक छोड़देती हैं यह भी उनकी बड़ी भूल है क्योंकि यह स्वाद के कारण नहीं खाया जाता वरन मनुष्य के रक्त के साथ बहुत सा भाग नमक का है नमक के साथ भोजन पचता हैं बिना इसके खाये बल का नाश होजाता है, अन्त में उनके शरीर में

कीड़े पड़जाते हैं कि जिनसे उनको नाना क्लेश भोगने पड़ते हैं, बहुधा व्रतों में अन्न का निशेध किया है यह भी अत्यन्त मिथ्या है क्योंकि इन व्रतों में सिंघाडा, पोस्ता, फाफडा, घुइयां, आलू आदि कुपथ्य भोजन करते हैं कि जिनसे स्वास्थ्य रहना अति कठिन है, गेहूं आदि दाल, भात, तरकारी सदा पथ्य हैं उनमें दोष बताना ही पाप की बात है, न इन व्रतों के करने की आज्ञा सत्य शास्त्रों में हैं, हां शुद्ध आचरण का नाम ही व्रत है । जिसका वर्णन हम आगे करेंगे ।

प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि ऋतु के अनुकूल अपने स्वभाव के अनुसार नियमानुसार भोजन करे वरन नाना प्रकार की हानि होना सम्भव है देखो इस समय भारतवर्ष में कोई घर ऐसा नहीं जिसमें रोग का राज्य न हो इसका कारण यह है कि हमारे नियम ठीक नहीं है—अब हम प्रत्येक ऋतु के भोजनों का वर्णन करते हैं ।

शरद ऋतु के भोजन

मिश्री, गाय का दूध, घी, शकर, चावल, दाल, मूंग इसके उपरांत और वस्तु जो ऋतु और स्वभाव के अनुसार हों खाना चाहिये, घी में काली मिरच और शकर डाल कर खाना चाहिये, नदी का पानी पीना उत्तम है, और तेल की चीजें (सत् नमक) आम की खटाई लाल मिर्च दिन में सोना रात में जागना यह सब बातें इस ऋतु में न करना चाहिये ।

अधिक शरदी के भोजन

दूध, घी. गेहूं उरद की दाल चावल मुश्क, केसर, शरीर में तेल लगाना, ऋतु के फल स्वभाव के अनुसार खाना रुई वा ऊनी कपड़े पहरना योग्य हैं, ऐसे समय नें कसरत कम करना चाहिये ।

वसन्त ऋतु का पथ्य

गेहूं, चावल, मूंग शकर का भोग लगाना शरवत पीना उत्तम है प्रातःकाल सायंकाल वायु सेवन, कसरत करना, कै करना, जुलाव लेना इस मौसम में अच्छा है, मीठा खट्टा दही, और चिकनी कड़ी वस्तुओं का खाना अच्छा नहीं ।

ग्रीष्म ऋतु का पथ्य

गेहूं, चावल, मिश्री, दूध, शकर, ठंढा पानी, गुलाब, केवड़ा, खास मोतिया का इतर सूंघना, प्रातःकाल सफेद हलका सूती वस्त्र धारण करना, और दस से पांच बजे तक सूती जीन वा गजी वा कोई मोटा कपड़ा पहरना फिर पांच बजे के पश्चात् महीन वस्त्र धारण करना, वर्फ का जल पीना, दिन में तहखाने वा पटे हुए मकान में और रात को ओस में सोना उत्तम है, मुरब्बा आंवला सेव का खाना सुन्दर पुष्पों की माला धारण करना वा सूंघना, सफेद चन्दन का लेप करना श्रेष्ठ है, परन्तु सिरका खट्टी वस्तु, रात में परिश्रम करना पर्य्यटन करना धूप में चलना अच्छा नहीं ।

बर्षा ऋतु का पथ्य

गेहूं चावल, उरद, दूध पीना, कुए का जल पीना, कुल्ला करना, शरीर में मिट्टी लगाकर कसरत करना, घोडे पर सवार होकर वायु सेवन करना, धूप में फिरना, पानी में भीगना, बहुत सोना, ठंढी वस्तुओं का सेवन करना नदी वा तालाव का पानी पीना अच्छा नहीं ।

सर्व सज्जनों को भारतवासी वैद्यों के निम्न लिखित वचन पर अवश्य दृष्टि रखनी चाहिये— **चौपाई**

चैते गुड़, बैशाखे तेल, जेठे पंथ, अषाढ़े बेल ।
सावन दूध, न भादौं मही. कार करेला, न कातिक दही ॥
अगहन जीरो, पूसे धना, माहें मिश्री, फागुन चना ।
जो यह बारह देय बचाय, ता घर वैद्य कबहुं नहिं जाय ॥

नोट—प्रत्येक ऋतु के फलादि भी स्वभावानुकूल खाना चाहिये तथा भोजनों के स्थान में निम्न लिखित बातों को स्पष्ट अक्षरों में लिखकर लटका देना चाहिये—

(१) भोजन से उदर को बहुत नहीं भरलेना चाहिये क्योंकि अधिक खाने से बदन बेकार तथा निकम्मा होजाता है।

(२) एक आहार जब तक न पचजाय तब तक दूसरा आहार न करे क्योंकि इससे अग्नि मंद होजाती है।

(३) भोजन करने के बाद ततक्षण स्त्री प्रसंग कदापि न करना चाहिये इससे निश्चय ही उदर शूल और अंड वृद्धि होजाती है।

(४) जो अति भूख लगी हो तो पानी पीकर पेट न भरले क्योंकि जलोदर रोग होजाता है, अति प्यास में अन्न खाने से गुल्म रोग होजाता है।

नगर, गावं, मकान

वर्तमान समय में नगर और गावं की बनावट उत्तम रीति पर नहीं है, प्राचीन समय में जितना लंबा चौडा नगर वा गांव होता था उसके आस पास उतना ही लंबा चौड़ा जंगल छोडा जाता था।

प्यारे पाठक गणों विचार कर देखो तो नगर से आठ गुणी पृथ्वी जंगल के लिये रहती थी यही कारण था कि जिस प्रकार से प्रत्येक नगर के न्यारे न्यारे नाम होते हैं इसी भांति प्रत्येक नगर के नीचे जो जंगल होते थे उनके जुदे २ नाम होते थे, यही कारण था कि श्री रामचन्द्र जी महाराज एक बन से उठ दूसरे बन और वहां से उठ तीसरे बन, इसी प्रकार बराबर बनों ही बन में ठहरते हुए चलेगये, पाठक गणों को ज्ञात हो कि हमारे देश के राजाओं को इतने ही बनों से संतोष नहीं था जिनका हमने वर्णन किया है, प्रत्येक प्रांत

में पहाड़ों के निकट नदियों के किनारे २ बड़े २ बन होते थे जिन बनों में ऋषियों के गण निवास किया करते थे, और बाणप्रस्थ वाले महात्मा लोग उन्हीं जंगलों में रहते थे और वह वहां धर्मोपार्जन करते हुए विद्या की उन्नति करना प्रति दिन उनका काम था, इन सब के अतिरिक्त जंगलों के होने से नगर वा ग्राम वालों को भी अति उत्तम पवन मिलती थी जिससे सदा हट्टा कट्टा रह कर नाना प्रकार के उद्यम कर अनेकान प्रकार की बस्तुओं को भोगते थे, तदनंतर जंगलों में गौवों का पालन अच्छे प्रकार होता था, दूध घी की बहुतायत रहती थी इनही गौवों का गोवर खेतों के लिये उत्तम खाद था वहां निषिद्ध खाद के पडने से नाना भांति के अन्न फलादि सब के सब ही पूर्ण बल को नहीं देते, ईंधन की अधिकता का यही कारण था, अधिक वृष्टि का हेतु यह बन ही थे, इसलिये जंगलों का अधिक होना अभीष्ट है।

प्यारो नगर की रचना और बनों के न होने से नाना प्रकार की हानि होरही है तिस पर तुर्रा यह है कि बर्तमान समय में हमारे और आप के गृह अर्थात् निवास स्थान भी विपरीत दशा पर बनाये जाते हैं कि जिससे उत्तम वायु के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते क्योंकि मकानों का निकट होना कुर्सी आदि नीची, सहन का नाम भी नहीं, इसके उपरांत अत्यन्त छोटे तिस पर भी भोजन बनाने और सोने उठने बैठने का काम एक ही स्थान से लिया जाता है, पाखाना और कुए भी निकट होते हैं, इसके उपरांत और भी बातें हानि कारक होती हैं जिसके कारण गृह निवासियों को पूर्ण सुख की प्राप्ति नहीं होती देखिखे वेद में भी लिखा है—

सूतायत्वा नारांतये स्वरशि विख्येषन्द्व ९ हन्तां दुर्य्याः।
पृथिव्यामुर्वृन्तरिक्ष मन्वेपि। पृथिव्यास्त्वानाभौ सादया
सादित्या उपस्थेग्ने हव्य ९ रक्ष॥

हे विद्वान् लोगो तुम को उचित है कि खुलेहुए स्थान में अपने घर बनाओ कि जिन में जल वायु आदि पदार्थों के सब सुख हों, और यह ऐसे लंबे चौडे होने चाहिये जिनमें अच्छे प्रकार से आराम हो, उत्तम पदार्थों की रक्षा के लिये सदा ईश्वर से प्रार्थना करना चाहिये।

मकान बनाने की रीति

१—घर की कुर्सी ऊंची हो, उसके आगे सहन होना योग्य है।

२—नगर के मार्ग खुले रहें।

३—एक घर से दूसरा घर कुछ अन्तर पर होना भला है।

४—मकान सम चौरस और उसके द्वार चारो ओर की वायु को अच्छे प्रकार से स्वीकार करते हों, उसके जोड और चिनाई दृढ़ हो।

५—उसमें एक कमरा स्त्रियों और दूसरा मनुष्यों के निवास का स्थान हो।

६—रसोई बनाने और भोजन पाने के स्थान अलग २ हों। शेष स्थान ऐसे ऐसे हों कि जिन में नाना प्रकार के पदार्थ रक्खे रहें, एक स्थान मनुष्यों के मिलाप के लिये हो जिसको इस समय में बैठका कहते हैं, और एक अग्निहोत्र का स्थान हो और पास की भूमि सदा शुद्ध बनाये रहे, यदि बाग बागीचा हो तो अति उत्तम है, प्रत्येक कमरे की छत ऊंची पाटनी चाहिये, मकान में "रोशनदान" भी अवश्य रखने चाहिये किसी ओर से ऐसी आड़ न हो कि जिसमें सूर्य का प्रकाश न आसके कुएं पक्के उत्तम हों, पाखाने का स्थान कुए से पृथक् और पशुशाला भी अलग हो, इसके उपरांत नीचे लिखी हुई बातों पर भी सदा ध्यान बनाये रहे कि जिससे वायु मे दोष उत्पन्न न हो।

(१) बहुत से मनुष्यों का एक स्थान पर रहना।

(२) घर के निकट मुर्दों का गाड़ना वा जलाना वा अधूरा जलाकर छोडना वा घूरे का इकट्ठा रखना।

(३) मुर्दों वा मरेहुए पशुओं का आस पास सड़ना।

(४) दुर्गन्धित वस्तुओं और पाखानों के मैले के उठवाने का उत्तम उपाय न करना।

(५) घर का आंगन बाहर की धरती से नीचे में होना।

(६) छत्तों पर पाखाना फिरना।

(७) आंगन ऐसा न हो कि जिस में पानी भरा रहे या उसके आस पास पानी इकट्ठा रहे।

(८) चमार, रंगसाज, छीपी, कसाई आदि के घर निकट न होने चाहिये।

प्यारी बहिनों इस समय गृहों के निकट वा आस पास बागों वा फुल वाड़ियों का होना अति ही कठिन होगया है क्योंकि मकानों की बनावट उत्तम रीति पर नहीं है इसके उपरांत सामान्य जनों के पास इतना धन भी नहीं है जो इस रीति पर इस समय पूरा काम चला सकें कि जिसके न होने से नाना प्रकार की हानि हो रही हैं क्योंकि जीवधारी वायु में इस रीति से रहते हैं जैसे पानी में मछलियां, क्या उनकी कुदशा होजाती है, जी को चैन नहीं आता, उदासी छा जाती है, अन्त में तड़प २ कर अपने प्राणों को त्याग देती हैं यदि पानी से निकाली जावें, उसी भांति मनुष्यों को वायु न मिले तो प्राण निकलजाते हैं देखो वायु हमारे जीवन का मूल है अन्न को त्याग कर एक दो दिन जी भी सक्ते हैं परन्तु विना वायु के पलमात्र जीना कठिन है, और अशुद्ध वायु के सेवन से नाना रोग होजाते हैं सो वर्तमान समय में हमारे गृहों में छोटे २ हरे पौदे और फूलबाड़ी के दर्शन तक

नहीं होते, हे युवतियो यह हरे पौदे नाना भांति के पुष्पों से सुशोभित केवल नेत्रों को तरावत ही नहीं देते वरन हमारे अपान प्राण के लिये भी बड़े गुण दायक हैं, क्योंकि यह पौदे यथाशक्ति अशुद्ध पवन को खैंच लेते हैं, उसके बदले कलियां पुष्प और स्वच्छ पवन का हमें दान देते है, कोमल २ पत्तियां चित्त को हरती हैं, हमारी समझ में स्त्री पुरुषों, पुत्र पुत्रियों आदि के मन रंजन और चित्त बिलास के अर्थ गृह में छोटी २ क्यारियां बनाने, हरे हरे पौदों को जल से सींचने, और नये २ पत्ते और नरम २ कोपलों तथा शोभायमान पुष्पों के दर्शन से अधिक कोई काम नहीं, विशेष कर आर्य सुजनों के गृह में तो अवश्यमेव होना आवश्यक है कि जिनके पालन पोषण के अर्थ किसी बात की चिन्ता नहीं करनी पड़ती क्योंकि उनका आधार और जीवन मूल निर्मल जल और कभी २ गुड़ाई करनी पड़ती है सो दोनों कार्यों को छोटे से छोटा बच्चा करसकता है।

प्यारी बहिनों प्रति दिन अग्नि कुंड से होम के समय सुगन्धित पदार्थों का धुआं हमारी इस छोटी सी पुष्पावली के हरे २ पत्तों और रमणीक फूलों को चूसता हुआ शनैः शनैः स्वांस लेकर यह सुगन्धित धुआं उठता हुआ किस आर्य को प्यारा न लगेगा, किसकी अभिलाषा न होगी, और पुष्पावली से होम का योग अवलोकन कर किसको आनन्द न होगा ? अन्य देश के निवासी अपने गृहों में बेल बूटे कैसी रुचि के साथ रखते हैं और आप पानी देते अथवा देख भाल करते हैं कि जिसके कारण प्रत्येक गृह फूलों का उपवन दृष्टि आता है, यदि हमारे तुम्हारे घरों में सहन नहीं है तो मिट्टी के गमले इसको अच्छे प्रकार से पूरा करसकते हैं और बांस की खपचों पर बेलों को चढ़ा शकते हैं, मुख्य प्रयोजन यह है कि मन से ऐसी बातों का विचार होगा तो सब बस्तु मिलसकती हैं।

प्राचीन काल में हमारे पुरुषे बेलबूटों से कैसा स्नेह रखते थे, पुराने ग्रन्थ राजाओं के महलों से लेकर ऋषियों की कुटियों तक के वर्णन सुनने से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि यह सब इन्हीं पुष्पों और बेल बूटों के आनन्द से जीवन सुफल करते थे, इस बात की साक्षी के लिये बंग देश पर दृष्टि डालिये तो स्पष्ट प्रकट होता है और प्राचीन समय का अच्छे प्रकार स्मरण कराता है, क्योंकि वहां कोई घर ऐसा न होगा कि जहां हरे २ खजूर और नारियल के वृक्ष तथा केले के स्तम्भ न लहलहाते हों।

इसके उपरांत विशेष वृक्ष और बेलों से विशेष लाभ भी होता है, जैसा कि तुलसी के वृक्ष को घर में रखने से बड़ा लाभ होता है इसी कारण हमारे पूर्वजों ने प्रति ग्रह में रखने की आज्ञा दी है, चाहे वह कैसा ही छोटा मकान क्यों न हो तुलसी का वृक्ष अवश्य होना चाहिये क्योंकि एक प्रकार की तप जो दुर्गन्धित वायु से उत्पन्न होती है जो बहुधा भारत वासियों को होजाती है, जब यह दुर्गंधित वायु तुलसी के पत्तों और डालियों में होकर जाती है तो उनका कडुआपन हवा में मिलजाता है कि जिससे वह वायु हानिकारक नहीं रहती कि जिससे पड़ोसियों को भी लाभ होता है।

प्यारी बहिनों इन बातों को विचार बड़ों ने तुलसी के वृक्ष रखने की आज्ञा दी थी, अब मुख्य प्रयोजन को न जान कर तुलसी शालिग्राम का विवाह करते हैं, क्या यह अज्ञानता का कारण नहीं है ?

प्राचीन समय में स्त्री वा पुरुष दोनों वाटिकाओं में वायु सेवन के लिये भ्रमण करते थे इस समय में निर्लज्जता का दोष उन पर लगाया जाता है, इसके उपरांत भूत चुडैल के भय से भी स्त्रियां बागों में भ्रमण करने के लिये उद्यत नहीं होतीं, परन्तु कैसे शोक का स्थान है कि वह अपने प्राचीन ग्रन्थों, इतिहासों पर ध्यान नहीं देते—देखिये वाल्मीकीय रामायण में

अयोध्या कांड के सर्ग ६० श्लोक १३ में लिखा है कि जब सुमन्त जी राम लक्ष्मण सीता जी को छोड कर घर लौट आये तो कौशिल्या जी ने पूछा कि सीता जी की क्या दशा है, तब सुमन्त जी ने उत्तर दिया कि आप कुछ चिन्ता न करें सीता जी आनन्द से महाराजा रामचन्द्र के साथ बास कररही हैं, जैसे निर्भय होकर यहां सीता जी फुलबाड़ी में घूमा करती थी, उसी प्रकार वहां भी निर्जन वन में घूमा करती हैं।

इसके अनंतर शकुंतला नाटक में लिखा है कि शकुंतला एक बाटिका को अपने हाथों से सींचती थी और हरी २ लता वा पत्ताओं तथा पुष्पों की तरावत देखने के निमित्त सखियों समेत वायु सेवन के अर्थ जाया करती थी, इसलिये हे प्यारी बहिनों तुम भी सीतादि की इस उत्तम चाल को ग्रहण कर अपने पति के साथ बायु सेबनार्थ जाया करो यदि किसी कारण से ऐसा समय न हो तो अपने ही गृह में अवश्यमेव बेल बूटे छोटी २ क्यारियां बांध कर रखलो प्रति दिन उनको सींचा करो जिनके लाभ हम ऊपर वर्णन करचुके हैं।

मांस खाने का निषेध

अथर्व वेद कां० ८ अ० ३ मं० २२ में ईश्वर आज्ञा देता है कि जो लोग कच्चे मांस को तथा पुरुषों के बनाये पकाये मांस को खाते हैं और जो दुष्ट पुरुष गर्भ रूप अंडों को अथवा गर्भ से तुरन्त ही निकले हुए बच्चों को अथवा गर्भ के तुल्य निःस्सहाय प्राणियों को खाते हैं उनको हम नाश करेंगे—

य आमं मांस मदन्ति पौरुषे यश्च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवस्तानितो नाशयामसि॥

इसके अतिरिक्त महात्मा मनु जी का बचन है—

"अभक्ष्याणि द्विजातीना ममेध्य प्रभवाणिच"

वैद्यक विद्या के शिरोमणि महर्षि धन्वन्तरि जी का भी ऐसा ही मत है कि (अमेध्य) पदार्थों का कभी सेवन न करना चाहिये और जो २ पदार्थ बुद्धि को बिगाडते हैं उनका नाम अमेध्य है क्योंकि ऐसी वस्तुओं के खान पान से बुद्धि भ्रष्ट होजाती है कि जिससे (आध्यात्मिक) (आधिभौतिक) और (आधिदैविक) यह तीनों प्रकार की तापें घेरे रहतीं हैं कि जिससे सुख के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, इसी कारण मनु जी महाराज ने स्पष्ट लिख दिया है–"वर्ज्जयेन्मधुमांसं च" अर्थात् शराब और मांस आदि हानिकारक पदार्थों को भक्षण न करना चाहिये ।

मुख्य तो यह है (पशु) रक्षा से देश का उपकार होता है इस हेतु (अहिंसा) धर्म का एक मुख्य लक्षण माना गया है जैसा वेद में लिखा है—

"यजमानस्य पशून् पाहि"

अर्थात् परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो तुम लोग पशुओं को मत मारो मैंने तुम्हारी रक्षा के लिये बनाये हैं अर्थात् यजमान सम्बन्धी पशुओं की पालना तथा रक्षा करना उचित है।

और भी मनु जी महाराज ने मनुस्मृति के अध्याय १० श्लोक ६३ में लिखा है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
एतत्सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

अर्थात्—अहिंसा, सत्य, चोरी का त्याग, शौच, इन्द्रियों का रोकना, यह संक्षेप से चारो वर्णों का धर्म है ।

ऐसा ही गीता में श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने अर्जुन से कहा है, इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद अ० ८ प्र० ८ में लिखा है—

"अहिंसान् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः"

प्राचीन भारतखंडी मनुष्यों ने सर्व भूतों अर्थात् जीवधारियों की कि जिनसे देश का उपकार होता है जैसे गाय, भैंस, बकरी, घोडा, हाथी इत्यादि रक्षा का नाम तीर्थ माना है।

इसी प्रकार चाणक्य मुनि ने ६ अध्याय के ६ श्लोक में लिखा है—

शत्येपैरंतपोनास्ति संतोषान्न परंसुखम्।
तृष्णायानपरोव्याधिर्नचधर्मो दयापरः॥

अर्थात् दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, फिर भला मांस खाने वालों को यह बड़ा धर्म मिलसक्ता है कदापि नहीं जैसा कि कहा है—.

गृह धन्धो कुतो विद्या भार्या लुब्धे कुतःशुचि।
लोभ लुब्धे कुतो लाभो मांसाहारी कुतो दया॥

इसी कारण तो कहा है कि "बिना दया के सन्त कसाई"।

महाभारत के अनुसासन पर्व अ० ११६ के १८ श्लोक में लिखा है कि "अहिंसा परमो यज्ञः" अहिंसा परम यज्ञ है अर्थात् हिंसा न करने से देश का बड़ा उपकार होता है और यज्ञ से भी देश की भलाई होती है परन्तु अहिंसा यज्ञ की मूल है क्योंकि हिंसा होगी तो घी आदि पदार्थों की न्यूनता होगी तो फिर भला यज्ञ किस प्रकार से होंगे जैसाकि वर्तमान समय में भारत के प्रधान नगरों में रुपये का आध सेर घृत बिकता है, अतः श्रेष्ठ यज्ञ अहिंसा है, पूर्व मीमांसा में भी लिखा है—'अहिंसा परमो धर्मः'।

महाभारत के श्लोक १६६४ में लिखा है—

सर्व हिंसा निवृत्तिश्च नरः सर्व सहाश्च ये।
सर्वस्याश्रयभूताश्चा ते नरः स्वर्ग गामिनः॥

और भी महाभारत के श्लोल ५७०२ में लिखा है—

अभयं सर्व भूतेभ्यो यो ददाति दयापराः।
अभयं सर्व भूतानि ददती सनुशुश्रम॥

इसी विषय में मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक ४६, ४८, ५१ और ५५ को विचारिये—

यो बंधन वधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुख मत्यन्त मश्नुते ॥

जो मनुष्य किसी जीव के बध तथा बंधन का क्लेश देने की इच्छा नहीं करता वही अति सुख को पाता है ।

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
नच प्राणि बधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसम्विवर्जयेत् ॥

प्राणियों की हिंसा के विना मांस उत्पन्न नहीं होता और प्राणियों का बध स्वर्ग का हेतु नहीं इसलिये मांस न खाना चाहिये ।

समुत्पत्तिंच मांसस्य वधबंधौच देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्व मांसस्य भक्षणात् ॥

मांस की उत्पत्ति और प्राणियों का बध बन्धन देखकर सब प्रकार के मांस खाने का निषेध किया है ।

इस कथन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि हिंसा करना महा पाप है, फिर न जानें कि भारत वासियों ने कौन से प्रमाण से मांस खाना स्वीकृत किया है, और बहुधा जन यह भी कहते हैं कि जीव हत्या का दोष मारने-वालों पर होता है खानेवालों को क्या, इसके लिये उनको मनु जी महाराज के अध्याय ५ श्लोक ५१ को देखना योग्य है—

अनुमंता विशसिता निहंता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ताच खादकश्चेति घातकाः ॥

(अनुमंता) अर्थात् जिसकी सलाह से मारा जावे, (विशसिता) जो पशु के अंग को शस्त्र से जुदा करे, और मारनेवाला, मांस का मोल लेनेवाला, मांस का बेचने वाला, मांस का बनाने वाला, परोसने वाला, भोजन करने

वाला — यह आठो घात करने वाले ही कहाते हैं, परन्तु अब विचार करने का स्थान है कि यदि सर्व जन मांस खाना छोड़ दें जैसा कि पूर्व इस देश में था तो क्यों कसाई लोग पशुओं को मारें, क्योंकि जिस पदार्थ की विक्री अधिक होती है उसी को वेचने वाले लाते हैं इसलिये पशुओं के मारे जाने में खाने वाले ही मुख्य पापी हैं, शेष उसकी सहायता करने से दोषभागी ही होसकते हैं।

हे प्यारे भाइयो यदि वेद स्मृति वा प्राचीन ग्रन्थ तथा अगले ऋषि मुनि और राजा प्रजा के खान पान पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट प्रकट होता है कि उस समय मांस खाना प्रचलित न था क्योंकि पशुओं की रक्षा से ही देश का उपकार होता है सो प्रत्यक्ष प्रकट है कि पूर्व समय में भारत ही भारत होरहा था जिसका अब सत्यानाश होगया है!

तदनन्तर मांस खाना स्वाभाविक प्रकृति के प्रतिकूल है—(१) जितने मांसाहारी जानवर हैं उनके शरीर से पसीना नहीं निकलता है, (२) मांसाहारी जीव चाव २ कर नहीं खाते, परन्तु मनुष्य अन्न और वनस्पति खाने वाले पशुओं की तरह चाव २ कर खाते हैं, (३) सर रावर्ट होम इत्यादि (जो इल्म नबातात के आलिम थे) लिखते हैं कि मनुष्य के दांत और उनकी अंतड़ियां व संपूर्ण शरीर की बनावट और स्वभाव से प्रकट होता है कि वह मांसाहारियों की भांति उत्पन्न नहीं हुआ, (४) जो जन्तु मांसाहारी होते हैं वह रात में शिकार करते हैं, परन्तु मनुष्य या वह पशु जो मांसाहारी नहीं हैं रात को सोते हैं, (६) मांसाहारी पशु पानी को जीभ से चाट २ कर पीते हैं, परन्तु मनुष्य तथा वनस्पति खाने वाले पशु पानी को घूंट बांध कर पीते हैं, (६) मनुष्य की भांति वनस्पति खाने वाले जीवों के मुंह में जितना अधिक थूक रहता है उतना मांस खाने वाले जीवों के नहीं रहता।

हे पाठक वर्गो उक्त प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट है कि मनुष्य जो सर्व प्राणी मात्र में उत्तम है उसको मांसभक्षी नहीं बनाया बरन वह अपनी स्वाभाविक प्रकृति को छोड़ मांसाहारी बनगया, हा शोक ! हा शोक ! ! हा शोक ! ! ! गाय, भैंस, घोड़ी, बकरी आदि जो मनुष्य से अत्यंत निकृष्ट हैं वह तो अपने स्वाभाविक नियम पर चले जाते हैं—यदि कोई परीक्षा के अर्थ इन पशुओं के सन्मुख मांस का टुकड़ा डाल दे तो वह कदापि नहीं खाते—परन्तु मनुष्य का यह हाल, क्या यह पशुओं से भी निकृष्ट कर्म नहीं है ?

बहुधा मांस भक्षी यह कहते हैं कि इससे शरीर में बल रहता है और शरीर का पुष्ट रखना भी योग्य है, इसके उत्तर में विचारना चाहिये कि जब अन्य २ पदार्थों के खाने पीने से अधिक पुष्ट और निरोग रहसक्ते हैं तो फिर भला इस हत्या रूपी कर्म को कि जिससे सर्वनाश होगया करना महा मिथ्या और पाप की बात नहीं है ? इसके उपरांत जो पुष्टता वा आरोग्यता आदि शुभ गुण अनाज, सागपात, फल, फूल के खाने वालों में पाये जाते हैं वह इन मांसाहारियों में दर्शनमात्र को भी नहीं मिलते क्योंकि वह स्वाभाविक और शारीरक बनावट से ही मांसाहारी नहीं है ।

इसके उपरांत हमारे प्राचीन पुरुषे कि जिनके वृत्तांत महाभारत, रामायण इत्यादि इतिहासों में सुने जाते हैं क्या वे हम तुम से किसी बात में कम थे ? नहीं नहीं, और जो कार्य उन्होंने किये इन मांसाहारियों से कदापि नहीं होंगे, क्या यह प्रत्यक्ष प्रकट नहीं है ? हां कठोरता, निर्दयता आलस्य, प्रमाद, रोग, व्यर्थव्यय इत्यादि दुर्गुण फैल गये कि जिनके कारण कौड़ी के तीन २ होरहे हैं, और जरा २ से मनुष्यों से भय खाकर दुम दबाकर घरों में स्त्रियों की भांति छिपते हैं और पुष्टता का दावा करते हैं, एक समय वह था कि जिसके रहते २ सब के छक्के छूटते थे, समस्त भूमण्डल के महाराजा

कहलाते थे, सब यहां आकर सिर नवाते थे, तथा नाना प्रकार की विद्याओं में उन्नति थी जिनके वर्तमान समय में चिन्ह तक दृष्टि नहीं आते, रोगों के मारे प्रति दिन प्रत्येक गृह में दुंद पड़ा रहता है क्या इसी का नाम पुष्टता है ? प्यारे भाइयो मांस भक्षण से कोढ़, पथरी, अजीर्ण, पेचिश, गंज आदि रोग होजाते हैं और मांस खाने वालों का मांस बुढ़ापे में अधिक ढीला पड़जाता है, तथा वायु के विकार भी शीघ्र असर करते हैं, उनके मुंह में दुर्गंधि भी अधिक आती है फिर भला बल का क्या कहना !

मांस में केवल १०० में ३६ भाग वह सत्ता रहता है कि जिससे मनुष्य पुष्ट होता है शेष ६४ भाग पानी, परन्तु अनाज में ८० से ९० फी सैकड़े वह सत्ता होता है, और सिवाय इसके मनुष्य को एतद् व्यतिरिक्त मनुष्य की स्वाभाविक उष्णता (हरारत ग़रीज़ी) के लिये जिस उष्ण वस्तु की आवश्यकता है जिसको कार्बोनिशस कहते हैं, वह मारेहुए पशु के मांस में बनस्पति की अपेक्षा बहुत कम है और जिस वस्तु से हड्डियां बढ़ती वा पुष्ट होती हैं वह भी वनस्पति में अधिक होती है फिर क्या कारण कि मिथ्या पशु मारकर देश का सत्यानाश मारदेवें और तनिक भी विचार न करें ?

इसके उपरांत मस्तक शक्ति के देखने से प्रकाश होता है कि मांस का आहार मनुष्य के लिये उपयुक्त नहीं है क्योंकि संसार में प्रायः जितने बड़े २ विद्वान् और अनुभवी पुरुष हुए कि जिन्होंने अपनी बुद्धि बल से अनेकान नवीन विद्याओं में योग्यता प्राप्त की है वे या तो सारी अवस्था में अथवा आयु के एक बड़े भाग में मांस त्यागी हुए हैं—जैसे मनु, पाणिनि, कात्यायन, पातंजलि, गौतम, कालिदास, धन्वन्तर, अर्जुन, भास्कराचार्य्य, श्रीकृष्ण, व्यास, युधिष्ठिर, भीष्मपितामह, रामचन्द्र इत्यादि, और अन्य

देशों में प्लेटो (अफलातूं) प्लेटोमार्क डायोजनीज तथा सेनृजेमस आदि (जो रूम के फिलासफरों में सब से बड़ा फिलासफर था) मांस त्यागी निश्चय किये गये हैं, इसी प्रकार और भी मनुष्य हुए हैं।

इसके सिवाय मांसाहारी जीवों से मांस न खानेवाले बलवान होते हैं जैसा कि सिंह मांस खाता है उसके समक्ष गैंडा जो कि मांस नहीं खाता सिंह को धर दबाता है, एवं अरना भैंसा जो मांस नहीं खाता बड़ा बलवान होता है, इसी प्रकार मांसाहारी काबुली लोगों से इस देश के चौबे जो मांस नहीं खाते बलवान होते हैं, और इस समय जो ३० करोड़ बौद्ध मतवाले हिन्दुस्तान, चीन, जापान में रहते हैं जो मांस खाने का नाम भी नहीं लेते देखिये इन मांसाहारियों से बल, पौरुष, बुद्धि, आयु आदि कौनसी बात में कम हैं बरन अधिक हैं।

इसी भांति अन्यत्र देशों में जो मनुष्य मांस नहीं खाते कि जिनको 'वेजीटेरियन' कहते हैं उन लोगों की समस्त आयु इस बात का प्रमाण है कि उनको मांसाहारियों की अपेक्षा शारीरक रोग बहुत कम होते हैं, इन लोगों में बहुत व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं कि जिनको बुढ़ापे तक में कठिनता से कभी एक दिन के लिये भी कोई रोग हुआ हो।

इंगलेंड और एमरिका के 'वेजीटेरियन' लोगों में आज तक एक दृष्टांत ऐसा सुनने में नहीं आया कि जिससे बिदित होता हो कि उनमें से कोई पुरुष विशूचिका (हैजा) के रोगों में ग्रसित हुआ है, प्यारे सुजनों इस पवित्र भारत देश में प्राचीन काल में हैजा एक अचम्भे की सी बात थी इस रोग के न फैलने का यही कारण था कि एतद्देश निवासी मांस भक्षण से बड़ा परहेज रखते थे, देखो स्पार्टा के रहने वाले जो दुनिया की समस्त जातों के इतिहास में धैर्य, साहस, उद्योग, बल, बीरता, और हृष्ट पुष्टता के विचार से अ-

नुपम थे कुछ भी मांस भक्षण नहीं करते थे, जिन दिनों ग्रीस (यूनान) और रूम (इटली की राजधानी) की समर विजयता का झंडा फहराता था उस समय उन बिजयनी सेनाओं के लोग मांसाहारी न थे, किन्तु जब से उन्होंने मांस खाने का आरम्भ किया तभी से उनकी अवनति का वीर्यारोपण हुआ, यद्यपि उनकी अवनति के कई कारण और भी थे कुछ सन्देह नहीं ग्रीस के साधारण अखाड़े में जहां कि शारीरक बल फुरती के अनेक दाव पेंच और करतब दिखाये जाते थे जब तक यह लोग मांसाहारी न थे अपने उक्त कर्त्तव्यों में एक शक्ति बिशेष रखते थे किन्तु जब से यह मांस के व्यसनी हुए क्रमशः अचेत और पराक्रम हीन होगये, कि जिससे उनके शिर का मुकट गिर गया, इसके अतिरिक्त जो लोग मांस नहीं खाते वे मांसाहारियों की अपेक्षा साधारणतः शरीर में गरु (वजनी) होते हैं और उनके पठे बहुत पुष्ट और बली होते हैं और कठिन काम करने में नहीं घबराते, प्रोफेसर फाइरिस ने जो इस बिषय में अनुभव किया है उनका ऐसा विचार है कि अंगरेजों की अपेक्षा जो अतीव मांस भक्षी हैं उनके भाई स्काटलेंड वाले जो मांस का कम और बनस्पति का अधिक आहार करते हैं शरीर की उंचाई, बोझ, और बल में अधिक उत्तम हैं, स्काटलेंड के निवासियों से आयरलेंड के वासी जो रोटी दाल तथा आलू से निर्वाह करते हैं कई दर्जे श्रेष्ठता रखते हैं, और डाक्टर लेंव भी अपने अनुभव से इसी बात की पुष्टता करते हैं उनका विचार है कि लापलेंड के रहने वाले जो सिर्फ मांस खाकर जीते हैं पस्त कद होते हैं और उन्हीं के आगे फिनलेंड बासी जो ठीक उसी भांति के पवन पानी में रहते और जो अधिक बनस्पति खाते ऊंचे होते हैं।

अब उपरोक्त लेख से बल के अर्थ मांस खाने की भी आवश्यकता नहीं है

वरन बल की न्यूनता होती और आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है, इसी कारण प्राचीन समय में भारत में क्या बरन समस्त देशों में मांस खाना प्रचलित न था, हां जब से वेद धर्म को त्यागन कर और २ पुस्तकों को धर्म पुस्तक समझने लगे वा किसी २ ने वेद की श्रुतियों के अर्थ अपने स्वार्थ के लिये बनालिये तब से मांस खाने का प्रचार होगया, उनके हेल मेल होने के कारण प्रति दिन इस अभक्ष्य की अधिकता होती गई यहां तक कि इस समय में कोई कौम इस बला से खाली नहीं वरण पूर्व पूजनीय में से एक मुख्य फिरका कि जिसको कान्यकुब्ज कहते हैं, वह पशु का मांस यज्ञ में चढ़ा उसको स्वर्ग पहुंचाने का दावा कर आप अच्छे प्रकार से उड़ाते तथा अपने चेलों को उड़वाते हैं, कि जिसके कारण भारत में और भी मांस भक्षण की रीति फैलगई।

प्यारे भाइयो जब मैं वेदस्मृति आदि के प्रमाणों से पूर्व ही अहिंसा को धर्म की जड़ सावित करचुका तो फिर भला यज्ञ में पशु को काट कर चढ़ाने की आज्ञा वेद में कैसे होसकती, क्योंकि एक में दो आज्ञा ही नहीं होसकती और न वेदादि सत्य शास्त्रों में ऐसा लिखा है, यह महा मिथ्या है केवल अपने स्वाद पर संसार का नाश मार रहे हैं, हे सज्जनों तनिक तो विचारो यदि हवन में पशु काटकर चढ़ाने से स्वर्ग में पहुंच जाता है तो फिर बुड्ढे माता पिता भाई बन्धु आदि को हवन में चढ़ा कर स्वर्ग क्यों नहीं पहुंचा देते जो स्वर्ग के जाने के अर्थ नाना भांति के संयम नियम करते हैं और अनेक जन्म में स्वर्ग पाते हैं, फिर भला आप उनको क्यों कष्ट देते हो प्यारे सुजनो यह सब मिथ्या बातें हैं और इन मांसाहारियों ने कल्पित अर्थ कर मांस खाने का चसका डाल दिया, भाइयो सत्य ग्रन्थों को सुनो तो स्पष्ट प्रकट होजावेगा, देखो शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः अन्नंवहि गौः अग्निर्वा अश्वः अज्यं मेधः ।

इसका अर्थ वह किया है जो ऊपर वर्णन हुआ अर्थात् घोड़े गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना, इन्हीं कर्मों ने भारत वासियों को हिंसक बना दिया, धिक्कार ऐसे अर्थ करने वालों को कि जिन्होंने वेद और बुद्धि के विपरीत अर्थ कर अर्थ धर्म काम मोक्ष चारो पदार्थों को खोदिया क्योंकि परमेश्वर की आज्ञानुसार कार्य करने को धर्म कहते हैं सो यह हिंसा करना उसकी आज्ञा के विरुद्ध है, क्योंकि उस ईश्वर ने तो 'अहिन्सा परमो धर्म्मः' कहा है, इसलिये हिन्सक होकर धर्म नष्ट किया तो फिर धर्म अर्थ काम मोक्ष शेष पदार्थ क्योंकर मिलसकते हैं ।

अब उक्त श्रुति के सत्य अर्थ को भी श्रवण कर लीलिये—

देखो जब राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे तथा विद्या आदि देकर पश्चात् अग्नि में घी आदि से हवन करे तो उसको 'अश्वमेध' कहते हैं ।

अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथ्वी को पवित्र रखना 'गौमेध' कहाता है ।

गौ नाम पशु का है मेधः नाम विद्वान् का है ।

धन उपार्जन के अर्थ विद्वान् को योग्य है कि गौ आदि उपकारी पशुओं की रक्षा करे उसी का नाम 'गौमेध' है, और भी लिखा है—

"गावो घृतस्य मातरः"

घृत की माता गौ है, क्योंकि गौ के समान घृत अन्य किसी पशु का नहीं होता, मनु जी ने ४ अ० २३ श्लोक में प्राण निरोध का नाम यज्ञ लिखा है, तथा वेद में पञ्च यज्ञ नित्य करने की आज्ञा है अर्थात् बलि वैश्वदेवादि करके भोजन करना चाहिये, वहां यह भी कहा है—

शुनांच पतितानांच स्वपचां पाप रोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकै निर्वपेद्भुवि ॥

कुत्तों, कंगलों कुष्टी आदि रोगियों काक आदि पक्षियों और चीटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग २ बांट के देना और सदा उनकी प्रसन्नता करना उचित है।

हा शोक इन स्वार्थियों पर कि जिन्होंने उलटे अर्थ कर सत्यानाश मार दिया क्योंकि भोजनों के समय पर कुत्ते चीटी आदि की रक्षा करने की शिक्षा वेद ने की है फिर भला गाय आदि पशु मारना किस प्रकार सिद्ध होसकता है।

मछलियां और झींगा खाना

भारतवर्ष में थोड़े दिनों से मांस के उपरांत मछली तथा झींगा खाने का भी प्रचार होगया है जिनको कि हमारे परम पिता परमेश्वर ने पानी में केवल उस अशुद्धता के दूर करने के अर्थ जो उसमें मनुष्य अथवा पशु पक्षियों से होती है उत्पन्न किया है, क्योंकि शुद्ध जल ही पर सब जीवधारियों का जीवन निर्भर है।

यह दोनों जानवर बहुत गर्म होते हैं और तले आदि गर्म बस्तुओं से ही बनाए जाते हैं, जो आरोग्यता के लिये हानिकारक तथा इनके भक्षण करने वाले बहुधा धातु क्षीण तथा गंज आदि रोगों से पीड़ित रहते हैं।

उपरोक्त दोनों जानवरों का खाना मरेहुए जानवरों व मनुष्यों का सड़ा मांस व खकारादि घृणा उत्पन्न करनेवाली चीजें हैं, और जो बुराइयां मांस खाने में हैं वह ही इनके भक्षण से होती हैं।

आखेट अर्थात् शिकार

बहुधा मनुष्यों का यह कथन है कि जब मांस भक्षण करने की मनाई है तो शिकार खेलना भी अनुचित है, इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो शिकार खेलना राजा का काम है वह उन जानवरों का शिकार करता है जिनसे प्रजा

को नाना प्रकार के कठिन दुःख होते हैं, जैसे शेर भेड़िया आदि क्योंकि राजा का मुख्य धर्म प्रजा की रक्षा करने का है अतः राजा ऐसे पशुओं की शिकार करने में दोष भागी नहीं होता, जैसे जो कोई जन मनुष्यों को दुःख देते हैं उनको दण्ड देना राजा का मुख्य कर्म है कि जिससे सब प्रजा को आनन्द हो, इसी भांति उन पशुओं के शिकार करने से बनबासियों तथा बटोहियों वा दीन पशुओं को सुख होता है, खेती की रक्षा होती है, परन्तु मांस उनका कोई नहीं खाता था और पृथ्वी में गड़वा दिया जाता था, हां जो राजा प्रजा में से सर्वहितैषी पशुओं का शिकार कर मांस खाते हैं वह महा पापी होते हैं, जैसा कि मनु जी महाराज ने मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक ५२ में लिखा है—

स्वमांसं परमांसेन यो बर्धयितु मिच्छति ।
अनभ्यर्च्य पितॄन्देवांस्ततोऽन्योनास्त्यपुण्यकृत् ॥

अर्थात् जो मनुष्य अन्य के मांस से अपने मांस बढ़ाने की इच्छा करता है उससे अधिक कोई पापी नहीं बहुधा मांस खाने वाले मनुष्य श्री रामचंद्र जी की मांस खाने वालों में गणना करते हैं यह महा मिथ्या है क्योंकि बाल्मीकीय रामायण के आरण्य काण्ड सर्ग १० के ६ श्लोक में लिखा है कि मांस खाना राक्षस का काम है, फिर भला वह महात्मा सुजन जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र में पूजनीय गिनेजाते हैं कब ऐसे अनुचित व्यवहार को कर सकते ?

दूध

इस संसार में मनुष्य जीवन के आधार के लिये सबसे उत्तम भोजन दूध ही है यह मनुष्य को बल देता है जिससे कि वह आयु पर्यंत सुख

पूर्वक रहते हैं इसलिये प्रत्येक मनुष्य को यथाशक्ति रात को दूध पीना योग्य है इससे थकावट दूर होती, अजीर्ण नहीं रहता, समस्त इन्द्रियों को लाभ पहुंचता हैं, यही विद्यार्थियों के मस्तक के बल को बढ़ाता तथा हृदय को प्रफुल्लित रखता है।

एक डाक्टर का बचन हैं कि मैंने ४० बर्ष तक रात को प्रतिदिन दूध पिया जिसके कारण से आज तक अर्थात् बुढ़ापे में भी मेरी सब इन्द्रियां बल युक्त हैं, इसके उपरांत हमारे ऋषि मुनि जो जंगलों में रहते थे वह प्रति दिन गाय का दूध ही पीते थे जिससे वह बड़े २ ज्ञाता तत्व दर्शी और आयु वाले हुए।

वर्त्तमान समय में निम्न लिखित तीन प्रकार का दूध सर्व साधारण के काम में आता हैं—

(१) गाय का—यह प्रत्येक मनुष्य के लिये उपयोगी होता हैं क्योंकि शीघ्र पचजाता है और दिल तथा मस्तक दोनों को लाभ पहुंचाता तथा अनेक प्रकार के रोगों को दूर करनेवाला है, बुद्धि को तीव्र और निर्मल करता है, सच तो यह है कि जो कुछ इसकी प्रशंसा कीजाय थोड़ी है क्योंकि यह अमृत का गुण रखता है, अतः सब प्रकार के दूधों को छोड़ कर इसी को पीना चाहिये।

(२) भैंस का—यह भारी और बादी होता है देर में पचता हैं बुद्धि को मोटी करता है।

(३) बकरी का—यह शर्द और न्यून बल होता है, इसलिये यह दूध बच्चों को लाभदायक होता है।

गाय के दूध में गाय का घी मिला कर पीने से मस्तक की कमजोरी तथा बवासीर जाती है और मुखड़े का प्रकाश बढ़ता है।

दूध में पूड़ी भिगोकर खाने से अजीर्ण रहता और आरोग्यता को हानि करता है ।

खोया और रवड़ी भी कब्ज करती है इसलिये इनका अधिक अभ्यास अच्छा नहीं, खोया बिना मीठे के अधिक हानि करता है ।

दही

दही चाहे जिसका हो सब गर्म है चिकना कसायला भारी पचने में खट्टा और ग्राही है, पित्त, रक्त, सूजन, बवासीर, रक्त पित्त, बात रक्त वा कुष्ट मेदा वा कफ रोग मे हानि कारक है, सुजाक पीनस विषमज्वर अतिसार, ग्रहणी, अरुचि इन सब रोगों में दही लाभदायक हैं।

दही कई प्रकार के हैं परन्तु अन्त का अति खट्टा और शीघ्र ही का जमा दही न खाना चाहिये जो दही रात को जमाया जाय तथा मलाई जो मलाई सहित है वह खाना चाहिये गाय के दूध का दही भी उत्तम होता है ।

फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, जेठ, कार्तिक, मार्गशीर्ष इन महीनों में दही खाना निषेध है, आसाढ़, श्रावण, भादों, कार, पूस माघ इन महीनों में उत्तम है। रात्रि को दही कभी न खावे ।

मट्ठा

यह कई प्रकार का होता है परन्तु सब में तक्र अर्थात् जिसमें चौथाई जल मिला हो अति उत्तम है, यह कसायला खट्टा पाक तथा रस में स्वाद हलका, बीर्य में गर्म, भूक लगाने वाला तथा त्रिदोष नाशक है, यह वमन

विषमज्वर, पांडुरोग, मेदरोग, ग्रहणी, बवासीर, भगंदर, मूत्र का रुकना, गुल्म, उदर शूल, शोथ, प्यास तथा कृमि आदि रोगों में बहुत लाभदायक होता है परन्तु जिसके बदन में फोड़े फुंसी निकले हों अथवा घाव लगा हो वा गर्मी के दिनों में दुर्बल को भ्रम दाह तथा रक्त पित्त में कभी तक्र न देना चाहिये ।

माखन मिश्री

प्रति दिन सबेरे माखन तथा मिश्री के खाने से विशेष कर नेत्र वा मस्तक में अधिक बल होता हैं, उसके खाने से मृगी, उन्माद, मूर्छा, और सिरकी बीमारी का तो स्वप्न में भी डर नहीं होसकता, यदि कोई मनुष्य इसको नियम से सबेरे तीन माह तक खावे तो दमा तथा कफ क्षयी को बहुत गुण होगा ।

पान खाना

पान मुंह को लाल करता, शोभा को बढ़ाता, मन को प्रसन्न करता, कंठ के रोगों तथा जिव्हा के दोषों को दूर करता और थकावट को हरता है, पुराना पका हुआ पान गुण दायक है, नया पान कफ को उत्पन्न करता है, बंगला पान कड़ुआ तथा दस्तावर है परन्तु खांसी को दूर करता है ।

जाड़े के दिनों में बंगला पान खाना अच्छा है, दिसावरी पान बंगला पान से कम गर्म और मीठा है अतः प्रत्येक मनुष्य को खाना योग्य है, स्नान अथवा जल पीने के पीछे तथा जब कहीं से थका हुआ आया हो तो अवश्य ही पान खाना चाहिये, परन्तु नेत्र रोगादि में पान खाना हानि कारक है ।

अधिक पान खाने से देह, जिव्हा, नेत्र, केश, दांत तथा कान में रोग होजाते हैं, धातु क्षय तथा बल और क्षुधा को मन्द करदेता है अतः अधिक पान खाना उचित नहीं, १६ वर्ष तक कदापि न खावे क्योंकि दांत खराब होजाते हैं ।

पान के साथ तम्बाकू खाने से दांत आंख और मस्तक निर्बल होजाता तथा बुद्धि मंद पड़जाती है ।

वस्त्र

वस्त्र देश काल के अनुसार पहिने सो अब प्रायः देखनें में आता है कि कोई इन बातों को नहीं पूछता और जो जी में आता है पहिनते हैं, प्यारे भाइयो आज कल काला कपड़ा बहुत पहिना जाता है सो यह देश और काल दोनों के विपरीत है, देखिये यह देश उष्ण है और उष्ण वस्तु में गर्मी शीघ्र निकल जाती है तिस पर तुर्रा यह है कि ग्रीष्म ऋतु में काला कपड़ा पहिनते हैं मानो अपने दुःखों को आप बुलाते हैं, क्योंकि काला कपड़ा भारत वासियों को सर्वदा अयोग्य और हानि कारक है, इसके पहिनने से रस रक्त वीर्य्य में अधिक गर्मी पहुंचती है कि जिसके कारण स्वस्थ भोजन खाने पर भी धातु क्षीण रक्त विकारादि रोग घेरे रहते हैं, इस समय बहुत कम भारत में ऐसे पुरुष निकलेंगे कि जिनको धातु की किसी प्रकार की बीमारी न हो नहीं तो जिधर जाइये उधर यही रोग फैला हुआ है, अतः अपने प्राचीन पुरुषाओं के सदृश पति रक्ताम्बर आदि भांति २ के वस्त्र देशानुसार ऋतु के अनुकूल धारण करने योग्य हैं, देखो आप के सर्व ग्रंथों में नीलाम्बर का निषेध किया है, क्या आप ने सुश्रुत का पाठ नहीं

सुना कि जिसमें इन्हीं उपरोक्त कारणों से नील के खेतों को छूने तक का निषेध है।

हाय क्या समय आया है कि जिसमें सब वार्ता बुद्धि और वैद्यक वा धर्मशास्त्र के प्रतिकूल होती हैं, देखो बहुधा जन बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं, परन्तु उनकी स्वच्छता पर ध्यान नहीं रखते इस कारण उनको शरीर की स्वच्छता से भी कुछ लाभ नहीं होता, अतः कपड़ा कैसा ही अधिक मूल्य वा न्यून दामों का क्यों न हो यथाशक्ति पहिनना चाहिये परन्तु उनको आठवें दिन उतार कर नवीन वस्त्र धारण करना योग्य है, जिसमें स्वच्छता को लाभ हों, दूसरे मलीन कपड़े से दुर्गन्ध निकलती है जिससे आरोग्यता में हानि होती और अन्य जन ऐसे पुरुषों से घृणा करते हैं, उनकी सर्व सज्जनों में निन्दा होती है।

इन सब बातों के उपरांत अपने देशीय वस्त्रों को सब काम में लाना योग्य है जिससे यहां के शिल्प में उन्नति हो और यहां का रुपया भी बाहर को न जावे, हमारे भारत देश में बड़े २ उत्तम और दृढ़ वस्त्र बनते हैं यदि सम्पूर्ण देश भाइयों की इस ओर दृष्टि होजावे तो फिर देखिये भारत में कैसा धन बढ़ता है जो सर्व सुखों की जड़ है।

सायंकाल

शाम के चार वा पांच बजे अपने २ कार्य्यों से निवृत्त हो अथवा जिस प्रकार से जिसको सुवीता हो नगर से बाहर बाग बगीचों में जावें तथा शौचादि से निवृत्त हो परमेश्वर का ध्यान करें पुनः अपने २ कार्य्यों में यथायोग्य प्रवृत्त हों।

सोना

भाग्यशील वही मनुष्य हैं जो दिन भर अपने कार्य्यों में व्यतीत कर रात को सोते हैं उनको गहरी नींद के पश्चात् जागने पर बड़ा आनन्द आता है, परन्तु यह सब लाभ उन मनुष्यों को नहीं होता जो दिन में सोकर अपने समय को मिथ्या खोते हैं, वह रात भर करवटें लेते झपकी की दशा में लेटे रहते हैं, तो भी प्रातःकाल सुस्ती तथा काहली जान पड़ती है बारम्बार जम्हाइयां आती हैं इसलिये निरोग्यता चाहनेवाले मनुष्यों को दिन में कदापि न सोना चाहिये क्योंकि दिन के सोने वा रात्रि के जागरण करने से खांसी तप अंग में पीड़ा सिर भारी होजाता है, पाचन शक्ति कम होजाती है, हां गर्मी के दिनों में एक घंटा सोरहना अच्छा है परन्तु यह भी स्मरण रहे कि ८ घंटा से अधिक और ६ घंटे से कम कदापि न सोना चाहिये, क्योंकि विपरीत दशा में रोग होजाते हैं, लेकिन बच्चों और बूढ़ों के लिये यह नियम नहीं बरन उनकी जितनी इच्छा हो सोवें, सोने का बैठका या कमरा तथा स्थान सब प्रकार से उत्तम हो जिसमें वायु अच्छे प्रकार से आती जाती हो उसमें रोशन खिड़की भी हों उसको जाड़े के दिनों में गुलाबी, वर्षा में स्वेत तथा गर्मी में हरे रंग से रंगवाना उचित है।

चारपाई साढ़ेतीन हाथ लंबी ढाई हाथ चौड़ी एक हाथ ऊंची होना चाहिये पर यह भी स्मरण रहे कि एक स्थान पर अधिक मनुष्य न सोवें क्योंकि उनके स्वांस लेने से हवा बिगड कर रोग उत्पन्न करदेती है, इसलिये प्रत्येक के लिये ४८ वर्ग फीट जगह होनी आवश्यक है, चारपाई लम्बी चौडी हो बहुत छोटी और बडी में लाभ नहीं होता, खटमल आदि भी न हों, बिछौने के अर्थ तोसक वा गद्दा, गर्मियों में गलीचा वा दरी आदि हो, दो एक तकियों का होना आवश्यक है, चारपाई शिर की ओर ऊंची तथा

पैर की ओर नीची होनी चाहिये, सोने के स्थान में कोई पशु भी न बांधना चाहिये क्योंकि हवा विगड़ जाती है, गर्मी के दिनों में शरीर को ढांप कर सोना चाहिये, परन्तु भीगे कपड़े पहिन कर या पावों को पानी में डुबोंकर या बिलकुल नंगा होकर सोना न चाहिये, जाड़े के दिनों में लिहाफ़ ओढ़ कर सोना चाहिये परन्तु लिहाफ़ में मुंह छिपाकर या किसी मर्द या औरत के साथ एक ही विस्तर पर एक ही लिहाफ़ के भीतर न सोना चाहिये, इसके उपरांत मकान के भीतर कोयला वा लकडी जलाकर और दर्वाजा बन्द करके सोना बहुत बुरा है क्योंकि 'कारबोनिक गास' मनुष्य के स्वासों के साथ शरीर में आकर प्राण हरलेता है, इसलिये इस छोटी सी बात की ओर हमारे देश भाइयों का ध्यान होना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि समाचार पत्रों के पढ़ने से जाना जाता है कि जो मनुष्य इस बात का विचार नहीं रखते वह अवश्य ही मरजाते हैं, कई एक स्थानों में ऐसा होचुका है।

इसलिये इस बात का सदा स्मरण रखना चाहिये, एदि आग को भीतर रखने की ऐसी आवश्यकता है तो बाहर से खूब जलाकर और सुर्ख़ करके मकान के भीतर रखना योग्य है, मिट्टी का चिराग़ जलता हुआ छोडकर बन्द मकान में सोने से भी ऐसे ही रोग होजाते हैं, इसलिये सोने से पहिले चिराग़ को जरूर ठंढा करदेना चाहिये, इस कथन का मुख्य प्रयोजन यह है कि इन उपरोक्त बातों को स्मरण रखकर संसारी कार्यों और नाना भांति की चिन्ताओं को त्यागन कर विस्तर पर लेटे, उस समय करवट का विचार अच्छे प्रकार से रक्खे, क्योंकि करवट का असर नींद पर बहुत पडता है जैसा कि बे आराम और तंग करवट से नींद रुक जाती है, अतः अच्छे प्रकार करवट लें, इसके उपरांत तन्दुरुस्त मनुष्य के लिये पीठ के बल लेटना हानिदायक होता है, और जब दिल कमज़ोर होता है या बाज़ दिमाग़ी मरज़ों में या रगों

की कमजोरी में इस प्रकार लेटने में खून सिर के पिछले जानिब को रुजू हो-जाता है तो खौफनाक स्वप्न नज़र आने लगते हैं, इसके उपरांत जिन मनुष्यों की छाती तंग होती है या किसी बीमारी से पीठ के बल सो नहीं सकते, अकसर नींद में जोर २ से खुर्राटे की आवाज करते हैं उसका कारण भी करवट पर न सोना है, क्योंकि उनका नरम तालू और कौआ जबान पर लटक पडता है और जबान पीछे को हटकर हवा के नाली का रास्ता किसी क़दर बंद करदेती है तब घुर्राटों की आवाज निकलना शुरू होजाती है, इसलिये उचित है कि करवट पर सोये विशेष कर दाहिनी करवट पर सोना योग्य है, क्योंकि जो मनुष्य आदमी के शरीर की बनावट अच्छे प्रकार से जानते हैं वह इस बात को अच्छी भांति जानते हैं कि दाहिनी करवट सोने से भोजन मेदे के भीतर से आसानी के साथ अंतडियों में गुज़रजाते हैं, वि-परीत दशा में सोने से भोजन मेदे से दूसरी ओर पडा रहता है, इसके उपरांत बाईं करवट सोने से क़लब भी दबजाता है, अतः प्रथम दाहिने करवट सोना योग्य है, जब थक जाय तो दूसरी करवट बदलले, बहुधा जन सोते से उठ जल पीकर पुनः तत्काल सोजाते हैं, यह भी योग्य नहीं क्योंकि यह जल शरीर की आरोग्यता को हरता है ।

प्रगट हो कि पलंग या चारपाई पर सोने से त्रिदोष का नाश होता और पृथ्वी पर सोने से दोष की बृद्धि, तथा काष्ट पर सोने से वायु का कोप होता है ।

इसके सिवाय सोने में दक्षिण को पावं न करना चाहिये क्योंकि म-नुष्य के भेजे में एक शक्ति है जिसको अंगरेजी में 'मैगनेट' तथा अरबी में 'कुव्वत जाज़बा' कहते हैं, उस शक्ति का धडकनेवाला भाग अधिक तर मनुष्य की चोटी की ओर होता है, जब उसका शिर उत्तर की ओर

होता है तब उसकी गती नियुक्त संख्या से बढ़जाती है, देखो ध्रूमत्स्य के (जिस को अंगरेजी में 'कम्पास' और उर्दू में 'कुतबनुमा' कहते हैं) लोहे में इस शक्ति का अधिक भाग होता है, अतः वह सुई जो कुतबनुमा में लगाई जाती है सदा हिला करती है और उसका एक सिरा सदा उत्तर की ओर रहता है क्योंकि उस शक्ति का यही स्वभाव है, पस जब कि मनुष्य दक्षिण की ओर पावं करके सोवेगा और जब देह गती का कम्प भेजे में न पहुंचेगा और भेजा स्थिर होगा तो वह शक्ति (मेगनेट) जो भेजे में है अपना ज़ोर करेगी और धड़कने लगेगी, और समस्त रात्रि नियुक्त संख्या से जो दूसरी ओर रहने से कम धड़कती है अधिक तर धड़केगी, जिससे कुछ न कुछ हानि भेजे में होगी, यदि कोई मनुष्य सदा दक्षिण की ओर पावं करके सोये और उसके भेजे का मेगनेट उत्तर की ओर रहे तो निःसन्देह एक वर्ष में उसका भेजा डामाडोल होजायगा वा शिर में दर्द व्याप जायगा और संदेह नहीं कुछ समय पश्चात् पागल होजावे ।

टीका लगवाना और वीर्यरक्षा

नोट—टीका लगवाने का वर्णन "शिशुपालन" और वीर्य्य रक्षा का "ब्रह्मचर्य्य" में देखिये ।

नशों का वर्णन

प्रिय सज्जन पुरुषो वर्तमान समय में नशों का ऐसा बाजार गर्म होरहा है कि कोई विरलेही माई के लाल होंगे जो इनके फंद से बचे हों, वरन बड़े २ महंत, महात्माओं, साधुओं, पंडित, मुंशियों की प्रशंशा अज्ञानी लोग इन्ही नशों के कारण करते हैं ।

हाय भारत तेरी प्राचीन काल में जहां सद्गुणों की प्रशंसा होती थी वहां अब इस समय नाना प्रकार के नशों के पीने वालों की होती है कि जिसके कारण बुद्धि मारीगई तथा भारत ग़ारत होगया।

शराब पीने का निषेध

प्यारे सुजनों मनुष्य का शरीर एक एंजिन के समान है जिसको परमेश्वर ने उत्पन्न किया है अतः इसको नियमानुसार यथावत रीति से चलाने का सदा ही यत्न करना चाहिये, परन्तु कैसे शोक की बात है कि हम सब छोटी २ कलों और घड़ियों के यथावत रहने के लिये तो पूरी रक्षा करें परन्तु अपने अनमोल रूपी धन कि जिसका बनाना मनुष्य के बल और बुद्धि से बाहर है उसको जान बूझ कर ऐसी बुराइयों में डाल कर सत्यानाश मार अपनी सन्तानों की भी रेड मारदें !

शराब एक प्रकार का विष है जिसको अलकोहल कहते हैं जो मदिरा के पीने से मेदे में जाकर जलन पैदा करता है, उसके यथावत कार्य में विघ्न डाल देता है कि जिससे पाचन नहीं होता तथा अंग में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं, तत्पश्चात् आमाशय से भोजनों का बहुत सा भाग रगों के द्वारा कलेजे में पहुंचता है तब कलेजा उन भोजनों के रस को पचाकर पित्त उत्पन्न करता है तथा लोहू बनाता है, परन्तु शराब के पीने से उसके बारीक पुर्जे थोड़ेही काल में निकम्मे होजाते हैं तथा कलेजा सुकड़ कर बहुत छोटा होजाता है, वह किसी काम के योग्य नहीं रहता, कलेजा सूखजाता है, जलन्धर आदि रोगों में फंसकर नाना दुःखों को सहन कर अपनी प्यारी जान से हाथ धोते हैं, इसका असर मस्तक पर भी होता है जो

संपूर्ण शरीर में भूषण है कि जिसके ठीक २ रहने ही से सांसारिक वा पारमार्थिक कार्य्य अच्छे प्रकार से करसकता है, शराब के पीने से उसके मस्तक में लोहू जमा होजाता है कि जिसके कारण प्राण यमपुर चलेजाते हैं, बहुधा शराबियों के मस्तक अत्यन्त न्यून बल होजाते हैं, कि जिससे वह प्रति दिन के कार्य को अच्छे प्रकार से नहीं करसकते, इसके उपरांत लकवा या सक्ता आदि भयानक रोग उत्पन्न होजाते हैं कि जिनके अपार दुःखों से अपने प्राणों को त्यागगा उत्तम जानते हैं, कोई इस संकट से बचने के निमित्त नाना प्रकार की औषधि खा शरीर को त्याग आनन्द पाते हैं, इसके अतिरिक्त दिल भी इससे सुस्त होजाता है और इसका असर गुरदों पर भी होता है जो शरीर में दारोगा सफाई हैं और जिनकी नालियां शरीर की दुर्गंध दूर करने के अर्थ पन्नाली हैं, जब उनमें अन्तर पड़जाता है तो नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि शराबी शरीररूपी वृक्ष के धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थों का नाश मार अपनी सन्तान की दुर्गति करजाता है, क्योंकि आरोग्यता तो नाम को भी नहीं रहती, बहुधा पीते २ पागल होजाते हैं, रक्त विकार के रोग उनको सदा घेरे ही रहते हैं, और जो २ रोग इसके पीने से उत्पन्न होते हैं वह भी असाध्य ही होते हैं, इसी कारण धर्म शास्त्र में इसका निषेध किया है तथा इसके पीने वालों की गणना महा पापियों में की है, जैसा कि मनुस्मृति के अध्याय ११ श्लोक ५४ में लिखा है—

ब्रह्म हत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ।
महांति पातकान्याहुः संसर्गश्चापितैः सह ॥

अर्थात् ब्रह्म हत्या, शराब पीना, चोरी करना, गुरू की स्त्री से विषय करना, और ऐसे काम के करने वालों के साथ में मेल मिलाप अर्थात्

मित्रता करना, यह पांच महा पातक हैं, और भी उसी अध्याय के ९३ श्लोक में लिखा है—

सुरावै मलमन्नानां पाप्माच मल मुच्यते।
तस्माद्ब्राह्मण राजन्यौ वैश्यश्च न सुराम्पिवेत्॥

अर्थात् अन्न के मल को शराब कहते हैं और मल त्यागन करने योग्य है, इसलिये प्रत्येक को शराब न पीना चाहिये।

हे पाठक गणों यदि आप को अपनी शारीरक उन्नति वा धन प्राप्ति करने तथा उसकी रक्षा का ध्यान है वा धर्म पालन करना वा नाना आपत्तों से बचने तथा देश जाति को आनन्द मंगल में देखने की अभिलाषा है तो सदा इस जहरीले पानी से आप बचिये और औरों को बचाइयें।

अफीम खाना

(१) अफीम खाने से बुद्धि कम होजाती तथा मस्तक में खुश्की बढ़जाती है। (२) मनुष्य न्यून बल तथा सुस्त होजाता है। (३) मुख का प्रकाश कम होजाता है। (४) मुंह पर स्याही आजाती है। (५) मांस सूखजाता तथा खाल मुरझाजाती है। (६) वीर्य्य का बल निर्बल होजाता है। (७) घंटों पिनगी में पड़े रहते हैं, रात्रि को नींद नहीं आती प्रातः काल सोते हैं। (८) दोपहर को शौच जा वहां घंटों बैठे रहते हैं (९) समय पर अफ़यून खाने को न मिले तो आंखों में जलन पड़ती तथा हाथ पावं ऐंठते हैं। (१०) जाड़े के दिनों में पानी से डर लगता है कि जिससे स्नान तक नहीं करते, शरीर में दुर्गन्धि आने लगती है। (११) रंग पीला पड़जाता है, खांसी आदि रोग होजाते हैं।

इसी प्रकार चंडू मदक को भी जानों, इसके पश्चात् गांजा, चरस,

धतूरा, भांग, माजूनादि के पीने से खांसी दमा आदि हृदय के रोग तथा सुज़ाक होजाती है।

तमाकू

मान्यवरो वैद्यक ग्रंथों के देखने से स्पष्ट प्रकट होता हैं कि तमाकू संखिया से भी अधिक नशेदार बूटी है अर्थात् किसी बनस्पति में इससे अधिक नशा नहीं है।

डाक्टर टैलर साहिब का कथन है कि जो मनुष्य तमाकू के कारखानों में काम करते हैं उनके शरीर में नाना प्रकार के रोग होजाते हैं क्योंकि थोड़े ही दिनों में उन मनुष्यों के सिर में दर्द होने लगता जी मचलाने लगता है, न्यून बल होजाते सुस्ती घेरे रहती है, भूक कम होजाती है, काम करने की शक्ति नहीं रहती।

इसी प्रकार बहुधा डाक्टरों ने सावित किया है कि इसके धुए में जहर होता है अर्थात् इसका धुआ भी शरीर की आरोग्यता को हानि कारक हैं अर्थात् जो मनुष्य तमाकू पीते हैं उनका जी मचलाने लगता, कै होने लगती, हिचकी उत्पन्न होजाती, दम कठिनता से लिया जाता और नाड़ी की चाल धीमी पड़जाती है, परन्तु जब मनुष्य को इसका अभ्यास होजाता है तब यह सब बातें कम होजाती हैं।

डाक्टर स्मिथ का बचन है कि तमाकू के पीने से दिल की चाल पहिले तेज फिर धीरे २ कम होजाती है।

वैद्यक से स्पष्ट प्रकाशित है कि तमाकू बहुत ही जहरीली (विषयिक) वस्तु है, क्योंकि इसमें नेकोशिया, कारबोनिक एसिड, मेगनोशिया, इत्यादि वस्तु मिली रहती हैं जो मनुष्य के दिल को निर्बल करदेती हैं

कि जिससे खांसी दमादि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होने से आरोग्यता में अन्तर पड़जाता तथा दिल पर कीट अर्थात् मल जमजाता तथा तिल्ली की चिर बीमारी होजाती है, प्रत्येक समय मुंह मतलाता रहता है, अब बुद्धि से विचारिये कि मुसलमान तथा ईसाई आदि से तो बड़ा परहेज, परन्तु वाहरे तमाकू कि जिसकी प्रीति में धर्म कर्म की कुछ भी सुध नहीं, देखो मुसलमान तमाकू बनानेवाले अपने वर्त्तनों में से ही अपने घड़ों का पानी डालते हैं वही सब मजे से पीते हैं, इसके अतिरिक्त एक ही चिलम को हिन्दू मुसलमान ईसाई आदि सब पीते हैं कि जिसके प्रभाव से आपस में अबखरात अदल बदल होते हैं अर्थात् जिस चिलम को प्रथम एक हिन्दू ने पिया तो उसके भीतर कुछ अबखरात गर्मी के कारण अवश्य चिलम में रहजावेंगे फिर उसी को मुसलमान ईसाई ने पी फिर उसी चिलम को ब्राह्मण क्षत्री वैश्यादि पीते हैं तो अब कहिये कि हिन्दू तथा मुसलमान ईसाइयों में क्या अन्तर रहा, क्या इसी का नाम शौच वा पवित्रता है ?

प्यारे सुजनों केवल पदार्थ विद्या के न जानने तथा वैद्यक पर ध्यान न रखने के कारण इन मिथ्या बातों में फंसे हुये चलेजाते हो, जिससे हमारे धर्म कर्म तथा आरोग्यता आदि में अन्तर पड़गया, अतः अब आप को इन सत्यानाशी बातों का पूरा २ प्रबंध करना योग्य है कि जिससे आप की अगली संतानों को पूर्ण सुख तथा आनन्द प्राप्त हो।

हे विद्वान् पुरुषो, हे प्यारे विद्यार्थियो आप ने स्कूलों में पदार्थ विद्या अवश्य पढ़ी है, यह उक्त बार्ता अच्छे प्रकार आप पर प्रकट है, अतः आप इस हुक्के के पीने को त्याग अपने भाइयों को बचाइये, यही सत्य विद्या का पूर्ण उपकार है, इसी प्रकार स्कूल देशी मकतब तथा कालिजों

के टीचरों को भी योग्य है कि वह कदापि इस हुक्के को न पियें कि जिनकी देखा देखी सम्पूर्ण विद्यार्थी चिलम का दम लगाने लगते हैं।

इसके अतिरिक्त तमाकू आदि पीने की आज्ञा किसी सतशास्त्र में भी नहीं पाई जाती देखिये ब्रह्मांड पुराण में लिखा है कि—

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्व वर्णाश्रमेनराः ।
तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे ॥

अर्थात् इस घोर कलियुग में जो तमाकू खाता अथवा पीता है वह नर्क को जाता है।

पद्म पुराण में भी लिखा है—

धूम्रपान रतं विप्रं दान कृत्वेति यो नरः ।
दातारो नरकं यांति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः ॥

अर्थात् जो मनुष्य तम्बाकू पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नर्क को जाता है और ब्राह्मण ग्राम के सुअर का जन्म लेता है।

हे देश के शुभचिन्तको आप को वैद्यक के अनुसार नशों की ओर दृष्टि न करना चाहिये और इन नशेबाजों की कपोल कथना पर जैसा कि नीचे उदाहरण की भांति लिखे हैं कुछ ध्यान न देना चाहिये—

गांजा

जिसने न पी गांजे की कली । उस लड़के से लड़की भली ॥

भंग

भंग कहे सो बावरे, विजया कहे सो कूर ।
इसका नाम कमलापती, रहे नैन भर पूर ॥

हुक्का

हुक्का हरि को लाडिलो, राखे सबको मान ।
भरी सभा में यों फिरे, ज्यों गोपिन में कान ॥

तमालपत्र

कृष्ण चले वैकुंठ को, राधा पकडी बांह ।
यहां तमाकू खाय लो, वहां तमाकू नांहि ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो इन उपरोक्त हानियों के उपरांत जो जितना इन नशों को पीता है उतनी ही उसकी रुचि अधिक बढ़जाती है, दूसरे रुपया तथा समय भी मिथ्या जाता है, बहुधा पागल होजाते और कोई २ मर भी जाते हैं, छोटे २ मनुष्यों में नशेबाजों की प्रतिष्ठा भी नहीं रहती फिर बड़ो में ऐसों को कौन पूछता है, अतः इनकी ओर दृष्टि भी न कीजिये।

गृह आदि को स्वच्छ रखना

हे गृह रक्षिणियों गृह को तुम सदा ही स्वच्छ बनाये रहो क्योंकि वही गृह निवासियों को आरोग्य तथा बल बुद्धि आदि का देनेवाला है गृह के स्वच्छ रखने का प्रयोजन यह है कि उसकी भीतें किसी प्रकार से मैली न होने पावें, बहुधा लड़के लड़कियां कोयले आदि से भीतों पर अनेकान खेल और लकीरें खैंचदेते हैं सो कदापि न करने देवें, घर के आगे द्वार को भी स्वच्छ रक्खें वहां कूड़ा करकट इकट्ठा न करें और ऐसा भी न करें कि फल खाकर उसके बीज या छिकले जहां के तहां फेकदें कि जिससे आंगन में मक्खी भिनकने लगें, कोई २ स्त्री जहां जी चाहा वहां हाथ पांव मुंह धो स्नान कर पृथ्वी को गीला करदेती हैं कि जिससे दुर्गंध आने लगती है जो वायु के साथ पेट में जाकर खांसी सरदी आदि रोग उत्पन्न करदेती हैं, इसलिये कदापि ऐसा न करना चाहिये, सम्पूर्ण गृह को सदा देखती भालती रहो ऐसा न हो कि कहीं घूस ने मिट्टी निकाल रक्खी हो किसी स्थान पर कुछ पड़ा किसी पर कुछ, इससे भी वायु खराब हो-

जाती है और उन जगहों में बहुधा जानवर रहने लगते हैं जो कभी कभी खाने पीने की बस्तुओं में घुसजाते हैं कि जिनके खाजागे से नाना रोग होजाते हैं जिनमें नाना क्लेश भोगने पड़ते है, कभी २ वह छोटे २ जीव बच्चों के ऊपर चढ़जोत कि जिसके कारण उनकी नींद जाती रहती है तथा अनेक प्रकार से दुखी होजाते हैं, अतः प्रत्येक वस्तु को जहां की तहां रखदिया करो नहीं तो खटमल पिस्सू उत्पन्न होकर नाना दुःख करते हैं अतः सदा ध्यान रखना चाहिये कि बर्ष के भीतर दो बार मकान को चूने वा मिट्टी से पुतवा दिया जावे तो अनेकान लाभ होते हैं—प्रथम भीतें उत्तम सुहावनी जान पड़ती हैं, दूसरे देखनेवालों के चित्त को हरती हैं, तीसरे रहनेवालों को उसकी तरावत से प्रफुल्लता बनी रहती है, चौथे जो बायु इकट्ठी होकर घर में आती है उसके दोषों को चूने की तरावत स्वच्छ तथा निर्बल करदेती है कि जिसके कारण गृह निवासियों के शरीर निरोग्य बलबान् बने रहते हैं, बहुधा धनाढ्य हजारों रुपये व्यय करके कच्चे तथा पक्के गृह बनवाते हैं परन्तु स्वच्छता पर ध्यान नहीं रखते इस कारण उनको लाभ नहीं होता वरन उपरोक्त दुःख ही सदा दुखी बनाये रहते हैं।

अनेकान जन घर के द्वारों अर्थात् चौतरों पर गाय भैंस आदि पशु बांधते वा छोटे बच्चे खोद खाद कर बिगाड़ देते अथवा उनका गोबर पेशाब वहीं दिन भर पड़ा रहता है और मोरियों के चहबच्चों में बहुत दिनों तक पानी भरा रहता है जिससे सडांध पैदा होकर गृह में मार्ग के चलनेवालों को नाना क्लेश देती हैं, अतः दूसरे तीसरे वा चौथे दिन भंगी से पानी से से धुलवा देना चाहिये और इन मोरियों को पक्का बनवादेना योग्य है।

इस उपरोक्त कथन से प्रकट हैं कि मकान कच्चा हो या पक्का, जब तक स्वच्छ न रहेगा कुछ लाभ न होगा, अतः स्वच्छता पर पूर्ण ध्यान रखना

चाहिये, कहीं २ ऐसा देखागया है कि बहुधा स्त्री जन अपने गृह को तो स्वच्छ बनाये रखती हैं परन्तु आने जाने के मार्ग पर कुछ ध्यान नहीं देतीं इस कारण उनको पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं होते, इस हेतु से सम्पूर्ण गृह और उसके आस पास पूर्ण प्रकार से स्वच्छता पर दृष्टि बनाये रहे।

यह भी स्मरण रखना योग्य है कि मकान चाहों कच्चा ही हो परन्तु पाखाने के कदमचे तथा मोरी अवश्य ही पक्की होनी चाहिये और दोनों को चौथे पाचवें दिन अच्छे पानी से साफ करादेना चाहिये, मोरी के खराब पानी को भंगी आदि से भरवाकर शहर के बाहर खेतों में फिकवा देना चाहिये जैसा कि वर्तमान समय में इसके लिये भंगी नौकर हैं, बहुधा स्त्रियां मोरी की डाट खोलदेती हैं कि जिस कारण वह दुर्गंधित पानी मार्ग में फैलजाता है बहुधा स्त्री उस पानी को दरवाजों के सन्मुख छिडकवा देती है, इन दोनों सूरतों में वायु मलीन होजाती है कि जिससे निवासियों के सिवाय मार्ग के चलनेवालों को भी हानि होती और दरवाजों की शोभा बिगड़ जाती है और यह भी प्रकट रहे कि पाखाने तथा मोरी दोनों को सदा स्वच्छ कराते रहें, अथवा सम्पूर्ण गृह जन कूड़ा करकट तथा आने जाने के मार्ग आदि मलीन वस्तु को झाड़ बुहार इकट्ठा कर प्रतिदिन उठवादेना योग्य है, बहुधा गृहों में ऐसा पाया जाता है कि खा पी कर पत्तलादि को चौक वा द्वार पर फेंक देते हैं वह भी हवा खराब करते हैं यदि यह दुर्गंधित वायु सिर की ओर चली जावे तो सिर दर्द उत्पन्न करदेती है, भूक कम होजाती है, इसी वायु के अधिक खराब होने से हैज़ा विशूचिका आदि रोग उत्पन्न होकर सैकड़ों मनुष्यों को मारडालते है इन बार्ताओं के उपरांत जब किसी गृह में कोई मनुष्य बीमार होता है तो दवाई तो बड़े जोर शोर से करते हैं परन्तु उस समय उसकी स्वच्छता पर

ध्यान नहीं रखते कि जिससे बीमारी बढ़ कर असाध्य होजाती है, बहुधा तो अपने प्राण को अर्पण करदेते हैं और जो जीते जागते बाकी बचजाते हैं वह भी नाना भांति के क्लेश भोगते हैं, सैकड़ों रुपये हकीमों तथा अत्तारों के भेंट कर व्योपार आदि को खोते हैं, सम्पूर्ण गृह निवासियों को दुःख सहन करने पड़ते हैं, अतः हे सुजन स्त्रियो जिस मलीनता के कारण तुम्हारे घरों में प्रतिदिन बीमारी बनी रहती है उसको कभी गृह में न रहने दो अर्थात् स्वच्छता को कि जिससे बल बुद्धि आयु आदि सुख मिलते हैं तथा अपने गृह का हार बनाकर सदा दृष्टि डालती रहो।

इसके अनंतर प्रतिवर्ष मकान की मरम्मत न होगी तो मकान टूट फूट कर खराब होजायगा फिर वह गिर भी पड़ेगा तो पुनः बनवाने में बहुत खर्च होगा, तथा उसकी स्वच्छता से भी कुछ लाभ न होगा, अतः टूटे फूटे को सदा बनवाते रहना चाहिये, यदि चूना न हो तो मिट्टी ही से पुतवादेना चाहिये, बार २ घरकी धरती वा आंगन को लीपने से सील के कारण रोग उत्पन्न होजाते हैं अतः आठवें वा पन्द्रहवें दिन इस कार्य को करें, अथवा लीपने की मिट्टी में गोबर कम डालना चाहिये इसके अतिरिक्त प्रातःकाल सूर्योदय से प्रथम घर के दरवाजों और खिड़कियों आदि को खोल देना योग्य है कि जिससे रात की दुर्गंधित वायु निकल जावे और प्रातःकाल की जीवन मूल वायु आजावे।

सूचना

निम्न लिखित कर्म प्रति दिन वा चौथे वा आठवें दिन दिन के प्रथम भाग में करना चाहिये—

क्षौर

हजामत बनवाने से प्रकाश और शोभा जान पड़ती है दरिद्रता का

नाश होकर आरोग्यता बनी रहती है, क्योंकि सिर तथा मुख के बाल बनजाने से छिद्र खुल जाते हैं जिससे खराब परमाणु निकलते रहते तथा उत्तम वायु जाती रहती है ।

बहुधा हमारे भाई इंगलैंडियों की भांति सम्पूर्ण सिर पर बाल रखोते हैं, परन्तु यह नहीं सोचते कि वह सर्द देश के रहनेवाले हैं उनके लिये यह रीति उत्तम है, एतद्देश वालों के लिये श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि यह देश गर्म है यदि ऐसा हो तो सिर के बीच में तालू थोड़ा सा खुलवालेना अभीष्ट है ।

जो लोग महीनों में हजामत बनवाते हैं यह अज्ञानता का कारण है क्योंकि बिना आठवें दिन हजामत बनवाये हुए आरोग्यता में अंतर पड़जाता है अतः कदापि एक पैसे का लोभ न करे, समस्त कार्यों को छोड़ इस काम को भी आठवें दिन करना योग्य है ।

उबटन

उबटन लगाने से धातु तथा लोहू की वृद्धि होती है शरीर की त्वचा नरम मुख में कांति तथा दृष्टि में तीव्रता होती है, विशेष तात्पर्य यह है कि इस काम से शरीर की शोभा बढ़ती हैं ।

तेल

प्रति दिन सम्पूर्ण शरीर में तेल लगाने से शरीर पुष्ट होता है बल की वृद्धि होती, सुख मिलता, नींद आती, चमड़े की रंगत कोमल होजाती, वायु कफ तथा श्रम का खेद नाश होजाता हैं, विशेषकर कान और तलवे में अधिक तेल लगाना उचित है इससे बाल कोमल घने काले तथा मज़बूत होते हैं सिर का दर्द जाता है, कान में तेल डालने से कान के समस्त रोग जाते हैं ।

आईना

दर्पण के देखने से मंगल होता और शोभा बढ़ती है, बार २ देखना योग्य नहीं है ।

जूता

जूता पहनने से पावों को बहुत आराम मिलता है अर्थात् कांटा आदि नहीं लगता अशुद्धि वस्तुओं के लगने से पावं बचजाता है कि जिससे बड़े २ दुःख होतें हैं, इसी से कहाजाता है कि आयु की रक्षा होती है, परन्तु गीले जूते पहनना रोगी बनाता है ।

छाता

छाता लगाने से नेत्रों को आनन्द उत्साह सुख मिलता है ग्रीष्म में धूप से, वर्षा में पानी से, सर्दी में शीत से बचाता है कि जिससे ज्वरादि रोग नहीं होने पाते ।

छड़ी

इससे हाथ की शोभा होती है, कुत्ता बिल्ली आदि से बचाती है, भय का नाश होता है ।

पगड़ी

पगड़ी पहनने से शोभा, बालों की रक्षा, तथा कफ का नाश होजाता है परन्तु थोड़ी देर तक हलकी पगड़ी सिर पर रखनी चाहिये देर तक धारण करने से पित्त वा नेत्र रोग होता है ।

खड़ाऊं

भोजन के पहिले या पीछे खड़ाऊं पहनने से काम, आयु वा नेत्र को हित होता है परन्तु अधिक महनने से दृष्टि को हानि होती है।

लालटेन का गुण

मनुष्य को उचित है कि यदि अंधियाली रात में कहीं जाना हो तो लालटेन अवश्य लेले, क्योंकि मार्ग में सर्पादि जंतुओं अथवा शत्रुओं का भय नहीं होता।

[२—गर्भाधान विधि]

गर्भाधान

गर्भाधान उस क्रिया को कहते हैं जिससे वीर्य को गर्भाशय में स्थापित करते हैं।

गर्भाधान का समय

ऋषियों ने १६ वर्ष की स्त्री तथा २५ वर्ष के पुरुष को इस क्रिया के करने की आज्ञा दी है अर्थात् इस अवस्था के पुरुष स्त्री सन्तान उत्पन्न करें, यदि इससे प्रथम इस कार्य को किया जायगा तो गर्भ गिर जायगा अथवा सन्तान होते ही मरजायगी यदि न मरी तो दुर्बलेंद्रिय होगी, प्रिय सज्जन पुरुषो स्त्री की योनि सन्तान के उत्पन्न करने का खेत है जिस प्रकार किसान अन्नादि के उत्पन्न करने में विचार रखता है उसी भांति वरन उससे भी अधिक सन्तानोत्पत्ति में विचार करना अभीष्ट है जिससे किसी प्रकार की हानि न हो, अर्थात् स्त्री जब तक १६ वार रजो धर्म से शुद्ध न होजावे तब तक

बीज बोने अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा न करे यही मनु जी महाराज ने भी कहा है, आज कल इस विचार के त्यागने ही के कारण मनुष्य न्यून बल, निर्बुद्धि, अल्पायु, रोगी अथवा नाटे होने लगे हैं।

जब स्त्री १६ वार रजो धर्म से निवृत्त हो, तत्पश्चात् जब स्त्री मासिक धर्म जो स्वाभाविक रीत्यानुसार प्रति मास रजस्वला होती है उस दिन से १६ दिन तक प्रसंग करने की अवधि है ऐसाही मनु जी ने लिखा है—

ऋतु कालाभिगामीस्यात् स्वदार-निरतः सदा।
पर्व वर्जं व्रजेच्चेनां तद्व्रतो रति काम्यया ॥ अ० ३ श्लो० ४५ ॥

इसी को ऋतु काल कहते हैं।

इन उपरोक्त रात्रियों में से प्रथम चार रात्रियों में कदापि प्रसंग न करे क्योंकि इन रात्रियों में उसके शरीर से एक प्रकार का मलीन रुधिर निकलता है जो कोई इन रात्रियों में स्त्री प्रसंग करते हैं उनकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्र, आयु यह सब हीन होजाते हैं जैसा मनु जी ने लिखा है—

रजसाभिप्लुतान्नारीं नरस्यह्युपगच्छतः।
प्रज्ञा तेजो वलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥ अ० ४ श्लो० ४१ ॥

इसके अतिरिक्त गर्भ भी नहीं रहता क्योंकि बहते हुए जल में कोई वस्तु नहीं ठहरती इस कारण रजस्वला के साथ प्रसंग करने से वीर्य मिथ्या जाता है अतः इन चारो रात्रियों में स्त्री को अपने पति के दर्शन भी न करना चाहिये, वह कोई कार्य भी न करे, एकांत में बैठी रहे, शृंगार भी न करे, जब रज बंद होजाय तब स्नान करे, इसी को ऋतु स्नान बोलते है।

यह भी प्रकट रहे कि ऋतु स्नान के पीछे जिस पुरुष का दर्शन करेगी उस

की सदृश्य पुत्र की आकृति होगी अतः स्त्री को योग्य है कि अपने पति वा पुत्र अथवा किसी सम्बन्धी को कि जिसकी आकृति उत्तम हो देखे यदि इनका देखना किसी कारण से उचित न हो तो अपनी ही सूरत यदि उत्तम हो तो दर्पण में देखले, या किसी उत्तम आकृति वाले पुरुष की तसवीर मंगाकर देखले, कभी उनकी सूरत का चित्त में ध्यान भी बनाये रहे क्योंकि जिसका चित्त में बार २ ध्यान रहेगा उसका बहुत असर होगा, अतः उत्तम पुरुषों का ध्यान भी बनाये रहे कि जिससे उत्तम २ मनोहर पुत्र पुत्री उत्पन्न हों, जिस प्रकार से प्रथम की चार रात्रि का त्याग है उसी प्रकार ११ वीं १३ वीं रात्रि तथा अष्टमी, पूर्णमासी, अमावास्या का भी निशेध किया है और शेष रात्रि में ६, ८, १०, १२, १४, १६ में गर्भ रनने से पुत्र, और ७, ९, ११, १३, अथवा १५ में गर्भ रहने से पुत्री होती है क्योंकि इन दिनों स्त्री के वीर्य की अधिकता होती है।

मुख्य प्रयोजन यह है कि मनुष्य की मनी अधिक होने से लड़का, मक होने से लड़की और दोनों के बराबर होने से नपुंसक तथा दोनों के कम होने पर गर्भ ही नहीं रहता ऐसा ही मनुस्मृति और प्रश्नोपनिषद, भविष्य, महाभारत आदि में लिखा है।

लड़का और लड़की के अर्थ उपरोक्त रात्रियों में एक बार प्रसंग करे और दिन में इस क्रिया को कदापि न करे क्योंकि दिन में प्रकाश तेज और गर्मी अधिक होती है, तथा मैथुन करते समय और भी गर्मी शरीर से निकलती है इस दो प्रकार की उष्णता से प्राणों का निकलना संभव है, इसलिये रात्रि में भी दीप जलाकर मैथुन न करना चाहिये।

इस का समय रात्रि में सदा १० या ११ बजे पर प्रसंग करना उचित है जब वीर्यपात का समय निकट आवे तो उस समय दोनों सम हों अर्थात्

ठीक नाक के सीध में नाक, मुह के सन्मुख मुह इसी प्रकार शरीर के सब अंग समान रहें, जैसा कि य० अ० १९ मंत्र ८८ में लिखा है—

मुख ५ सदस्य शिर इत् सतेन जिह्व पवित्रम् शिवना सन्त्सरस्वती ।
चयान्न पायुर्भिषगस्यवालो वस्तिर्न शेपो हरसा नरस्वी ॥

उपरोक्त कार्य के समय किसी बात की चिन्ता भी दोनों के चित्त में रहनी अच्छा नहीं प्रसंग के पीछे स्त्री को शीघ्र न उठना चाहिये थोड़ी देर के पीछे गाय के दूध में मिश्री डाल ठंडाकर दोनों पीवें इससे थकावट जाती रहती है और जितना बीर्य निकलता है उतना ही और बनजाता है इससे किसी प्रकार का क्लेश भी नहीं होता, प्रातःकाल यदि शरीर पर उबटन लगा कर स्नान करे और खीर, मिश्री, दूध, भात खावे तो अति ही श्रेष्ठ है, देखिये मनुजी महाराज ने लिखा है कि जो मनुष्य अपनी स्त्री से ऋतु के समय में प्रसंग करते हैं वह गृहस्थ ब्रह्मचारी के समान हैं।

निंद्या स्वष्ठासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचर्य्य वभर्यात यत्र यत्राश्रमे वसन् ॥

विशेष सूचना

सन्तान का उत्तम और वलिष्ट होना पति पत्नी के भोजनों पर निर्भर है इसलिये दोनों अपनी आत्मा तथा शरीर पुष्टि के लिये बल और बुद्धि वर्धक सर्वोषधि और नियमानुसार उत्तम २ भोजन का सेवन करें जैसा कि पहिले वर्णन होचुका है।

मान्यवरो जैसा कि स्त्री गर्भ समय में अपना आचरण रखती है उसी लक्षण युक्त पुत्र पुत्री भी उत्पन्न होती है।

चरक शा० अ० ८ में लिखा है कि जो स्त्री गर्भ समय में नित्य दिन को सोती है तथा रात्रि को घूमती है उसके पागल वा अपस्मार रोग युक्त

सन्तान उत्पन्न होती है, जो नित्य प्रति लड़ती तथा पशुओं की भांति आचरण करती है उसके दुर्वल निर्लज्ज और स्त्री के आधीन रहने वाला पुत्र उत्पन्न होता है, सोच करने वाली के डरपोक, दुर्वल, न्यून आयु वाली, चोरी करने वाली के आलसी, कुकर्मी, धनादि पदार्थों के चाहने वाली के दूसरों को दुःख देनेवाली, ईर्षा करने वाली के अधिक सोने वाली, क्रोधवती के क्रोधी व छली, मद्य पीने वाली के प्यासी व गाफिल संतान उत्पन्न होती है।

इसलिये इन बातों पर भी ध्यान रहे ता कि कुचालि संतान न हो।

गर्भ परीक्षा

(१) जब स्त्री गर्भवती होती है तो वह ऋतुवती नहीं होती। (२) स्तन का मुंह छोटा होजाता है। (३) नेत्रों के पलक चिमटने लगते हैं। (४) पथ्य भोजन खाने पर भी कै होती है। (५) हांथ पावं भारी जानपड़ते हैं। (६) आलस्य बना रहता है। (७) कभी २ सिर में दर्द होता है। (८) सोंधी चीजों के खाने को जी चाहता है। (९) स्त्री को प्रसंग करने की इच्छा नहीं रहती।

गर्भवती स्त्री को निम्न लिखित आशय पर अवश्य ध्यान देना चाहिये—

गर्भवती गर्भ रक्षा के निमित्त शरीर और बस्त्र को शुद्ध बनाये रहे, लाल मिठाई, अति खटाई, लाल मिर्च, भंग, गांजा, आदि किसी प्रकार का नशा न पीना चाहिये, बासी व सूखे भोजन से सदा बचे, दूध, घी, मिष्टान्न, दही, गेहूं, चावल, मूंग, आदि अन्न, पालक, तुरई आदि पुष्टि कारक शाक भक्षण करे, जिसमें ऋतु २ के मासले भी पड़े हों, सोमलता और गुरुचादि औषधि के रस पान का भी यथारुचि अभ्यास करे, सवारी पर न चढ़े और न मल मूत्र को रोके।

जब कमर और कूले में दर्द होना, खून आना, दूध का निकलना, गर्भाशय में दर्द होना, यह सब चिन्ह गर्भपात के हैं, उस समय कहरुआ मोती, और याकूत को कमर में बांधने से गर्भ पात नहीं होता।

आसन्न प्रसवा के लक्षण

हृदय और उसके नीचे बायें दोनों ओर ढीले हों, यदि जांघ कमर पीठ में दर्द हो और बारम्बार मल मूत्र का त्याग हो तो उस समय जानना चाहिये कि अब शीघ्र प्रसव होगा।

व्यथायुत गर्भिणी उपचार

(१) शरीर में तेल लगाकर गर्म पानी से स्नान कर थोड़ी सी मूंग की खिचड़ी खाकर कोमल तकिये और बिछौने के पलंग पर उत्तान दोनों जांघ फैलाकर बैठे।

(२) गर्म दूध या गर्म पानी पीवे।

(३) तीन मासे सौंफ, गाय का घी पाव सेर, एक सेर पानी में औटावे जब पानी जल जावे तो गुनगुना पिलावे, अथवा काले सांप की केंचुली और मैनफल का चूरण बनाकर उसका धुआं गर्भ द्वार को दें।

(४) पोई के पत्ते और जड़ पीस कर और तिल का तेल मिलाकर गर्भ द्वार पर रक्खे।

(५) पीपल वा बच पानी में पीस गर्म कर अंडी का तेल मिला नाभि पर लेप करे।

(६) चोया और साबुन की बत्ती बनाकर लगावे।

(७) चुम्बक पत्थर को जांघ से बांधे।

(८) किसी हुलास से छींकले वा हीरे की कनी अपने पास रक्खे तो बच्चा शीघ्र होजाता है कुछ क्लेश नहीं होता ।

दाई

तरुण, रोगरहित, अंगहीन और कुरूप न हो, नशे आदि न पीती हो, बुरे आचरण की न हो, अपने कार्य में निपुण निर्भय तथा चतुर हो ।

प्रसूता के रहने का स्थान

लम्बा चौड़ा हो, पृथ्वी चौरस हो, स्वच्छ और मनोहर हो, वह पहिले लिपवा पुतवा लिया जावे ।

प्रसूता की रक्षा के लिये जब बालक का जन्म होजावे उसके तीन दिन के पीछे अन्न न देना चाहिये, यदि प्रसूता को ज्वरादि हो तो वैद्य या डाक्टर या हकीम की सम्मत्यानुसार उसकी दवा करनी योग्य है, ठंढा पानी न देना चाहिये सरद ऋतु में २ सेर पानी १५ मुनक्के और १० पान डालकर जब छठा भाग रहजावे तो उसको ठंढा कर पिलावे, इसी भांति ग्रीष्म में ७ पान २० मुनक्के तथा ६ मासे खरबूजे के बीज की मींगी डाल कर औटा कर जब चौथ्याई रहजावे ठंडा कर पिलावे चार दिन तक इसी भांति दे पीछे कोमल भोजन मूंग की दालादि देना उचित है और अजवाइन, सोंठि मेवादि का जो हरीरा दिया जाता है उसके स्थान पर श्रीयुत् मुनिवर अस्वनीकुमार ने प्रसूता स्त्रियों के लिये उत्तम पाक सुहाग सोंठि कही है उसको खिलाना अभीष्ट है, इसके उपरांत छः माह तक स्त्री से समागम न करना चाहिये तथा जो नियम गर्भ रक्षा के समय बताये गये हैं उनका पूरा २ ध्यान रखना योग्य है ।

सुहाग सोंठि

सोंठि वैदरा	१॥ पाव	बरिअरा की जड	२ तोला
बकरी का दूध	५ सेर	पिपरा मूल	१ तोला
गाय का घी	१ पाव	चाव	१ तोला
चीनी सफेद	२॥ सेर	चीता	१ तोला
दालचीनी	१॥ तोला	नागर मोथा	१॥ तोला
तेजपात	१ ताला	खस	,, तोला
छोटो इलायची	२ तोला	नागोरी असगंध	२ तोला
नाग केसर	१॥ तोला	सफेद चन्दन	१ तोला
धानियां	,, तोला	काला चन्दन	,, तोला
सफेद जीरा	,, तोला	लौंग	१॥ तोला
स्याह जीरा	१ तोला	सतावर	२ तोला
सौंफ	१। तोला	सफेद मूसली	,, तोला
अकरकरहा	१॥ तोला	सोंठ	,, तोला
जावित्री	१ तोला	पीपल	१ तोला
विधारा	१। तोला	मिर्च	१॥ तोला
कमलगट्टे की गिरी	१॥ तोला	जायफल	१। तोला
त्रिफला	२ तोला	सिंघाडा	२ तोला
कङ्कोल	१॥ तोला	किशमिश	,, छटांक
अजमोद	१ तोला	अखरोट	,, छठांक
मुनक्का	एक छटांक	बादाम, पिस्ता	एक २ पाव

[बनाने की विधि]

दूध को कढ़ाई में ओटावे जब अधौटा होजावे तब सोंठि को कपड़छन कर उस दूध म डाल कर उसका खोया करले, फिर कढ़ाई में घी को चढ़ावे जब अच्छे प्रकार गर्म होजावे तब उसमें खोया को डालकर भूनले

फिर कढ़ाई को साफ कर चीनी की चासनी बना ले, फिर उसमें सब दवाओं को कूट पीस छान कर और सब मेवाओं को कतरकर डाले और खोया को भी उसी में छोड़ दे, पुनः इन सब को अच्छे प्रकार मिलाकर आधी २ छटाक के लड्डू बनाले, साम सबेरे बल के अनुसार लड्डू खाकर गाय का दूध मिश्री मिलाकर पिये।

प्यारी बहिनों मैंने इस पाक की अच्छे प्रकार परीक्षा की है यह यथावत् लाभ देता है।

सूचना

बहुधा हमारे प्यारे भाई बहिन पुत्री के उत्पन्न होने की भनक कान में पड़ते ही उदास होजाते हैं और जैसा लड़का उत्पन्न होने के समय प्रसन्न होकर धूम धाम करते उसका एक अंश भी आनन्द नहीं मानते, इसी प्रकार उसके लालन पालन में भी पूरा ध्यान नहीं करते, यह बड़ी अज्ञानता व मूर्खता की बात है, क्योंकि लड़का और लड़की एक ही पेट व आत्मा से पैदा होते हैं और एक ही कार्य के सिद्धि करने के अर्थ उत्पन्न होते हैं, और भूक, प्यास, जन्म, मरण, बल, बुद्धि, इन्द्रियां भी दोनों के एक समान होती हैं।

इसके पश्चात् यदि उन भाई बहिनों के विचारानुसार सब के यहां लड़के ही उत्पन्न हों तो बतलाइये फिर इस सृष्टि की वृद्धि बिना स्त्री किस प्रकार सम्भव है, वरन संसार ही न होता अर्थात् हम आप ही न होते, देखिये पुत्रियों के कारण राजा दक्ष को प्रजापति की पदवी मिली थी, इसके पश्चात् पुत्रियों के कारण बहुत से राजाओं ने प्रतिष्ठा और मान को पाया और चहूओर प्रसिद्ध होगये और आज तक उनके नाम चले आते हैं, जैसा द्रोपदी के कारण राजा द्रुपद, और जानकी के कारण राजा जनक आदि

सज्जनों के नाम लिये जाते हैं, इन सब बातों के अनंतर लड़के से एक कुटुम्ब की प्रतिष्ठा होती है, और पुत्री से दोनों कुलों की शोभा होती है, और सदा से लड़की के अर्थ सुर मुनि ऋषि राजा आदि चाहना करते रहे, और इन्ही पुत्रियों के कारण बड़े २ स्वयंवर रचे जाते थे कि जिनमें बड़ी २ दूरके राजा महाराजा, सुजन, साहूकार, विद्वान्, गुणी योग्य पुरुष इकट्ठे होते थे क्योंकि इन्ही पुत्रियों से नाना प्रकार के रत्न रूपी मनुष्य उत्पन्न होते हैं कि जो संसार के उपकारार्थ नाना प्रकार की युक्ति निकालते हैं, देखिये एक महात्मा का बचन है—

दोहा

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान ।
नारी से नर ऊपजे, ध्रुव प्रहलाद समान ॥

इसी कारण मनु जी महाराज ने लिखा है कि जो मनुष्य स्त्रियों का नाना प्रकार सत्कार कर उसको उत्पन्न करते हैं, उनको सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं।

इस उपरोक्त कथन से स्पष्ट प्रकट है कि यदि स्त्रियां न होतीं तो यह हमारे ऋषि, मुनि, महात्मा, गुणी राजा प्रजा कहां से होते, क्योंकि जब खेत ही नहीं तो बीज कहां बोया जायगा फिर फल कहां से आवेंगे, इसलिये इस अज्ञानता को अपने २ मन से दूर करदेना योग्य है।

शिशु पालन

प्रकट हो कि बालकों की अवस्था के शिशु कुमार किशोर यह तीन भाग हैं, जिनमें से शिशु जन्म से दो वर्ष पश्चात् जबतक कि दूध के सब दांत न निकल आवें कहाती है, कुमार दांत निकलने के पीछे आठ वर्ष पर्यन्त बोलते हैं, इसके पश्चात् किशोर का आरम्भ होता है जो पन्द्रह वा सोलह बर्ष तक गिनी जाती है।

जब बालक का जन्म हो तब दाई आदि उसके शरीर का जरायु प्रथक कर मुख नाशिका कर्णादि में से मल को निकाल कर सरसों या जैतून के तेल को सब शरीर पर कोमल हाथों से लगा रुई से पोछ कर रुई वा अन्य बहुत से कपड़े पर सुलाकर नाल को हौले से सूत कर चार अंगुल छोड़ कर एक डोरा बांधे फिर उस डोरे से थोडे अन्तर पर एक और डोरा बांधे, तत्पश्चात् इन दोनों डोरों के बीच में पैनी छुरी आदि बारीक हथियार से काटले, इसके पीछे जैतून के तेल में कपड़ा भिगो नाल पर रखदे, फिर एक घंटे के पीछे गुनगुने पानी में दो या तीन मासे खारी नमक डाल कर किसी बड़े पात्र में पानी भर उस बालक को कोमल हाथों से अच्छे प्रकार स्नान करावें कि जिससे शरीर पर गर्भ के मैल का अंश भी न रहे, फिर सम्पूर्ण शरीर को स्वच्छ कपड़े से पोंछले, और जो साबुन लगाकर स्नान कराना हो तो इस बात का स्मरण रखना योग्य है कि साबुन की छींटें बच्चे की आंखों में न जाने पावें, विना स्नान के मैल रहने से त्वचा में नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, शीतल जल से भी इस समय बच्चे को स्नान न कराना चाहिये नहीं तो बहुधा क्लेश होजाते हैं, तत्पश्चात् गाय के घी में सहत मिलाकर उसमें एक अंगुली डुबोकर बच्चे की जीभ पर लगादे, कि जिससे बच्चे के पेट का मल निकल जावे, फिर बालक को ऐसे स्थान पर पालन करना चाहिये जहां बहुत प्रकाश और वायु का बल न हो, वह स्थान सब प्रकार से स्वच्छ और मनोहर हो, फिर बालक को कभी २ हौले २ हिलाना और बाहर की बायु तथा प्रकाश दिखलाना चाहिये, आग या दीपक को ऐसे स्थान पर रखना चाहिये कि जिस पर बच्चे की आंख न पड़े, कि नेत्र रोग होजाने का भय होता है, गर्मी के दिनों में आग को कोठरी में कदापि न रखना चाहिये, और ५ वा ६ दिन तक बच्चे को मा का दूध

न पिलाना चाहिये क्योंकि उन दिनों में उसके दूध में एक प्रकार का बुरा रुधिर रहता है, अतः उन दिनों में उत्तम बकरी या गाय के दूध में थोड़ा सा पानी डाल गुनगुना कर रुई के फोये से देना उचित है कि जिससे उसके मुंह को किसी प्रकार का क्लेश न हो और बालक को दूध का स्वाद भी मालूम होजाय, ४० दिन तक बच्चे को आठवें दिन स्नान कराना योग्य है परन्तु यह भी स्मरण रहे कि पानी गुनगुना हो यदि गर्मी के दिन हों तो सन्ध्या के चार बजे, तथा शरदी के दिन हों तो दिन के १२ बजे जब बच्चा सोकर उठा हो उसके एक घंटे पीछे स्नान कराना चाहिये, पानी हौले २ थोड़ा २ डालें कि जिससे बच्चा रोने न पावे, पश्चात् सुपेद कपड़े से पोंछ देना चाहिये, बच्चे को फिर भीगे हाथों से न लेना चाहिये, बहुधा स्त्रियां ऐसा कहती हैं कि शीघ्र २ स्नान कराने से बालकों को सरदी होजाती है सो उनकी यह भूल है, क्योंकि जल से स्वच्छता न होने के कारण शिर में मैल जमजाने से फुंसी निकल आती हैं, इसी भांति गुदा में तथा कान के पीछे मैल जम कर रोग हो बच्चों को नाना प्रकार के क्लेश देते हैं।

जो बालक दो महीने के पीछे दुर्बल ही रहे तो उसके स्नान के पानी में नमक वा सेंधानोन डालदेना चाहिये, कि जिससे बालक बली हो जाय, बहुधा देखने में आता है कि माता के बलवान होने पर भी बालक बलयुक्त नहीं होते, इसका कारण यही है कि उनको दूध पिलाने की उत्तम रीति का ज्ञान नहीं है, बहुधा स्त्री किसी २ दिन तो दिन भर दूध पिलाती रहती हैं और किसी २ दिन भर में दो चार वार पिलाती हैं, ऐसा होने से बच्चों को पेट की बीमारी होजाती है, अतः उनको दूध पिलाने का समय नियत करदेना चाहिये, अर्थात् पहिले महीने में दिन में आठ वार और रात्रि को दो तीन वार पिलाना उचित है, फिर ज्यों २

बालक की आयु बढ़तीजाय त्यों २ दूध पिलाने का समय बढ़ाती जायं और पांच छः महीने के पीछे चार २ घंटे बाद दूध पिलाया करें, इस प्रकार दूध अच्छी भांति पचजायगा और नियत समय पर भूख भी लगेगी, बहुधा स्त्री बालकों को नींद से जगाकर दूध पिलाने लगतीं या सोते बच्चे के मुंह में स्तन देकर दूध पिलाये जाती हैं, यह भी उनकी भूल है, और अधिक रात्रि जाने पर दूध पिलाना बंद करदें, अर्थात् ११ बजे रात्रि के दूध पिलाकर सुलादें फिर प्रातःकाल उठाकर पिलायें, ऐसा करने से बच्चों को दो चार दिन तो अवश्य ही क्लेश होगा, परन्तु जब थोडे ही दिनों में स्वभाव पड़जायगा तब यह क्लेश भी जाता रहेगा, इसके उपरान्त रात्रि को माता बच्चे को थोडी दूर पर सुलावे कि जिससे वह मनमानता दूध न पीजावे, इसके उपरांत माता या दाई को दोनों स्तन का दूध पिलाना योग्य है, जो ऐसा नहीं करतीं तो जब कभी उनके किसी स्तन में दूध इकट्ठा होजाता है तो नाना प्रकार का क्लेश देता है, इसके अतिरिक्त रोटी करने, चक्की पीसने धान आदि किसी और प्रकार के अधिक परिश्रम करने वा अति क्रोध करने वा भूख को मारने वा उपवास करने वा ओंगानीदी हो तो उस समय बालक को दूध पिलाना उचित नहीं, क्योंकि ऐसे समयों पर दूध विकारी होजाता है, जिसके पीने से नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, और जब सामने के दो दांत निकल आवें तब माता के दूध के उपरांत सागूदाना वा पुराने चावल का भात दूध के साथ देना योग्य है, और जब सम्पूर्ण दांत निकल आवें तब माता का दूध बालक को न पिलाना चाहिये, यदि किसी कारण से माता के स्तन में दूध न हो वा ज्वरादि बीमारी रहती हों तो उसका दूध बालक को न पिलाना चाहिये, उस समय किसी अन्य स्त्री वा दाई का दूध पिलाना योग्य है, यदि इसकी सामर्थ न हो तो गाय वा बकरी के दूध को कि जिसमें थोड़ा पानी

पड़ा हो, दूध पिलाने वाली शीशी से पिलाना उचित है, जो विसातियों के पास आठ आने को मिलती है, और ज्यों २ बालक की उमर बढ़ती जाय त्यों २ पानी का भाग कम करते जायं, पानी इसलिये डालाजाता है कि दुग्ध पतला होकर शीघ्र पचजाय ।

प्रकट हो कि जब बच्चा छः या सात मास का होजाता है तो उसको संसारी भोजनों की आवश्यकता होती है इसलिये दाल भात रोटी आदि भी थोड़ा सा खिलाने की टेव डालें और पुराने चावलों का भात दूध के साथ बच्चों को खिलाने से बहुत लाभ होता है, बहुधा स्त्रियां अधिक खिलाने से मोटा होना जानती हैं यह भी मूर्खता की बात है क्योंकि बिना पचे पर भोजन कराने से उसकी स्वास्थ्य में अंतर पडजाता है तथा पेट निकल आता है कि जिससे वह देखने में भी बुरे जानपडते हैं इसलिये रात भर में तीन चार बार नियत समयों पर थोडा २ खिलाना योग्य है और यह भी स्मरण रहे कि जब तक बालक दश वर्ष का न होजाय तब तक बिना दूध के भोजन न कराना चाहिये ।

वस्त्र पहिनाने के विषय में

भारत की अनपढ़ी स्त्रियां बच्चे को होते ही शिर से पैर तक ऐसा ढांपती हैं कि जिसका कुछ ठीक नहीं, गर्मी के दिनों में रुई वा ऊन पश्मीना के टोपे पहिनाती हैं जिनसे हानि के सिवाय लाभ कुछ भी नहीं होता, हां फलालैन वा अन्य किसी कपडे से बांधदेना अच्छा है परन्तु कसकर न बांधना चाहिये क्योंकि अन्तडी का काम ठीक नहीं होता कि जिससे नाना प्रकार के रोग होजाते हैं और सदा एक मुलायम बारीक कपडे से ढांके रहना चाहिये कि जिससे मक्खी आदि कुछ क्लेश न देसकें, हवा का कुछ असर न

हो परन्तु नाक कान मुख नेत्र सदा खुले रहें, जब कपडे पेशाबादि से भीग जावें तो तुरन्त उतारदेना चाहिये, तथा उसके स्थान पर स्वच्छ बस्त्र पहिना देना योग्य है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि कपडे इतने ढीले न हों जो बालक के हाथ पावं हिलाने से फंस जायं वा ऐसे तंग भी न हों जो उनकी बाढ़ को रोकें, जाडे के दिनों में रुई या ऊन के बस्त्र पहिनाना चाहिये परन्तु गर्मी के दिनों में शिर को रुई वा ऊन पश्मीने की टोपी आदि से न ढापना चाहिये, बरन इन दिनों में बारीक सफेद कपड़े की टोपी पहिनाना योग्य है, पर नंगा रखना उचित नहीं, बस्त्रों को चौथे पाचवें दिन उतार कर अच्छे बस्त्र पहिनाना चाहिये क्योंकि स्वच्छता से परम सुख होते हैं, जाड़े के दिनों में बचे को पाजामा भी पहिना देना उचित है।

नींद

बचे और उसकी माता वा दाई को सदा नींद भर सोना उचित है क्योंकि उनको थकावट अधिक होती है इसलिये यदि वह अधिक न सोवेंगे तो दोनों को हानि होगी, सोते हुए बचों को दूध पिलाने या और किसी कारण से उठाना भला नहीं, जो वह जाग पड़े तो उठालेना योग्य है न कि चारपाई पर पडे रहने दें, इसके उपरांत दोनों को सायंकाल से सोरहना अच्छा है कि जिससे प्रातःकाल उठने का स्वभाव पडजावे, क्योंकि प्रातःकाल जागना भला है, इसके उपरांत चारपाई बहुत तनी हुई न हो तथा बिछौना नरम और स्वच्छ हो, और छोटे बचों को धरती वा तख्त पर न सुलावें, इस विषय में बहुधा वैद्यों का यह कथन है कि पहिले कुछ हफ़्तों में रात दिन सोने दें और जाग उठे तो उसको उठाकर दूध पिलादें जब कुछ बडा होजावे तो कुछ थोडासा जगावें जब कई महीने का होजाय तो दिन के सोने की टेव

को धीरे २ दूर करदें, कभी २ बच्चों को खाट या खटोले पर कि जिस पर स्वच्छ बिछौना बिछा हो उस पर उताना अर्थात् चित्त लिटा दिया करें, तब देखिये बच्चा कैसी किलोलें करता व हंस २ कर हाथ पावं चलाता है कि जिससे उसकी पीठ की रीढ़ व हाथ पावं बलवान होते हैं तथा भोजन पचजाता है, सोते हुए बच्चों को जगाने से अनेकान बीमारियों के उपरांत बच्चा सारे दिन रोरो कर काटता है इस कारण जहां वह सोता हो किसी प्रकार की चिल्लाहट न करनी चाहिये, अनेकान स्त्रियां सोते हुए बच्चे की मिठियां लेती हैं सो यह भी अनुचित है, बहुधा स्त्री सोने के अर्थ अफ़यून खिला देती हैं कि जिससे उनका स्वभाव विगड़ जाता है जिससे नाना प्रकार की हानि होती है तथा आधिक खिलाने से मरण भी होजाता है जैसा कि मेरा भाई मरगया कि जिसका मुझको अपनी माता ही पर अफ़सोस आता है, इस कारण हे प्यारी वहिनों अफ़यून खिलाने की टेव न छोडो।

हवा खिलाना

यह बात देखने में आती है कि जब बच्चा उत्पन्न होता है तो दिल तथा फेफडा अपना कार्य तुरन्त करने लगजाते हैं, शेष अपने २ समय पर काम करते हैं, अतः फेफडे की सहायता करनी आवश्यक है कि जिससे वह रुधिर को स्वच्छ कर दिल में पहुंचाता रहे कि जिससे सब शरीर का पालन होता है, फेफडे की सहायता केवल शुद्ध वायु के पहुंचाने से होती है, अतः प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल बच्चों को गोद में लेजाकर किसी स्वच्छ स्थान पर जहां निर्मल, उत्तम आरोग्यदायक वायु हो वहां टहलना चाहिये, यदि कोई पूछे कि कितने दिनों के बालकों को बाहर लेकर हवा खिलानी चाहिये तो यह बात देश काल तथा ऋतु से प्रकट होसकती है, हां गर्मी के

दिनों में चार पांच हफ्ते के बालक को घर से बाहर लेजाकर सडकों पर जहां मनुष्यों के झुंड न हों वायु सेवन कराना चाहिये, और जब चार पांच महीने का बालक होजावे तो निश्चय ही प्रति दिन स्वच्छ वस्त्र पहिनाकर अर्थात् हाथ पावं दाब कर गोद में या किसी छोटी सी गाडी में बिठलाकर पक्की सड़कों पर वा जहां कहीं सम धरातल हो हवा खिलानी चाहिये, इससे ही बालकों के शरीर आयु बुद्धि बल की वृद्धि होती है, अतः इस कार्य में कदापि ढील न करना चाहिये, यह भी देखिये कि बच्चा बाहर जाने में कैसा प्रसन्न होता है, और जब कुछ ताक़त आजावे तो घोडे पर सवार कसकर धीरे धीरे चलावे, एक या दो जन साथ रहें और वह पैदल चलने लगे तो उसकी इच्छानुसार पैदल हवा खिलावें, परन्तु यह भी विचार रखना योग्य है कि शरद ऋतु में शिर पावं छाती हांथ सब ढके रहें, बर्षा ऋतु में कोई वस्त्र न भीगने पावे गर्मियों के दिनों में जहां लूह न चलती हो वहां प्रातःकाल ही हवा खिलाना योग्य है।

दांत निकलना

प्रकट हो कि दांतों के निकलने के समय बच्चों को बड़ी २ कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं, अतः उनकी माताओं को निम्न लिखित चिन्हों से परीक्षा करके उपाय करना चाहिये कि जिससे क्लेश न हो—

(१) मुह से राल गिरती है। (२) मसूड़े गर्म और सुर्ख मालूम होते हैं। (३) बच्चा अपनी उंगलियों को चवाता है। (४) पियास के कारण बारम्बार दूध पीता परन्तु दर्द के कारण शीघ्र छोड़ देता है। (५) कै तथा दस्त भी आने लगते हैं। (६) बच्चा रोता है तथा गाल सुर्ख होजाते हैं।

जब ऐसी हालत हो तो उसी दिन से धीरे २ अन्न के भोजनों को न्यून करना उचित है, वा दूध अधिक कर दियाजावे कि उसका पालन दूध ही से होनेलगे, मसूड़ों पर शहद में लोन को मिलाकर दूसरे तीसरे दिन मलना चाहिये अथवा मुलेठी कुचल कर बालक के हाथ में देदेना उचित है कि जिसको वह चूसता रहे जिससे दर्द कम होजावे, यदि ऐसा करने पर भी दर्द की अधिकता हो तो फिर किसी बुद्धिमान डाकटर को बुलाकर मसूड़ों को चिरवा देना उचित है ।

दांत निकलने के दिनों में बालक को गर्म टोपी न पहिनाना चाहिये, दूध के दांत तीन-चार अथवा सात-आठ महीने में निकलने लगते हैं दो बर्ष में सब पूर्ण होजाते हैं, हमारे देश में दांत निकने के समय नाना प्रकार के रोग होजाने का कारण यह है कि इस देश से स्त्री शिक्षा उठगई हैं, जिससे दांत निकलने के समय बालकों का पूर्ण प्रवन्ध नहीं होता ।

पेट का विकार

यह भी स्मरण रहे कि जब बालक उत्पन्न होकर २४ घंटे तक मल मूत्र न करे तो तुरन्त चतुर वैद्य यानी हकीम अथवा डाकटर को अवश्य दिखलाना योग्य है ।

बालकों का मल जो आरोग्य रहते हैं पतला तथा हरा होता है, दुर्गंधि भी अधिक नहीं आती, यदि इसमें कुछ न्यूनाधिक हो तो शीघ्र डाक्टरादि को दिखलाना चाहिये लेकिन यह भी स्मरण रखना योग्य है कि भोजनों के खाने पीने से दुर्गंध आने लगती है ।

यदि बालक को अजीर्ण हो तो दस्तों की औषधि न दे वरन गुलाव को शहद में मिलाकर देने से आराम होजावेगा, जब कभी उत्तम दशा में बालक

को दस्त आने लगें तो वेल के गूदे में मस्तगी देना जरूर है, सदा इस बात को भी याद रक्खो कि कभी कब्ज न होने पावे अतः यही मुनासिब है कि दूसरे तीसरे दिन निम्न लिखित घुंटी देदिया करें।

पोदीना ४ रत्ती, सौंफ ४ रत्ती, सोंठ २ रत्ती, मुसब्बर २ रत्ती, अमलतास ४ रत्ती, पलासपापड़ा २ रत्ती, पित्तपापडा ४ रत्ती, काला नमक ४ रत्ती।

यह औषधि प्रत्येक ऋतु के लिये लाभ दायक है, परन्तु जब कोई मनुष्य घूटी लेने को जावे तो प्रत्येक दवा को अलग २ तोलकर देख भाल लेवे, यदि आप न जानता हो तो औरों को दिखलाले, क्योंकि पंसारी लोग कुछ की कुछ देदेते हैं क्योंकि इस घूटी की जमा थोडी मिलती है परेशानी अधिक होती है, अतः उस घूटी से कुछ लाभ नहीं होता, वरन उलटी हानि होती है।

शीतला

सम्पूर्ण बालकों के एक रोग होता है कि जिसके कारण सब शरीर पर छोटी २ फुन्सी या फफोले निकल आते हैं जिसको विस्फोटक तथा माता वा शीतला मसूरिका और मुसलमान लोग चेचक, तथा अंगरेज इस्मालपाक्स अथवा बंगदेश वासी बसंत कहते हैं, यह एक ऐसा दुष्ट रोग है कि जो इस में फंसता है वह मानों मृत्यु से संग्राम करता है, यदि इससे बच गया तो जन्म पाया परन्तु तो भी यादगार के लिये ऐसे चिन्ह छोड जाती है जो जीवन भर नहीं जाते, बहुधा अंग भंग होकर अन्धे लंगडे लूले बहिरे होजाते हैं कि जिसके प्रभाव से उनका जीना व्यर्थ होजाता है।

यह रोग गर्भाधान से बालक के शरीर में रहता है क्योंकि जब स्त्री रजस्वला नहीं होतीं और गर्भ रहकर रक्त बन्द होजाता है उस रक्त की गर्मी बालक के पेट में रहती है, जब वह पृथ्वी पर आता है तब समय पाकर अर्थात् विष दूषित वायु के होने पर अपना प्रकाश करता है, जिस प्रकार ऋतु के बदलने पर ज्वरादि रोग फैलते हैं, उसी प्रकार इस रोग का भी स्वभाव जानो, जहां एक को हुआ उसके हेल मेल से अन्य बालकों को भी होजाता है ।

इसे दूर करने के अर्थ पथ्य को ही औषधि माना है, वास्तव में पथ्य ऐसी ही वस्तु है, क्योंकि पथ्य के न होने से औषधि खाकर भी आरोग्यता नहीं होती, इसलिये प्रथम पथ्य फिर दवा।

वैद्यक के प्रसिद्ध ग्रन्थ लोलिम्बराज में लिखा है—

पथ्येसति गदार्तस्य किमौषधि निषेवणम् ।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधि निषेवणम् ॥

अर्थात् पथ्य करने वाले रोगार्ती पुरुषों को औषधि सेवन से क्या, उनका रोग पथ्य से ही विनष्ट होजाता है, इसी प्रकार पथ्य न करने वालों को औषधि सेवन करने से क्या, अपथ्य के कारण किसी औषधि से रोग नष्ट नहीं होता ।

प्रकट हो कि इसके दूर करने के अर्थ पथ्य के अतिरिक्त एक ऐसी युक्ति निकाली है कि जिससे इस रोग का भय बिलकुल जाता रहता, वरन होता ही नहीं, यदि हुआ भी तो नाम मात्र को ही समझना चाहिये, सच मुच वह युक्ति ही उसकी दवा है, क्योंकि दवा वह है जिसके करने से आरोग्यता हो, वह युक्ति गोथन शीतला का टीका लगाना है, जिसको

प्रथम पूर्विये कायस्थ लोग लगाते थे अब उसी युक्ति को हमारी सरकार ने जारी किया कि जिससे यथार्थ में लाभ होता है, परन्तु महान् शोक का कारण है कि बहुधा अज्ञानी जन अपने २ बालकों को इसके लगाने से छिपाते हैं, कोई २ शठ यह भी कहते हैं कि जिस बालक के टीका लगाते समय दूध निकलेगा उसको देवता का अवतार समझ कर मारडालेंगे। अतेव बच्चों के टीका अवश्य लगवाना चाहिये, जब टीका लगजावे तो नीचे लिखे हुए पथ्य पर चलने से शीघ्र लाभ होजाता है—

(१) जिस स्थान पर रोगी को रक्खा जावे वह हवादार तथा स्वच्छ हो। (२) चारपाई पर सफेद बिछौना बिछा हो जो मैले होने पर तुरन्त निकाल कर फेंक देना योग्य है। (३) बालक तथा माता को सफेद वा हरे वस्त्र धारण करना योग्य है, वहां कोई मनुष्य सुर्ख वस्त्र धारणकर अथवा पान खाकर वा कोई लाल चीज लेकर न जावे, न उसके सन्मुख ऐसी वस्तुओं को रक्खे, क्योंकि इन सब की चमक नेत्रों को हानि दायक है, इसके उपरांत जब तक रोगी को आराम नहो तबतक छौंकादि का ऐसा शब्द न हो जो बालक के कान तक जावे। (४) जो बालक माता का दूध पीता हो तो माताको पथ्य से रहना योग्य है।

नोट

प्रकट हो कि उपरोक्त विषय अत्यन्त ही लाभ दायक है, इस समय इस पर आंदोलन करने की आवश्यकता है, अतः हमने इस विषय को पूर्ण रूप से पूराकर पुस्तकाकार में प्रथक् प्रकाशित करादिया है, जिन सज्जनों को देखने की आवश्यकता हो ≡) भेजकर मंगालें।

कुमार और किशोर अवस्था

जब बालक के दूध के दांत निकल आवें वा बालक बोलने लगे तब सुन्दर वाणी से बड़े छोटे मान्य आदि के सम्भाषण करने बैठने उठने की रीति आदि की शिक्षा करनी चाहिये जिससे उनका सर्वत्र मान्य होता रहे, वृथा लड़ाई झगड़ा न करने पावें, इसके उपरांत मिट्टी धूल के खेलादि से भी वर्जित रहें, सदा प्रातःकाल उठाना, पाखाना पेशाब कराना, मुह हाथ धोना आदि भी बतलाया जावे।

प्रकट हो कि सन्तान एक उत्तम धरोहर परमेश्वर जगत् कर्त्ता की है, कि जिसके उत्तरदाता हम माता पिता हैं, और यह ऐसी धरोहर है कि जिसमें गुण विद्या आदि के सीखने की स्वाभाविक प्रकृति है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि सन्तान को हमारे पढ़ाने लिखाने की कुछ आवश्यकता नहीं, इसका उदाहरण रेल के एंजन के समान हैं, देखो उसमें चलने फिरने बोझ लेजाने की स्वाभाविकप्रकृति है पर जब तक उसकी कलों को घुमाया न जायगा तब तक वह बिलकुल निकम्मा निठल्ला रहेगा, यद्यपि सन्तान में स्वाभाविक शक्ति विद्या ग्रहण आदि की है तथापि जब तक माता पिता उनको भली भांति शिक्षा न करेंगे तब तक उनकी स्वाभाविक प्रकृति घड़ी के पुर्जों की भांति निष्प्रयोजन तथा निष्फल है, इसके उपरांत सन्तान अति ही प्यारी वस्तु है कि जिससे बढ़कर इस संसार में कोई पदार्थ नहीं, फिर भला कैसे शोक का स्थान है कि ऐसी अमूल्य सन्तान को विद्या रूपी रत्न से जटित न करें, कि जिसके कारण उनको नाना क्लेश भोगने पड़ें तथा माता पिता के नाम पर भी धब्बा आवे, अतः माता पिता को चाहिये कि सन्तान ५ वर्ष की होजावे तब प्रथम देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावे फिर अन्य देशीय भाषाओं को भी सिखलावे, परन्तु प्रथम अन्य देशीय भाषा न

सिखलाना चाहिये, क्योंकि अपनी मातृभाषा का निरादर करना अत्यन्त मूर्खता की बात है, इसके प्रथम सीखने से अन्य भाषाओं का सीखना अत्यन्त सुगम होजाता है, इस प्रथा के न रहने से देश भाषा की प्रतिष्ठा प्रति दिन कम होती जाती है, दूसरी भाषा के शब्द प्रत्येक स्थानों पर बोलने की प्रकृति होजाती है, मातृभाषा के शब्दों के बोलने में लज्जा आती है, जैसा कि बहुधा देशी भ्रातृगण नमस्ते नमस्कार वा राम २ आदि के स्थान में सलाम बंदगी तस्लीमात गुडमार्निंग बोलना अपनी प्रतिष्ठा का कारण समझते हैं, तथा अपनी सन्तानों को भी ऐसा ही सिखलाते हैं, इसी प्रकार विद्या आरम्भ संस्कार का नाम मकतब होना या बिस्मल्लाह होना बोलते हैं ।

देशीय बन्धुवर्गों की देखा देखी हमारे पत्रापांडे भी बड़े हर्ष के साथ कहते हैं कि आज हमारे यजमान के लड़के की बिस्मल्लाह है, धन्य है इनकी बुद्धि को कि फ़ारसी में अलिफ़ के नाम लट्ठा तक नहीं जानते परन्तु खुशामद तथा योग्यता जतलाने के अर्थ बिना फ़ारसी बोले कल नहीं पड़ती, इसी कारण हमारी संस्कृत विद्या का भारत से लोप होगया, हमारी संतानों को उक्त विद्या की उत्तमता का निश्चय नहीं रहा कि जिससे धर्म में भी नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होगये हैं ।

हे प्यारे सुजनों पहिले संस्कृत विद्या का पढ़ाना योग्य है, फिर अन्य देशीय भाषा पढ़ाना चाहिये, देखो अंगरेज़ प्रथम अंगरेज़ी, मुसलमान अरबी फ़ारसी पढा फिर अन्य विद्याओं को सिखाते हैं, हमारे देशीय बन्धुगण विपरीत अर्थात् प्रथम अपनी घर की विद्या को जो सब विद्याओं में शिरोमणि है, त्यागन कर अन्य विद्याओं को सिखाते हैं कि जिससे उनको ओम् के स्थान पर बिस्मल्लाह रहमान उल्लरहीम तथा ईश्वर के स्थान पर खुदा गाड इत्यादि कहने का स्वभाव पड़जाता है, इसके अनंतर संस्कृत अथवा देवनागरी

के न जानने से अपने धर्म को भी पानी देदेते हैं, अर्थात् बहुधा मुसलमान वा ईसाई होजाते हैं, तथा जो इधर उधर के जाने से बच रहते हैं उनके आचरण वेद आदि सत्य शास्त्रों के विरुद्ध रहते हैं ।

प्यारे बन्धुगणों संस्कृत विद्या की ओर ध्यान दो जो सब विद्याओं का कोष है, यह विद्या सृष्टि के आरम्भ से प्रचार हुई इसी में समस्त भूमण्डल के अर्थ परमेश्वर ने सकल विद्याओं का उपदेश किया इसी कारण इसमें प्रत्येक विद्या यथावत् रूप से पाई जाती है, इसका न्याय शास्त्र समस्त देशों के न्याय शास्त्र से बढ़कर है, वैद्यक शास्त्र भी अद्वितीय है देखो यूनान वालों ने इस विद्या को अपनी भाषा में उल्था कर कैसा नाम पाया, व्याकरण ऐसा उत्तम है कि जिसकी प्रशंसा सम्पूर्ण जगत के विद्वान् करते हैं, इसी प्रकार ज्योतिष खगोल गान शिल्प तत्वविद्या आत्मविद्या आदि इसमें ऐसी २ हैं कि जिनके पारावार का कोई वर्णन नहीं करसकता, सच तो यह है कि इस विद्या के शिरोमणि होने में बहुधा विद्वानों के बचन पायेजाते हैं, यथा इसी सृष्टि के सृजनहार परमेश्वर का प्रतिपादन करते हैं, उसी भांति सम्पूर्ण ज्ञानी महात्मा विद्वान् योग्य इस विद्या को उत्तमता लालित्यता तथा श्रेष्ठता योग्यता का दम भरते हैं तथा इसी विद्या को संपूर्ण विद्याओं का कोष बतलाते हैं ।

अन्य देशीय लोग इस समय इसकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं, देखिये जर्मनी में कैसा चर्चा है कि जहां वेदों के खण्ड प्रत्येक के पास रहते हैं, ऐसे ही इंगलेंड में मोक्षमूलर इसी विद्या में अद्वितीय प्रसिद्ध होरहे हैं, निदान जितनी विद्या इस समय अन्य भाषाओं में दीख पड़ती हैं सब इसी से उल्था हुई हैं, डाक्टर हण्टर ने अपनी तारीख में लिखा है कि यह सक भाषाओं की मा है, अर्थात् सब भाषा इसी से उत्पन्न हैं, शोक का स्थान है कि इस

परमेश्वरीय विद्या को कि जिससे संपूर्ण विद्या हैं, जिसकी अन्य देशीय जन भी ऐसी प्रतिष्ठा और प्रशन्सा करते हैं, हमारे स्वदेशी भाई उसके पठन पाठन की ओर किञ्चित ध्यान न दें, देखिये संस्कृत विद्या किस भांति से रुदन करती है, जिसको सुन अथवा पढ़ कौन ऐसा मनुष्य होगा कि जिसके नेत्रों से आंसुओं की धारा न चले—

संस्कृत विलाप

॥ दोहा ॥

अरे हाय मम ओर अब, कोऊ हेरत नाहिं ।
रह्यो एक दिन मान मम, उच्च सिंहासन माहिं ॥
राजा अरु महराज गण, मम सेवक को देखि ।
रत्न सिंहासन छांडि कर, उठि के नमत विशेखि ॥
बहु सम्पति तृण सम गिनें, जो मम रसिक प्रवीन ।
मेरो मधुर प्रलाप करि, रहत ब्रह्म सुख लीन ॥
ग्राम ग्राम स्थान प्रति, मेरोहि मान अपार ।
मानत सब विद्यान में, मोहीं को भंडार ॥
वेद शास्त्र न्यायादि जे, आवत मेरोहि हेत ।
मान प्रतिष्ठादिक सकल, मम सेवहि से लेत ॥
देखहु आंख उठाय के, अन्य देश के लोग ।
निज भाषा में मोहिं करि, भोगत हैं बहु भोग ॥
जटित रहे बहु रत्न से, जे मम चरण सरोज ।
ते अब कंटक पंक महं, लिथड़ पिथड़ लखि रोज ॥
उपजत भारत हृदय नाहिं, दया नेकु मम ओर ।
याते भोगत दुःख बहु, है यह पाप कठोर ॥
सब दुःखन को सहत हौं, घूमत द्वार दुरार ।
उर्दू अङ्गरेजी निकट, नहिं कुछ मान हमार ॥

ऊपर की विद्यान में, धन व्यय करत अनेक ।
मोहिं क्षुधित लखि देत नहिं, तुष मुट्ठी हू एक ॥
हा ! अब तो पग उठत नहिं, मारग चल्यो न जाय ।
कृतघन भारत के हिये, दया न उपजत हाय ॥
ना जानौं मम भाग्य महं, काह लिख्यो करतार ।
विक्रम भोजादिक गये, करत जो मान हमार ॥
सच मुच मेरी भूल है, जाती जो उन साथ ।
क्यों यह दुर्गति भोगती, निर्दय भारत हाथ ॥
जरी न उन संग अग्नि महं, गई न तिनके लोक ।
भोग्यो दुःख अनेक विधि, पछिताई करि शोक ॥
हे भारत गण चेतिये, अबहुं लखिय मम ओर ।
नाहित अब मैं जाति हौं, यत्न न चलिहि बहोर ॥

प्यारे सुजनों जब हमारी संस्कृत की यह दशा है तो विचारी देवनागरी के दुखों को कौन पूछता हैं, जैसा कि पंडित गंगाराम ने कहा है—

सवैया

जग जाहिर काव्य शिरोमणि से अब हिन्द के मानी विलाय गये ।
यश आगरी नागरी के विरवा सुख सींचत ही मुरझाय गये ॥
नागरी धीरज कैसे धरे विधना बुध भाल भुलाय गये ।
गुण ग्राहक भारत वासिन के ऋषिराज जू हाय हिराय गये ॥

उर्दू

उर्दू भाषा में एक बड़ी हानि यह है कि उर्दू अक्षरों में जैसा लिखा जाता है वैसा ठीक २ पढ़ा नहीं जाता किन्तु लिखा कुछ जाता और पढ़ा कुछ जाता है, नाम गावं ठावं तो कभी किसी से ठीक २ पढ़े ही नहीं जाते, भला

कोई निरी उर्दू जानने वाला ऐसा मनुष्य भी है जो संस्कृत और अंगरेजी शब्द उर्दू अक्षरों में लिखे हुए ठीक २ पढदे तथा उच्चारण करदे, कोई नहीं एक भी नहीं, देवनागरी में जैसा लिखा जाता है वैसाही पढ़ाजाता है अर्थात् लिखने पढ़ने में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता, इसका कारण यह हैं कि देवनागरी अक्षरों में १६ स्वर होते हैं, और उर्दू अक्षरों में केवल तीन स्वर हैं, जो १६ स्वर का काम देते हैं, इस कारण एक २ स्वर कई २ प्रकार से उच्चारण होता है, उर्दू की लिखावट नुक़तों पर है, परन्तु सरकारी अदालतों में नुक़तें बहुत कम देदे हैं और बहुत से अक्षर एक ही प्रकार के होते हैं, और बहुत से अक्षरों का उच्चारण भी एक ही प्रकार का होता है, जिस प्रकार उर्दू में स्वर थोडे हैं उसी प्रकार व्यंजन भी बहुत थोडे हैं, इसके उपरांत दो २ तीन २ अक्षर मिलकर एक अक्षर बनता है, इस कारण बहुधा अदालतों में कुछ का कुछ होजाने पर बडी २ कठिनाइयां होती हैं।

इसके उपरांत उर्दू और फ़ारसी में बहुधा किताबें इश्कबाज़ी और माशूक के ख़तो ख़ाल के प्रशंसा में, और बहुतसी नाचने गाने में और बहुधा दुराचार और व्यभिचारियों के किस्से कहानियों में और अनेकान तावीज गंडे मन्त्र मारण मोहन बशीकरण उच्चाटन में हैं, जैसा इंज्जत इश्क फ़रेद इश्क, बहार इश्क, मसनवी ज़ुलेख़ा, मसनवी ग़नीमत, बहारदानिश, इन्दरसभा मदारीलाल और अमानत, लैलामजनू, शीरीफरहाद, गुल्जार नसीम, मसनवी मीरहसन, फिसाने अजायब, नैरंगतिलस्म, इन्द्रजाल, नक्शसुलेमानी, लज्जतुलनिसा तथा सब दीवानात अथवा बासोख्त, बारहमासे इत्यादि पुस्तकें हैं, जिनमें से बदुधा तो मियांजी शौक़िया पढ़ाते हैं, ज़ुलेखा, गनीमत, बहारदानिश का तो क्या कहना यह तो मकतबों में तालीम का कोर्स है कि जिनके पढने से अपने आप उन बालकों तथा नव युवकों में दुराचार अथवा व्य-

भिचारादि अपगुण उत्पन्न होजाते हैं, इस पर तुर्रा यह है कि मियां जी ऐसी ऐसी किताबों के हरएक मिसरे और फिकरे को बड़े हास्य भाव से समझाते हैं, मानों इश्क की सूरत खींच कर दिल पर नक्श करदेते हैं कि जिसका यह फल प्रत्यक्ष होरहा है कि सम्पूर्ण भारत वर्ष के नौजवानों में लौंडेबाजी, रंडीबाजी, शराबखोरी, गोश्तखोरी, स्त्रियों के समान बदन का सिंहार करना नाज़ो-अदा से चलना, व बदन का फड़काना, नाक भौंहों से कटाक्ष करना, नाचना गाना आदि अपगुण और दुर्व्यसन उत्पन्न होगये कि जिनसे भारत का सत्यानाश होगया और होरहा है।

हे प्यारे सुजनों प्रथम अपने बालकों को देवनागरी अच्छे प्रकार से पढाओ परन्तु इन्द्रजाल, इन्द्रसभा, बारहमासे आदि जो बुद्धि बल धर्मनाशक पुस्तकें भाषा में भी होगई हैं न दिखलानी चाहिये वरन ऐसी २ खराब पुस्तकों के अपगुण सुनादेना योग्य है कि जिससे उनकी रुचि स्वयं ऐसी अनुचित पुस्तकों के देखने की नहो, फिर यदि उर्दू सिखलाना हो तो करीमा, खालकबारी, आमदनामा, दस्तूर सिबियां, मसदर फ़यूज, गुलिस्तां, बोस्तां, आदि पढाओ और उपरोक्त प्रकार की पुस्तकों के पास न जाने दो, हे देश के शुभचिन्तको अब कृपा कर आगे को ऐसी पुस्तकों का बनाना छोड़ दो कि जिससे देश का देश साफ हुआजाता है, कि जिसका पाप आप के सिर चढ़ता है कि जिसके प्रभाव से आप को जन्म जन्मांतर में नाना क्लेश भोगने पड़ेंगे।

किञ्चित् ध्यान देकर सुनिये यदि आप को अपना नाम चिरायु करना है तो पूर्वोक्त ऋषि मुनि महात्मादि सत्पुरुषों की भांति देशोपकारक विषयों में अपनी लेखनी को दौड़ाओ जैसा कि इस समय में भी बहुधा सुजन ग्रंथ रच कर प्रचार कररहे हैं।

इसके अतिरिक्त पादरी अर्थात् मिशन स्कूलों में भी बालक या बालिकाओं को शिक्षा के निमित्त न भेजना चाहिये क्योंकि वे उनके धर्म कर्म ईसा को खुदा का बेटा मान उसके वसीले से स्वर्ग का जाना, उसका कुआरी कन्या से पैदा होना, और सूली देने के तीन दिन पीछे क़बर से उठकर सातवें दिन आसमान पर जाना, गुनहगार का ईसा पर विश्वास लाने ही से गुनाहों से निजात पाना, मुर्दे को मोजिज़े से जिलाना आंखें देना, इत्यादि ऐसी महा अनर्थ और मिथ्या बातों को नित्यप्रति सुनाते हैं, हमारे प्राचीन सत्य ग्रंथों अथवा महात्माओं में अनेकान दूषण बताते हैं, जैसा कि वेद को ५००० वा ६००० वर्ष का बना हुआ कहना, उसको ईश्वर कृत न मानना, छिनाला शराब का पीना हिंसा करना इत्यादि बातें वेद में बतलाते हैं, उसके उपरांत राम कृष्ण आदि महापुरुषों और महात्माओं की नाना भांति से निन्दा करते हैं ऐसे विषयों में सैकड़ों किताबें छपवाकर प्रकाशित की हैं और हर रविवार को बालकों को स्कूलों में बुलाकर नाना भांति के भजन गाकर सुनाते हैं, बाजे बजाते तथा उनको किताबें देते हैं अन्त को दुआ में शामिल करलेते हैं जिसको संडे स्कूल कहते हैं क्योंकि क्रिश्चियनों के मतानुसार परमेश्वर ने छः दिन में सब संसार के पदार्थों को रचा और सातवें दिन विश्राम किया अर्थात् थकावट को दूर किया यही कारण है कि हम भी उस दिन आराम करते और दुआ मांगते हैं, तत्पश्चात् ख्रीष्ट मत को सब मतों से श्रेष्ठ बतलाते हैं, प्रत्येक प्रकार से उन ही आचारों को उन बालक और बालिकाओं में प्रवेश करने का उपाय करते हैं, अर्थात् क्रिश्चियनों की भांति चलना फिरना कोट पतलून पहिनना, गुडमार्निंग करने आदि का उपदेश करते हैं।

प्यारे पाठकगण अब विचारिये कि इन बातों का भारत पर कैसा

असर हुआ है कि जिससे हजारों हमारे तुम्हारे भाई ईसाई होगये क्योंकि सत्संग का अवश्य ही प्रभाव होता है, यथा—

संगत ही गुण ऊपजै, संगत ही गुण जाय ।
घांस फांस औ मीशिरी, एकै भाव दिकाय ॥

बहुधा पादरी स्कूलों में या अन्यत्र देशी मिसें गाना गाती तथा अंगरेज़ी बाजा बजाती हैं, ऐसे स्थानों पर बहुत भीड़ इकट्ठी होजाती है उनमें से कोई २ उनकी मीठी आवाज़ सुनकर ऐसे मोहित होजाते हैं कि प्रति दिन ईसाइयों के पास आते जाते तथा उनकी बात चीत सुनते हैं, तब वे लोग नाना प्रकार से भरोसा देते हैं, इधर हमारे भाई बिलकुल बेसुध रहते हैं उधर वह सब प्रकार से मुड़जाते अथात् कृष्टान होजाते हैं, और मिस के साथ हाथ में हाथ मिलाये हुए गली और बाज़ारों में घूमते अथवा होटल में डबल रोटी बिसकुट खाते मानो दूसरे पादरी बनजाते हैं।

बहुधा ग़रीब लडकों को कि जिनको शाम तक रोटी मुश्किल से मिलती है उनका वज़ीफ़ा मिशन में करदेते हैं, कि जिससे वह लडके मदर्सह के समय के अतिरिक्त भी पादरी साहब के बंगले पर आते जाते हैं, तब उनको समय समय पर थोड़ा २ उपदेश तथा नौकरी आदि का लालच दिखलाते जाते हैं कि जिसके कारण वह कृष्टान होजाते हैं।

प्यारे सुजनों जो बालक उनके फन्दे से बचजाते हैं उनकी चेष्टा अवश्य पलट जाती है, अर्थात् प्रत्यक्ष में ईसाई नहीं होते परन्तु मन से आचार वही होजाते हैं, अपने वैदिक धर्म को तुच्छ जानने लगते तथा संध्यादि का नाम भी नहीं लेते, यज्ञोपवीत कराना मिथ्या जानने तथा वेदों को मनुष्य कृत मानने के अनन्तर मांसादि खाने में अति प्रसन्न होते हैं, मेज़ कुर्सी लगा

कर कोट पतलून बूट पहन भोजन करना, चुरट पीना इत्यादि बातों से उनके मन का स्वरूप ही पलट जाता है।

इसके अतिरिक्त बड़े २ नगरों में ईसाई मेमें स्त्रियों में पढ़ाने, तथा मोजे, गुलूबन्द आदि बनाना सिखलाने के अर्थ प्रतिष्ठित २ गृहस्थों के घर में जाती हैं और वहां जाकर प्रत्येक प्रकार से अपना दिली मतलब सिद्ध करने के निमित्त नाना प्रकार के जाल फैलाती हैं, विशेष कर विधवाओं के चित्तों को हरती अर्थात् ईसाइन बनालेती हैं, इसलिये हे सुजनों इन सब बातों को हानि कारक समझ बन्द करदेना योग्य है।

तदुपरांत उनको बहुधा ऐसी २ बातें भी सुनाते रहो, कि जिनसे संतान किसी धूर्त्त की बातों में न फंसजावे।

आभूषण पहिनाना

न उनको चांदी सोने के आभूषण पहनाना चाहिये, वरन उनकी आत्मा को विद्यादि गुणों से भूषित करना योग्य है कि जिससे उनको समस्त आयु नाना प्रकार के सुख चैन आनन्द मिलते रहें, तत्पश्चात् इन आभूषणों के धारण करने से अभिमानादि दोष उत्पन्न होजाते हैं कि जिससे बालक गुण ग्रहण करने में मन नहीं लगाते कि जिसके कारण समस्त आयु नाना प्रकार के क्लेश भोगने पड़ते हैं, इसके उपरांत लालची मनुष्य बहुधा बालकों को मारडालते हैं, जिसके कारण अनेक घरानों के दीपक बुझजाते हैं, तथा अपनी प्यारी सन्तानों के लिये हाथ मलते अथवा कर्म ठोकते रह-जाते हैं, यह सब बातें प्रत्यक्ष में देखते दुःख सहते हैं, परन्तु शोक तो इस बात का है कि बिना आभूषण पहिनाने के कल नहीं पड़ती,

हालां कि हमारी गवर्नमेंट नाना भांति से शिक्षा करती है, परन्तु हमारे देश भाइयों के मन में शेखी का भूत ऐसा प्रवेश हुआ है कि इन सब बातों के क्लेश होने पर भी नहीं मानते, सो हे सुजनों इस बुरी रीति को शीघ्र दूर करदो कुछ साहूकारी या बडप्पन दो चार दस बीस पचास रुपये के आभूष धारण करने से ही नहीं होता, फिर कौन सा लाभ आभूषणों के धारण करने का है, कि जिसके बिना आप को कल नहीं पड़ती, इन सब के अतिरिक्त कलाई तथा पिण्डलियां बलयुक्त नहीं रहतीं, अर्थात् पतली पड़जाती हैं, जो शोभा को भी कम करदेती हैं।

उपरोक्त हानियों के कारण अन्य देशी लोग अपने बालकों को सोने चांदी के आभूषणों से भूषित नहीं करते, क्या वह सब कंगाल हैं, अथवा उनको पेट भर रोटी नहीं मिलती, देखलो यहां अंगरेज जो हजारों की तनखाह पाते तथा हजारों ही खर्च करते हैं, परन्तु भूषणों का नाम तक नहीं लेते, हां अपनी सन्तानों को विद्या आदि सद्गुणों से अच्छे प्रकार भूषित करते हैं, कि जिसके कारण नाना प्रकार के सुखों को भोगते हैं, अतः यह सब बातें जानकर सोने चांदी के आभूषणों का धारण कराना त्याग दो कि जिसमें नाना प्रकार की हानि है, मुख्य लाड़ यही है कि उनको विद्या आदि गुणों से भूषित कीजिये कि जिससे इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द प्राप्त हो।

जूआ खेलना

जुआ खेलना वा लाल मुर्गा आदि का दाव लगाकर तथा शतरञ्ज गंजीफा चौसर आदि खेलना भी भला नहीं, क्योंकि जुआ की हार और जीत दोनों

प्यारी होती हैं—जब मनुष्य जीतता है तो लालच में आकर खेलता ही रहता है, यदि हारगया तो जीतने की आशा पर घरबार बोलकर चोरी आदि बुरे काम करने लगजाता है कि जिसके कारण यह जुआ नाना प्रकार के दोष उत्पन्न करता है, देखो पूर्व काल में भी जुआ अर्थात् ताश पत्ते आदि खेलने ही के कारण राजा नल और दमयन्ती को बनवास हुआ, और जुए ने ही युधिष्ठिरादि पांडवों को बारह वर्ष बन में अकेला फिरा, एक एक दाने को तरसाया, सब चैन आराम को छुड़ाया, जब इस पर भी न रहा गया तब अन्त को युद्ध हुआ जिसके कारण भारत का सत्यानाश होगया, जुआरियों की दशा तो प्रत्यक्ष प्रकट है, कि उनकी क्या २ दुर्दशा होरही है, तिस पर जुआरी की बात पर कोई भरोसा नहीं करता, जब उनकी हार होती है तो एक रुपये का माल दो आने में देकर नंग बनजाते हैं कि जिसके कारण भूखों मरने लगते तब चोरी आदि दुष्कर्म करते हैं कि जिसके कारण कारागार भोगते हैं, बदमाशी का तमगा मिलता तथा बाप दादे का नाम डूबता है।

हे पुत्रो ऐसे कर्मों को तुम कदापि न करो, हमारे देश में इस बुरे कर्म को दिवाली के दिन सब स्त्री पुरुष बालक बालिका बिना रोक टोक के अच्छे प्रकार करते हैं, वाह धन्य है इन भारत वासियों को कि ऐसे बुरे कर्म को त्योहार के दिन करते हैं कि जिससे यह बुरा कर्म पीढ़ी दर पीढ़ी चला आता है, और एक दिन सब जुआरी बनजाते हैं, कहते हैं कि कौरव पांडव खेले थे, हाय क्याही आश्चर्य्य की बात है कि उन पांडव और कौरव के अन्तिम फल पर दृष्टि नहीं डालते कि जिसको मैंने ऊपर वर्णन किया अर्थात् राज्य पाट गया, धन नष्ट हुआ बन २ मारे २ फिरे, अन्त को दोनों में लड़ाई हुई, लाखों महात्मा ज्ञानी मारे गये कि जिससे देश का नाश होगया, अतेव

जो ऐसा करेगा उसकी यही दुर्दशा होगी, अतः प्यारे गृहस्थियो यह बुरे कर्म कदापि न करो और सदा अपनी सन्तान को भी शिक्षा करते रहो, इस विषय में मनु जी ने लिखा है—

द्यूत कर्म व समाह्वय इनको राजा अपने राज्य में न होनेदे, क्योंकि यह दोनों दोष राज्य का नाश करने वाले हैं।

प्राण रहित पासा आदि से दाव लगा के क्रीड़ा करना "द्यूत" कहाता है, प्राण रहित भेडा भैंसा घोड़ा लाल मुर्गा आदि से दाव लगाकर क्रीड़ा करना "समाह्वय". कहाता है।

बड़ा बैर करने वाला द्यूत है, यह पूर्व काल में देखा गया, अतः बुद्धिमान पुरुष हंसी के अर्थ भी इसका सेवन न करें।

इनके सिवाय शतरंज चौसर गंजीफा आदि में समय मिथ्या जाता है और धर्म शास्त्रानुसार भी दोष भागी बनना पडता है, इस कारण इनको भी कदापि न करे और न अपनी सन्तान को करने देवे।

पक्षी आदि पालना

बटेर, तीतर, बुलबुल, तूती, नौला, बन्दर, खरगोश, हरण, सारस, मोर, तोता, कबूतर आदि पक्षियों को न पालना चाहिये, जिनसे किसी प्रकार का लाभ नहीं होता वरन धन और समय व्यर्थ जाने के उपरांत इन के रहने से वायु बिगड़ जाती है और मकान अशुद्ध रहता है, जिससे नाना रोग होजाते हैं, ऐसे ही मेढ़ा, मूसा, लाल, मुर्गादि की लड़ाई को जानना चाहिये, मोहचंग बजाने से एक तरफ के मूछ के बाल उड़जाते हैं और पतंग उडाने से लड़कों के चोट आजाती है बहुधा गिरकर मर भी जाते हैं, कभी २

लड़ाई होजाती है, इसी भांति चकई लेटुआ आदि के फिराने को जानना चाहिये।

प्यारे सज्जनों इन बातों के कारण लडके खिलाड़ी होजाते हैं, तथा नीच लोगों या बुरी संगत वाले पुरुषों में रहने से नाना प्रकार के अवगुण सीख जाते हैं, घरों में चोरी करने लगते हैं, माता पिता का सामना कर थोडे दिनों में निडर बनजाते हैं जिससे उनको विद्या आना कठिन होजाता है।

[३—ब्रह्मचर्य]

वीर्य्य रक्षा और विद्याध्ययन का समय

प्रिय सज्जन पुरुषो "ब्रह्मणे वेदादि विद्यायै चर्य्यते इति ब्रह्मचर्य्यम्" अर्थात् "ब्रह्म" वेद विद्या को कहते है इसलिये जो उसके सीखने का व्रत किया जाता है उसको "ब्रह्मचर्य्य" तथा उस व्रत के पूर्ण करनेवाले को "ब्रह्मचारी" कहते हैं, ऐसा ही सनतसुजान मुनि ने महाभारत उद्योग पर्व में कहा है।

यजुर्वेद अ० ११ मं० ३५ में लिखा है कि विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जगत में दो कर्म निरंतर करे प्रथम ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोग रहित बल से युक्त पूर्ण अवस्था वाला, दूसरे विद्या तथा क्रिया की कुशलता से आत्मा का बल अच्छे प्रकार से साधे कि जिससे सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त होकर सब काल में आनन्द भोगें—

सीद होतः स्वउ लोक चिकित्वान्त्सादया यज्ञꣳ सुकृतस्य
योनौ देवा वीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयोधाः॥

अथर्ववेद का० ११ अनु० ३ व १५ में लिखा है कि सब जीवों के प्राणों की रक्षा करनेवाला मुख्य ब्रह्मचर्य्य व्रत है इसी से दुःखों की निवृत्ति होती है—

पृथक सर्वे प्रजापत्याः प्राणानात्मसु विभ्रति ।
तान्त्सर्वान्ब्रह्म रक्षंति ब्रह्मचारिण्य भृत्तम ॥

ऐसा ही शतपथ का० ११ प्र० ३ वा० क० २ में व्यास जी ने कहा है, कपिल मुनि का वाक्य है कि इसी के बल से मनुष्य ऋषि लोक को जाता है, सनतसुजात का बचन है कि ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वालों को मोक्ष प्राप्त होती है, ऐसा ही मनु जी महाराज ने भी कहा है ।

प्रश्नोपनिषद में लिखा है कि जो मनुष्य बाल्यावस्था से ब्रह्मचारी रहकर तपस्या करता है उसको इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान होजाता है, ऐसेही श्रीकृष्ण महाराज ने गीता के ५ अध्याय के २८ श्लोक में लिखा हे कि जो मनुष्य मन बुद्धि से जितेन्द्री होते हें वही जीवन्मुक्त हैं ।

भीष्मपितामह ने कहा है कि ब्रह्मचारी को सब लोकों की गति होजाती है, शुकदेव जीने राजा जनक से कहा है कि जिसने ब्रह्मचर्य आश्रम में चित्त की शुद्धि की है उसी को अन्य आश्रमों में आनन्द मिलता है, छांदोग्य उपनिषद में लिखा है कि जिस कर्म को कर्मकांडी लोग यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, जिसको इष्ट कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, जो वेदोक्त कर्मों को करना चाहें वह भी ब्रह्मचर्य्य है, मौन भी इसी को कहते हैं, पातंजलि योगसूत्र में लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य से वीर्य लाभ होता है—

"ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्य लाभः"

मान्यवरो इसी ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य देवता तथा मुनि होते हैं, यही शरीर का उत्तम तप है, यही अकाल मृत्यु को जीतता है, इसी कारण श्रीकृष्ण महाराज ने संजय से कहा है कि इन्द्र ने देवताओं में उत्तम होने के अर्थ ब्रह्मचर्य व्रत किया था, देखो गौतम स्मृति में लिखा है कि बिना ब्रह्मचर्य के आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, श्री, धनादि का नाश होजाता है जैसा कि—

आयुस्तेजो बलं वीर्य्यं प्रज्ञा श्रीश्च महायशः ।
पुण्यं च मत्प्रियत्वंच हन्यतेऽब्रह्म चर्य्यया ॥ .

अमृतसिद्ध नामक ग्रंथ में लिखा है कि जो ब्रह्मचारी नहीं है उसको कभी सिद्धि नहीं होती वह सदा जन्म मरणादि क्लेशों को भोगता रहता हैं—

असिद्धं तं विजानीय यान्नरब्रह्म चारिणम् ।
जरा ,मरण संकीर्णं सर्व क्लेश समाश्रयन् ॥

इसके उपरांत यह भी लिखा हे कि जिस पुरुष के इन्द्रय द्वारा बीर्य चलायमान रहता है उसका चित्त भी सदा चलायमान रहता है—

विन्दुश्चलति यस्यांगे चित्तं तस्यैव चंचलम् ।

चरक से प्रकट होता हे कि पूर्व ऋषि गण इसी रसायन का सेवन कर अपनी आयु को बढ़ाते थे, इसीलिये उन ऋषियों ने वेदानुकूल मनुष्य मात्र के लिये यही उपदेश किया कि यदि तुम को आयु बढ़ाना हे तो इसी ब्रह्मचर्य का सेवन करो, जेसा कि चर० चि० अ० १ पाद १ में लिखा है—

ब्राह्मं तपो ब्रह्मचर्य्यं चेरुश्चात्यन्त निश्चयाः ।
रसायन मिदं ब्राह्म मायुष्कामः प्रयोजयेत् ॥

प्रियवरो पूर्ण आयु तथा कल्याण का दाता निरोग प्रदान करनेवाले

मन को प्रफुल्लित रखने वाला सब पुन्यों में उत्तम ब्रह्मचर्य ही है, जैसा कि चरक में लिखा है—

पुण्य तम मायुः प्रकर्ष करं जराव्याधि प्रशमनं
ऊर्जस्करममृतं शिवं शरण्यमुदात्तं मतः
श्रोतु मर्हथो पधारयितुम् प्रकाशयितुञ्च ।
प्रज्ञानुग्रहार्थं मार्षं ब्रह्मचर्य्यम् ॥

सच पूछो तो शरीर में सब खेल धातु अर्थात् मनी रूपी राजा के हैं, जब इसकी उपरोक्त प्रकार से रक्षा नहीं होती फिर भला किस प्रकार शरीर रूपी वृक्ष में धर्म काम मोक्षादि फल लगसकते हैं—कदापि नहीं, जिस प्रकार जब सेना का राजा भागजाता है तब उसकी सर्व प्रकार से दुर्दशा होती है, उसी भांति नाक, कान, हाथ, पांव, नेत्र, त्वचा, लिंग, गुदा, जीभ, वाणी—इन दस रिसालों की शरीर रूपी सेना से जब वीर्य रूपी राजा निकल जाता है तो यह सब रिसाले जिधर जिसकी इच्छा होती है चलेजाते हैं, अर्थात् नाक कान नेत्र अपना कार्य करने के योग्य नहीं रहते, फिर भला बल पौरुष पराक्रम धैर्य ज्ञान आदि सुख मिलसकते हैं—कदापि नहीं !

तो वर्तमान समय में ब्रह्मचारी के माता पिता आचार्य कुछ सुध नहीं लेते वरन नाम तक भी नहीं जानते कि ब्रह्मचारी किसको कहते हैं और न वह उनके लाभों को यथावत जानते हैं क्योंकि वह आप भी ब्रह्मचारी नहीं बने, न सत्य शास्त्रों का पठन किया, न उनको वर्तमान समय के नाम मात्र के आचार्यों ने समझाया वरन उक्त तीनों न्यून अवस्था में विवाह होना उत्तम जानते हैं, वह कहते हैं कि आज हमारे ललुआ के मुनुआ होजावे तो हमारे नेत्रों को आनन्द मिले और चैन आवे, वेद पढ़ाकर हम को फ़कीर थोड़ाही बनाना है, इसी कारण यग्योपवीत के समय वेदारम्भ का

नाम ही रहगया है, जब हमारे देश के माता पिता आचार्यों की यह दशा होगई तब ही तो भारत रसातल को चलागया, यहां न कोई वेद पूछता है न शास्त्र, फिर क्या है देखलो क्या था क्या होगया, मुख्य कारण ब्रह्मचरी होकर विद्या पढ़ना ही है, क्योंकि वीर्य शरीर में पकने से उत्साह, उत्साह से विद्या, विद्या से ज्ञान, ज्ञान से धर्म, धर्म पर चलने से सर्व प्रकार के यथावत सुख मिलते हैं, वही पदार्थ विद्या में उन्नति करसकता है, वही सब आनन्द तथा परमानन्द अर्थात् मोक्ष सुख को पाता है, क्योंकि बिना ब्रह्मचर्य सेवन के काया और विद्या दोनों का नाश होजाता है फिर सुख कैसा !

हे सुजनों जिसके सिर पर काम सवार होजाता है वह तृण से भी हलका होजाता है, राजपाट खोता तथा प्रतिष्ठा और मान को धूल में मिलाकर संसार में अपकीर्ति पाता है, परलोक में भी दण्ड भागी होता है, बन वन फिरता है, नदी नाले लांघता है।

इसी काम ने रावण को किस प्रकार नाच नचाए, अंत को दुर्दशा से मारागया, तारा (सुग्रीव की स्त्री) के हरण में बालि की मृत्यु हुई, द्रोपदी के हरण से कीचक का बध हुआ; मजनू को इसने किसप्रकार लिया, भारतवासियों ने भी इसके फंदे में फंसकर सर्वस्व खोदिया, राजा पुरूरवा भी उर्वशी अप्सरा की प्रेम रूपी पास में फंसकर तहस नहस होगया।

प्राचीन इतिहासों के अवलोकन से स्पष्ट प्रकट है कि पूर्व समय में भारतवासी जन अपनी योग्यता तथा निपुणता में समस्त भूमण्डल में अद्वितीय तथा अपूर्व गिने जाते थे।

यही भारत जो वर्तमान समय में अविद्या के समुद्र में डूबा हुआ है प्राचीन समय में विद्या के प्रकाश से सूर्य के समान दीप्तमान होरहा था, यहां की विद्या रूपी नदी ने देश देशांतरों को सींच कर हराभरा कर रक्खा था यहांतक, कि मिश्र

यूनान के प्राचीन निवासी जो गणित वैद्यक ज्योतिष आदि विद्याओं के उत्पन्न कर्ता समझे जाते हैं उन आर्यों के शिष्य थे कि जिनसे प्रथम इस संसार में किसी दूसरी कौम की उत्पत्ति इतिहासों से प्रकट नहीं होती, उनकी संस्कृत विद्या की लालित्यता और मधुरता प्रकट है, व्याकरण की अपूर्वता विदित है, शिल्प तथा पदार्थ विद्या में जो उस समय उन्नति थी उसका वर्णन करना कठिन है, विश्वकर्म्मा के बनाये हुए पुष्पक विमान कि जिन पर श्री रामचन्द्र जी लंका से अयोध्या को आकाश मार्ग होकर आये थे कि जिनके सन्मुख रेलादि कोई आश्चर्य की बात नहीं है, इन्हीं महात्माओं ने सूत कातने का चरखा कोल्हू हल इत्यादि, मयदैत्य ने राजा युधिष्ठिर के यहां सुधर्मा नाम सभा ऐसी अपूर्व बनाई थी कि जिसमें जल के स्थान पर थल, तथा थल की जगह जल जान पड़ता था, तत्पश्चात् इस भूमि के गुणियों ने सूक्ष्म दर्शक दूर दर्शक यन्त्र धर्म घड़ियां तथा जेबी घड़ियां तथा कलों के द्वारा बोलनेवाले पक्षी आदि अद्भुत अथवा अनोखे यन्त्र कला बनाये थे—वैद्यक शास्त्र को अश्वनीकुमार व धन्वन्तरि ने मनुष्यों के सुख चैन तथा आरोग्य रहने के लिये बनाया था कि जिसमें निघण्टु निदान व चिकित्सा का ऐसा वर्णन किया कि जिनको पढ़कर यूनान वालों ने नाम पाया, इस विद्या में चरक, सुश्रुत, वाग्भट्टादि आचार्यों ने भी बड़े २ अपूर्व ग्रन्थ रचे, ज्योतिष विद्या भी ऐसी है कि जिसकी समता दृष्टि नहीं आती, ज्योतिष में आकाश व पृथ्वी विषयक दो प्रकार का ज्ञान है, आकाश विषयक वह ज्ञान है कि जिसमें ग्रह नक्षत्रादिकों का प्रमाण, चाल, ग्रहण होने के कारण आदि का वर्णन है, पृथ्वी विषयक ज्ञान में पृथ्वी पहाड़ नदी आदि का वृत्तांत विदित होता है, ज्योतिष में गणित मुख्य है जो समस्त विद्याओं में उपयोगी है, जिसको 'पिताभट्ट' तथा 'भाष्कराचार्य' ने निकाला है।

मीमांसा शास्त्र को जैनुनि ने, वैशेषिक को कणाद मुनि ने, योग को पातञ्जलि ने, सांख्य को कपिल देव तथा वेदांत को व्यास जी ने निर्माण किया, जिनमें से आत्म विद्या के जाननेवाले योगी जन दूर दूर से बातें करते थे नाना प्रकार की शक्ति रखते थे, क्योंकि योग ही के द्वारा वह मन की वृत्तियों को रोक अपने आधीन करलेते थे।

गान विद्या में भी पूरी योग्यता रखते थे, क्योंकि इन्होंने आठ राग चौसठ रागनियां निकाली थीं जिनके ताल स्वर न्यारे २ थे, यही कारण है कि इनके गान में जो रस आता है वह किसी देश के गान में नहीं आता है, ऐसे ही युद्ध विद्या में बड़ी विज्ञता रखते थे, जो सालून दल गन इत्यादि शस्त्रों से लड़ते थे, तदुपरांत वह विषभरी वायु से अरि सेनाओं को लपेट कर पवन में भयंकर शब्द उत्पन्न करके उनको विध्वंस करडालते थे और आकाश में डरावनी सूरत बनाकर शत्रुओं को भयभीत करते थे, सच तो यह है कि इस भूमि में पाणिनि कात्यायन, पातंजलि, यास्क, गौतम आदि तत्व वेत्ता, कालिदास भवभूति बाणादि कवि शिरोमणि, धन्वन्तर्यादि आयुर्वेद चिकित्सक, अर्जुन भीम धनुर्विद्या में, गान विद्या में गन्धर्वसेन नारदादिक, गणितवेत्ता में भास्कराचार्य, योगीश्वरों में श्रीकृष्ण, उपदेशकों में व्यास जी सरीखे, सत्य बोलने में युधिष्ठिर महाराज धर्मात्मा क्षत्री, जितेन्द्रियों में भीष्म पितामह, सुवित्त गुरू द्रोणाचार्य, निर्लोभ दानियों में कर्ण, विचार शीलों में विदुर महाराज, पिता के आज्ञाकारी सर्वण रामचन्द्र सरीखे, धर्म पालन में राजा हरिश्चन्द्र सरीखे, वाक्य पूरा करने में राजा बलि सरीखे, इसी प्रकार स्त्रियों में सीता अनुसुइया द्रोपदी दमयन्ती गार्गी इत्यादि, धुरन्धर पूर्ण गुणवान विद्वान् अनेक मार्ग के दिखाने वाले सच्चे निपुण भक्त इस भारत भूमि में होगये हैं।

हे प्यारे सुजनों यह सब हम तुम ने मैथुन में खोदिया क्योंकि जैसा हमने वीर्य का नाश मारा वैसाही हमारा नाश मारागया, विचार की बात है कि जिस वीर्य के निकलने से आनन्द में हाड़ों की माला बनजाते हैं भला उसके डाठने के आनन्दों को कौन वर्णन करसकता है।

इन उपरोक्त गुणों को जान अपने २ पुत्र पुत्रियों को यथावत ब्रह्मचर्य रहने के अर्थ तन मन धन से उनकी रक्षा कर विद्या पढ़ाओ, आप भी ऋतुगामी होने की टेव डालो कि जिससे उनको भी रुचि हो, सदा उनको वीर्य के डाटने तथा विद्या के पढ़ने के लाभ सुनाते रहो, कभी २ भीम कर्ण हनुमान अंगदादि बली पुरुषों की तसवीर दिखाते रहो, उनको प्राते दिन सत्य शास्त्रों में से यहां की विद्या तथा गुण आदि के व्याख्यान भी सुनाते रहो, कि हे ब्रह्मचारी तेरी सकल कामना अथवा मनोरथ अखण्ड ब्रम्हचर्य सेवन तथा विद्याध्ययन से ही होंगे, इससे हे पुत्र पुत्रियो तुम इस तप को मनसा वाचा कर्मणा से पूर्ण कर विद्या ग्रहण करो जिससे तुह्मारा नाम, यश कीर्त्ति बुद्धि, पराक्रम, तेज, बल आदि की प्रशंसा हो, तुम नाना प्रकार के आनंद प्राप्त करो, तुह्मारे कुल कुटम्ब का नाम हो, इस तप के पूरा करने के अर्थ निम्न लिखित आशयों पर सदा आरूढ़ होकर यह व्रत निर्विघ्न समाप्त कर भारत का उद्धार कीजिये।

ब्रह्मचारियों की शिक्षा

हे ब्रह्मचारी तुम उबटन तथा सुगंधित पदार्थों को शरीर में न लगाओ, पुष्पों की माला तथा शरीर की शोभा देनेवाले तिलक छापादि को धारण न करो, नाचने गाने की ओर ध्यान न दो, मनुष्यों के समूह में गाने या सुनने का स्वभाव न डालो क्योंकि ऐसे विद्यार्थियों का चित्त पठन पाठन में

नहीं लगता इसालिये धर्म शास्त्र के कर्त्ताओं ने जन गोष्ठी का निषेध किया है, इसके पश्चात् परीक्षा से भी जानागया है, गप्पी, जप्पी, तप्पी इन तीन प्रकार के विद्यार्थियों को विद्या नहीं आती, अतः तुम इधर किञ्चित् ध्यान न दो, रात्रि में अकेला सोवे, सर्व प्रकार से वीर्य्य की रक्षा करता रहे, क्योंकि इस समय की रक्षा करने से मरण तक कोई रोग प्रवल नहीं होता, कहा भी है कि 'जो विन्द को मारेगा, वह जिन्द को पछाड़ेगा', अतः स्त्री का ध्यान उसकी वार्त्ता, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिंगन, एकांत वास समागम इन आठ प्रकार के विषयों को छोड़देता चाहिये, जैसा कि कहा गया है—

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणम् ।
संकल्पोध्यवसायश्च क्रियानिष्यन्तिरेवच ॥
एतन्मैथुन मष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः ।
न ध्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्त्तव्यं कदाच न ॥
एतैः सर्वोविनिर्मुक्तो यतिर्भवति तेनरः ॥

इन सब से बचने का उपाय यही है कि विषयों की बातों को न सुने न ऐसे मनुष्यों के पास बैठे, न ऐसे स्थानों में जावे जहां स्त्रियों के झुंड आते जाते हों, न कभी उनकी कथा कहानियों को सुने यदि स्त्री सन्मुख आ-जावे तो आप अपनी दृष्टि नीचे करले न कभी किसी सुन्दर स्त्री का हृदय में स्मरण करे, न कभी स्त्रियों के चित्र अर्थात् तसवीर को देखे, यथा—

न संभाषयेस्त्रियं कांचित पूर्व दृष्टां च नस्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येत् लिखितामपि ॥

वर्त्तमान काल में बहुधा सेठ साहूकारों के कमरों में स्त्रियों की तसवीरें टंगी रहती हैं इससे संतानों को उपरोक्त हानियां होती हैं, अतः बुद्धिमान्

पुरुषों को कदापि स्त्रियों के चित्रों को न लटकाना चाहिये, प्यारे ब्रह्मचारियो तुम आलस्य या प्रमाद से संध्योपासन तथा अग्निहोत्रादि नैमित्तिक कर्मों को कभी त्याग न करो, अति खट्टा अमिली आदि तीखा, लाल मिरच आदि कसैला क्षार लवणादि तथा रेचक जमालगोटा आदि पदार्थों को न खाओ, नित्य आहार विहार से युक्त रहकर विद्या ग्रहण करना ही अपना अभीष्ठ समझो, जबतक विद्या पूर्ण न हो तबतक ब्रह्मचर्य को खंडित न करो, आचार्य की सेवा तथा टहल नम्रता पूर्वक सदा करते रहो उनके उपदेश के अनुसार सदा अपने आचरण को सुन्दर बनाये रहो, क्रोध ईर्षा द्वेष आदि को त्याग सत्य संभाषण आदि उत्तम गुणों को धारण करो।

तदुपरांत अपने अमूल्य समय को मिथ्या खोना अभीष्ठ नहीं, क्योंकि वह लाखों की ढेरी करने पर भी फिर हाथ नहीं आता जैसाकि कहा है— "गया वक्त फिर हाथ आता नहीं"—इस विषय को यदि अधिक देखने की इच्छा हो तो मेरे बनाये हुए अनमोलरत्न नामी पुस्तक को देखलो।

इसके उपरांत सुस्त बैठे रहना तथा कुछ काम न करना निर्बुद्धि ही नहीं वरन उसके मन के दोष भी प्रकट होते हैं, और विढंग पन से समय को काटने से अनेकान बुराइयां उत्पन्न होजाती हैं क्योंकि ऐसे आलसी जन जो कुछ कार्य नहीं करते थोड़े ही दिनों के पश्चात् निकम्मे होजाते हैं।

इसलिये प्रत्येक को उचित है कि बुद्धिमानी के साथ समय को शुभ कार्यों में व्यतीत करे कि जिससे किसी प्रकार की हानि न हो, अपने समस्त कार्य नियत समय पर करना योग्य है और शरीर की आरोग्यता और मन बहलाने के अर्थ समय नियत करदिया है, प्रत्येक मिथ्या खेल तमाशे तथा गप शप न मारने के अर्थ शिक्षा की है, उसी प्रकार तुम

भी समय को व्यतीत करो न कि वर्तमान की भांति मिथ्या थोथे धंधे में व्यय करो, उत्साहों और खुशियों में तो समय की कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं होती जहां तहां नशे खेल कूद व तबले, सारंगी, रण्डी या लौंडे के नाच या नक्कीमूठ या और कोई ऊट पटांग काम में व्यय किया जाता है कि जिनके नशे सालभर बने रहते हैं।

मान्यवरो यह वार्ता सम्पूर्ण जन जानते हैं कि मनुष्य जैसी संगति में रहता है वैसाही होजाता है, ऐसाही हितोपदेश और भर्तृहरि शतक में कहा है कि जल बूंद तत्ते लोहे पर पड़ती है तो उसका चिन्ह भी नही रहता और वही बूंद कमल के पत्ते पर पड़कर मोती सी दीखती है और स्वांति योग से सीपी में पड़कर मोती होजाती है अतः समस्त ग्रंथों में उत्तम जनों की संगति करने की आज्ञा है। देखिये यजुर्वेद अध्याय १९ मंत्र ३८ में लिखा है—

अग्न आयू ꣳ षिपवसऽआसुवोर्जमिषंचनः।
आरे नाधस्वदुच्छुनाम् ॥

पितादि को योग्य है कि अपनी संतानों को दुष्टों के संग से पृथक् रख श्रेष्ठों के सतसंग में प्रवृत्त कराके धार्मिक तथा चिरंजीव करे जिससे वे वृद्धावस्था में भी अप्रियाचरण कभी न करें, शुक्र नीति अध्याय १ में लिखा है कि उत्तम जनों के सतसंग से सुख व अर्थ की प्राप्ति होती है, विदुर नीति में विदुर जी ने धृतराष्ट्र को उपदेश किया है कि मनुष्यों को सदा उत्तम पुरुषों का ही सतसंग करना चाहिये, प्रयोजन सिद्ध करने के अर्थ मध्यम पुरुषों के पास भी चलाजावे परन्तु कल्याण की इच्छा रखने वाला पुरुष नीच का संग कदापि न करे, क्योंकि मनुष्य नीचों की संगति

से नीच होजाता तथा उनकी बुद्धि सब नष्ट होजाती है जिससे उनकी उन्नति कभी नहीं होती और प्रशंसा का नाश होजाता है इससे उनका गौरव भी जाता रहता है, उद्योगपर्व अध्याय १० में भी सज्जनों की संगत करने की आज्ञा दी है, मान्यवरो भर्तृहरिजीने कहा है कि बन तथा पर्वतों पर रहना अच्छा पर मूर्ख के साथ इन्द्रभवन में रहना अच्छा नहीं, महात्मा शुक्र व चाणक्य ने अपनी नीतों में वर्णन किया है कि काले सर्प का संग अच्छा है परन्तु दुर्जन का नहीं, हितोपदेश में लिखा है, कि खल कभी सीधा नहीं होता चाहो उसकी नित्य सेवा करो, जैसे कुत्ते की पूंछ चिकनाने व मलने से सीधी नहीं होती इसके उपरांत खल धनवानों को अपने प्रयोजन के लिये दुराचारी करडालते हैं, इसी कारण विष्णुशर्मा ने कहा है प्राण त्यागना अच्छा, पर नीचों के पास जाना अच्छा नहीं, यथा—

बरं प्राणत्यागो न पुनरधमाना मुपगमः ।

मान्यवरो मनुष्य जन्म का उत्तम फल बिना सतसंग के नहीं मिलता इसी से जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, धर्म अर्थ काम मोक्ष भी सतसंग से ही प्राप्त होते हैं यथार्थ में सतसंग ऐसी ही औषध है जिससे मनुष्य तीनों तापों से छूट कर आनन्द धाम को पाते हैं, भर्तृहरि तथा चाणक्य ने लिखा है--चंद्रमा व चंदन दोनों की शीतलता प्रसिद्ध है परन्तु सज्जन सतसंग इनसे भी अधिक शान्ति का देनेवाला है, अर्थात् इनसे सांसारिक अथवा पारलौकिक सर्व प्रकार के आनंत प्राप्त होते हैं—

चंदनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा ।
चन्दनाच्चन्द्रमश्चैव शीतला साधु सङ्गतिः ॥
साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थ भूताहि साधवः ।

ऐसे ही सज्जनों के सतसंग के अनेकान गुण हैं देखो उत्तम पुरुषों के

सत्संग से मूर्ख, कुमार्गी, ज्ञानी महात्मा होजाते हैं, वाल्मीक दुराचारी हिंसक से ऋषि, नारद जो कहारी के पुत्र थे देवऋषि होगये, महाशयो क्या यह सत्संग का फल नहीं है कि महा नास्तिक का बेटा प्रहलाद परम आस्तिक तथा विद्वान् हुआ, इसकथन का तात्पर्य यही है कि उत्तम संगति से उत्तम तथा नीच से नीच होजाता है शांति पर्व में महात्मा भीष्म ने तथा विदुर नीति में विदुर जी ने कहा है कि जिसमें क्षमा धृति अहिंसा इन्द्रियनिग्रह धीरज, स्थिरता, संतोष दया शील कृतज्ञ इत्यादि गुण हों वही श्रेष्ठ है, ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कंद ३ अध्याय २५ श्लोक २० में कहा है तथा भर्तृहरि जी ने भी कहा है कि जिस प्रकार सूर्य कमल को, चन्द्रमा कमोदिनी को खिलाता है, मेघ बिना मांगे पानी देते हैं उसी भांति श्रेष्ठ जन बिना कहे उपकार करते हैं, शांतिपर्व अध्याय १०३ में बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि जो परोक्ष में दोषों को कहे उसको दुष्ट जानना चाहिये, श्रीरामचन्द्र ने भरत से तथा विदुर जी ने विदुर नीति में कहा है कि जिसमें सहन, विद्या, त्याग, दान बचन की रक्षा नहीं वही दुष्ट है ।

प्रिय सज्जन पुरुषो उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होगया कि मनुष्य का कल्याण सत्पुरुषों के ही सतसंग करने से होसकता है, परन्तु वर्तमान काल में उन पुरुषों का सतसंग किया जाता है जिनमें न विद्या न तप न ज्ञान न शील न गुण न धर्म किंचिन्मात्र दृष्टि आता है, ऐसे ही मनुष्य गुरु अध्यापक व आचार्य नियत कियेजाते हैं, मित्रता की भी पदवी उनको दीजाती है कि जिनको भर्तृहरि जी ने पशु के समान माना है, यथा —

येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।

ते मर्त्य लोके भुवि भार भूता,
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

अतः अब तुम पूर्व कथनानुसार सज्जन अथवा असज्जन की परीक्षा कर मृग तृष्णा के समान संसार को क्षण में नष्ट होने वाला जान धर्म व सुख के लिये सज्जनों का संग करो, क्योंकि प्राणी मात्र की प्रतिष्ठा गुणों से होती है न कि ऊंचे आसन पर बैठने से, क्या कोठे के ऊपर के भाग में स्थित कौआ गरुड़ होजाता है, कदापि नहीं ।

परम पिता परमात्मा की आज्ञा तथा सदाचार के अनुकूल सज्जनों की संगत करो जिससे तुमको धन धान्य दीर्घायु आदि सुख मिलसकते हैं, जैसाकि यजुर्वेद अ० ३५ मं० १६ में लिखा है—

अग्र आयू ꣳषि पवस आसु वार्जामिषञ्च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छनाम् ।

हे प्यारे सुजनों और ब्रह्मचारियो इस प्रकार की संगति करने से मनुष्य के हृदय कमल की भांति प्रफुल्लित होजाते हैं, अज्ञान अन्धकार इस प्रकार भाग जाते हैं जैसे सिंह की गर्ज सुनकर पशुपक्षी पलायमान होजाते हैं, अतः तुम भी इस समय को पूर्व भारत वासियों की भांति नाना कला कौशल्य सीखने उपदेश सुनने समाचार पत्र तथा अनेकान प्रकार की पुस्तकें पढ़ने आदि सुसंगत में व्यय करो कि जिसके प्रभाव से उपरोक्त गुण तुममें भी आजावें, देखिये वर्तमान समय में अंगरेज बहादुर सयय की कैसी प्रतिष्ठा करने हैं, प्रत्येक मनुष्य एक घड़ी पास रख कर उसके अनुकूल नियत समयों पर उत्तम उत्तम कार्य कर आनन्द उड़ाते तथा सुसंगति ही में अपनी अपनी आयु को व्यतीत करते हैं, जिसके प्रभाव से कैसे जितेंद्रिय विद्वान् होरहे हैं, इनका एक पल मात्र भी मिथ्या नहीं जाता ।

अतः तुम दुर्जनों की संगति कदापि न करो क्योंकि इससे बढ़कर मनुष्य का बैरी अन्य कोई नहीं है।

हे प्यारे ब्रह्मचारियो यह बड़ाभारी काम है क्योंकि बिना वीर्य रोके कुछ नहीं होसकता, यदि तुमको आरोग्य रहने, दीर्घायु होने, विद्वान् व बुद्धिवान् बनने, अथवा सुख से रहने की इच्छा हो तो तुम इस उपरोक्त लेख पर पूरा २ ध्यान दो, जब तक तुम्हारा मन से ध्यान न होगा तब तक माता पिता की शिक्षा यथावत उपकार न करसकेगी, क्योंकि जब तक तुम इसके गुण दोष जान कर अखण्ड ब्रह्मचारी बनने की कोशिश न करोगे तब तक उनकी रक्षा से जैसा चाहिये वैसा कार्य नहीं बनसकता, क्योंकि 'खेती खसम सेती'—खसम कहते हैं मालिक को खेती नाम खेत या बस्तु का है, तात्पर्य यह है कि बिना मालिक के किसी वस्तु की यथावत् रक्षा नहीं होसकती, ऐसे ही जब तुम अपने शरीर के मालिक हो यदि तुम को शरीर रूपी खेती का ध्यान न हो तो क्या उनकी रक्षा से पूर्ण प्रबन्ध होसकता है? कदापि नहीं।

इसलिये तुम कोई ओट पाप न करो, न ऐसे कुसंगी विद्यार्थी वा इष्ट मित्र के पास जाओ क्योंकि संगत के लक्षण अवश्य कुछ न कुछ आते हैं, इन्हीं कारणों को जान संपूर्ण धर्मशास्त्र व वेदादि सत्य ग्रन्थों व मुनीश्वरों तथा वैद्यों (डाक्टर) आदि ने शुक्र अर्थात् धातु की रक्षा के अर्थ बड़े २ कालम के कालम भरे हैं तथा अपने उत्तम समय को लगाया है, देखिये क्या २ सत्योपदेश इस विषय में किये हैं कि जिनके अनुकूल चलने से सब पदार्थ मिलते हैं, तथा जिनकी आज्ञा न मानने अर्थात् जिनके अनुसार न चलने से क्या २ क्लेश भोगने पड़ते हैं कि जिनका पारावार नहीं, अतः हे ब्रह्मचारियो

बिना तुम्हारे ध्यान दिये कार्य निर्विघ्नता पूर्वक पूर्ण नहीं होसकता, क्योंकि यदि माता पिता ने तुम्हारा बिवाह न्यून अवस्था अर्थात् २५ बर्ष से प्रथम न किया परन्तु तुमने अन्य क्रियाओं से वीर्य को खलित करादिया तो बतलाइये कहीं पूर्ण लाभ होसकता है ? कदापि नहीं।

बहुधा बालक बालपन से दुष्टों की संगत में पड़कर नाना भांति से वीर्य का नाश मारदेते हैं जिससे थोड़े ही दिनों में उनकी सूरत पीली होजाती है, आंखों में वह प्रकाश नहीं रहता, मांस ढीला पड़जाता है, मन उदास रहता है, स्मरणशक्ति न्यून होजाती है, इसके उपरांत प्रमेह, बबासीर आदि रोग होजाते हैं जिनसे जन्म भर के आनंदों पर पानी पड़जाता है।

हे प्यारे पुत्र पुत्रियों यदि आप को अपनी उन्नति सुख तथा संतानों का वैभव देखने की अभिलाषा हो तो इस शरीर को कामानल में हवन न कीजिये क्योंकि वीर्य रक्षा से सर्व प्रकार के सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है जैसा हमने ऊपर वर्णन किया है, और किसी महात्मा ने कहा है—

शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्षमारोग्यमिच्छता ।
धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् ॥
चित्तायत नृणां शुक्रं शुक्रायत च जीवितम् ।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीय प्रयत्नतः ॥

प्यारे सुजनों भारत के उद्धार करने की अभिलाषा करने वालो यदि आप का पूर्ण ध्यान इस बुड्ढे आर्यावर्त्त के सुधारने का है तो आइये इस पूर्वोक्त रसायन का सेवन कीजिये, फिर भारत संतान को यही अमृतपान कराकर उनके मस्तक तथा शरीर को बलिष्ट करदीजिये फिर देखिये कैसा आनन्द आता है, हे परमात्मन् हम सब भारत वासियों को दुःख भोगते बहुत दिन होगये अब आप हमको साहस का दान दीजिये जिससे हम सब इस उत्तम रसायन का पान कर कृत कृत्य हों।

[४—विद्या]

विद्या उपार्जन

प्रकट हो कि संतानों को उत्तम विद्या शिक्षा गुण कर्म स्वभाव आदि आभूषणों का धारण कराना माता पिता आचार्य तथा सम्बन्धियों का काम है, क्योंकि इन्ही भूषणों से मनुष्य की आत्मा भूषित होती है, इसी से ज्ञान होता है, यह विद्या ही पशु अथवा मनुष्यों में अन्तर है, जैसा कि चाणक्य जी ने कहा है—

आहार निद्रा भय मैथुनानि,
सामान्य चैतानि नृणां पशूनाम् ।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो,
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

इसके उपरांत सोने चांदी के आभूषणों को शरीर में लादने से ज्ञान प्राप्त नहीं होता वरन अभिमानादि दोष उत्पन्न होजाते हैं, विषय रूपी जाल में फंसकर आत्मा शरीर दोनों का नाश मारदेते हैं जिससे भारत का पटरा हो-गया अतः मैं इस स्थान पर आप को विद्या की महिमा संक्षेप से सुनाता हूं कि विद्या क्या पदार्थ तथा उससे क्या आनन्द प्राप्त होते हैं, तथा पूर्व समय में उसकी क्या दशा थी ।

देखो यजुर्वेद अध्याय ४० मं० १४ में लिखा है कि जिससे मनुष्यों को सुख आनन्द मिलता है, उसी को विद्या कहते हैं—

विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद में लिखा है जिसका नाश न हो उसको विद्या कहते हैं । पातञ्जल योगसूत्र पाद २ में लिखा है—

अनित्या शुचि दुःखानात्म सुनित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या ॥

जिससे अनित्य को नित्य तथा नित्य को अनित्य, अशुद्ध को शुद्ध तथा शुद्ध को अशुद्ध, दुःख को सुख तथा सुख को दुःख, अनात्मा को आत्मा तथा आत्मा को अनात्मा मानना यही अविद्या कहाती है।

वैशेषिक में लिखा है कि अविद्या से विपरीत वस्तु को विद्या कहते हैं, जैसा कि — "अविद्या च विद्या लिंगम्"।

प्रियवरो सत्यसम्भाषणादि तप तथा विद्या से ही मनुष्यों का कल्याण होता है, क्योंकि सत्यादि नियम करने से मनुष्य सर्व पापों से छूटजाता है, विद्या से सर्व सुखों की प्राप्ति होती है, अतः प्राचीन समय में तप की उन्नति तथा शरीर की पवित्रता के अर्थ ऋषियों ब्राह्मणों तथा गृहस्थों ने विद्या को अच्छे प्रकार पढ़ा था जिस प्रकार मनु जी ने मनुस्मृति के अध्याय ६ श्लोक ३० में लिखा है—

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयस्करंपरम्।
तपसा किल्विषं हंति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥
ऋषिभिर्ब्राह्मणश्चैव गृहस्थैरेव सेविता।
विद्या तपो विवृद्ध्यर्थं शरीरस्यच शुद्धये ॥

भर्तृहरि जी ने कहा है कि विद्या मनुष्य की अतुल कीर्ति का हेतु तथा छिपा हुआ धन है, विद्या सुख को देनेवाली तथा दूसरों को बस में करने वाली है, यह सब में उत्तम गिनीजाती तथा विदेश में निर्वाह करती है, यही राजाओं में सन्मान तथा प्रतिष्ठा पाने योग्य बनाती है।

चाणक्य नीति में लिखा है कि श्रेष्ठ रूप, उत्तम अवस्था तथा उत्तम कुल में जन्म होने पर भी मनुष्य विना विद्या सुगन्ध रहित ढाक के फूल के समान शोभा नहीं देता, यथा—

रूप यौवन सम्पन्न विशाल कुल सम्भवाः ।
विद्या हीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥

किसी महात्मा ने कहा है कि वेद का जानने वाला यदि दरिद्री हो तो भी उस मूर्ख से जो बहुधा रत्नो से संयुक्त हो श्रेष्ठ है, उत्तम नेत्र वाली स्त्री फटे वस्त्र पहरने पर भी उस नेत्र हीन स्त्री से जो नाना प्रकार के सुवर्ण के आभूषण धारण किये हो शोभायमान होती है, यथा—

बरं दरिद्री यदि वेद पारगा न चापि मूर्खो बहु रत्न संयुतः ।
सुलोचना जीर्ण पटोपि शोभते न नेत्र हीना कनकै रलंकृता ॥

मनुस्मृति के अध्याय २ श्लोक ३५ में लिखा है कि मान्य करने के योग्य—धन, बन्धु, अवस्था, उत्तम कर्म, विद्या यह पांच स्थान हैं इनमें विद्या सर्वोत्तम है अर्थात् विद्वान् की सब से अधिक प्रतिठा होती है, यथा—

वित्तं बन्धुर्वयकर्म विद्या भवति पंचमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥

भविष्य पुराण में लिखा है कि विद्या कामधेनु के समान फल देनेवाली है, यह एक प्रकार का गुप्त धन है, भोजप्रबन्ध में लिखा है कि विद्या माता से अधिक समस्त आयु लालन पालन करती है, और माता केवल न्यून अवस्था ही में, इसी प्रकार पिता बालक को ऐसा उपदेश करता है जिससे उसका हित हो परन्तु विद्या रूपी पिता सम्पूर्ण आयु उपदेश करता है, जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पति को सब प्रकार के दुःखों से बचाकर सुखी रखाती है, उसी भांति विद्या सर्व प्रकार के क्लेशों से बचाकर सुख को देती है, यही जगत में कीर्ति को फैलाती है, यही मोक्ष मारग बताती है ।

हितापदेश में विष्णुशर्मा ने विद्या को अक्षय धन कहा है, विदुर महाराज ने तृप्ति का मूल कारण विद्या ही को कहा है, चाणक्य जी का वचन है कि

विद्या से सर्वत्र पूजा होती है कुल तथा धन से नहीं, इसके पश्चात् विद्या से नम्रता, नम्रता से योग्यता, योग्यता से धन, धन से धर्म, धर्म से सुख प्राप्त होता है, यथा—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्म्मं ततः सुखम् ॥

महाभारत के शांति पर्व में पितामह ने कहा है—

"नास्ति विद्या समं चक्षुः"

विद्या के समान संसार में कोई नेत्र नहीं, शुक्र नीति में लिखा है कि विद्या रूपी धन सब धनों से श्रेष्ठ है क्योंकि यह देने से न्यून नहीं होता किन्तु अधिकता को प्राप्त होता है ।

केनोपनिषद में लिखा है कि "विद्यया विन्दतेऽमृतम्" अर्थात् विद्या ही से आनन्द की प्राप्ति तथा सब पदार्थों की वृद्धि होती है, ऐसा ही चरक में लिखा है "विद्याबृंहणानाम्" ।

अब तो आप को विद्या की महिमा प्रकट होगई, देखो यह वह पदार्थ है कि जिसका प्रकाश शरीर के साथ रहता है और जिसकी रोशनी सूर्य के समान वरन उससे भी अधिक समस्त देशों में फैलजाती है, यह वह अस्त्र है कि जिसपर शान रखने की आवश्यकता नहीं होती, किसी २ विद्वान् ने १४ विद्या तथा उनकी ६४ कला लिखी हैं, परन्तु बहुधा गुणी जन अनेक विद्या बतलाते हैं, जिनके प्रभाव से यहां तथा परलोक में आनन्द प्राप्त करते हैं, इसी के बल से सत्पुरुषों के नाम युगानुयुग तक लिये जाते हैं, देखो विश्वकर्मा अथवा मय दैत्य जिन्हों ने शिल्प विद्या को प्रकाश किया, अश्वनीकुमार तथा धन्वन्तर नें वैद्यक को प्रकाश किया, पितामह ने ज्योतिष को, जैमिनि ने मीमांसा,

कणाद ने वैशेषिक, गौतम ने तर्क, पातंजल ने योग कपिल ने शांख्य, व्यास ने वेदांत को प्रकट किया कि जिन को मरे बहुत काल होचुका परन्तु इनके नाम आज तक प्रशंसा के साथ लिये जाते हैं और जो कोई इनको पढ़ते हैं वह विद्वान् होजाते हैं, जिनकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है, राज्य सन्मान से भी अधिक मान्य होता है, जिस प्रकार चाणक्य मुनि ने नीति में लिखा है—

विद्वत्वंच नृपत्वंच नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

इसके उपरांत जिन राजाओं ने विद्वानों का आदर सत्कार किया उनके राज्य में भी आनंद रहा और उनके नाम भी आज तक चले आते हैं, भला ऐसा कौन मनुष्य है कि जिसने विक्रम तथा राजा भोज का नाम न सुना हो अथवा उनकी प्रशंसा न करता हो ।

इसके उपरांत विद्या सकल आपदाओं को टालती है, यह विद्या रूपी धन चोर चुरा नहीं सकता, भाई बन्धु सहोदर बांट नहीं सकते, अग्नि भी उसे जला नहीं सकती, मनुष्य के विपत्ति तथा दरिद्रता की दशा में विद्या ही पूरा साथ देती है जब कि भाई बन्धु स्त्री मित्र उसको त्याग देते हैं, सच पूछो तो विद्या अनमोल रत्न है, अतः जो मनुष्य अपनी प्यारी संतान को विद्या नहीं पढ़ाते वह मानों उनका सत्यानाश मारदेते हैं, क्योंकि बिना विद्या के वह ईश्वर को नहीं जानता, शेख़ सादी ने कहा है—

कि बे इल्म नतवां खुदारा शनाख्त

इसके उपरांत ज्यों २ मनुष्य पुस्तकों तथा ग्रन्थों को अवलोकन करते हैं त्यों २ उनकी बुद्धि बढ़तीजाती है ।

प्यारे सुजनों यह वह बाग नहीं कि जिसको पतझड़ सतासके, यह वह

दर्पण नहीं कि जिसको जंग चट करजाय, यह वह प्रकाश नहीं कि सूर्य उदय होते ही छिपजाय, वरन विद्या वह अंजन है जिसके लगाते ही कपाट के नेत्र खुल जाते हैं, यह वह जड़ाऊ आभूषण है कि जिसके सिंहार के देखने की अभिलाषा जी को भी होती है, यह वह अमृत रूपी जल है कि जिसे पान कर मनुष्य मनुष्यता के पद को पहुंच कर अमर होजाना है, यह वह बल है कि जिस बल से सिंह सर्प से दुष्ट जीव आधीन होकर रहते हैं, मुख्य तो यह है कि संसार रूपी सागर में विद्या रूपी नाव ही पार पहुंजाती है, क्योंकि मूर्ख संसार में आपत्ति का घर बनजाता, सदा अप्रतिष्ठित रहता, चिन्ता रूपी ज्वाल में शरीर को लकड़ी की भांति जलाता रहता, प्रतिदिन इस उस में ग्रसित रहता है, इसके उपरांत बुद्धिमान उसकी संगत से दूर भागते तथा उसको बुरी दृष्टि से देखते हैं, मूर्ख को न यहां किसी प्रकार का सुख मिलता है, न परलोक में, अतः इस संसार में स्त्री पुरुष को योग्य है कि विद्या को अवश्य ही ग्रहण करें, अपने पुत्र, पुत्रियों को सात आठ बरस तक घर में अवश्य शिक्षा दें, फिर पुत्र को पुत्रों की तथा कन्या को कन्याओं की पाठशालाओं में भेज देवें, इस विषय में मनु जी महाराज ने इस प्रकार लिखा है—

कन्यानांस प्रदानंच कुमाराणांच रक्षणाम् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि पांचवें वा आठवें वर्ष पुत्र पुत्रियों को घर में न रक्खें, अर्थात् विद्या उपार्जन के अर्थ पाठशाला में भेजदेवें, जो न भेजेंगे वह दंडनीय होंगे।

फिर कैसे पछतावे का स्थान है कि पंचायती दंड का नाम ही न रहा इसी कारण से अविद्या का राज्य होगया, राजदंड तो किसी भांति मौजूद

भी है क्योंकि जबतक पास नहीं होता तबतक सब धान बावन पसेरी गिने जाते हैं, अर्थात् किसी प्रकार की प्रतिष्ठा नहीं होती, नौकरी नहीं मिलती, यदि यह भी न होता तो भारत वासी जन काला अक्षर भैंस के समान जानते, अतः यह भी धन्य है।

पहिले की नाईं दंड के न होने से धर्म सम्बन्धी शिक्षा जाती रही जिसका प्रभाव यह हुआ कि यदि किसी से धर्म विषय में कुछ पूछा जावे तो अंट का संट ऊटपटांग उत्तर देते हैं, जिसके कारण हजारों मनुष्य धर्म से विमुख हो, काम क्रोध लोभ मोह ईर्षा अहंकार में फंसकर भारत संतान का नाश मार रहे हैं, कि जिसके कारण राज गया, धन गया, मानादि सबही जाते रहे, अतः पूर्ण जितेन्द्रिय होंकर पुत्र पुत्रियों को विद्याध्ययन करना चाहिये, क्योंकि विना जितेंद्रियता के बल का नाश होजाता है, विना बल परिश्रम नहीं होता, जिसके विना विद्या आना असम्भव है, अतः जो स्त्री पुरुष बिना पूर्ण विद्या के विवाह करदेते हैं मानों अपने हाथ से हलाहल पिलाकर जीते हुए होनहार सन्तानों को मृतक के समान बना देते हैं।

प्रिय सज्जन पुरुषो जब विद्या एक अमूल्य रत्न है तो यह परम आवश्यक हुआ कि उसकी शिक्षा करने वाले यथावत् विद्वान् तथा धार्मिक हों, यदि ऐसे न होंगे तो विद्यार्थी विगड़ जावेंगे, और कुछ लाभ न होगा, अतः वेदादि सत्य ग्रंथों में ऐसे ही गुरु आचार्य से विद्या सीखने की आज्ञा पाई जाती हैं, य० अ० ६ मं० १४ में लिखा है—

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि
श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि
पायुस्ते शुन्धामि चरित्रास्ते शुन्धामि ॥

गुरु तथा उनकी स्त्रियों को योग्य है कि कुमार तथा कुमारियों को वेद और उसके अंगों की शिक्षा देकर देह इन्द्रियां अंतःकरण मन की शुद्धि और शरीर की पुष्टी आदि उत्तम गुणों को प्रवेश करावे।

शुक्र नीति अध्याय १ में लिखा है—

शास्त्राय गुरु संयोगः।

अर्थात् विद्या पढ़ने के लिये गुरू किया जाता है, ऐसा ही उपनिषदों का सिद्धांत है, यथा—

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोध्ययन दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो
ब्रह्मचर्य्याचार्य्य कुल वासी तृतीयोऽत्यन्त मात्मानमाचार्य्यकुले
अवसादयत्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति॥
छांदोपनिषद अ० २ खं० २३॥

धर्म के तीन स्कन्ध अर्थात् अंश हैं एक यज्ञ अर्थात् पदार्थों की संगति करण (क्रिया कौशल विद्वानों का सत्कार अग्नि होत्रादि), दूसरा ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण करके आचार्य्य के समीप निवास करना, तृतीय क्लेशों को सहन करके बहुत काल तक सर्व विद्या संपन्न होना।

श्रीमद्भागवत पंचम स्कंद के पांचवें अध्याय में लिखा है कि वह गुरु ही नहीं जो मृत्यु से बचने का उपाय न बतावे—

गुरुर्नसस्यात् स्वजनो न सस्यात्,
पिता न सस्याज्जननी न सस्यात्।
दैवं न तत् स्यान्नपतिश्च सस्यान्,
न मोचयेद्यः समुपेत मृत्युम्॥

इस कथन से प्रकट होता है कि आत्मिक ज्ञान के अर्थ गुरु कियेजाते हैं, क्योंकि बिना उसके मृत्यु के क्लेश से नहीं बच सकता, लिंग पुराण अध्याय

८६ श्लोक १०१ में लिखा है कि गुरु की कृपा से निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है, यथा—

इत्थं प्रसन्नं विज्ञानं गुरुसम्यर्कजं ध्रुवम् ॥

शुक्र नीति में लिखा है कि—"शिक्षणो गुरू" अर्थात् शिक्षा पाने के अर्थ गुरू किये जाते हैं।

श्रीमद्भागवत स्कंद ११ अ० ९ में दत्तात्रय ने कहा है कि भ्रम की निवृत्ति के लिये गुरू किये जाते हैं, शंखस्मृति अ० ३ श्लोक २ में लिखा है कि गुरु वही है जो बेदों को पढ़ावे, ऐसा ही लिंग पुराण अध्याय २९ में लिखा है कि श्रद्धा पूर्वक गुरु से बेद पढ़े फिर विचार करे और धर्मों को जाने।

हारीतस्मृति अ० ३ प्र० १ में लिखा है—

उपनीतो माणवको वसेत् गुरु कलेषु च ।

शिष्य जनेऊ कराकर गुरू के पास जाकर रहे, ऐसाही संवर्तस्मृति में अ० १ श्लोक ५ व व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २३ में भी लिखा है—

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरुवे हितमाचरेत् ॥ संवर्त० ॥
उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ॥ व्यास० ॥

मनुजी ने भी लिखा है—

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यंच तमाचार्य्यं प्रचक्षते ॥

आचार्य्य शिष्यों को उपनयन कराकर बेदादि विद्याओं को पढ़ावे, तथा सदाचार भी सिखलावे।

श्रीमद्भागवत स्कंद ११ अ० १७ में भी ऐसा ही कहा है—

द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयन द्विज वसन् ·
गुरुकुले दांतो ब्रह्मा श्रीमतश्चाऽऽहुतः ॥

जावल ऋषि तथा पास्क मुनि का भी यही सिद्धांत है, विष्णुपुराण व लिंग पुराण में भी लिखा है, जनक महाराज ने कहा है कि गुरु उपदेश बिना ज्ञान और ज्ञान बिना मोक्ष नहीं होती, इससे गुरू से ज्ञान प्राप्त करना ही मुख्य प्रयोजन है, गीता के अध्याय ४ श्लोक ३४ में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि मुक्ति की रीति तत्व ज्ञान जानने वाले गुरू के द्वारा प्राप्त होसकती है ।

व्यासस्म्रति अध्याय १ श्लोक १४ में लिखा है कि गुरू तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों को होम कराकर गायत्री का उपदेश कर वेद पढ़ावे—

पुण्येन्हि गुर्वनुज्ञातः कृत मंत्राहुति क्रियः ।
स्मृत्वोंकारं च गायत्री मारभेद्वेद मादितः ॥

मार्कंडेय पुराण अध्याय २८ में मदालसा ने अपने पुत्र को वर्णों के धर्म सुनाये हैं वहां वर्णन किया है कि यज्ञोपवीत के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरू के समीप जाकर विद्याऽध्ययन करे, एक वा दो वा चारों वेद पढ़कर गुरुदक्षिणा दे गृह में आने की इच्छा करे ।

तदुपरांत अनुशासनपर्व अध्याय ५६ में भीष्मपितामह ने कहा है कि गुरू की सेवा से विद्या प्राप्त होती है, अर्थात् शिक्षा के अर्थ गुरू कियेजाते हैं ।

देखिये शुक्रनीति अध्याय १ श्लोक ८० में लिखा है कि गुरू वह है जो विद्याभ्यासादि सदुपदेशों से शिष्य के दोनों लोकों का सुधार करे, यथा—

हितोपदेष्टा शिष्यस्य सुविद्याध्यापको गुरुः ॥

इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में भी गुरु कुल में जाकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर विद्याध्ययन करते थे, देखो ब्रह्माजी ने अग्नि वायु आदि ऋषियों से वेदों का अध्ययन किया था, तथा ब्रह्मा जी के निकट जाकर देव मनुष्य तथा असुरों ने विद्याऽभ्यास किया था, भृगुजी ने अपने पिता बरुण के समीप

निवास कर विद्या को पढ़ा, पिप्पलाद ऋषि का पुत्र अंगिरा और सनतकुमार दोनों ने अथर्व ऋषि के पास रहकर विद्योपार्जन किया था, सनतकुमार के पास निवास कर नारद जी महाराज ने अध्ययन किया था, उद्दालक ऋषि के निकट याज्ञवल्क्य जी ने तथा याज्ञवल्क्य जी के समीप रहकर मधुकजी ने, मधुक जी से चूल ने अध्ययन किया था, महात्मा परसुराम जी ने कश्यप जी महाराज के समीप रहकर अध्ययन किया था, ऐसे ही द्रोणाचार्य महाराज ने भीष्मपितामह से कहा है कि मैंने अस्त्रादि विद्या अग्निवेश मुनि के पास जाकर ब्रह्मचर्य सहित गुरुसेवा करके पढ़ी थी।

सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिनि तथा पैल को व्यास जी ने पढ़ाया था, ब्रह्मा ने प्रजापति को, प्रजापति ने मनु को, मनु ने प्रजा को पढाया था, राजा जनक ने पञ्चाशिख नामक महात्मा तथा याज्ञवल्क्य से पढ़ा था, वशिष्ट जी महाराज ने राजा दशरथ और रामचन्द्र जी को पढ़ाया था, विश्वामित्र से भी श्री रामचन्द्र जी ने पढा था, श्रीकृष्ण महाराज ने उज्जैन नगर में निवास कर संदीपन नाम पंडित से पठन किया था, इसी भांति पंजाब के राजा द्रुपद ने अग्निवेश ऋषि के पास निवास कर पढा था, भीष्मपितामह ने द्रोणाचार्य की परीक्षा लेकर कौरव और पांडवों को पढाया था, तथा गुरु कुल में रहने के लिये उन्होंने सब प्रकार का प्रबंध किया था, इसी भांति सर्व आर्य शिरोमणों ने गुरु कुल में रहकर विद्याध्ययन किया था।

प्रिय सज्जन पुरुषो उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि गुरु ज्ञान के अर्थ किये जाते थे, ज्ञान पूर्ण विद्वान वा ज्ञानियों से प्राप्त होता है, अतः प्राचीन काल में विद्वानों के समीप रहकर अध्ययन करते थे, वेदों में भी अग्नि और सूर्य के समान विद्वानों से विद्या पढ़ने की आज्ञा है, यथा—

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चसान् ।
सहस्रदा असि सहस्रायत्वा ॥ ४० ॥

अर्थात् पूर्ण विद्वान् को ही गुरू करना चाहिये देखिये लिंगपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय २० में लिखा है कि गुरू मान्य पूज्य और गुरू साक्षात् सदा शिव है, परन्तु वह गुरु शास्त्र वेत्ता, तपस्वी, बुद्धिमान, लोकप्रिय, लोकाचार का जाननेवाला, तत्ववेत्ता, मोक्ष देने में समर्थ हो, अन्य गुण सम्पन्न और सब विधानों में कुशल भी हो, आत्मज्ञान से हीन हो तो निष्फल है, क्योंकि जिसको आत्मिक ज्ञान न हो तो वह क्योंकर शिष्य पर अनुग्रह करसकता है, अर्थात् ज्ञानी गुरू आप शुद्ध है तथा शिष्यों को भी शुद्ध करसकता है, आत्मज्ञान से हीन गुरू केवल पशु है, इस कारण तत्व वेत्ता आप मुक्त है तथा शिष्य को भी मुक्ति देसकता है, अज्ञानी गुरू मूर्ख शिष्य का उद्धार किस प्रकार करसकता है, एक शिला दूसरी शिला को नदी पार नहीं करसकती—

गुरुर्मान्यो गुरुः पूज्यो गुरुरेव सदाशिवः ।
गुरुश्च शास्त्रवित् प्राज्ञस्तपस्वी जनवत्सलः ॥
लोकाचार रतो ह्येवं तत्त्व विन्मोक्षदः स्मृतः ।
सर्व लक्षण सम्पन्नः सर्व शास्त्र विशारदः ॥
सर्व्वोपाय बिधानज्ञस्तत्त्व हीनस्य निष्फलाम् ।
स्वसं वैद्ये परतत्त्वे निश्चयो यस्य नात्मनि ॥
आत्मनोऽनुग्रहो नास्ति परस्यानुग्रहः कथम् ।
प्रबुद्धस्तु द्विजो यस्तु सशुद्धः साधयत्यपि ॥
तत्व हीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्म परिग्रहः ।
परिग्रह विनिर्मुक्तास्ते सर्व्व पशवोदिताः ॥
पशुभिः प्रेरिता येतु सर्व्वेते पशवः स्मृताः ।
तस्मात्तत्वविदो येतु ते मुक्ता मोचयन्त्यपि ॥

संविन्त जननं तत्वं परानन्द समुद्भवम् ।
तत्त्वन्तु विदितं येन सएवानन्द दर्शकः ।
न पुनर्नाम मात्रेण संविन्ति रहितस्तुयः ॥
अन्योन्यं तारयेन्नैव किं शिला तारयेच्छिलाम् ।
येषां तन्नाममात्रेण मुक्ति वै नाम मात्रिका ॥

श्रीमद्भागवत स्कंद ११ अध्याय ३ श्लोक २१ में लिखा है—

तस्मादगुरुं प्रपद्येत जिज्ञसुः श्रेय उन्तमम् ।
शाब्दे मरीचे विष्णाहं ब्रह्मण्युप शयाश्रयम् ॥

जो पुरुष वेद के अर्थ को अच्छे प्रकार से जानता हो, शिष्य के संदेहों को अच्छे प्रकार से दूर करसकता हो, जिसको परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान हो, जो शांति प्रकृति हो उसको गुरु करना चाहिये ।

शुक्र नीति अध्याय ४ में लिखा है कि जो मनुष्य मंत्र और अनुष्ठान में संपन्न वेद वित, कर्म में तत्पर, जितेंद्रिय हो, लोभ मोह से रहित, वेद के व्याकरण आदि छः अंगों और धनुर्विद्या तथा धर्म का जानने वाला, जिसके क्रोध के भय से राजा भी धर्म नीति में तत्पर हो वही पुरोहित व आचार्य होने के योग्य है, यथा—

मंत्रानुष्ठान संपन्नस्त्रैविद्यः कर्म तत्परः ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभ मोह विवर्जितः ॥
षडंग वित्सांग धनुर्वेद विच्चार्थ धर्म वित् ।
यत्कोप भीत्या राजापिःधर्म नीति रतो भवेत् ॥
नीति शास्त्रास्त्र व्यूहादि कुशलस्तुपुरोहितः ।
सैवाचार्यः पुरोधायः शापानुग्रह योः क्षमाः ॥

इसके उपरांत गुरु शब्द के शब्दार्थ पर ध्यान दीजिये कि (गु) अंधकार और (रः) अंधकार के नाश कर्त्ता को कहते हैं अर्थात् जो अज्ञान का नाश करे उसको गुरु कहते हैं ।

प्रिय सज्जन पुरुषो सत्य शास्त्रों में विद्याध्ययन तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये गुरू करने की आज्ञा पाई जाती है परन्तु वर्तमान समय में इसके विपरीत मूर्ख, अज्ञानी, नाना प्रकार के कुकर्म करते चले जाते हैं, मान्यवरो सनातन धर्म में ऐसे गुरुओं के समीप जाने की भी आज्ञा नहीं, त्यागने तथा दंडदेने के लेख पायेजाते हैं, देखो विदुर जी महाराज ने कहा है कि बिना शिक्षा करनेवाले गुरू तथा मूर्ख पुरोहित से मनुष्य मात्र को कुछ संबंध नहीं रखना चाहिये, यथा—

षडिमान पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तार माचार्य मन धीयान मृत्विजम् ॥

चाणक्य राजनीति में लिखा है कि "विद्या हीनं गुरुं त्यजेत्" अर्थात् विद्या हीन गुरू को छोड़ देना चाहिये ।

इसके उपरांत अयोध्या कांड सर्ग २० श्लोक १३ में लिखा है कि राजा को योग्य है कि जो गुरू कार्य वा अकार्य को न जाने, कुमार्ग में चले कामादि में फस निंदित कर्म करने लगे तो उसको भी दंड देवे ।

गुरोरप्यपवलिप्तस्य कार्याकार्य मजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥

ऐसा ही शुक्र नीति अध्याय ४ के श्लोक ४७ में लिखा है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्य मजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥

इसलिये विद्या हीन कुमार्गी गुरू की प्रथा को जिसका वर्त्तमान में अत्यन्त प्रचार होरहा है उठा दीजिये, क्योंकि मनुष्य जन्म सतविद्या तथा उत्तम सत्संग से ही सफल होता है, वह इन मूर्ख गुरुओं से किस प्रकार प्राप्त होसकता है क्योंकि अंधा अंधे को कभी मार्ग पर नहीं लेजासकता ।

मान्यवरो प्राचीन काल में गुरु कुल में रहकर विद्या पढ़ने की दृढ़ आज्ञा थी तथा राज्यादि प्रबंध भी ऐसा ही था, देखो मनुस्मृति अध्याय ८ श्लोक २७ में लिखा है, जिस बालक के माता पिता का बाल्य अवस्था में देहांत होजाय तो राजा को उचित है कि जब तक विद्याध्ययन करके अपने घर को न आवे तब तक उसकी सम्पत्ति की रक्षा करे, यथा—

बालदायादिकंरिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।
यावत्सस्यात्समावृत्तो यावच्चातीत शैशवः ॥

मान्यवरो इन सब प्रमाणों के अतिरिक्त मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक २, ४ याज्ञवल्क्य अध्याय १ श्लोक ५१ विष्णुस्मृति अध्याय १ श्लोक २५. संवर्त० अध्याय १ श्लोक ३४. शंख० अध्याय ३ श्लोक १५. व्यास० अध्याय १ श्लोक ४२. दक्ष० अध्याय १ श्लोक ७, ८ तथा हारीतस्मृति अध्याय ३ श्लोक १२ और मार्कंडेय पुराण अ० २८ श्लोक १४, १५. विष्णुपुराण अध्याय ३ श्लोक ९ तथा श्रीमद्भागवत स्कंद ११ श्लोक ३८ से स्पष्ट प्रकट है कि ब्रह्मचारी गुरू के यहां से एक या दो या चार वेदों को समाप्त कर उनकी आज्ञा से समावर्त्तन संस्कार कर विवाह करे ।

क्यों महाशय अब हम आप को अन्य क्या प्रमाण दें, प्यारे सुजनों प्राचीन काल में गुरु जन यज्ञोपवीत कराकर शिष्यों को वेद पढ़ाया करते थे, उत्तम आचरण की भी शिक्षा किया करते थे, देखिये यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र २ में लिखा है—

याते रुद्रशिवा तनूर घोराऽपापकाशिनी ।
तयानस्तन्वाशन्त मयागरिशन्ताभि चाकशीहि ॥

शिक्षक अर्थात् गुरू जन शिष्यों के लिये धर्म युक्त नीति की शिक्षा दें, तथा पापों से पृथक करके कल्याण रूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त करें ।

इसके उपरांत द्विजातियों के तीन जन्म माने हैं, उनमें यज्ञोपवीत संस्कार वेद पढ़ने के निमित्त है, यथा मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७० में लिखा है, और मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ६१ में स्पष्ट आज्ञा दी है कि गुरू जन यज्ञोपवीत कराकर सन्ध्योपासन की शिक्षा दें आचार भी सिखलावें, यथा—

उपनीयः गुरुशिष्य शिशयेच्छौच मादिता ।
आचारमग्नि कार्यंच संध्योपासन मेवच ॥

ऐसा ही हारीतस्मृति अध्याय ३ के ५ श्लोक तथा व्यासस्मृति अध्याय १ के २४ श्लोक और शंखस्मृति अध्याय ३ के श्लोक १ में तथा भविष्य पुराण अध्याय ३ में लिखा है ।

वर्तमान समय के सामान्य उपाध्याय संसारक विद्या के पढ़ाने वाले लोभ के बश हो पुत्रों को डंडे लेकर गवाते नचाते हैं, ढोलक मजीरादि भी बजता है, धिक्कार है उन भैयाजू पर जो शास्त्र और बुद्दि के विपरीत शिक्षा देते हैं, तुर्रा यह है कि उनके पितादि इस प्रसन्नता में उपाध्याय जी को दक्षिणा देते हैं, क्या माता पिता पुत्र को नाचना गाना सिखानेवाले नहीं हुए, क्या लज्जा को भी तिलांजली देदी है ?

प्रिय सज्जन पुरुषो उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होरहा है कि प्राचीन काल में वेदानुकूल गुरु जन यज्ञोपवीत के पश्चात् विद्याध्ययन कराकर नाना प्रकार के शुभ गुणों की शिक्षा करते थे, ऐसाही अन्य ग्रन्थों में भी उपदेश दिया है, परन्तु वर्तमान काल में इस सनातन रीति का ऐसा खोज मारा गया है कि देश चौपट होगया, क्योंकि अब मूर्ख गुरू किये जाते हैं, जो यज्ञोपवीत के स्थान पर कंठ में कंठी बंधाते हैं, गायत्री के स्थान पर क्षत्री वैश्य को कपोल कल्पित मंत्र का उपदेश करते हैं ।

मान्यवरो यदि आप को धर्म पर प्रेम है, उसके नाम पर अपना धन तथा समय व्यय करते हो तो अब आप कृपाकर मेरे इस निवेदन को

स्वीकार कर प्रथम आप मेरे लिखित प्रमाण अपनी २ पुस्तकों में अवलोकन कीजिये यदि यह सब बचन आप की पुस्तकों में मिलजावें तो फिर आप इन कुपढ़ मनुष्यों की शिक्षा न लीजिये, यज्ञोपवीत को धारण कीजिये, जिसको सनातन पुरुषा धारण करते थे, कंठी को गले में बांधना त्याग दीजिये, क्योंकि उसके लिये कोई वैदिक आज्ञा नहीं, न स्मृतिकारों ने उसकी पुष्टता की है, न कभी प्राचीन पुरुषों ने धारण की न सद्गरु ऐसी लीला रचते थे, इसके अतिरिक्त कपोल मंत्रों से उपासना करना भी छोड़ दीजिये क्योंकि सत्य ग्रंथों में गायत्री मंत्र से उपासना करने की आज्ञा है।

इसके उपरांत इन मूर्ख गुरुओं ने तो क्षत्री तथा वैश्य को वेद पढ़ने की आज्ञा को ही मेट दिया, फिर गुरु कुल में जाने की आवश्यकता ही न रही, फिर क्योंकर भारत में अंधेरा न होता, इसके अनंतर गुरुओं के आचरणों को आप स्वयं अवलोकन करते हैं कि इन मूर्खों में नाना प्रकार के कुकर्म भरे हुए हैं, जिनके संग से संतानों की भी कुदशा होगई है।

इसलिये मिथ्या पक्षपात को त्याग सत्यासत्य को विचार शीघ्र मूर्ख गुरू करने की प्रथा को भारत से उठा दीजिये और प्राचीन धर्म सभा की आज्ञानुसार कार्य कर कल्याण को लीजिये जैसा मैंने वेद स्मृति उपनिषद पुराणों से वर्णन किया है।

वर्तमान में केवल जाति के अभिमान से गुरु कियेजाते हैं जिसका सर्वत्र निशेध किया है, देखो शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक ६ में स्पष्ट कहा है कि विना विद्या के कोई किसी का गुरु नहीं होता, यथा—

योधीतविद्याः सकलः ससर्वेषां गुरुर्भवेत्।
नच जात्या नधीतो यो गुरुर्भवितु मर्हति॥

मान्यवरों ऐसे ही वेदोक्त धर्मात्मा परोपकारी गुरुओं की सेवा टहल करना शिष्य का परम धर्म है।

स्त्री शिक्षा

प्यारे सुजनों देश और धर्म की उन्नति स्त्रियों पर बहुत कुछ निर्भर है जिस घर की स्त्रियां सुशिक्षित नहीं वह घर दुःख का स्थान है, जिस परिवार में स्त्रियों को उत्तम शिक्षा नहीं मिली वह परिवार संग्राम भूमि है, जिस देश की स्त्रियां विद्या से शून्य हैं वही सुविचार और आचार और सर्व प्रकार की उन्नतियों से रहित है, जब सितार के एक तार टूट जाने से उत्तम राग नहीं निकलता तो फिर क्योंकर गृहस्थाश्रम रूपी सितार के स्त्री रूपी आधे तार टूटे हुए होने पर मर्यादा रूपी राग ठीक २ निकल सकता है, कदापि नहीं, जैसे मूर्ख राजा अपनी प्रजा का नाश मारदेता है, जैसे अज्ञ सेनापति अपनी सेना का बध करादेता है, जैसे अज्ञान स्वार्थी घोड़े समेत रथको चकनाचूर करदेता है, ठीक उसी प्रकार अपढ़ माता अपनी संतानों के शरीर की आत्मिक शारीरिक सामाजिक उन्नतियों के सर्व नाश करनेवाली होती है, इसके अनंतर विद्वान् के संग से विद्या में रुचि तथा मूर्ख के संग से अरुचि बढती है, ऐसे ही साधू का संग हममें साधूपन तथा व्यभिचारी का संग व्यभिचारीपन उत्पन्न करता है, प्रबंध कर्त्ताओं के साथ रहने से प्रबन्ध करने का ढंग उत्पन्न होता है, इत्यादि ।

जिस माता के साथ हमारा इतना गूढ संबंध है तो क्या उसका स्वभाव हमारे लिये तारनेवाला या डुबानेवाला न होगा ? प्यारे भाइयो एक दिन के संग का प्रभाव होता है तो क्या जिस माता के साथ वर्षों हीने का संग हो कुछ प्रभाव न होगा ?

मान्यवरो इसी स्त्री शिक्षा से देश में शुशीलता फैलती है, धर्म की वृद्धि होती है, यही बीर रस को प्रवेश करसकती है, यही शांति की शिक्षा दे संतोष का पात्र बनादेतीहै, इसी को देव और देवी बनाने की सामर्थ्य है, यही

राक्षसी भाव को उत्पन्न करदेती है, यही परा तथा अपरा दोनों प्रकार की विद्याओं के अंकुर जमा देती है।

यदि आप को भारतोद्धार की इच्छा तथा भारत संतान पर स्नेह है तो आइये तन मन धन से स्त्री शिक्षा को प्रचलित कीजिये, तभी भारतवासियों का कल्याण होगा अन्यथा नहीं।

प्रिय सज्जन पुरुषो इसी कारण परम पिता परमात्मा ने वेद में स्त्री शिक्षा के लिये आज्ञा दी है उसी के अनुसार स्मृतिकारों ने भी प्रेरणा की है, प्राचीन काल में स्त्री शिक्षा अच्छे प्रकार से प्रचलित थी जिसके प्रभाव से भारत में नाना प्रकार के आनन्द थे।

अब मैं वेदादि ग्रन्थों की आज्ञायें तथा विदुशी स्त्रियों का संक्षेप वर्णन सुनाता हूं, कृपा पूर्वक श्रवण कर कृतार्थ कीजिये, देखिये यजुर्वेद अध्याय १४ मंत्र १ में लिखा है कि विद्वान् पढाने वाली स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहस्थाश्रम तथा धर्म की शिक्षा देकर उनको श्रेष्ठ करें, यथा—

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासिध्रुवं योनिमासीदसाधुया। उख्यस्य
केतु प्रथमं जुषाणा अश्विना ध्वर्यूसा दयता मिहत्वा॥

अथर्व क० ११ प्रपाठक २४० मंत्र १८ में लिखा है कि जिस प्रकार पुत्र ब्रह्मचर्य धारण करते हैं उसी भांति पुत्री भी ब्रह्मचर्य धारण कर तरुण अवस्था में अपने समान पति को प्राप्त हों, यथा—

ब्रह्मचर्य्येण कन्याया युवानं विंदते पतिम्॥

श्रौत सूत्रों में लिखा है कि स्त्री पुरुषों का समान ब्रह्मचर्य्य होना चाहिये, इसके अनन्तर पत्नी सहित यज्ञ करने का उपदेश है, यथा—

इमं यज्ञं सहपत्नीभिरेत्य॥

शतपथ में भी स्त्रियों को वेदाधिकार अर्थात् वेद पढ़ने की आज्ञा है—

अथ वेदपत्नी विस्र ँ सयति इत्यारभ्य मनुषा
चिकीर्षे ते नैव कुर्यात् इत्यन्त द्रष्टव्यम् ॥

यम ऋषि ने कहा है कि पहिले समय में स्त्रियां यज्ञोपवीत वेदाध्ययन तथा गायत्री का जप यह सब कार्य पुरुषों के समान करती थीं—

पुराकल्पेषु नारीणां व्रतवन्धन मिष्यते ।
अध्यायनंच वेदानां सावित्री वाचनं तथा ॥

इसके उपरांत गर्भाधान संस्कार में--'ओं आदित्यं गर्भ' 'सूर्यो नो दिवस्यातु' 'ज्योषा सवितर्यस्य' 'चक्षुर्नोदेव' 'चक्षुर्नोधेहि' 'सुसंदृशत्वा' आदि मंत्र हैं ।

इसके अनंतर सीमन्तोपनयन, निष्क्रामण, अन्नप्रासन तथा चूड़ाकर्म में--'ओं वीरस्स्त्वं' 'ओंयददश्चन्द्रमसि' 'त्वमन्न परिरन्नादो वर्धमानो भूमान' 'ओं त्वं जीव शरदः शतंवर्धीमान'—इन मन्त्रों के उच्चारण करने की आवश्यकता पड़ती है, तथा विवाह संस्कार में वहुधा स्थानों पर मंत्र बोलने का काम पड़ता है, तथा प्रतिज्ञा वेद मंत्रों से करनी होती है, मनुस्मृति तथा छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि पांचवें वर्ष पुत्र तथा आठवें वर्ष पुत्री को शिक्षा के निमित्त पाठ-शाला में भेजदें, जो ऐसा न करें वह दंडनीय होंगे—

कन्यानां संप्रदानंच कुमाराणांच रक्षणम् ।

इसके उपरांत शिव जी महाराज पार्वती जी को समझाते हैं कि विद्या पढ़ने से स्त्रियों को बहुमूल्य रत्न हाथ लगते हैं, क्योंकि इसी के बल से पति की सेवा तथा ईश्वर की आज्ञा पालन करसकता हैं, वात्सायन ऋषि के बनाये हुए त्रिवर्ग शास्त्र के सूत्रों में जो विद्या सम्भुदेश नाम तीसरा अध्याय उसके दूसरे सूत्र का यह अर्थ है कि स्त्री युवा अवस्था से पहिले विद्या को पढ़े ।

स्कंदपुराण में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, स्त्री, अत्यन्त चांडाल आदि सब मनुष्यों की मुक्ति विद्या करके होती है, यथा—

स्त्रियो वा यदिवा शूद्रो ब्राह्मणः क्षत्रियाः परे ।
मुक्तिंच विद्यया प्रायुरिह भोगं तपा सह ॥

इसके उपरांत मनु जी ने लिखा है कि स्त्रियों की गवाही स्त्रियां दें—

स्त्रीणां साक्षं स्त्रियः कुर्युः ॥

अब ध्यान करने का स्थान है कि जब उनको साक्षी देने की आज्ञा शास्त्र में है तो शाक्षी के गुण निन्दनीय कर्मों का त्यागना है, तो बतलाइये कि वह अबला बिना विद्या के सत असत्कर्मों की विवेचना क्योंकर करसकती हैं, अतः स्त्रियों को अवश्य ही पढ़ना चाहिये ।

फिर (१) संचय करना । (२) आय व्यय का हिसाब । (३) गृह कार्य्यों में चातुर्य्य होना । (४) स्वच्छता । (५) गर्भाधान । (६) शिशुपालन । (७) पति आदि की सेवा । (८) शिशु शिक्षा । (९) एक्यता का बीज बोना । (१०) नम्रता पूर्वक प्रिय भाषण करना । (११) आपत्य के समय में धीरज धरकर प्रबन्ध करना आदि, प्रत्येक स्त्री को करने पड़ते हैं ।

भला बतलाइये कि इन कार्यों को मूर्ख स्त्रियां यथायोग्य करसकती हैं ? कदापि नहीं, क्योंकि इन सब कार्य्यों के अर्थ विद्या रत्न का होना अति ही आवश्यक है, और बिना विद्या के इन उपरोक्त वार्ताओं को उत्तम प्रकार से जान ही नहीं सक्ती फिर करना कैसा—क्या आप इस समय प्रत्येक गृह में इन उपरोक्त वार्त्ताओं के प्रबन्ध को यथोचित देखते हैं ? नहीं, नहीं ।

देखिये (१) संचय की तो यह दशा है कि फूटी कौड़ी पास न निकलेगी

यदि मियां दश पैदा करके दें तो बीवी बारह में आग लगादेती हैं, सो भी निकम्मे तथा निठल्ले कार्य्यों में। (२) आय व्यय का हिसाब किताब कौन करे जब उनको दश तक गिनती ही नहीं आती, अक्षर का स्वरूप ही नहीं जानतीं। (३) गृह कार्य्यों में चातुर्य्य होना--यह तो भलीभांति प्रकट है कि न तो वह पाकविद्या को जानती हैं न शिल्प को, भोजनों की कुदशा के कारण नित्यप्रति गृह में रोग ही बने रहते हैं, निर्बलता ही दृष्टि आती है, क्योंकि वह पथ्यापथ्य को नहीं जानतीं, न व्यञ्जनों के बनाने की रीतों से भली भांति जानकार होती हैं। (४) स्वच्छता—वह इस जीवन मूल पदार्थ से तो अत्यंत ही अज्ञान हैं, इस विषय में तो उनको कुछ भी नहीं आता, क्योंकि शरीर की आरोग्यता बिना स्वच्छता के नहीं होसकती, वह सदा मैले कुचैले रहना, मलीन कपडे पहिनना भला जानती हैं, हां सोने चांदी के आभूषणों का लादना उनको आता है। (५) गर्भाधान की तो वह कुदशा है कि जिसके लिखने में लाज आती है अर्थात् अल्पायु से ही प्रतिदिन दो २ तीन २ बार गर्भाधान क्रिया में लगी रहती हैं, इस की रीतों वा उपायों को बिलकुल नहीं जानती, बहुधा स्त्री आठ मास तक समागम करती चली जाती हैं, कहती हैं कि धान बिना पानी के सूख जाते हैं, उसी प्रकार यदि इसको पानी न मिला तो गर्भ सूखकर गिर पडेगा, इसके उपरांत न उनको गर्भ रक्षा आती है, इन धूर्त वार्ताओं का यह फल होता है कि थोडे ही दिनों में दोनों हाड की माला बनजाते हैं, आयु बल सब ही चला जाता है, इसके उपरांत लाखों गर्भपात होते हैं, सैकडों स्त्री पुरुष सन्तान के अर्थ शिर ठोकते रहजाते हैं, यदि सन्तान होने के उपाय किये जाते हैं तो यह की धुना, जुलाहे, कोरी, माली, धीमर, काछी आदि मूर्ख भूत भैरव मियां शेखसद्दो को पुजवाते उतारे उतरवाते गण्डा तावीज करते गोली चूरण खिलाते हैं, कि

जिनके कारण उनके रोग असाध्य होजाते हैं, फिर बहुधा स्त्रियां पुत्रादि कामना के अर्थ हट्टे कट्टे सण्ड मुसंडे नाम के साधू बैरागी के पास जो गांवों के समीप मढी बनाकर रहते हैं दर्शनों के बहाने आती जाती हैं, फिर उनसे व्यभिचार भी कराती है कि जिससे और भी अपयश होता अर्थात् दोनों लोक विगड जाते हैं। (६) शिशुपालन—प्रथम तो गर्भाधान ही ने उनको सर्व सुख देरक्खे हैं कि जिसके कारण न बल रहता न उत्साह, तिस पर बुढापे की लकडी नेत्रों का प्रकाश, घर के दीपक सैकडों बुझ जाते हैं, इसका कारण अज्ञान वा असावधानी है, क्योंकि उनको दूध आदि खिलाने पिलाने नहलाने का कुछ भी ज्ञान नहीं होता वरन आप भी विना विचार भोजनादि करती रहती हैं कि जिससे बच्चों को अफरा जमोघा सूखा आदि रोग होजाते हैं, अन्त को वह यमपुर चलेजाते हैं, इन सब के उपरांत टीका लगवाने से उनको महा चिड है जिससे बहुधा बच्चे माता के भेट होजाते हैं, फिर माता पिता का इस दुख में और भी शिर हिलने लगता है, इन असावधानियों के कारण स्त्रियों को बुखार प्रसूति आदि ऐसे रोग होजाते हैं कि जिनके कारण जन्म भर रोती रहती हैं, वैद्य की दवा कराने में तो पत्थर पडते पर गण्डा तावीज के अर्थ चुपचाप धन लुटाती रहती हैं, सच तो यह है कि जो बालक इन बिपत्तियों से बचजाते हैं उनके बल न्यून होजाते हैं, क्योंकि प्रथम तो बीज ही निर्बल होता है तिसपर न्यून अवस्था ही से विवाह रूपी बेडी डालदी जाती है। (७) पति आदि की सेवा की यह दशा है कि जहां बहू जी ने होश सम्भाला पति के कान भरने शुरू किये, आप भी सास ससुर देवर जिठानी आदि से तनिक २ बात पर ऐसी झुंझलाती हैं कि मानों किसी को कारूं का खजाना देदिया है, वा भूमण्डल का राज्य इन्ही के आधीन है, वा यह सब इनकी ज़र ख़रीद हैं, नित्य प्रति देवासुर संग्राम मचा रहता

है, परस्पर ताली बजा २ कर ऐसी लड़तीं कि खाना हराम करदेती हैं, अंत को एक चुल्हे के दो कराकर भी पीतम प्यारे से प्रसन्न नहीं होती, वरन माता पिता भाई इत्यादि के साथ ऐसी शत्रुता करादेती हैं कि एक दूसरे का मुंह तक भी देखना पसन्द नहीं करता । (८) शिशु शिक्षा का क्या कहना है, उनको तो विद्यादि कुछ आता ही नहीं जो वह शिक्षा दें, हां नाना भांति के अपगुणों के अंकुर उन बालकों के हृदय में जमा देती हैं कि जिनसे बड़ी हानि होती हैं । (९) एक्यता का वीज--वाह जी वाह जहां सब कार्य फूट से ही हों वहां एक्यता का क्या काम, बहुधा स्त्रियां अपने सुयोग्य पति की जो उनकी सब प्रकार से सुध लेता है किञ्चित बात पर पगड़ी उतारने को तत्पर होजाती तथा ऐसे कटु बचन सुनातीं कि जिनसे उसको सात पीढ़ी तक की याद आती है, शरीर क्रोध में भस्म होजाता है, जब एक गृह ही में एकता नहीं रहती फिर भला अन्यत्र एकता क्योंकर रहेगी ? (१०) नम्रता पूर्वक प्रियभाषण करना--अजी साहब इस रोग ने तो भारत को और भी ग़ारत करदिया क्योंकि नम्रता का तो नाम ही नहीं जानते, अपनी २ ऐंठ में डेढ़ चावल की जुदी ही खिचड़ी पकाते हैं, कोई किसी को नहीं गिनता, घर में बहू जी को अपना ही घमंड है, सास जिठानी अपने २ नशे में चूर सब ऊटपटांग ही हांकती रहती हैं । (११) आपत्य के समय धीरज धरना--क्या खूब जब आराम तथा सुख से ही गृह रूपी राज्य का प्रबन्ध नहीं करसकती तो भला आपत्य में उनका क्या ठीक, यहां तो तनक २ सी वातों पर बुद्धि मारीजाती है, हक्का बक्का होकर सारे दिन रोती रहती हैं, सब अड़ोसी पड़ोसी तथा सम्बन्धी उसके हितू बन अपना २ मतलब बनाते हैं ।

इन सब के उपरांत जब कभी पति आदि परदेश चले जाते हैं तब वह घूंघट

वाली स्त्रियां चिट्ठी पढने या पढाने के अर्थ अन्य पुरुषों को बुलाती या उन के पास आप जाती हैं तो संपूर्ण भेद खुलजाते हैं, तिसपर भी बहुधा बातें लज्जा के कारण लिखने से रहजाती हैं और इस के अतिरिक्त ऐसी स्त्रियों के फिर और भी गुल खिलते हैं जिन के तमाशे हम तुम देखते हैं, भला बताओ तो सही मेले आदि में यह मूर्ख स्त्रियां क्या २ लीला रचती तथा आभूषणों के अर्थ गृहों में किस प्रकार दुंद मचाती कि जमीन को उठालेती हैं, चाहो एक आने रुपये का सूद दो, चोरी आदि कैसा ही दूषित कर्म करो परन्तु उनको छम छम अवश्य ही कराओ, चाहें रोटी मिले या न मिले परन्तु उनको कीमती वस्तु हों।

इस के उपरान्त मूर्ख होने के कारण विधवाओं की दशा कैसी सोचनीय होरही है जिसके कहने में लाज आती है, इन सब बातों के अतिरिक्त हम लोगों में मुसलमानों का कोई पानी नहीं पीता परन्तु जब कभी बच्चे बीमार होजाते या गर्भणी स्त्री को किसी प्रकार की बाधा होजाती है तो उसी समय गृह की स्त्रियां उन रोगों की ओषधियां नहीं करती बरन थोड़ा पानी मसजिद में भेज मुल्ला से पढ़वा कर मंगवाती हैं तथा झूठा पानी पीती पिलाती हैं।

२—जीव हिंसा करना हम सब के यहां महा पाप माना गया है, परन्तु यह स्त्रियां काली देवी पर बकरे, मसानी पर घेंटा, मीरा पर कलेजी, होली दिवाली की रात को अनेक कौतुक करती हैं—क्या यह महा पाप की बात नहीं हैं ?

३—इन्ही की कृपा से सन्तान डरपोंक होजाती है क्योंकि उनको बचपन से ही हउआ लूलू आदि का डर दिखाया जाता है।

४—बालको कें बुरे नाम रक्खे जाते हैं जिससे बड़े होने पर उनको

लाज आने के कारण नाम पलटना पड़ते हैं, बालकों में झूठ बोलने की बान डालने वाली भी स्त्रियां ही हैं क्योंकि वह उनको सिखलाने के समय कहती कि लल्ला चीजी कौआ लेगयो, वा यों कहती कि--लेजा रे कौआ लेजा ! लेजा री चिड़िया लेजा ! ऐसा कहकर चीज को छिपादेती फिर देज़ारे कौआ देजा, ऐसा कहकर बस्तु को दिखलाती हैं ।

मान्यवरो ऐसे ही बार्तालाप से तरुणाई में भी मिथ्या बोलने को बुरा नहीं समझते, इन्ही कारणों से माता की बात का विश्वास नहीं रहता।

५–जो प्रतिदिन गृह के भीतर रहकर लज्जावती कहलाती वही विवाह आदि में मन खोलकर सब के सन्मुख अच्छे प्रकार अपशब्दों सहित सीठनों को गा अपने को कृतार्थ मानती हैं ।

६–बहुधा रीतें ऐसी प्रचलित करदीं कि जिनसे सभ्य मंडली के सन्मुख लज्जा आती है यथा--चाक, कुआ, चोराहा, धुरा, बांबी, बरगद, क़बर, कूकर आदि पूजना, मियां मदार की जारत को जाना, शेख सद्दो पर चादर चढ़ाना, चरी के नाम से बाहर जाना, आदि ।

अब आप प्राचीन काल की सुयोग्य विद्वान् स्त्रियों का संक्षेप वृत्तांत श्रवण कीजिये

१—अरुन्धती – जो वशिष्ट मुनि की पुत्री थी, इनका पढ़ा लिखा होना पोथी अरुन्धती से प्रकट है।

२—अनुसुइया—जो अत्रि मुनि की स्त्री थी, रामायण से प्रकट है इन्हों ने सीता जी को धर्मशास्त्र के अनुकूल पतिव्रत धर्म सुनाया था ।

३—रुक्मिणी—जो श्रीकृष्ण महाराज की स्त्री थी, इनका पढा लिखा

होना भागवत से विदित है, इन्हों ने श्रीकृष्ण महाराज को चिट्ठी लिखी थी।

४—रेनुका—धर्मशास्त्र अच्छे प्रकार से जानती थी, अति चतुर गिनी जाती थी।

५—द्रोपदी—जो अर्जुन की स्त्री थी, पोथी भक्तमाल और महाभारत के देखने से प्रत्यक्ष होता है कि यह विद्वान चतुर और कुशल थी।

६—उत्तरा—जो राजा बिराट की पुत्री थी, महाभारत से विदित है कि इसके पिता ने पढने के अर्थ अर्जुन के पास भेजा था जो पढ लिख कर ऐसी योग्य हुई कि जिसकी गिनती विद्वान् स्त्रियों में होनेलगी।

७—मन्दोदरी—धर्मशास्त्र को अच्छे प्रकार से जानती थी, इसी कारण से रावण को अनेकान प्रकार से समझाया था कि तुम रामचन्द्र जी से अपना अपराध क्षमा करा कर सन्धि करलो।

८—सुलोचना—जो मेघनाद की बधू थी, रामायण से विदित है कि इसने अपने पति का लिखा हुआ पत्र पढा था।

९—तारा—बाल की स्त्री थी, इसका ज्ञानवान होना रामायण से विदित है, इसने अपने पति को रामचन्द्र की आधीनता स्वीकार के अर्थ बहुत कुछ समझाया था और बाल की विजय के कारण प्रसिद्ध थी।

१०—चन्द्रसखी—अपने समय में कविता के कारण प्रसिद्ध थी।

११—ऊखा—बाणासुर की पुत्री थी, पार्वती से शिक्षा ग्रहण कर योग्यता प्राप्त की थी।

१२—कुन्ती और गंधारी—इनका विद्वान् और चतुर होना महाभारत से प्रकट है।

इनके उपरान्त, दमयन्ती जो राजा नल की स्त्री थी, लीलावती जो राजा भोज की स्त्री थी इनकी बनाई कई पुस्तक गद्य पद्य संस्कृत तथा भाषा में हैं, लीलावती इन्ही की बनाई हुइ है, पदमावती जो राजा विजयपाल की पुत्री थी, विद्योतमा जो राजा सारदानन्द की पुत्री थी इस ने अपने पति कालीदास नामी मूर्ख को शिक्षा देकर अति उत्तम कवि बनादिया था, जिनके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ हैं, विद्याधरी जो मणिमिश्र की स्त्री थी इसी ने राजा भोज को शिक्षा देकर स्त्री शिक्षा का प्रचार कराया था, राजा पृथु की रानी जो शिक्षा पर दस लाख रुपया व्यय किया करती तथा आप ही परीक्षा लिया करती थी, अहल्या बाई यह विद्या बल से सम्पूर्ण राज्य कार्य्य धर्म शास्त्र के अनुसार किया करती थी जो हुलकर की स्त्री थी, बदूला ने अपने पुत्र को धर्मशास्त्र की शिक्षा दी थी, मन्दालसा ने अपने पुत्र को जन्म से ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया था, कैकेयी यह युध्द शास्त्र को अच्छे प्रकार जानती थी, शिवा जो वेद विद्या के जानने वाली थी जिसकी योग्यता की प्रशंसा व्यास जी ने की है, देवहूती जिनको कपिलाचार्य्य ने ब्रह्म विद्या और वेद विद्या पढ़ाई थी, तद अनन्तर, राधिका, अंजनी, सत्यरूपा, अगमा, पदमा, सुनवा, गार्गी, सुलभा, कुरमती, राजा जनक की स्त्री, इत्यादि पढ़ी लिखी सुज्ञान होगई जिनके वृत्तान्त में एक ग्रन्थ बनसक्ता है इन के उपरान्त और भी बहुधा स्त्री सुज्ञान होगई हैं।

वर्तमान में भी ऐसी सुयोग्य स्त्री इस भारतखण्ड में (जैसी महाराणी स्वर्णमई, महाराणी जमनाबाई बड़ौदा, बेगम भोपाल) उपस्थित हैं जो अपनी बुद्धिमानी में प्रसिद्ध तथा राज्य शासन को अच्छे प्रकार से चलाती हैं, जिन की प्रशंसा चहुओर फैलरही है, महाराणी स्वर्णमई को तो सब ही भारत वासी जन जानते होंगे क्योंकि इनका पुण्य रूपी यश प्रति स्थान पर सुगन्धित पुष्प के समान खिल रहा हैं, इसके उपरान्त

श्रीमती महाराणी विक्टोरिया कैसर हिन्द को देखिये कि भारत आदि देशों का प्रवन्ध किस प्रकार से कररही हैं कि जिनके राज्य में शेर और गाय एक घाट पानी पीते हैं जिससे राजा राज प्रजा सुखी दिन पर दिन राज्य की उन्नति होती जाती है, संपूर्ण प्रबन्ध उत्तमता से चल रहे हैं, शत्रु उनके आतंक से भयभीत होते हैं, हम कहां तक इनके राज्य की प्रशंसा लिखें क्योंकि सर्व स्त्री पुरुष अपने नेत्रों से अवलोकन कररहे हैं।

मान्यवरो यही सब सुधारों का सुधार है, यदि आप प्राचीन काल की भांति श्रीकृष्ण से योगीराज, व्यास से उपदेशक, युधिष्टर से सत्यबादी, भीष्मपितामह से जितेन्द्री, दोणाचार्य से गुरु, कर्ण से दानी, विदुर से विचार शील, रामचन्द्र से आज्ञाकारी, भाष्कराचार्य से गणितज्ञ, अर्जुन भीम से योधा, लक्ष्मण भरत से भाई, इत्यादि धार्मिक गुणों से परिपूर्ण उत्पन्न करना चाहते हो तो महाशयो कुन्ती, अनुसुया, गार्गी, मंदालका, कौशिल्या, देवहूती, शिवा, सुलभा, सत्यरूपा आदि की भांति स्त्रियों को वेदादि सत्य विद्याओं से भूषित करो, क्योंकि देव तथा देवियो के ही समागम से देवता देवी उत्पन्न हो सक्ती हैं, अन्यथा देवी और राक्षस और राक्षस देवी के संयोग से कभी पूर्ण सुयोग सन्तान उत्पन्न नहीं होसक्ती, प्राचीन काल में स्त्री शिक्षा के प्रभावसे आनन्द रूपी अमृत की वर्षा होती थी, यही भूमि विद्वान रूपी वहुमूल्य रूपी रत्नों को उगलती थी।

मान्यवरो स्त्री शिक्षा न होने से नाना प्रकार के दुःख रूपी तप्त कुंड में पडे हुए भुन रहे हैं, हे देश के सुधारने वालो, हे सन्तान पर दया करने वालो, हे देवताओं के रक्त से उत्पन्न होने वालो, हे ऋषी सन्तानों इस भारत रूपी डूवती नय्या को स्त्री शिक्षा रूपी बल्ली से पार कर भारत के दुःखड़ों को मेंट यश के पात्र बनिये, प्यारे सुजनों अब मैं इसको समाप्त करता हूं - परन्तु इतनी और प्रार्थना है

कि स्त्री शिक्षा प्राचीन काल की प्रणाली के अनुसार कराइये जैसा यजुर्वेद अ० १९ मंत्र १५ में लिखा है –

सोमस्य रूप क्रीतस्य परिस्रुत्यभिषिच्यते ।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्र सरस्वत्या ॥

कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य सेवन कर व्याकरण, धर्म विद्या, और कार्य विद्या सीखकर शरीर को आरोग्य रक्खें ।

प्रिय सजनों यदि इस वैदिक आज्ञा के अनुसार शिक्षा कराइये और उन पाठशालाओं में स्त्रियां ही अध्यापकादि कार्य्यों पर नियत कीजिये जिनका चालचलन और स्वभाव भी उत्तम और योग्य हो तो पूर्ण आशा है कि भारत के भी सौभाग्य के दिन आजावें ।

[५ – विवाह अर्थात् शादी]

प्यारे सुजनों इस समय हमारे देश में बुखार चेचक हैजादि रोगों की बहुतायत है कि जिन से भारत की कुदशा होरही है परन्तु एक अन्य महान रोग फैलाहुआ है कि जिस मूजी के पंजे से कोई भारत वासी रिहाई नहीं पाता, जहां वह रोग सिरपर चढ़ा थोडे ही दिनों में ऐसा थोथा कर देता है जिस प्रकार गेहूं आदि का सत निकलने पर उसकी कुदशा होजाती है जो किसी काम में नहीं आता, इस बीमारी से फोक का फोक वरन उस से भी अधिक निकाला जाता है कि जिस से सूरत भयावनी नांक कान आंख आदि इन्द्रियां थोडे ही दिनों में निकम्मी हो जाती हैं, विचार शक्ति का नामही नहीं रहता, उत्साह तथा साहस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, सच पूछो तो जैसे बुखार के रहने से तिल्ली आदि बीमारी होजाती हैं उससे अधिक इस महारोग के होने से प्रमेह अफरा दमा खांसी आदि रोग उत्पन्न होकर शरीर की चमक दमक जाती रहती है, और आलसी क्रोधी हो बुद्धि भ्रष्ट होजाती है, मानों

इसी रोग ने भारत को चौपट करदिया, सभ्य से असभ्य, राजा से फ़क़ीर और दीर्घायु से अल्पायु बना दिया, भाइयो कहां तक गिनावें सब प्रकार के सुख तथा वैभव को इसने छीन लिया !

बहुधा हमारे पाठक गण इस बात को सुनकर अपने मन में विचार करने लगे होंगे कि यह महान् रोग कौन बला है, अथवा उसके नाम सुनने के लिये विकल होंगे, सो हे सज्जनों इस महान् रोग को तो सब जन जानते हैं, क्योंकि प्रतिदिन आप ही के घरों में उसका निवास है, कौन ऐसा भारत बर्षीय जन है जो बर्तमान समय में उससे न सताया गया हो, किसने उसके पापड़ों को न बेला हो, कौन उसके दुःखों से घायल होकर न तड़पड़ाता हो, यह वह मीठीमार है कि जिसके लगतेही अपने आप सर्व सुखों की पूर्ण आहुती दे मियां मिट्ठू बनजाते हैं, इसी का नाम जादू है क्योंकि कहा है—

क्या लुत्फ़ जो ग़ैर परदा खोले ।
जादू वही जो सिर पै चढ़ के बोले ॥

इस पर भी तुर्रा यह है कि जब यह बीमारी जिस गृह में प्रवेश करती है तो दो तीन चार छः माह से अपनी आमद की ख़बर सुनाती है, जब निकट दिन आते हैं तब सब गृह को पूर्ण रूप से स्वच्छता कराती है, कपड़े लत्ते सुथरे पहिनाती है, गृह में मंगलाचरण होते हैं, इधर उधर से भाई बन्धु आते हैं, जिस राति जो उस महारोग की आमद होती है संपूर्ण नगर में कोलाहल मच जाता है, और उस गृहमें तो वह उछाल होता है कि जिसका पारावार नहीं, दर्वाजों पर नौबत झड़ती है, रंडियां नाच २ कर मुबारकबादें देती हैं, धूर गोले चलते हैं, पंडित जन मन्त्र उच्चारण करते हैं, फिर सब मिलकर उस महारोग को कि जिसके सिर "मौर" होता है चपेट देते हैं, प्रातः होते ही सब स्थानों में मनादी होजाती है ।

अब तो यह महान रोग प्रत्यक्ष प्रकट होगया, कहिये किस धूम धाम से आता है, क्या खेल खिलाता है, कैसे २ नाच नचाता है, सबको बेहोश कर-देता है, अडोसी पड़ोसी तक इस कौतुक में बशीभूत होजाते हैं, सच पूछो तो इस रोग का ऐसे गाजे बाजे से दखल होता हैं कि जिस में किसी प्रकार की रोक टोक नही होती, वरन सब मिल के आप उस महारोग को बुलाते हैं कि जिसका नाम "न्यून अवस्था का विवाह" है।

अब ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि जो २ हानि भारतवर्ष में हुई उनका मूल कारण यही बाल्यावस्था का विवाह है, इसलिये अब हम वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रमाणों से सृष्टि क्रम और प्रचलित रीतों से अच्छे प्रकार सिद्ध कर दिखाते हैं कि विवाह का समय क्या था वह किस प्रयोजन के लिये किया जाता था, मान्यवरों जब हम उपरोक्त ग्रन्थों पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट प्रकट होता है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तान उपज करना है जैसा कि अ० का० ५ अनु० ५ ब० २५ और मनुस्मृति अ० ८ मं० ९६ में लिखा है—

प्रजायैत्वा नयमसि ॥ अ० ॥
प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः ॥ मनु० ॥

इसीलिये मनुष्यो अपनी सन्तानों का विवाह उसी समय करना अभीष्ट है जब कि वह उस के योग्य हो, इसके उपरान्त चरक में १६ वर्ष की स्त्री के साथ समागम करने की आज्ञा है अर्थात् यही समय विवाह करने का है और इससे प्रथम यह महात्मा विषय करने की आज्ञा ही नहीं देते और यह शिक्षा करते हैं कि जो स्त्री पुरुष इससे न्यून अवस्था में समागम करते हैं उनका प्रथम तो गर्भ ही नही रहता यदि रहा भी तो पूरेदिनों तक नहीं ठहरता अर्थात् गर्भपात होजाता है, कदाचित ठहर भी गया तो होने पर मृत्यु के मुह में जाता है यदि

बच भी गया तो दुर्बल इन्द्री होता है, अल्पायु में परमधाम को चलाजाता है जैसा कि—

ऊन षोडश वर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥
जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यंत बालायां गर्भाधानं नकारयेत् ॥

ऋग वेद मं० ३ सू० ८ मंत्र ४ में लिखा है—

युवासुवासाः परिवीत आगात्सउश्र यन्भवति जायमानः ।
तन्धीरासः कवयो उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयनः ॥

जो मनुष्य तरुण होकर विद्या ध्ययन कर अच्छे प्रकार सुन्दर आचरण पर चलकर विवाह करता वह विद्वान तथा महात्मा पुरुषों में पूजनीय होता है।

अथर्व वेद कां० ११ सू० ५ में लिखा है—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानम्विन्दते पतिम् ।

कि ब्रह्मचर्य्य को पूर्ण कर कन्या तरुण पति को प्राप्त हो।

फिर ऋग्वेद म० ३ सू० ५५ में लिखा है—

आधेनवोधुनयन्तामशिश्वीः शवर्दुधाशशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यान व्यायुवतयो भवन्तीर्महद्देवा नामसुरत्यमेकन् ॥

अर्थात् तरुण पुत्री पूर्ण विद्वान होकर सुन्दर विद्या वाले जवान पुरुष से विवाह करे, अन्यथा न्यून आयु में कदापि पुरुष का ध्यान न करे।

और ऋग्वेद मं० १ सू० १७९ में लिखा है—

तुर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तो रुषसो जरयन्तीः ।
मिनातिश्रियं जंरिमातन् नामय्यूनु पत्नी वृषणो जगम्युः ॥

अर्थात् तरुण पुत्र को तरुण पुत्री के साथ विवाह करने से सुसन्तान उत्पन्न

होती आर दोनों पूर्ण आयु को पहुंचते हैं, इसलिये मनुष्यों को ऐसा ही करना चाहिये।

मनुजी महाराज ने अ० ३ श्लोक २ में लिखा है कि जिस मनुष्य ने विधि पूर्वक तीनों वेद अथवा दो वेद वा एक वेद पढलिया हे और ब्रह्मचर्य नियम खंडित नहीं किये उसको योग्य है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें –

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदंवापि यथाक्रमम्।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥

और अध्याय ३ श्लोक ४ में लिखा है कि शिष्य को उचित है कि गुरु से आज्ञा लेकर स्नान और विधि पूर्वक समावर्त्तन व्रत को पूर्ण कर उसके उपरान्त अपने वर्ण की स्त्री से जिसके लक्षण अच्छे हों विवाह करे, यथा –

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधिः।
उद्वहेतद्विजोभार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥

ऐसा ही याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १ श्लोक ११ में लिखा है –

गुरुवेतु वरंदत्वा स्नायीत तदनुया।
वेदंव्रतानिवापारं नीत्वाह्यभयमेववा॥

वेदों के व्रतों को पूरा कर गुरू की आज्ञा से स्नान कर विवाह करे। विष्णु स्मृति अ० १ श्लोक २५ में लिखा है –

अनेनविधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्यच।
गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरु गेहादुपागतः॥

गुरू कुल में जा वेद पढ़ उनकी आज्ञा ले दक्षिणा दे गृह में आ विवाह करे। संवर्त्तस्मृति अ० १ श्लोक ३४ में लिखा है –

अतोद्विजः समावृतः सवर्णां स्त्रियमुद्वहेत्॥

ब्रह्मचर्य आश्रम से समावर्तन संस्कार कर गृह में आकर विवाह करे।

शंख स्मृति अ० ३ श्लोक १५ में कहा है –

एवंव्रतस्तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः।
गुरवेच धनंदत्वा स्नायाति तदनुज्ञया ॥

वेद पढ़ गुरू की आज्ञा से स्नान कर ग्रहस्थाश्रम को ग्रहण करे।

व्यास स्मृति अ० १ श्लोक ४२ में लिखा है –

समाप्य वेदान्वेदौ वा वेदंचा प्रसभंद्विजः।
स्नायीतगुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तो दितदक्षिणः ॥

चारों वा एक वा दो वेदों को पढ़ गुरू की आज्ञा ले दक्षिणा देकर जो स्नान करते हैं उनको समावर्त्तन कहते हैं।

ऐसा ही दक्षस्मृति अ० १ श्लोक ६, ७, हारीतस्मृति अ० १ श्लोक १२ से प्रकट है।

मार्कण्डेय पुराण अध्याय २८ श्लोक १४, १५ में लिखा है कि ब्रह्मचारी गुरु के यहां से एक, दो, चार वेद पढ़ गुरूको दक्षिणा दे प्रणाम कर गृहस्थ धर्म करने की इच्छा हो तो गृहस्थाश्रम में आये अर्थात् विवाह करे, जैसा –

एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्यगुरोर्मुखात्।
अनुज्ञातोऽथवान्दत्वा दक्षिणा गुरुवेत्ततः ॥
गार्हस्थ्याश्रम कामस्तु गृहस्थाश्रम मावसेत्।

विष्णुपुराण अ० ३ श्लोक ९ में लिखा है –

गृहीतप्रात्यवदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्यवै।
गार्हस्थ्य मावसेत्प्राज्ञो निष्पन्न गुरूनिष्कृतिः ॥

श्रीमद्भागवत स्कंद ११ अ० १७ श्लोक ३८ में लिखा है कि समावर्तन नाम संस्कार को कर विवाह करे।

आश्रमादा श्रमंगच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो शास्त्रानुकूल समावर्तन का अधिक से अधिक समय ४८ वर्ष और न्यून से न्यून २५ वर्ष का है जैसा आपस्तंब धर्मशास्त्र प्र० २ प० ११ खं० ३० में लिखा है –

तथा ब्रतेनाष्टचत्वारिंशत्परिमाणेन ॥

छान्दोपनिषद में लिखा है कि ब्रह्मचर्य्य तीन प्रकार का होता है पहिला यह कि जो अपने वीर्य्य को २४ वर्ष तक स्खलित नहीं होने देते उनके शरीर में प्राण बलवान होकर शुभगुणों के वास कराने वाले होते हैं उसी को कनिष्ठ ब्रह्मचर्य कहते हैं, दूसरा ३६ वर्ष तक जो अपने वीर्य को गिराने नहीं देता उसके प्राण इन्द्रियां अन्तःकरण और आत्मा बल युक्त होकर श्रेष्ठ होजाते हैं उसको मध्यम ब्रह्मचर्य कहते हैं, तीसरा ४८ बर्ष तक जो अपने वीर्य को रोकता है उसके प्राण अनुकूल होकर सब विद्याओं को ग्रहण करता है उसको उत्तम ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

प्रिय सज्जन पुरुषों इन सब प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट होगया कि न्यून ब्रह्मचर्य में पुरुष की आयु २५ बर्ष तथा स्त्री की १६ वर्ष की नियत थी, ऐसे ही मध्यम ३६ तथा उत्तम ४८ वर्ष, यही विद्याध्ययन का समय नियत कियागया था ।

शरीर व आत्मा बलिष्ट होजाने के पश्चात् विवाह का समय नियत किया गया था, अर्थात् समावर्त्तन के पश्चात् गुरु कुल से गुरु की आज्ञा ले विवाह होते थे, मान्यवरो यदि आप अपनी सन्तानों को सुख पूर्वक देखा चाहते हो तो सब से प्रथम वेदानुकूल ऋषियों की इस आज्ञा को प्रचलित कीजिये, यही आप के पुरुषों की सनातन रीति है, जिसके अनुसार प्राचीन काल में वेदानुसार तुल्य गुण कर्म स्वभाव से संयुक्त स्त्री पुरुष स्वयम्बर में विवाह कर आनंद भोगते थे, जैसा कि यजुर्वेद अध्याय १५ मंत्र ८ में लिखा है—

प्रतिपदसि प्रतिपदेत्वानुपदस्य नुपदेत्वा संपदासि सम्पदे
त्वा तेजोऽसि तेजसेत्वा ॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय २२१ में श्रीकृष्ण महाराज ने वलभद्र जी से कहा है कि जो पुरुष अपनी कन्या का विवाह विना उसकी इच्छा के करते हैं वह कन्या दान नहीं करते वरन अपनी कन्या को पशुवत वेचते हैं, वह वेद तथा सदाचार के विरुद्ध हैं इसलिये उक्त योगीश्वर आज्ञा देते हैं कि विवाह स्वयम्बर की रीति से होना चाहिये, यथा –

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोनु मन्यते ।
विक्रियं चाप्यपत्ययस्य कः कुर्य्यात् पुरुषो भुवि ॥

और ऐसा ही मनुस्मृति अध्याय ९ श्लो० ९० में लिखा है –

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्द्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत् सदृशम्पती ॥

महाभारत अनुसाशन पर्व अध्याय ४४ श्लोक १६ व १७ में भी लिखा है—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्याऋतुवती सती ।
चतुर्थेत्वथ सम्प्राप्ते स्वयं भर्त्तार मर्जयेत् ॥
प्रजान हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ ।
अतोन्यथा वर्त्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः ॥

तीन वर्ष तक ऋतुवती होने के पश्चात् कन्या वर की इच्छा करे, तीन वर्ष उपरांत अपने समान पति को प्राप्त होने पर कन्या आप विवाह करे ।

देखो वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड सर्ग ११८—

पति संयोग सलभं वयो दृष्ट्वातु मे पिता ॥

अर्थात् सीता जी न अत्रि ऋषि की स्त्री अनसुइया से कहा है कि पति

के सहवास योग्य मेरी अवस्था हुई तब मेरे पिता को मेरे विवाह की चिन्ता हुई, मान्यवरो जब राजा जनक ने स्वयम्मर रचा था तो यह भी प्रण किया था कि जो कोई धनुष को तोड़ेगा उसके साथ जानुकी का विवाह होगा, जिसके लिये अनेक राजा महाराजा एकत्र हुए परन्तु महाराजा रामचन्द्र ने धनुष को तोड़ा सीता जी ने जयमाल डाली फिर रामचन्द्र के साथ वैदिक रीत्यानुसार विवाह हुआ, इसी भांति लोपमुद्रा तरुण अवस्था को प्राप्त हुई तब उसके पिता ने उसके सदृश अगस्त ऋषि को खोज कर व्याह दी, द्रोपदी का विवाह राजा द्रुपद ने मछली भेदने पर नियत किया था जिसको अर्जुन ने भेदकर विवाह किया ।

इसी प्रकार राजा नल का दमयन्ती, पाण्डु का कुन्ती, तथा अज का इन्दुमती के साथ स्वयम्बर की रीति से विवाह हुआ था, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने पूर्ण अवस्था में अपनी इच्छा से राजा ययाति से बिवाह किया था ।

अब इस बात की आवश्यकता उत्पन्न हुई कि स्वयम्वर विवाह किसको कहते हैं, महाशयों यह आठ प्रकार के विवाहों में से परम उत्तम विवाह है, जिसमें कन्या का पिता सम्पूर्ण मनुष्यों को एक तिथि पर एकत्र होने की सूचना देता था, उन आये हुए पुरुषों में से जिसको पुत्री अपने गुण कर्म स्वभावानुकूल जानकर जयमाल डाल विवाह करती थी ।

वहुधा स्वयम्बरों में कन्या का पिता कोई प्रण करता था तो उस प्रण के पूर्ण होने पर विवाह होता था ।

देखिये महाभारत आदि पर्व अध्याय १२ में कुन्ती के स्वयम्वर का वर्णन इस प्रकार से लिखा है कि उस रूपवान् पूर्ण युवा समस्त गृह कार्यों और गुणों से युक्त कुन्ती से वहुत से राजा माहाराजाओं ने विवाह करना पसन्द

किया परन्तु उस महाराणी ने पाण्डु को उत्तम समझ स्वयं अपना वर पसन्द किया इसके अनन्तर अनेक दृष्टांत महाभारत में पाये जाते हैं।

अब आप स्वयं विचार करसक्ते हैं कि उस समय महारानी कुन्ती की क्या अवस्था होगी उन्होंने बड़े राजाओं को त्याग कर पांडु से विवाह किया, श्री महारानी सीता जी की क्या आयु होगी जब उन्हों ने अनसूया से कहा कि मैं विवाह योग्य हुं, सुलभा की क्या अवस्था थी जब कि उन्हों ने श्रीकृष्ण महाराज को पत्र लिखा था, अब स्पष्ट प्रकट होगया कि उस समय इन सब की अवस्था युवा होगी, और विद्या में भी योग्यता रखती होंगी क्योंकि ऐसी परीक्षा विद्या के विना नहीं होसकती और विद्या १६ वर्ष से न्यून में नहीं आसकती।

इसी भांति कुन्ती श्रीकृष्ण की फूफी, गांधारी जो महाराज धृतराष्ट्र की स्त्री थी, लोपमुद्रा जो अगस्त महर्षि की पत्नी थी, अरुन्धती जो बड़ी पतिव्रता श्री महर्षि वशिष्ठ जी की पत्नी थी, मैत्रेयी गार्गी बड़ी पंडिताओं के दृष्टांत से विदित होता है कि इनके विवाह पूर्ण अवस्था ही में हूए थे।

इसके अनन्तर विवाह होने से मनुष्य गृहस्थ होजाते हैं जिनको प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है, वह सब धन से प्राप्त होती हैं, धन विद्यादि उत्तम गुणों से मिलता है, इसी कारण प्राचीन काल में विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह होता था, स्मृतिकारों ने भी यही आज्ञा दी है कि प्रथम आयु के चौथ्याई भाग में गुरु कुल में रहकर विद्या पढ़े दूसरे भाग में विवाह कर गृह में वास करे, मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १ में लिखा है—

चतुर्थ मायुषो भाग मुषित्वाद्यं गुरुः द्विजः।
द्वितीयं मायुषो भागं कृते दारे गृहं वसेत्॥

इसके अतिरिक्त वैद्यक पर ध्यान दीजिये जिसमें शरीर के आरोग्य रखने के नियम हैं, सुश्रुत शास्त्र अ० १० में स्पष्ट कहा है कि पचीस वर्ष के पुरुष

का १६ वर्ष की कन्या से विवाह होना चाहिये, उनसे उत्पन्न हुई संतान ही माता पिता की सेवा तथा धार्मिक काम करनेवाली होती है यथा -

अथास्मै पंचविंशति वर्षाय षोडश वर्षां पत्नीमावहेत ।
पित्र्य धर्मार्थ काम प्रजाः प्राप्स्यतीति ॥

चरक में लिखा है -

शुक्रन्तु क्षयते तस्य ततः प्राप्नोति सक्षयम् ।
घोराम्व्याधि मवाप्नोति मरणाम्बा समृच्छति ॥

जो मनुष्य न्यून अवस्था में विषय करने लगजाते हैं उनका वीर्य बिगड़ कर उनको बहुत प्रकार के रोग होजाते हैं ।

यदि हम संसार भर की कौमों की ओर दृष्टि डालते हैं तो वही अपने पुराने पुरुषों की रीति जो वेद आदि सत्य शास्त्रों की कि जिसको बुद्धि भी स्वीकार करती है प्रचलित पाते हैं, देखलो भारत ही में मुसलमानों में तरुणाई पर शादी होती है, अंगरेज भी इसी प्रथा पर चलते हैं, जिससे उनके डील-डौल गुण विद्या साहस आदि देखने में आते हैं, देखिये श्रीमती महारानी कैसरहिंद ने १८ वर्ष तक यथावत् ब्रह्मचर्य सेवन किया इसी कारण श्रीमती की आकृति उत्तम, आंखें नीली, नाक स्वच्छ अत्यन्त उत्तम, मुखड़े की छवि मोहनी, दांत अच्छे सुन्दर साफ कि जिनके देखने से आरोग्यता व स्वभाव की उत्तमता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है, आप ने फ़ारसी, जर्मनी, लेटिन आदि भाषायें सीखी हैं, गणित भूगोल के अनन्तर गान तथा शिल्प विद्या में पूरी महारत हासिल की है, राज्य शासन प्रजा पालन की रीतें अच्छे प्रकार से जानती हैं, अपरमित व्यय तथा परमित व्यय के हानि लाभ से खूब जानकार हैं, इन सब खूबियों के अतिरिक्त उनके चित्त में दया, परोपकार, साहस, गम्भीरता, मधुर बचन, आदि

गुण हैं, श्रीमती ने श्रीयुत् शाहजादे अलवर्ट को आप पसन्द कर विवाह किया था कि जो उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त वैद्यक न्याय मीमांसादि के पूरे विद्वान थे पर विशेषता यह थी कि अच्छे प्रकार देशाटन किये हुए श्रेष्ठ घराने के थे, व्याह समय श्रीयुत की आयु २५ बर्ष की थी, तब ही तो पति पत्नी में वह प्रेम रहा कि जिसका हम वर्णन नहीं करसकते, राज्य शासन को देखकर उनकी बुद्धि की किससे तुलना होसकती है, आप के प्रताप से शेर और गाय एक स्थान पानी पीते हैं।

शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम रीति पर कुछ ध्यान न देकर लड़के लड़कियों की शादी ८ तथा १० वर्ष में करना उत्तम जान कहते हैं कि –

अष्ट वर्षा भवेद्गौरी नव वर्षा च रोहिणी।
दश वर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥
माता चैव पिता तस्या जेष्ठ भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलां॥

कन्या की आठ वर्ष में गौरी, नव वर्ष में रोहिणी, दशवें बर्ष कन्या तदुपरांत रजस्वला संज्ञा होजाती है, यदि इस समय तक लडकी का विवाह न हो तो माता पिता बड़ा भाई नरक को जाते हैं।

मान्यवरो यह श्लोक कदापि माननीय नहीं हैं, क्योंकि लडकी का रजस्वला होना ईश्वरीय नियम है आरोग्यता अथवा युवा अवस्था प्रारम्भ होने का चिन्ह है, फिर इसमें माता पिता जेष्ठ भाई का क्या दोष जो पापी गिने जावें, यही ठीक माना जावे तो उपरोक्त ऋषि मुनि तथा वैदिक ग्रन्थ कर्त्ताओं के वचन झूठे होजावेंगे, सृष्टि की आदि से लेकर राजा जनक, द्रुपद, भीष्म

आदि राजा प्रजा सब ही नर्कगामी हुए होंगे, परन्तु यह बात असम्भव है फिर हम क्योंकर नर्क में जासकते हैं ?

वर्त्तमान समय में भी बहुधा कौमों तथा कान्यकुब्ज मण्डली अथवा निर्धनों के विवाह लड़की के रजस्वला होने के पश्चात् होते हैं, क्या यह नर्क को जाते हैं, कदापि नहीं।

उपरोक्त श्लोकों का केवल यह अभिप्राय जान पड़ता है कि जब मुसलमान हमारी कन्याओं को छीनते थे तो उनके धर्म बचानें के अर्थ बनायेगये होंगे, ताकि कन्याओं का बिवाह न्यून अवस्था में होजावे, क्योंकि मुसलमानों की धर्म पुस्तकानुसार व्याही कन्याओं का छीनना अधर्म मानागया है।

मान्यवरो यदि यही बात है तो भी आप इस रीत को छोडकर वेदानुसार चलिये, क्योंकि इस समय आप की धर्म परिपाटी में कोई बाधा नहीं डालसकता है।

वर्त्तमान समय के डाक्टर लोग पुकार २ कर कहते हैं, कि ऐसे व्याहों से कुछ लाभ नहीं, देखिये डाक्टर डियूडवी स्मिथ साहब (साबिक प्रिन्सपिल मेडिकल कालिज कलकत्ता) का बचन है कि न्यून अवस्था के विवाह की रीत अत्यन्त अनुचित है क्योंकि इससे शारीरक तथा आत्मिक बल जाता रहता है, मन की उमग चली जाती है, फिर सामाजिक बल काहेका !

डाक्टर नवीमनकृष्ण बोष का बचन है कि शारीरक बल के नष्ट होने के जितने कारण हैं उन सब में विशेष न्यून अवस्था का विवाह जानो, यही मस्तक के बल की उन्नति का रोकनेवाला है।

मिसस पी० जी० फिफसिन (लेडी डाक्टर मुम्बई) का कथन है कि हिन्दुओं की स्त्रियों में रुधिर विकार तथा चर्मदूषणादि बीमारियां अधिक होने का कारण बाल्य विवाह ही है, क्योंकि सन्तान शीघ्र उत्पन्न होती है,

फिर उनको दूध पिलाना पड़ता है जब कि उनकी रगें दृढ़ नहीं होती जिससे माता दुर्बल होकर नाना प्रकार के रोगों में फस जाती हैं।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार एम० डी० का बचन है कि बाल्यावस्था का ब्याह अत्यन्त बुरा है, इससे जीवन की उन्नति की बहार लुटजाती तथा शारीरक उन्नति का द्वार बन्द होजाता है, उक्त डाक्टर साहब ने सभा के बीच में यह भी वर्णन किया था कि मैं तीस वर्ष की परीक्षा से कहसक्ता हूं कि २५ फी सदी स्त्री बाल्यावस्था के ब्याह के हेतु मरती हैं तथा २५ फ़ी सदी मनुष्य इसी से ऐसे होजाते हैं कि जिनको सदा रोग घेरे रहते हैं।

अब विचारये कि विवाह क्या है, मानों स्त्री ओर पुरुष की दृढ़ प्रतिज्ञा है, अब मै आप से पूछता हूं कि जों बातें हम आप न्यून अवस्था में किसी से कहते हैं क्या फिर वह तरुण होने पर कोई भी याद करता है? कदापि नहीं, जब कोई किसी से कहता है वह कहदेते हैं जि बाल पन की बातों का क्या ठीक, यह भी सच हैं जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं होता तब तक उसके क़ौल फ़ेल का क्या ठीक, इसी कारण इस समय कानून अनुसार १८ बर्ष से पहिले किसी का लिखा हुआ वा कहाहुआ कौल प्रमाणिक नहीं होता, इसी भांति जब हमारे स्वदेशियों का राज्य था तो उस समय वेद और वैद्य तथा बुद्धि अनुसार यह बात नियत की थी कि २५ बर्ष से न्यून लड़के तथा १६ वर्ष से कम लड़की की कोई किस्म की प्रतिज्ञा प्रमाणिक नहीं, फिर न्यून अवस्स्था में विवाह कैसा?

प्यारे भाइयो अभी तक गाय घोडी इत्यादि पशुओं पर जब तक कि वह पूर्ण नहीं होजाते बैल घोडा आदि नहीं छुड़वाते कि जिससे उनकी सन्तान निकम्मी न होजावे फिर मैं नहीं जानता स्त्री पुरुषों में जो संसार के जीवों

में सर्वोत्तम हैं यह सुविचार जो गाय घोडी इत्यादि पशुओं के साथ कियाजाता है क्यों छोड दिया ? क्या यह उन पशुओं से भी गये हैं ?

जिस समय जिस वस्तु की मन को इच्छा होती है उसी समय उसके मिलने से परम सुख होता है, विना समय के वस्तु मिलने से कुछ उत्साह और उमंग नहीं होती, न किसी प्रकार का आनन्द आता है, जिस प्रकार भूख के समय में सूखी रोटी भी अच्छी जान पडती है उसी प्रकार बिना भूख के मोहन भोग को भी जी नहीं चाहता, छोटे २ पुत्र पुत्रियों का उस दशा में जब कि उनको काम अग्नि नहीं सताती और न उनका मन उधर को जाता है, शादी करने से क्या लाभ होता है ? कुछ भी नहीं ।

हे सुजनों इन उपरोक्त बुराइयों के सिवाय एक बहुत बड़ी हानि होती है कि जिस कारण भारत में हाहाकार मच रहा हैं, कि जिससे उसके निर्मल यश में धब्बा लगरहा है, वह बुरी बला विधवाओं का जत्था है कि जिनकी आहें भारत के घाव पर और भी नोन छिरक रही हैं, कौन सा ऐसा घर हैं जहां विधवाओं के दर्शन नहीं होते, उस पर भी वह विधवा कैसी जिनके दूध के दांत नहीं गिरे, न उनको अपने विवाह की कुछ सुध न वह यह जानती कि हमारी चूड़ियां क्योंकर फूटी, फिर जब वह तरुण होती हैं तब कामानल प्रबल होने पर नियोग भी नहीं होता, फिर हजारों में से पांच सुंदर आचरण वाली होती हैं नहीं तो नाना लीला रचती हैं, जिन बातों से हमारी लाज की पगड़ी सिर से गिरजाती हैं, क्या उस समय हमारी मूंछें मुह पर शोभा देती है ? हमारी जवानी का नशा एक दम में उतर जाता है आराम पर भी छार पड़जाती है, सच पूछो तो माता पिता इस जलती हुई चिता को अपनी छाती पर देख २ कर हाड़ों का सांचा बनजाते हैं । इन सब क्लेशों का कारण न्यून अवस्था का विवाह ही है क्योंकि भारत में

रांडों की संख्या इतनी है कि जितनी अन्य किसी देश में नहीं पाई जाती, क्योंकि अन्यत्र न्यून अवस्था में विवाह नहीं होता, इसी हेतु से प्राचीन काल में रांड़ों की गणना बहुत न्यून थी, इसके प्रमाण प्रत्यक्ष हैं, देखो जब किसी खेत में गेहूं आदि अन्न बोते हैं तो जमने के पीछे दश पांच दिन में बहुत से मरजाते हैं, एक महीने के पीछे बहुत कम, दो चार महीने पीछे अत्यन्त न्यून मरते हैं, इसी प्रकार जन्म से पांच वर्ष तक जितने बालक मरते हैं उतने दश वर्ष पर नहीं, १० वर्ष से १५ वर्ष तक उससे भी बहुत कम क्योंकि न्यून अवस्था में सूखा, जमोवा, दांत तथा शीतलादि रोग मारडालते हैं, जब किसी पेड़ की जड़ मज़बूत होजाती है तो वह बड़ी २ आंधियों से बचजाता है, इसी भांति बालपन में नाना भांति के रोग होकर मृत्यु कारक होजाते हैं जिस प्रकार १५ या २५ वर्ष में नहीं होते, यदि हों भी तो सौ में पांच।

अब इस ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि यदि न्यून अवस्था का विवाह भारत से उठादिया जावे तो किस कदर विधवाओं का जत्था कम होजावे तथा यह सब उपद्रव जाते रहें, इन पांच का विवाह २५ वर्ष के लडके के साथ हो तो अवश्य उन पांच में से तीन के बालबच्चे भी दो तीन वर्ष में होजावेंगे यदि ऐसी दशा में पति का मरण भी होजावे तो स्त्री उन बच्चों की आशा पर उनके लालन पालन में अपनी आयु को व्यतीत करती रहेगी, पस इस हिसाब से १०० में दो विधवा ऐसी रहजावेंगी कि जिनका कुछ अन्य प्रबन्ध करने की आवश्यकता होगी।

इसलिये आप भी स्वयम्वर की रीति से विवाह करने की प्रथा को प्रचलित कीजिये, यदि इस समय किसी कारण से यह न होसके तो आप स्वयं गुण कर्म स्वभाव मिलाकर कार्य कीजिये जिस प्रकार ऋषि मुनि तथा प्राचीन पुरुषा करते थे।

वर खोजने और वर्ग प्रीति मिलाने की रीति

(१) लड़के की आयु २४ तथा लड़की की १६ वर्ष की हो।

(२) ऊँचाई में लडकी लडके के कन्धे के बराबर हो अथवा कुछ कम हो परन्तु ऊँची न हो।

(३) दोनों के शरीर सम हों।

(४) दोनों विद्वान् हों या मूर्ख।

पुत्री के गुण

(१) जिसके शरीर में कोई बीमारी न हो।

(२) जिसके शरीर में दुर्गंध न आती हो।

(३) जिसके शरीर पर बडे २ बाल न हों न लोम रहित हो।

(४) बहुत बकवाद करने वाली न हो।

(५) जिसका शरीर टेढ़ा न हो, अंग हीन भी न हो।

(६) शरीर कोमल हो।

(७) जिसकी मधुर वाणी हो।

(८) जिसका वर्ण पीला न हो।

(९) जो भूरे नेत्रवाली न हो।

(१०) जिसका नाम वेदानुकूल हो (वेदानुसार नाम के लिये नाम करण संस्कार को देखो)।

(११) जिसकी चाल हंस वा हथिनी के तुल्य हो।

हारीतस्मृति अध्याय ४ श्लोक १, २, ३, ४ तथा शंख स्मृति अध्याय ४ श्लोक १ में उपरोक्त आज्ञा है।

मनु जी महाराज ने यह भी आज्ञा दी है कि कन्या माता के कुल की

छः पीढ़ियों में न हो तथा पिता के गोत्र की भी नहो, उससे विवाह करना चाहिये यथा –

असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
स प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥

प्यारे सुजनों इन बातों को विचार करना अभीष्ट है, क्योंकि उत्तम कुल बृक्ष के तुल्य है, संपति पालों के शदृश, पुत्र मूलवत जानो, जो पुरुष अपनी पुत्रियों को सदा सुखी रखना चाहें वह सुख तत्व को विचार कर विवाह करें वही लोग पेड पत्तों को देखसकते हैं, जो मूल पर ध्यान नहीं देते जो मेरी समझ में उसका देखना मुख्य है, क्योंकि जो मूल दृढ़ होगा तो वह बड़े २ प्रचण्ड वायु के झकोरों से बृक्ष को न गिरने देगा, यदि मूल ही निर्बल हुआ तो थोड़े ही झटके में उखड़ कर गिरपडेगा, इसी प्रकार जो पुत्र सपूत वा सुलक्षण होगा तो धन तथा कुल की प्रतिदिन उन्नति करेगा और सर्व प्रकार से अपने बाप दादे के नाम तथा यश को फैलावेगा तथा नाना भांति से सुख आनन्द देगा, यथा –

एकेनाऽपि सुपुत्रेण पवित्रा गुण शालिना ।
सुरभिः क्रियते गोत्रश्चन्दनेनैव काननम् ॥

एक ही सपूत गुणवान उत्तम आचरण वाले पुत्र से संपूर्ण कुल शोभित और प्रख्यात होजाता है, जैसे चंदन के एक ही पेड़ से वन का बन सुगंधित रहता है, जो कुपूत अर्थात् कुलक्षण हुआ तो वह अपने तन मन धन मान बडाई आदि के धूल में मिलावेगा, इसलिये धन कुल आदि की अपेक्षा लडके के गुण कर्म शील आदि का मिलाना अत्यन्त उचित है, क्योंकि धन बादल की छाया के समान प्रतिष्ठा पतंग के रंग के शदृश, और कुल केवल नाम के लिये है, इस कारण मूल पर सदा ध्यान करने से परम सुख मिलसकता है, अन्यथा कदापि नहीं, किसी ने सच कहा है –

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जायं ।
जो तू सेवे मूल को, फूले फले अघाय ॥

अतः वर कन्या के उपरोक्त गुण मिलाकर विवाह करना चाहिये, जिससे उन दोनों की प्रकृति सदा एक सी रहें, यही सुख का मूल है, किसी कवि ने कहा है –

प्रकृत मिले मन मिलत है, अनमिल से न मिलाय ।
दूध दही से जमत है, कांजी से फटि जाय ॥

इसकारण इन उपरोक्त बातों को मिलाकर यह भी देख लीजिये कि लडका ज्वारी, शराबी, रंडीबाज, चोर आदि न हो, अर्थात् पढ़ा लिखा सुकर्मी सुधर्मी हो उससे परस्पर विवाह करना चाहिये नहीं तो कदापि सुख नहीं होगा।

शोक है कि वर्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी पर किञ्चित् ध्यान न देकर केवल कुंभ मीन आदि का मिलान करके विवाह करदेते हैं जिसकी आज्ञा हमारे सतशास्त्रों में कहीं नहीं पाई जाती है, न पूर्व पुरुष इस परिपाटी पर चलते थे, यदि किसी को दावा हो तो श्रुति के प्रमाण से सिद्ध करके दिखलावे या यही बतलावे कि जब श्री रामचन्द्र व राजा नलादि के विवाह हुए थे तब कौन से ग्रह मिलायेगये थे ?

महाशयो मुझको तो कहीं इस विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता फिर आप क्यों इस परिपाटी पर चलते हैं जिसके कारण अच्छी पुत्री का विवाह बुरे गुण वाले पुत्र के साथ होजाता है जिससे घरों में देवासुर संग्राम मचा रहता है, और पुत्रियां विधवा होकर पंडित महाशय को आयु पर्यंत आशीर्वाद देती हैं, इसके अतिरिक्त इन पण्डितों की भी तो लडकियां जो बडे सोच विचार के साथ गृह मिलाकर विवाह करते हैं विधवा होजाती हैं. इसका क्या कारण ?

इन हानियों के अतिरिक्त जब से भारत में बाल्य विवाह का

प्रचार हुआ एक और बुराई उत्पन्न होगई है, कि लडकी के अर्थ बर खोजने के लिये नाई, बारी, धीमर, भाट पुरोहित भेजे जाते हैं ।

अत्यन्त शोक की बात है कि जब हम १०० या २०० रुपया की बस्तु मोल लेते हैं तो उसको स्वयं जाकर देखते हैं परन्तु इस कार्यपर कि जिसपर हमारे आत्मजों का सुख निर्भर है किञ्चित ध्यान नहो ।

मान्यवरो यह कार्य ऐसा नहीं है कि जिसको सामान्य बुद्धि वाला मनुष्य करसके, परन्तु यह ऐसे मनुष्य का कार्य है जो विद्वान् तथा निर्लोभ हो, संसार को खूब देखे हुए हो, क्या इन नाई बारी भाट पुरोहितों को आप नहीं जानते कि केवल एक २ पैसे पर प्राण देते हैं, फिर उनकी बुद्धि का क्या कहना, बात तक कहना नहीं आती, न विद्वानों का संग किया है फिर भला यह लोभ से कभी बचसक्ते हैं, कदापि नहीं, क्योंकि लोभ बडा प्रबल है बडे विद्वान तथा महात्माओं को सताता है, इसी लोभ में आकर औरंगजेब ने अपने पिता भ्राताओं को मारडाला, लोभ के ही कारण आजकल भ्राता भ्राताओं में नहीं बनती, फिर भला उनका क्या कहना जो दिन रात धन की लालसा में लगे रहते हैं, चाहे लड़का काला कबरा आदि क्यों न हो जहां लडके के बाप ने उनकी मुट्ठी गर्म करने का प्रण किया या खूब आव भगत से लिया, लडकी वाले से आकर लडका तथा कुल की बहुत प्रशंसा करते है अर्थात् संबंध कराही देते हैं, यदि लडकेवाले ने सुध न ली तो लडका उत्तम होने पर भी बहुत अप्रशंसा करते हैं जिसके कारण पति पत्नियों में प्रेम नहीं रहता इन्हीं अप्रबन्धों के कारण बहुधा जन नाना प्रकार के कुचारी हो गये जिनसे बहुतेरी बालिकाओं को जीते जी रंडापे का स्वाद चखा दिया ।

नाई बारी आदि के दुखडे का तो रोना था ही परन्तु महान शोक का स्थान है कि माता पितादि भी न पुत्र को देखें न पुत्री को, यदि आंखें खोल

कर देखते हैं तो कितना रुपया पास है, क्या २ माल टाल है पुत्र पुत्री चाहें चोर ज्वारी क्यों न हों, चाहें समस्त धन को दो ही दिन में उड़ादें, लडकी अपने फूहर पन से गृह को पति के अर्थ जेलखाना क्यों न बनाये परन्तु इसकी कुछ चिंता नहीं।

उपरोक्त कथन से प्रकट है कि विवाह पुत्र के साथ नहीं वरन धन के साथ करते हैं, जब कोई बुराई प्रकट होती है तो कहते हैं कि क्या कर हमारे यहां तो सदा से ऐसाही होता है. प्रिय महाशयो नहीं २ देखिये हमारे ऋषि पुकार २ कर कहते हैं—

कामम्मा मरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तु मत्यपि ।
नैचैवैनां प्रयच्छेत गुणो हीनाय कर्हिचित् ॥

चाहें पुत्र पुत्री मरण पर्यंत कुमारे रहें परन्तु अदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव का विवाह न करे।

विष्णुस्मृति अध्याय १ श्लोक २ में लिखा है कि उत्तम कुल में उत्पन्न हुई सजातीय सुलक्षणा स्त्री से शास्त्रोक्त विधिवत् ब्याह करे।

अनेनैव विधानेन कुर्याद्दार परिग्रहात् ।
कुले महति संभूतां सवर्णां लक्षणान्वितां ॥

इस स्थान पर यह भी स्मरण रहे कि कुलों की उत्तमता जाति वा धनादि से नहीं होती वरन मनुष्यों के कर्म शील गुण इन्द्रियों के दमन अथवा नम्रता आदि से होती है। शुक्र नीति में लिखा है—

कर्म शील गुणः पूज्यास्तया जाति कुले न हि ।
नजात्मा न कुलेनैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥

इसी कारण हमारे परम पूज्य विदुर जी महाराज ने लिखा है कि वही कुल श्रेष्ठ है जिसके मनुष्य वेदों को पढ़कर यज्ञ दानादि वेदानुसार

श्रेष्ठ कर्म करते हैं जहां माता पितादि दुख नहीं पाते, झूठ नहीं बोलते, धर्म भृष्ट नहीं करते तथा जिसमें सुकर्म न होते हों वह कुल बहुत धन होने पर भी नीच तथा त्यागने योग्य हैं—

तपो दमो ब्रह्म वित्तं वितानः पुण्या विवाहाः सततं चान्नदानम् ।
येष्वेवैत सप्तगुणा भवन्ति सम्यग्वृतास्तानि महाकुलानि ॥
येषां वृतं न व्यथते न योनिश्चित्त प्रसादेन चरन्ते धर्मम् ।
ये कीर्त्ति मिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तावृतास्तानि महाकुलानि ॥

मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १ व २ में लिखा है कि जिन कुलों में (१) क्रिया कर्म वेद विहित होते हों, (२) जो सत्पुरुषों से रहित हो, (३) वेदाध्ययन से विमुख हो, (४) मनुष्यों के शरीर पर बडे २ लोम हो, (५) जिन कुलों में बवासीर, (६) धातु क्षीण, (७) मृगी, (८) दम, (९) खांसी, (१०) कोढ़ अपस्मारादि रोग हों, तो ऐसे कुलों को धन, धान्य, गाय, अश्व, हाथी आदि राज्य तथा श्री से सम्पन्न होने पर भी त्यागदेना चाहिये –

हीनाक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोम शार्षसम् ।
क्षय्या मया व्यपस्मारि श्वित्रि कुष्ठि कुलानि च ॥
महात्यपि समृद्धानि गोऽजा विधन धान्यतः ।
स्त्री संबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥

कान्यवरो महात्मा मनु आदि ऋषि पुत्र पुत्री की विधि मिलाने की इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि पिता की सात पीढ़ी सगोत्र पिता के गोत्र तथा ऊपर कहे दश कुलों को त्याग हंस हस्तिनी के समान गमन करने वाली सूक्ष्म लोम उत्तम केश तथा कोमल दांत सुन्दर शरीर जिसका हो ऐसी पुत्री से पुत्र का विवाह करे, इसी भांति पुत्र के भी समान गुण कर्म शुभ लक्षण देखकर पुत्री का विवाह करे ।

प्राचीन काल में इस विधि के अनुकूल विवाह होते थे उसी समय संतान भी उत्तम वलिष्ठ होती थी, अब कुम्भ मीन ने इस विधि का सत्यानाश मार दिया जिससे भारत संतान का सत्यानाश होगया, अतः इस अप्रमाण विधि को शीघ्र त्याग कर दीजिये जिसका वेदादि सत्य शास्त्रों में कहीं प्रमाण नहीं मिलता।

इसके उपरांत बहुधा जातियों में विवाह ठेके पर होता है अर्थात् पहिले करार होजाता है कि इतने रुपये खर्च करने पडेंगे, हमारी समझ में इसमें भी सर्वथा हानि है क्योंकि कहीं २ उतना धन न होने के कारण उत्तम और सुयोग्य जोडे में अन्तर आजाता है, फिर लालच में आकर वेजोड़ जोड मिलाया जाता है कि जिससे उपरोक्त हानि होती हैं, कभी २ लडकी वाला लडके के अर्थ कर्ज ले उसको राज़ी करता है कि जिसकी बदौलत सूद वा असल में गृहवस्तु बेंचकर फकड बनजाता है, भला क्या वह हमारा देशीय संबंधी नहीं है ? यदि है तो क्या उसकी यह कुदशा होने में हमारी नहीं होती, भला अब उसको दुःख तथा उसके बाल बच्चों को तकलीफ होने में क्या हमको कुछ भी लाज नहीं आती, यदि आती है तो इस बुरी रीति को तुरन्त त्याग देना चाहिये।

उपरोक्त बुराइयों के अतिरिक्त निम्न लिखित बातों का भी ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि जिससे दोनों ओर किसी प्रकार का क्लेश न हो, मन न बिगडे, जैसा कि इस समय हमारे देश में होरहा है जिसके कारण भारत की प्रतिष्ठा रूपी पताका छिन्न भिन्न होगई तथा हम नीम वहशी कहलाने लगे—

(१) बरात में बहुत भीड़ लेजाना। (२) बखेर। (३) फूल टट्टी (४) आतिशवाजी। (५) रंडियों का नाच। (६) दान-भूड़।

बरात में बहुत भीड़भाड़ लेजाना

प्रथम विचार करना चाहिये कि बरात ठाठ बाट से लेजाने में दोनों तरफ क्लेश होता है, अच्छा प्रबन्ध तथा आदर सत्कार नहीं बन पड़ता, इसके सिवाय इधर उधर का धन भी बहुत खर्च होजाता है, अतः बहुत धूम धाम से बरात लेजाना कुछ आवश्यक नहीं वरन थोड़ी सी बरात अच्छे सजाव से लेजाना अति उत्तम है उसका दोनों तरफ़ वाले उत्तम खान पान आदि से स-सत्कार कर नामवरी हासिल करसकते हैं, फिर इस कार्य में बृथा धन लगाना वृथा ही है कि जिससे आदर सत्कार न बन पडने से साथी जन यही कहते हैं कि फलाने की बरात में गये थे, वहां खाने पीने का कुछ भी प्रबंध न था सब भूखों के मारे मरते थे दाना घास भी समय पर न मिलता था, इधर लाला लेजाने के समय तो बड़ी सीप साप करते थे परन्तु वहां दुम दवाये जनवासे ही में बैठे रहे।

बखेर

बखेर करना सर्वप्रकार हानिकारक से हानि दायक है, क्योंकि लालच बुरी बला है, बखेर का नाम सुनकर दूर २ के भंगी आदि लूले, लंगड़े, अपाहज, कंगले, दुर्बल अकट्ठे होते हैं, इधर नगर निवासियों में छोटे बडे अटा अटारियों तथा बाज़ारों में ठट्ट के ठट्ट लगजाते हैं, बखेर करने वाले वहां पर मुट्ठियां अधिक मारते हैं, जहां स्त्रियों तथा मनुष्यों के समूह अधिक होते हैं, मुट्ठी के चलते ही हज़ारों स्त्री पुरुष बाल बच्चे तरा ऊपर गिरते हैं, कि जिससे अवश्य ही दश बीस के चोट आती तथा एक आध मर भी जाते हैं, अंधे लंगड़े, लूले आदि की अत्यन्त कुगति होती है, और ऐसा कुहराम पडता है कि कोई किसी की नहीं सुनता, उधर ऊपर से मुट्ठी धड़ाधड चली आती है,

किसी की नाक कान में लगता है वह वैसा ही रहजाता है, लुच्चे गुण्डे स्त्रियों की ऐसी कुदशा देख उनकी नथ आदि में हाथ मारकर भागते हैं कि जिससे नाक भी फटजाती है, कोई छातियों पर हाथ मारता हैं, समधी के दरवाजे पर जो झुंड के झुंड लगजाते है जब वहां रुपयों की मुट्ठी चलती हैं उस समय लूटने वालों को बेहोशी होजाती है, जो वहां दुर्दशा होती है वह देखने ही से जानी जाती है, भला बताइये तो इस बखेर में क्या लाभ कि जिसमें ऐसे २ कौतिक हों तथा धन भी व्यर्थ जावे ? जितना रुपया फेंकाजाता है उसमें से आधे से अधिक मिट्टी आदि में चलाजाता है बाकी एक तिहाई हट्टे कट्टे भंगियों को मिलता, शेष रहा सो सामान्य जनों को, लूले लंगडे अपाहिजों के हाथ कुछ भी नहीं आता, वरन उनका काम होजाता है, अनेकों के चोट आजाती, किसी की पहुंची छल्ला नथनी खडुए अंगूठी आदि जाते रहते हैं, इस सूरत में लानेवाले लाला जी की कुछ लोग प्रशंसा भी करते हों बहुधा वे जन कि जिनके चोट आजाती या जिनकी कोई चीज जाती रहती है वह सब लाला जी के नाम को रोते हैं, जिन मनुष्यों को कुछ नहीं मिलता वह कहते हैं बखेर का नाम था कहीं २ पैसे फेंकते थे, एसे फेकने से क्या होता है ।

बाग बहारो अर्थात् फूल टट्टी

फूल टट्टी की वर्तमान समय में वह चर्चरी है कि रंगीन कागज और अबरक के फूलों के स्थान पर (जो वह भी फ़ज़ूल खर्ची में कुछ कम न थे) हुंडी नोट चांदी सोने की कटोरियां बादाम रुपये अशर्फियों के तख़्ता में लगाने की नौबत आपहुंची यों तो सब अपने रुपये और माल की रक्षा करते हैं, परन्तु हमारे देश भाई आंखों के सामने खडे होकर खुशी से लुटवा देते हैं, कुछ लाभ

नहीं उठाते, हां यह अवश्यमेव सुनने में आता है कि फलाने लाला या साहूकार की बरात में फूल टट्टी अच्छी थी, हरचन्द बचाई गई पर न बची, लडकीवाले के सामने तक न पहुचने पाई कि फूल टट्टी लुटगई, अब विचार करने का स्थान है कि विवाह के कार्य की प्रसन्नता के पहिले लुटने की अशुभ वाणी मुह से निकलना कि अमुक की फूल टट्टी लुटगई कैसा बुरा है ? इसके सिवाय इसमें लट्ठ भी चलजाते हैं, टोपी तथा अम्मामे उतर जाते हैं, तब वह फूल हाथ आते हैं, मानो लूटने वालों की इज्जत जानें पर कुछ मिलता है, बहुधा मजिस्ट्रेट तक नौबत पहुचती है, प्यारो सच पूछो तो आरम्भ ही में ग़मी का सामान होजाता है ।

आतिशबाजी

इससे न कोई सन्सार का लाभ न पारलौकिक, वरन वरसौं का उपार्जन किया हुआ धन क्षणमात्र में जलाकर राख की ढेरी बनादेते हैं, इस प्रकार भीर भाड होती है कि एक के ऊपर दस २ गिरते हैं, एक इधर जाता एक उधर, यहां तक धका पेल मचती है कि बहुधा बेदम होजाते हैं, किसी की पैर की उंगली पिचली, किसी की डाढ़ी जली, किसी की भोहौं तथा मूछों का सफाया हुआ, किसी का दुपट्टा तथा किसी का अंगरखा जलगया, किसी २ के हाथ पावं भुनजाते हैं, बहुधा मकानों के छप्परों में आग लगजाती हैं कि जिससे हाहाकार मचजाता है, बहुधा उनमें नुकसान होजाते हैं, कभी २ मनुष्य तथा पशु भी जलकर प्राण त्यागते हैं ।

इसके अतिरिक्त वायु बिगड जाती है कि जिससे प्राणी मात्र की आरोग्यता में अन्तर पडजाता है, सब का पाप समधी के सिर पर चढ़ता है, तिस पर तुर्रा यह कि घरवालों को कसरत कामों से घर फूंक के भी तमाशा देखने की नौबत नहीं पहूंचती ।

रण्डी का नाच

रण्डियों के नाच ने भारत को गारत करदिया क्योंकि तबला सारंगी के बिना भारत वासियों को कल नहीं पडती, बरात के आने जाने वालों की वह जीवन प्राण है, समधी तथा समधिन का पेट उसके विना नहीं भरता जहां बरात चली विषयी जन विना बुलाये चलने लगते हैं, जो रुपया उसको दिया गया उसका तो सत्यानाश हुआ ही, उसके साथ ही बहुत सी हानि होने के मार्ग खुलजाते है – नाच ही में कुमार्गी मित्र उत्पन्न होजाते हैं, नाच ही में हमारे देश के धनाढ्य साहूकार लज्जा को तिलांजली देदेते है, नाच ही में इन हराम जादियों को शिकार फांसने तथा नौ जवानों का सत्यानाश मारने का समय (मौक़ा) हाथ लगता, बाप बेटे भाई भतीजे सब एक महफिल में बैठ लज्जा का परदा डालकर सब अच्छे प्रकार घूरते तथा आंखें सेंकते हैं।

यह मुरदारें महफिलों में ठुमरी, टप्पा, बारहमासा, गजल आदि इश्क विरह, वस्ल, इश्तियाक़, इन्तजार को गाती हैं, तिस पर तुर्रा यह है कि यह नौजवान खूबसूरत, सिंगार किये हुए स्वरीली आवाज़ से ऐसे २ तीर हाव भाव कटाक्ष से मारती हैं कि जिनको सुनकर स्त्री पुरुष ऐसे घायल होजाते हैं कि फिर उनको सिवाय इश्क वस्ल यार के कुछ भी नहीं सूझता।

सुनिये किसी महात्मा ने कहा है –

दर्शनात् हरते चित्तं स्पर्शनात् हरते बलम् ।
मैथुनात् हरते वीर्य्यं वेश्या साक्षात् राक्षसी ॥

दर्शन से चित्त, छूने से बल, मैथुन से वीर्य जाता है अतः वेश्या राक्षसी के समान जानो ।

तिस पर भी तो बाप बेटे को कुछ नहीं सूझता, जहां आंख लगी चकना

चूर होजाते हैं, प्रतिष्ठा तथा जवानी को खोकर बदनामी का तौक गले में पहिनते हैं, अनेकान इश्क के नशे में चूर होकर घरवार वेंचकर दो २ दानों को मारे २ फिरते हैं, कोई धन कमा २ कर इनकी भेंट चढाते रहते हैं, फिर माता पिता दो दो दानों को मारे २ फिरते हैं, सच पूछो तो अपनी करनी का फल भोगते हैं, क्योंकि प्रथम तो प्रत्येक उत्सव अर्थात् लडका होने, नाम करण, मुंडन, सगाई विवाह के उपरांत जन्म अष्टमी रासलीला रामलीला होली दिवाली दशहरा बसन्त आदि पर बुलवा २ कर इन नव जवानों को रसभरी आवाज तथा मधु भरी आखें दिखलाते हैं कि जिससे बहुधा रंडीवाज होजाते हैं, तथा आतिशक सूज़ाक आदि बीमारियां घेर लेती कि जिनकी आग में वह खुद भुनते रहते तथा औलाद को निरास छोड जाते हैं।

अनेकानेक जन रण्डियों के नाज़ नखरे तथा वनाव सिंहार आदि पर ऐसे मोहित होजाते हैं कि घर की विवाहिता स्त्रियों के पास तक नहीं जाते, नाना प्रकार के दोष उन पर धर कर मुंह से बोलना भी अच्छा नहीं समझते, वह विचारी दुःखों में रात दिन रोती रहती हैं।

वहुधा स्त्रियां जो महफिल का नाच देखलेती हैं उन पर इसका ऐसा बुरा असर होता कि जिससे घरके घर उजड़ जाते हैं, क्योंकि जव वह देखती हैं कि सम्पूर्ण महफिल के लोग उस मालजादी की ओर टकटकी लगाये हुए उसके नाज़ नखरे सहरहे हैं यहां तक कि जब वह थूकने का इरादा करती तो एक आदमी उगालदान लेकर हाजिर होता, ऐसे ही यदि पान खाने की ज़रूरत हुई तो भी निहायत नाज़ तथा अदब के साथ मौजूद किया जाता है, इसके उपरांत वह दुष्टा नीचे से ऊपर तक सोने चांदी के आभूषणों तथा अतलस गुलवदन, कमख्वाब, सासनलेट, गिरंट आदि बहुमूल्य वस्त्रों का पिसवाज को

एक २ दिन में चार २ दफे नई किस्म के बदलती तथा इतर फुलेल की लपटें उससे चली आती देखकर विद्या हीन स्त्रियों के मन में बस जाती है कि जिसका अखीर नतीजा यह होता है कि बहुधा वहीं खुल्लम खुल्ला लज्जा को त्याग रण्डी बनकर गुलछर्रे उडाने लगती है, कोई २ रेल पर सवार हो अन्य देशों में जा अपने मन की आशा पूर्ण करती हैं, क्या यह हमारी तुम्हारी बहू बेटी नहीं हैं ? यदि हैं तो फिर कैसे शोक का स्थान है कि कुछ भी विचार न कर आंखों पर पट्टी बांधे हम हुए चले जावें।

इसके अनन्तर जब दर्वाजों पर रण्डियां गाली गाती हैं, उधर से उसका जवाब होता है, देखिये उस समय कैसे अपशब्द बोलेजाते हैं कि जिनको अन्य देशीय सुनकर हंसते २ पेट फुला कर कहते है कि इन्होंने तो रण्डियों को मात कर दिया, धिक्कार है ऐसी सासा आदि पर जो मनुष्यों के सन्मुख ऐसे २ शब्द उच्चारण करें अथवा रण्डियों से इस प्रकार की गालियां सुनकर भाई, बन्धु, माता, पिता आदि की किञ्चित लाज न करें और गृह के बीच घूंघट में रहें तथा आवाज से बात भी न कहें, सच पूछो तो विवाह क्या मानों परदेवालयों को बेशर्म बनाना है, इस पर तुर्रा यह कि खुश होकर रण्डियों को रुपया देती हैं।

प्यारे सुजनों इन रण्डियों के नाच के ही कारण जब मनुष्य रण्डीबाज होजाते है तो वह अपने धर्म कर्म पर भी धता भेजदेते हैं, जहां नाच होता है दस पांच मुड़जाते हैं, इसके उपरांत जो रुपया उत्सव तथा खुशियों में उनको दिया जाता है उससे बताओ 'बकरईद' में वह क्या करती हैं ? वह हत्या भी हमारे तुमारे सिर पर होती है, क्योंकि जब हमको यह बात प्रकट है कि यदि इनके पास रुपया होगा तो हाथ मलकर रहजावेंगी फिर भला

बताओ तो अब कौन अपराधी है, रंडियों के गान को सुनिये वे क्या कहती हैं—

॥ कवित्त ॥

शुभ काज को छांड कुकाज रचैं धन जात है व्यर्थ सदा तिनको।
एक रांड बुलाय नचावत हैं नहीं आवत लाज ज़रा तिनको॥
मिरंदग भनै धृक है धृक है सुर ताल पुछै किनको किनको।
तब उत्तर रांड बतावत है धृक है इनको इनको इनको॥

यदि बुद्धिमानी से पक्षपात त्याग कर विचार किया जावे, तो प्रत्यक्ष प्रकट होजावेगा कि रंडियों के नाच ही के कारण देश में निम्न लिखित हत्याओं की जड़ पड़गई—

(१) बाल हत्या, (२) स्त्री हत्या, (३) पुत्री हत्या, (४) गो हत्या, (५) विश्व हत्या, (६) कुल हत्या, (७) आत्म हत्या, (८) गुरु हत्या, (९) ब्रह्म हत्या।

अथोपरांत भक्ति तथा योग की हानि धर्म अथवा ईश्वर में श्रद्धा का अभाव सत्संग व मित्रता की हानि होती है।

प्रियवरो यदि आप के विचार में भी उपरोक्त वार्त्ता ठीक हो तो शीघ्र भारत सन्तान के उद्धार के अर्थ वेश्याओं के नाच को त्याग दीजिये वरना सम्मति देने से आप भी दोषी होंगे।

भांड़

ज्यों ही वेश्याओं के नाच से निश्चिन्त हुए त्योंही भांडों का लश्कर बर्सात के मेंडकों की भांति, भांति २ की बोली बोलता हुआ निकल पड़ा, अब लगी तालियां बजने, कोई किसी की घुटी खोपड़ी में चपत जमाता है,

कोइ गधे की भांति चिल्लाता, एक मियओं, एक फुस अर्थात् अनेक प्रकार के कोलाहल मचाते तथा ऐसी २ नकलें बनाते सुनाते कि लाला जी, सेठ जी पण्डित जी आदि की प्रतिष्ठा में पानी पड़जाता है, ऐसे २ शब्दोच्चारण करते हैं कि जिनके लिखने में हमको लज्जा आती है परन्तु उस सभा के बैठने वाले जो सभ्य कहलाते हैं कुछ लाज नहीं करते, वरन प्रसन्न चित्त होकर हंसते २ अपना पेट फुलाते तथा पारितोषिक प्रदान करते हैं।

प्यारे सुजनों इन्ही व्यर्थ बातों के कारण हमारी सन्तानों का सत्यानाश मारागया, इस कारण इन मिथ्या प्रपञ्चों को शीघ्र त्याग करदीजिये कि जिसके कारण इस देश का पटपड़ होगया, कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि जहां प्राचीन समय में प्रत्येक उत्सवों में ऋषि मुनि महात्मा जनों के सत्योपदेश होते थे वहां रंडी तथा लौंडे का नाच या भांति २ की नकलें आदि तमाशे दिखलाये जाते हैं हा शोक ! हा शोक ! हा शोक ! ! !

अथोपरांत स्त्रियों को बाजार तथा गली कूंचे या घर में फूहर गाली अथवा गीत न गाना चाहिये, हां जिनमें मर्यादा के शब्द हों उनको कोमल वाणी से गाना भला है क्योंकि युवतियों को युवा अवस्था में निर्लज्ज शब्द काढ़ना मानों बारूद की चिनगारी छोड़ता है तथा ऐसे अपशब्दों से स्वभाव भी बिगड़ जाता है, चित्त विकारों से भरजाता है, मन विषय की ओर दौड़ने लगता है फिर उसका साधना अत्यंत ही कठिन वरन दुस्तर होजाता है।

उचित है कि मन को पहिले ही से विषय रस की ओर न झुकने देवे, योवन मतवाले के हाथ में विषय रस रूपी हथियार देके अपने हितकारी सत्गुणों का नाश न करवावे इससे मन को पहिले ही से रोके रहे फिर रुकना कठिन है।

अथोपरान्त दोनों ओर से ऐसा कोई काम न करना चाहिये कि जिससे

आपस में प्रेम न रहे यथा बहुधा बरातों में दाने घास परोसे आदि तनिक २ सी बातों में ऐसे झगड़े डालदेते हैं कि जिससे समधियों के मनों में अन्तर पड़जाता है कि जिसके कारण लाख देने पर भी आनन्द नहीं आता, क्योंकि कहा है—

जहां गांठ तहं रस नहीं, यही प्रीति की वान ।

सच है कि बिना प्रेम के सर्वस्व मिलने पर भी प्रसन्नता नहीं होती, अतः प्रीति पूर्वक प्रत्येक कार्य को करें कि जिससे दोनों तरफ प्रशंसा हो पर खर्च व्यर्थ न हो, प्यारे सुजनों तनिक तो विचारांश करो कि जब एक की बुराई हुई तो क्या वह हमारा सम्बन्धी नहीं है, क्या वह हमारी बदनामी नहीं हुई ? सच पूछो तो ऐसे सम्बन्धियों पर धता भेजना उचित है, क्योंकि प्यारे भाइयो यह विवाह का समय आनन्द तथा प्रेम बरसाने या मृदुल कोमल वार्तालाप करने का है नकि इस समय में एक दूसरे के विपरीत लीला रचकर युद्ध का सामान इकट्ठा करलेना, यह सर्वथा मूर्खता की बात हैं, अतः परस्पर एक दूसरे की भलाई तन मन से विचार कार्यों को कर यश लेना उचित है, अथोपरांत उन मनुष्यों की बात जो मन से दोनों की धूर चाहते तथा बाहर से बहुत लल्लो पत्तो करते हैं, उनकी वार्त्ता पर कदापि ध्यान न दो, क्योंकि इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय पर वास्तव में कल्याण करनेवाला हो, उसका बोलने वाला तथा सुनने वाला पुरुष दुर्लभ है, सा यथा—

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रिय वादिनः ।
अप्रियस्यतु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्ल्लभः ॥

क्योंकि बहुधा गुप्त शत्रु तथा दुष्ट लोग सन्मुख उसकी हां में हां मिलाते हैं और पीछे बुराई निकाल कर दरसाते हैं, तथा सज्जन लोग मुंह पर प्रत्येक

वस्तु के गुण दोष वर्णन करते हैं, परोक्ष में प्रशंसा करते हैं, अतः दोनों समधियों आदि को योग्य है कि आप दो पर दो प्रत्येक बात का निर्णय कर जो दोनों के लाभदायक हों अंगीकार करें जिससे दोनों आनन्द में रहें, यह विवाह का मुख्य फल है, अतः एक दूसरे के धन को मिथ्या खर्च न करा कर जो धन दान के नाम से दिया जाता है उसको यथार्थ विचार के देना योग्य है।

वर्त्तमान समय में वर तथा कन्याओं में जो प्रतिज्ञा कराई जाती है वह महादेव व पार्वती के नाम से होती है इससे जान पड़ता है कि महादेव व पार्वती के विवाह से प्रथम प्रतिज्ञाएं नहीं होती थीं, मान्यवरो यह प्रतिज्ञाऐं वेदोक्त तथा सृष्टि के आदि से चली आती हैं, इसलिये आप भी वेदोक्त प्रतिज्ञाऐं कराइये जिसप्रकार श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अपनी बनाई संस्कार बिधि में लिखी हैं परन्तु वर्त्तमान समय की प्रतिज्ञाऐं सर्वथा वेद विरुद्ध हैं, अथोपरांत बर तथा कन्या से ही इन प्रतिज्ञाओं को उच्चारण कराइये क्योंकि सच मुच इन्ही बचनों का नाम विवाह है।

वर्त्तमान समय के पण्डित लोग विवाह के समय हवन पूर्ण रीति से नहीं कराते वरन गणेश (महादेव के पुत्र) का पूजन वेदोक्त मंत्र (गणानां त्वा०) आदि से कराते तथा बीच २ में दक्षिणा लेते जाते हैं, जिसकी आज्ञा प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलती, बुद्धि के भी विरुद्ध है क्योंकि सर्व जन जानते हैं कि महादेव व पारवती के विवाह पश्चात् इन गणेश जी का जन्म हुआ होगा, तो इससे प्रथम जो हमारे पूज्यों के विवाह संस्कार हुए होंगे उसमें इन गणेश का पूजन कैसे हुआ होगा, ज्ञात होता है कि प्रथम गणों के ईश परमात्मा का पूजन होता था जिसके स्थान पर अब मिट्टी के गणेश बनाकर पूजन कराकर दक्षिणा लेने लगे।

मान्यवरो इस प्रकार दक्षिणा देना भी अत्यन्त बुरा है क्योंकि जब बीच में पण्डित तथा यजमान में दक्षिणा का झगड़ा होते ही वैदिक संस्कार का स्वाद बिगड़ जाता है तब श्रोताओं को आनन्द नहीं आता, अतः संस्कार के अन्त में यथारुचि दक्षिणा देना श्रेष्ठ है।

तदुपरांत वर्त्तमान समय में विवाह संस्कार होने के पश्चात् पुत्र तथा पुत्री वाले दान भी करते हैं जो भूड़ दक्षिणा अथवा देहली के नाम से ब्राह्मणों को मिलता है, जिसमें प्रति वर्ष हजारों रुपयों के दान होजाते हैं परन्तु वर्त्तमान समय की रीति से दाताओं से लेनेवालों को एक दो दिन के भोजनों के अन्य कुछ लाभ नहीं होता अतः दान करने की रीतों को विचार कर दान करना अभीष्ट है जिससे दान का फल दाताओं को प्राप्त हो तथा देश का भी कल्याण हो, धन भी व्यर्थ नष्ट न होनेपावे क्योंकि धन एक उत्तम पदार्थ है।

[६—धन की महिमा]

हे सज्जनों इसी लक्ष्मी से सब कार्य संसार के चलते हैं, जितनी बातें हमारे जीवन के लिये आवश्यक हैं वा जिनसे हमारा जीवन भोग विलास सुख चैन तथा आराम से कटता है वे सब इन्ही लक्ष्मी जी के आधीन हैं, क्योंकि संसार भर के मनुष्य जिनको कुछ भी बोध तथा ज्ञान है इस बात को मानते हैं तथा प्रति दिन हमारी परीक्षा में भी आरहा है कि धन ही से गौरवता प्रतिष्ठा विभव ऐश्वर्य सुख धर्म तथा प्रभुता प्राप्त होती है।

पारमार्थिक काम भी बहुधा इसी के द्वारा निकलते हैं क्या राजा क्या प्रजा सब इसी के लालची तथा इसी के लोभी बने भटकते रहते हैं जैसा कि—

टका हर्ता टका कर्ता टका मोक्ष प्रदायका ।
टका सर्वत्र पूज्यंते विन टका टकटकायते ॥

आत्मा की शुद्धी ज्ञान से, ज्ञान शरीर की आरोग्यता से, आरोग्यता उपयोगी आहार बिहार से, वह संयम से, सुनियम निःश्चिन्तता से, निश्चिन्ता धन से प्राप्त होती है, विद्याध्ययन में पुस्तकों तथा पत्रों की आवश्यकता होती है जो बिना धन के नहीं मिलसकते, संसार में प्रतिष्ठा की सब कोई अभिलाषा रखता है, प्रतिष्ठा राज्य सन्मान से, राज्य सन्मान विद्या से, विद्या शिक्षा से, शिक्षा गुरु सेवा से और गुरु सेवा धन से होती है, लोकेन्द्र, सुरेन्द्र, महेन्द्र, राना, राव, साहूकार, महाजन, सेठ नव्वाव सब लक्ष्मी जी ही के खेल हैं, सी० आई० ई० (सितारे हिन्द) आदि उपाधें सब लक्ष्मी जी ही की तो उपाधें हैं, निदान उस सर्वशक्तिमान् ने धन को एक विचित्र शक्ति दी है मानो उसको उपसर्वशक्तिमान् बना दिया है, जिनके बाप दादे निर्धनता के कारण जुगुनू से चमकते थे, आज उनके बेटे धन की वदौलत सूरज के समान दिगन्तर में प्रकाशित हैं, जिन घरों में प्रकाश चन्द्रमा की चन्द्रिका को जलाता था, आज उन घरों में घोर अन्धकार छाया हुआ है, ये चन्द्रवन्शी तथा सूर्य वन्शी जिनका प्रभाव चन्द्रदिवाकर की भांति समस्त भूमंडल में व्याप्त होरहा था, अब बहुतेरे कर्जे के बंधन में ऐसे जकड़े हुए हैं कि जिससे पल मात्र चैन नहीं पड़ता, जिनकी जाति पांति का कभी नाम भी सुनने में नहीं आता था, वह राय राव इत्यादि कहलाते हैं, हम क्या बरन सब जगत के मनुष्य इस बात को कहते हैं कि विधना ने संपूर्ण सृष्टि से धन ही को उत्तम पद दिया है, संसार के सब काम तथा संबंध उसी के आधीन रक्खे हैं, उस विश्वम्भर के पीछे हमारी आवश्यकता तथा सुख साधन निमित्त धन से बढ़ कर कोई पदार्थ नहीं यह भर्तृहरि जी ने कहा है—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनाः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता सच दर्शनीयाः,
सर्वे गुणाः कांचन माश्रयन्ति ॥

अर्थात् धनवान ही कुलीन, पण्डित, बहुश्रुत, गुणज्ञ, तथा दर्शनीय है, ऐसाही उद्योग पर्व अध्याय ७२, चाणक्य नीति, तथा हितोपदेश में भी कहा है किसी महात्मा का बचन है कि शील, शौच, शांति, चातुर्य, मधुरता, कुलीनता यह सब निर्धन मनुष्य को शोभा नहीं देते, भर्तृहरि जी ने लिखा है कि शिल पर्वत से गिर कर चूर होजाय शूरता भी जाती रहे, जाति भी रसातल को चली जाय, परन्तु केवल एक धन बचा रहे, क्योंकि उसके बिना सर्व गुण तृण के समान जान पड़ते हैं, ऐसा ही युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा तथा अर्जुन को उपदेश दिया है कि धन से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कीर्ति की उन्नति होती है, इसी कारण अथर्व कांड १३ अनु० १ व० ४ में लिखा है –

दिवं चरोह पृथिवीं चरोह राष्ट्रं चरोह द्विवि चरोह ।
प्रजां चरोहामृतं चरोह रोहितेन तन्वं संस्पृशस्व ॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो शरीर को आरोग्य रखकर उद्योग द्वारा धनादि पदार्थों को प्राप्त करो, ययुर्वेद अ० ४० मंत्र २ में लिखा है, कि हे मनुष्यो जब तक जियो तब तक उद्योग करते रहो, आलसी कभी न हो जैसा कि ।

कुर्वन्नेवह कर्माणि जिजीविषेच्छतः ९ समाः ॥

वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा कांड सर्ग १२ में लिखा है कि उत्साह ही श्रेष्ठ है उत्साही मनुष्यों को कुछ दुर्लभ नहीं, यही लक्ष्मी तथा सुख का मूल है –

प्रिय सज्जन पुरुषो संसार में जो कुछ होता है वह सब पुरुषार्थ का ही फल जानो, वेदों का भी यही सिद्धांत है, यथा—

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्त ऋतेश्रृताः।

सब स्त्री पुरुष श्रम करके सुखों को प्राप्त करते रहें, इसके उपरांत य० अध्याय ९ मंत्र २२ में भी लिखा है कि हे मनुष्यो तुम आलस्य मत करो सदैव पुरुषार्थ करते रहो, भर्तृहरि जी ने अपनी राजनीति में भी लिखा है कि आलस्य के समान मनुष्य के शरीर में कोई रिपु नहीं हैं इसलिये भाग्य के भरोसे बैठ कर उद्योग न करना अत्यन्त अज्ञानता का कारण है शास्त्र में प्रारब्ध को बीज के समान माना है, मान्यवरो विचार करने का स्थान है कि यदि किसी पुरुष के पास बीज हो और वह पृथ्वी आदि में न बोकर पानी आदि से उसका उचित वा योग्य उपाय न करे तो कदापि अन्न आदि की उत्पति नहीं होसकती, हां प्रारब्ध रूपी भूमि में उद्योग रूपी जल से सेचन करने से ही कार्य रूपी अंकुर निकल कर मनुष्यों को सुख होता है चाणक्य नीति में लिखा है कि उद्योग दरिद्रता का नाश करता है—

"उद्योगे नास्ति दारिद्रं"

भर्तृहरि जी ने कहा है कि उद्योग के समान मनुष्य का कोई बन्धु नहीं, है याज्ञवल्क्य जी भी कहते हैं कि एक चक्र से रथ नहीं चलता अयोध्याकांड सर्ग २ श्लोक १६ लक्ष्मण जी का बचन है कि जो लोग डरपोंक तथा वीर्य हीन होते हैं वही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं सूर वीर लोग उद्योग कर सुख प्राप्त करते हैं, परन्तु यह भी स्मर्ण रहे कि अन्याय से प्राप्त किया धन सुख नहीं देता न अधिक दिन तक ठहरता है वरन चाणक्य जी के लेखानुसार ग्यारहवें वर्ष प्राप्त होते ही मूल सहित नष्ट होजाता है—

अन्ययोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्त एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

आप ने यह भी सुना होगा कि जो धन जिस प्रकार आता है वह उसी प्रकार जाता है, 'माले हराम बूद बजाये हराम रफ़्त'।

तत्पश्चात् जो मनुष्य दूसरों की द्रव्य झूठ बोलकर लेते हैं वह उनका सर्व प्रकार का नाश मारदेते हैं अतः ऐसे पुरुषों को पूर्ण सुख नहीं मिलता बरन थोड़े ही दिनों में जड़ समेत नाश होजाते हैं —

अधर्म्मेणै धतेतावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

इसके अतिरिक्त संसार में झूठा, वेधर्म आदि नाम से प्रसिद्ध होजाते हैं, इसी लिये घूस आदि अधर्म से धन कमाने वालों की शुद्धी मिट्टी अथवा जल से नहीं होती क्योंकि सम्पूर्ण शुद्धियों के बीच द्रव्य शुद्धी ही मुख्य है अर्थात् जो मनुष्य धर्म से धन को प्राप्त करता है वही शुद्ध कहाता है —

सर्वेषावेव शौचानामर्थशौचं परंस्मृतं ।
योर्थशुचिर्हि सशुचिर्नमृद्वारि शुचिःशुचिः ॥

इसी हेतु परमात्मा ने यजुर्वेद में आज्ञा दी है कि हे मनुष्यो तुम किसी के धन की इच्छा मत करो — "मागृधः कस्यचिद्धनम्" इसी के अनुकूल मनुजी महाराज ने आज्ञा दी है कि धर्म से रहित अर्थ को त्यागना उचित है क्योंकि पाप से कमाई करने वाला किसी कर्म का अधिकारी नहीं रहता वरन महात्मा मनु जी यह भी उपदेश करते हैं कि अपने जीवन के अर्थ भी अधर्म से धन को प्राप्त न करना चाहिये —

न्यायोपार्जित वित्तेन कर्तव्यं स्वात्म रक्षणं ।
अन्यायो नतु योजीवेत्सर्व कर्म वहिः कृतः ॥

अतः धर्मानुसार धन उपार्जन कर दानादि कार्य करो ऐसा करने से ही कीर्ति होती है, क्योंकि बिना इसके जीता हुआ मनुष्य मरे के समान है अतः

अन्य के धन को मिट्टी के समान जान त्यागना उचित जानो—

"परद्रव्येषु लोष्टवत्"

पक्का त्याग यही है कि सब आचारों की जड़, सब विचारों का सार यही है, इसके उपरांत पाप के करने वाले पुरुषों को ही दंड मिलता है अन्य मनुष्य खाकर अलग होजाते हैं, विदुर जी महाराज का वचन है—

एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्र मुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते ॥

मान्यवरो फिर मोह में फंसकर सम्पूर्ण पाप सिर पर लेना वृथा है अतः धर्मानुसार द्रव्य उपार्जन करने की टेव डालना उचित है देखिये श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने कहा है कि इस संसार में थोड़े ही दिन रहना है अतः अधर्म से पृथ्वी का राज्य लेना भी वृथा जानो, श्रीकृष्ण महाराज ने कहा कि जिस कार्य में धर्म की हानि होती हो उस कार्य को कदापि न करना चाहिये, देखिये विष्णुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १८, १९, २० में लिखा है—मैं सदा उन पुरुषों के समीप रहती हूं जो धर्म शास्त्र के अनुकूल कार्य करते हैं, जिनकी इन्द्रियां पाप में नहीं जाती, जो अपनी स्त्री में संतुष्ट रहते हैं ऐसा ही विदुर नीति में भी लिखा है, हे प्यारे भ्रातृगणों सब मिलकर इन उपरोक्त आज्ञाओं के अनुकूल कार्य करके धन प्राप्ति कर सुख तथा आनंद को भोगो ।

प्यारे सुजनों बहुधा जन धन उपार्जन में तो अधिक परिश्रम करते हैं पर उसकी रक्षा में किञ्चित ध्यान नहीं देते, न उस द्रव्य को यथायोग्य समयों पर यथावत् रीति से व्यय करते हैं कि जिसके कारण उनको उस धन से वह लाभ प्राप्त नहीं होते जो अन्य देशी बुद्धिवान प्राप्त कररहे हैं, वा हमारे प्राचीन पुरुषों ने फ़जूल खर्ची तथा कंजूसी दोनों को त्यागन कर यथार्थ व्ययी बन कर आनन्द उड़ाये थे, इसी भांति वर्त्तमान समय में भी बहुधा अकलमन्द

जातों ने जो उन्नति में सूर्य के समान प्रकाश कर रहे हैं यथार्थ व्यय ही पर अमल किया है, संसार के मनुष्य मात्र को अपने समान जाना तथा इनको बढ़ने फूलने फलने की आज्ञा दी कि जिसका यह फल हुआ कि जात की जात बुद्धिवान, विद्यावान्, चतुर होगई, अपने खर्च के निमित्त अत्यन्त उत्तम रीतें नियत कीं जिसका बदला यह मिला कि समस्त जात धनाढ्य तथा निश्चिन्त होगई, जिसके कारण से जो आज आराम तथा सुख एक गोरे को मिल रहा है वह हमारे देश के धनवान साहूकार को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता, जिसका मुख्य कारण यही है कि हमारे देशवाले द्रव्य को यथावत रीति से खर्च करना नहीं जानते, देखिये रईस तथा जमींदारों का धन क्या सदा फ़जूल खर्ची में नहीं गया, महाजनों तथा साहूकारों की कंजूसी ने धन को इकट्ठा करने के उपरांत धन से क्या कुछ अन्य काम लिया, कृषक जनों की दशा देखकर क्या शोक नहीं आता ?

हे प्यारे सुजनों यदि उपरोक्त क्लेश मेटा चाहो तो तनिक विचार में मेट सकते हो, क्योंकि हम तथा आप अपने धन फजूल खर्ची तथा मिथ्या लल्लो पत्तो में उठाकर आप मौधू बनजाते हैं वा इस धन पर ऐसे मोहित होजाते हैं कि उसको प्राण बचने की आशा पर नहीं देते, हम को यह भी नहीं आता, कि अपनी द्रव्य के कई भाग करें, तथा भविष्यत का विचार रखकर उसको ऐसे कामों में व्यय करें कि जिससे शारीरक तथा आत्मिक अथवा सामाजिक उन्नति हो, यथा शक्ति भोजन वस्त्र आवश्यक वस्तु से आनन्द उठावें, बाल बच्चों, माता पिता स्त्री आदि सम्बन्धियों को प्रसन्न रक्खें, मित्रों की मित्रता से भी लाभ उठावें, चैन चान से रहें, परन्तु यह सब कार्य यथाशक्ति करने चाहिये नकि उसमें ऐसा लिप्त होजावें जो आपे को भी भूलजावें, इसी भांति विवाहादि में नाना भांति के सुख उठावें, उदार चित्त भी हों

नकि ऐसे कि फिर आप किसी उदार चित्त को ढूंढ़ते फिरें, भविष्यत का भी ध्यान बनाये रहें, इसी से कहा है—

उतने पाँव पसारिये जेती लांबी सौर।

जो कोई अपनी पदवी से अधिक बढ़ता है फिर वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है यथा बहुधा घमंड के नशे में चूर हो नामवरी में आकर द्रव्य में आग लगाते चले जाते हैं कि जिसके कारण जब कर्जदारी होजाती है तो देश विदेश मारे २ फिरते हैं, बहुधा अपने बाप दादे के घरबार बगीचे बेचकर नंगे होजाते हैं, बहुधा अन्न वस्त्र को तंग होकर चोरी आदि दुष्कर्म करते हैं, क्या यह कम विपत्ति की बातें हैं, जिन सज्जन पुरुषों के पास धन की अधिकता हो उनको भी इस धन को इन मिथ्या कार्यों में व्यय न करना चाहिये क्योंकि उन्हीं बड़े लोगों की देखा देखी सामान्य जन भी करने लगते हैं, भगवद्गीता में लिखा है यथा—

यद्यदा चरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनाः ।
सयत्प्रमाणां कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

अतः आप परमेश्वर की आज्ञा के विपरीत मत चलिये कि जिस लीक पर अन्य जन चलने लगगये कि जिससे इस पवित्र भूमि का सौभाग्य जाता रहा यह सब पाप भी आप के सिर होगा, हां खान पान उत्तम प्रकार से समयानुकूल पवित्रता के साथ नियत समयों पर अर्थात् दिन के १० बजे तथा रात्रि के ९ बजे पर होना आवश्यक है, प्रत्येक ऋतु के फल जो उत्तम २ स्वादिष्ट तथा लाभदायक हों खिलाने चाहिये प्रातःकाल कुछ उत्तम भोजन खाने के लिये जन्मासे में भेजना अभीष्ट है तथा ग्रीष्म ऋतु में ठंढाई अच्छे प्रकार से कि जिसमें गुलाब तथा केवड़ा भी पड़ा हो पिलावें, तथा पान आदि

भी अच्छे प्रकार से दें, शाम को भोजनों के पीछे प्रत्येक को आध सेर दूध मिश्री संयुक्त पिलाना चाहिये।

इसी भांति प्रत्येक प्रकार के प्रबन्ध भली भांति कर सम्पूर्ण बरातियों को प्रसन्न कर नामवरी लें, वह धन जो उधर मिथ्या लुटाया जाता है कि जिससे किंचित् लाभ नहीं होता तथा इधर खान पान में भी कुछ ध्यान नहीं है चाहिय कि जितना होसके उतना धन लड़की तथा जमाई को दें, कि जिससे उनका जीवन उत्तम प्रकार से हो, तथा आपको भी सदा मरमानन्द हो बहुतसा धन गोटा पट्टा आदि में व्यय न करो कि जिसमें रुपये के छः आने रहजाते हैं, जो २ पदार्थ दियेजावें वह भी अच्छे तथा काम के हों न कि पुरानी देगची, कलई की भड़क, भला ऐसे देने में क्या लाभ होता है ?

[७—दान माहात्म्य]

मान्यवरो संसार के दान भी एक अद्भुत पदार्थ है कि बड़े २ महात्मा इस विषय में सुनने में आते हैं, प्रति दिन नाम मात्र के साधू भी यह कहकर चिताया करते हैं कि "जो देगा सो पावेगा" दोहा—

तुलसी दिया अनूप है, दिया करो सब कोय।
कर का धरा न पाइहो, जो कर दिया न होय॥

पंडित जन भी आपत्ति के समय यही उपदेश करते हैं कि दान कर सुख लीजिये राजा करण तथा हरिश्चन्द्र ने इसी के कारण इस संसार में यश प्राप्त कर अंत को स्वर्ग पाया, ज्ञानी, अज्ञानी, उत्तम, नीच, सेठ, साहूकार, स्त्री पुरुष प्रत्येक इस के गुणों को जानते हैं इसके अतिरिक्त आप के वेदादि सत्य शास्त्रों में दान करने के बड़े २ महात्म वर्णन किये हैं देखिये यजुर्वेद अध्याय २८

मंत्र २४ में लिखा है जो मनुष्य सत्य विद्या आदि पदार्थों को दान करते हैं, वह अतुल कीर्ति को पाकर सुखी होते हैं तथा अन्य को भी सुखी करते हैं—

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः
सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधस्म ।
गायत्री छन्द इन्द्रिय त्र्यविंगां वयोदध
द्वेत्वा ज्यस्य होतार्यत् ॥

पराशरस्मृति में लिखा है कि धन से परम सुख तथा स्वर्ग मिलता है, अर्थात् दान करने से दोनों लोकों में प्रतिष्ठा होती है—

दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुख मश्नुते ।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥

महाभारत में भीष्म पितामह का वचन है कि तीनों लोक में दान से बढ़कर कल्याण करने वाला कोई धर्म नहीं, विदुर महाराज ने कहा है कि दान करने से नाना प्रकार के सुख होते हैं, परशुराम जी ने दान देने से अतुल लाभ कहा है महाराजा युधिर जी ने दान को परम शांति का कारण कहा है, शुक्र नीति तथा चाणक्य नीति में कहा है कि विना दान के एक दिन भी व्यतीत न करना चाहिये ।

यथार्थ में दान करने से मनुष्य को संसार में सुख तथा परलोक में आनंद प्राप्त होता है, परन्तु मान्यवरो परमेश्वर ने जितनी बस्तुएं संसार में रची हैं उनके काम में लाने की एक विद्या भी बनाई है, जो मनुष्य उन बस्तुओं को उस बिद्या के अनुकूल यथावत काम में लाते हैं वह अपने कार्य को सिद्ध कर आनंद को पाते हैं अन्यथा कार्य की सिद्ध नहीं होती तथा बहुधा क्लेश उठाने पड़ते हैं, क्या किसी ने ऊसर में बीज डालकर अन्न को काटा है ? क्या बालू

की दीवार से किसी ने अपने घर की रक्षा की ? या किसी ने नीम के पेड़ को लगाकर आम खाये हैं ? नहीं, वरन अपने धन तथा बीज अथवा परिश्रम को व्यर्थ खोकर नाना प्रकार के क्लेश को उठाया होगा।

प्यारे सज्जनों अब आप जो बिना विचार किये नाना प्रकार के कुल अन्न वस्त्र सोना, चांदी इत्यादि दान करते चले जाते हो तथा उनसे अक्षय फल की प्राप्ति की आशा रखते हो, पर मान्यवरो कभी आप ने दान करने की रीतों को भी सुना या देखा है ? नहीं, फिर क्योंकर यथार्थ फल आप को मिल सकता है, कदापि नहीं, वरण विपरीत रीत के अनुसार कार्य करने से उपरोक्त किसानादि की भांति धन को व्यर्थ खोकर ईश्वरी नियम के तोड़ने के कारण दंड भागी होना पड़ेगा, इसलिये सबसे प्रथम दाताओं को यह विचार करना योग्य है कि किस पदार्थ को किस प्रकार देने का नाम दान है देखिये याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि स्वधर्म के अनुसार न्याय पूर्वक संचित किये हुए द्रव्य को विधिवत् श्रद्धा करके जो याचकों के प्रति समर्पण करते हैं उसका नाम दान है, सा यथा—

न्यायार्जित धनं चापि विधि वद्यत्प्रदीयते।
अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतदुदाहृतम्॥

देखिये हितोपदेश में लिखा है—"दरिद्रते दीयते दानम्" अर्थात् दरिद्री को दान देना चाहिये, देखो कहा है—

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तस्य भोजनम्।
वृथादान समर्थस्य वृथा दीपो दिवापिच॥

जैसे समुद्र पर वर्षा व्यर्थ है दिन के समय दीपक निष्प्रयोजन, उसी भांति पेट भरे को भोजन कराना तथा धनवान को दान देना व्यर्थ है।

अब इस विषय में विचार करना योग्य है कि दरिद्री कौन है ? प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि दरिद्री वह मनुष्य हैं जो अंगहीन अर्थात् लूला, लंगड़ा गूंगा, बहरा, अन्धा, वा असाध्य, रोगी वा जठर वा रांड वा अनाथ जिनका पालन कर्ता कोई सम्बन्धी न हो वा ऐसे सत् पुरुष जो समय के हेर फेर से कङ्गाल होगये हों जो किसी से याचना करते सकुचते हों तो उनका अवश्य ही खान पान वस्त्र इत्यादि का सहारा करना चाहिये क्योंकि दीनों की रक्षा करना परम आवश्यक है, न कि हट्टे कट्टे सण्ड मुसण्डे नाम के ब्राह्मण वा वैरागी साधु सन्तों की जो परिश्रम कर दो चार आठ आने रोज पैदा करसकते हैं, अच्छे प्रकार माल पेट चढ़ाकर अपने को कृतार्थ मानते हैं कि जिसके कारण वर्त्तमान समय में "एक चौथ्याई भारत वासी भीख मांगकर भोजन करते हैं", क्योंकि जब मनुष्य देखते हैं कि बिना परिश्रम किये नाना प्रकार के पदार्थ घर बैठे चले आते हैं तथा समस्त मनुष्य सेवा में रहते तो फिर क्यों परिश्रम करें, विद्या पढ़ने की कुछ आवश्यकता नहीं, आचरण कैसा ही हो, जहां तिलक छापे लगाये, कण्ठी माला गले में डाली, पत्रा बगल में दाबा वा जटा रखाली चमिटा हाथ में लिया पण्डित जी महात्मा जी, योगी महाराज, बाबा जी आदि बन मजे से चैन उड़ाते है, बहुधा उनमें से धन जमाकर नाना प्रकार के व्यौपार करते हैं, अनेकान नाम मात्र के ब्राह्मण दो २ रुपये की नौकरी कर लाला जी मुंशी जी तथा ठाकुर साहब के पीछे लट्ठ लेकर चलते हैं, नीचे आसन पर बैठते हैं, पानी भरकर पिलाते हैं, बोझ लेकर चलते तथा भोजन बनाकर खिलाते हैं, उनके बच्चों का लालन पालन कर पशुओं आदि की सेवा करते हैं जैसा कि कहा है—

लाला जी एक भेजो नर, पीर बवर्ची भिस्ती खर ॥

इसके उपरांत नव जुवकों तथा स्त्रियों के कान फूंक कण्ठी गले में बांध तन मन धन स्वामी के समर्पण करा कच्छे प्रकार व्यभिचार कर सेठानी मुन्शानी लालानी को प्रसन्न कर धन उड़ाते तथा बालकों के साथ गुदा भञ्जन कर शराब आदि नशे पिला, गोस्त खिला, रण्डीबाजी आदि शिखला सर्व प्रकार से मजे मारते हैं।

इसके उपरांत कोई २ जंगलों में मढ़ी बनाकर रहते हैं, बहुधा प्रकट रूप से स्त्रियों को साथ रखते तैं, बहुधा परस्त्री वेश्या गमन आदि कर चरस भंग आदि के दम भरते हैं, कोई २ खड़ेश्वरी बन ऊंची भुजा करलेते हैं, कोई झूले पर झूल अन्न त्यागन कर दूध उड़ाते तथा दूधाधारी कहलाते हैं, कोई सदा नंगे ही रहा करते हैं, कोई पञ्चाग्नि तापते हैं कोई मौन धारण करलेते हैं, कोई खाक पर लेट आयु व्यतति करते हैं इनके सिवाय पुरोहित आचार्य गुरू बन मतलब निकालते हैं—क्या इन्हीं का नाम पण्डित ब्राह्मण महात्मा साधु बैरागी आदि है ?

प्यारे भ्रातृगणों सद्ग्रन्थों को श्रवण करो या विचारो तो ज्ञात होजावे कि पण्डित महात्मा साधु बैरागी पुरोहित आचार्य किसको कहते हैं, देखिये महाभारत उद्योग पर्व विदुर प्रजागर में लिखा है—

आत्मज्ञानं समारंभ स्तितिक्षा धर्म नित्यता ।
यमर्थानायकर्षान्ति सवै पण्डित उच्यते ॥
निसेवते प्रशस्तानि निन्दितानि निसेवते ।
चनास्तिकः श्राद्धधान एतत्पण्डित लक्षणम् ॥

अर्थात् जिसको आत्मज्ञान सम्यक आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे, सुख दुःख हानि लाभ मानापमान निन्दा स्तुति में हर्ष शोक

कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहे, जिसके मन को उत्तम २ पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न करसकें वही पण्डित है।

जो सदा धर्म युक्त कर्मों का सेवन अधर्म युक्त कर्मों का त्याग ईश्वर वेद सत्याचार की निन्दा न करने हारा ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालू हो यही पंडित का कर्त्तव्य कर्म है, हितोपदेश में भी लिखा है—

मातृ वत परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ट वत्।
आत्मवत सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डिताः॥

पराई स्त्री को माता, अन्य के द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान, अपनी आत्मा के समान सब जीवों की आत्मा को जानें वही पण्डित है।

श्रीकृष्ण जी महाराज ने ब्राह्मणों के लक्षण यों लिखे हैं—

शमोदमस्तपः शौचं क्षांति रार्जव मेवच।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम्॥

अर्थात् अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का निरोध, विचार करना, बाहर भीतर पवित्र, क्षमा, कोमलता, शास्त्राचार्य द्वारा ज्ञान, अनुभव विश्वास आदि उत्तम कर्म जिसमें हों उसको ब्राह्मण कहते हैं, और भी कहा है—

"ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः"

यह तैत्तरीय उपनिषद का वाक्य है कि शुद्ध भाव से सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकना अर्थात् शरीर इन्द्री मन से शुभ कर्मों को करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि धर्म युक्त कामों का नाम तप है, इन्हीं कर्मों के करनेवालों को साधू बैरागी महात्मा कहते हैं, ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कंद ११ अध्याय ११ में लिखा है—

"साधयंति परकार्याणि स्वकर्माणि च कार्याणि च साधु"

अर्थात् जो मनुष्य यथावत परोपकार करना ही अपना कर्त्तव्य कर्म समझता है उसका नाम साधू है, परमेश्वर के पूर्ण ज्ञान होने से जो प्रकृति के गुण तथा कार्यों में अरुचि होती है उसे वैरागी कहते हैं, पूर्णज्ञानी का नाम महात्मा है, जैसा कि ऊपर वर्णन हुआ, और भी कहा है—

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्व जंतुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्म लेपनैः ॥

धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि की पूर्ण रीति को जानने हारा विद्वान्, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेद प्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी मनुष्य को पुरोहित कहते हैं, जो शांगोपांग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया का जानने हारा छल कपट रहित अति प्रेम से सब को विद्या का दाता परोपकारी तन मन धन से सब को सुख बढ़ाने में तत्पर निर्पक्ष होकर सत्योपदेष्टा सब का हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय हो उसको आचार्य अर्थात् गुरु कहते हैं ।

कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि बिना वेदादि विद्या पढे तथा उसके अनुसार आचरण सुधारे, किसी को महात्मा, बैरागी, साधू, संत, पुरोहित, आचार्य न कहना चाहिये ।

अब भारत के बैरागी, साधू, महात्मा, पंडित, पुरोहित, आचार्य आदि को किंचित ध्यान से अवलोकन कीजिये तथा उपरोक्त गुण मिलाइये तो नाम मात्र की गिनती रहजावेगी न कि जिधर दृष्टि डालिये उधर पंडित साधु महात्मा आदि ही दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि इन उपरोक्त नामों के धारण करने में किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करना पड़ता परन्तु पूजा नित्यप्रति होती है, पंडित जी महात्मा जी पुकारे जाते हैं, हलवा पूरी खाने को मिलती हैं, अतः कोई घर से लड़कर कोइ माल मार एक स्त्री के ऊपर कोई बहार देखने को

बहुधा नीच काछी लोधे चमार कुंम्हार गड़रिये धोबी आदि मूंड मुंडाय बैरागी साधु संत बन चैन उडाते हैं, कोई हरे कृष्ण जय सीताराम जी के भण्डार खोलदेते हैं, यदि इनसे कहाजाय कि आप ने विद्या नहीं पढ़ी, आचरण नहीं सुधारा तो बड़े क्रोध में आकर लाल आंखें चढा कहते हैं कि विद्या पढ़कर क्या होगा हम को कुछ दुनिया का काम थोड़ा ही है, जंगल में रहना तथा मंगल करना, माई के लाल बने रहें हमको कमी क्या है, देखलो बच्चो माइयां आती हैं दर्शन कर फल पाती हैं, एक कहने लगते हैं—

वेद पढत ब्रह्मा मरे चारो वेद कहानि, संत की
महिमा वेद न जानी ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर।

प्यारे भाइयो यह सब नास्तिक हैं क्योंकि मनुजी ने लिखा है कि "नास्तिको वेद निंदकः" अर्थात् जो वेद की निंदा करे वह नास्तिक है, यह जन वेद को कहानी बतलाते हैं जो परमेश्वर का वाक्य होने से संसार के अर्थ सम्पूर्ण विद्याओं का कोष है जिसको सनातन से मानते चले आते हैं, ब्राह्मणों ने उसका पढ़ना ही छोड़ दिया यदि कुछ पठन भी किया तो उसका अर्थ अपने स्वार्थ का सुनादिया कि जिससे भारत का ऐश्वर्य रसातल को चलागया तो भला ऐसों को दान देने से देश की क्या भलाई होसकती है, कदापि नहीं, वरन समस्त देश साफ होगया और होता जाता है तो क्या इन बुराइयों का पाप दाता के शिर पर न होगा ?

प्यारो आप ने तो मनु जी के ४ अध्याय के ३० श्लोक को भी कभी नहीं सुना जिसमें लिखा है कि वेद विरुद्ध व्रत तथा चिन्ह के धारण करने वाले तथा निषिद्ध जीविका से जीने, बैडाल व्रतिक शठ जिनकी वेद में श्रद्धा नहीं वेद विरोधी तर्क करनेवालों का वाणीमात्र से भी आदर न करना चाहिये ।

अब वैडाल व्रतिक तथा बक व्रतिक के लक्षण लिखते हैं जिस प्रकार मनु जी महाराज ने अध्याय ४ के श्लोक १९५ व १९६ में लिखा है—

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोक दंभकः ।
वैडाल व्रतिको ज्ञेया हिंसः सर्वाभि संधकः ॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थ साधन तत्परः ।
शठो मिथ्या विनीतश्च बकव्रत चरो द्विजः ॥

अर्थ—(धर्मध्वजी) जो बहुत मनुष्यों को दिखलाने के अर्थ धर्म करता है तथा अपने मुंह से कहता भी फिरता है, तथा उससे अपनी प्रशंसा कराता है, सदा पराये धन में इच्छा रखता, बहाने से चलने वाला, हिंसा में प्रीत रखनेवाला, सब की निंदा करने वाला, बिल्ली के समान जिसका आचरण हो उसको वैडाल वृत्ति कहते हैं ।

अपनी विनय जताने के अर्थ नीचे देखनेवाला, निष्ठुर अर्थात् दया शून्य अपने अर्थ साधन में तत्पर टेढाई से रहनेवाला, झूठी नम्रता करनेवाला, अर्थात् बगुले के समान जिसके लक्षण हों उसको बक वृतिक कहते हैं।

प्यारे भाइयो अब आप विचारिये कि मुनिवर श्री मनु जी महाराज ऐसे पुरुषों के असत्कार ही की आज्ञा नहीं देते वरन उनसे यह भी न कहिये कि आइये पधारिये, क्योंकि जब उनका इस प्रकार निरादर होगा तो उनको अवश्यमेव लज्जा आवेगी तब परिश्रम कर विद्या पढेंगे तथा आचरण सुधारने का विचार होगा, सो आप तो विद्या तथा आचरण को देखते ही नहीं वरन थैली का मुंह खोल 'माले मुफ्त दिले बेरहम' की भांति नाममात्र के साधू, संत, वैरागी, सन्यासी ब्राह्मणों को घर बैठे ही पहुंचाते हो, अर्थात् सब धान बावन पसेरी करादिये, अथोपरांत गंगा, यमुना, हरद्वार काशी प्रयाग आदि तीर्थों में बड़े २ दान करना, बद्रीनारायण द्वारका जगन्नाथ

श्वेतवंदरामेश्वर आदि पुरियों में धन लुटाना, मृतक पिता के नाम पर संडो को खिलाना, ऐसे ही ठगों के लिये काशी प्रयागादि में क्षेत्र खोलना, तदनंतर सुथरे साईं मुसलमान फ़कीरों, अघोरी आदि नाना रूप धरनेवालों को भी एक पैसा क्या एक कौड़ी तक न देना चाहिये क्योंकि इनकी देखा देखी बहुधा जन उन्हीं रूपों को प्रतिदिन धारण करते चले जाते हैं जो अनेकान प्रकार से रात दिन मांग २ कर दो चार आने रोज जमाकर फिर भट्टी खाने में जा शरावें पीते, रंडियां रखते, भंग चरस आदि के दम मारते, मांस खाते, जिनके सतसंग से भारत संतान का सत्यानाश हुआ जाता है ऐसे ही भिखारियों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जाती है कि जिससे भारत के सिर का क्षत्र गिरगया। मनु महाराज का बचन है—

नश्यन्ति हव्य कव्यानि नराणामविजानताम् ।
भस्मी भूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥

अर्थात् वेद विद्या रहित भस्म सदृश ब्राह्मण में जो मोह से दाता लोग हव्य कव्य दान करते हैं वह सब निष्फल होता है, मनुस्मृति अध्याय दो श्लोक १५७ में लिखा है—

यथा खण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गविचाफलम् ।
यथा चाज्ञे फलं दानं तथा विप्रो नृचोफलः ॥

अर्थात् जिस प्रकार से नपुंसक मनुष्य स्त्रियों में निष्फल है, गौ गौ में, उसी प्रकार मूर्ख ब्राह्मण को दान देना निष्फल है तैसे ही वेदाध्ययन के बिना ब्राह्मण निष्फल है, इसी प्रकार मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १४१ में लिखा है—

यथोरिणे बीज मुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ।
यथा नृचेह निर्दत्वा न दाता लभते फलम् ॥

जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीज बोने से बोनेवाला फल को नहीं पाता, उसी भांति से जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ता उसको ईश्वराराधन सम्बन्धी पदार्थ देने में दाता फल को नहीं पाता, उक्त अध्याय के १६७ श्लोक में लिखा है—

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्या न दातव्यं नहि भस्मनिहूयते ॥

जैसे तृण की अग्नि झट पट शांत होजाती है, तैसे ही वेद रहित ब्राह्मण है, अतः उसको हव्य न देना चाहिये क्योंकि राख में होम नहीं होता, मनु० अध्याय ४ के श्लोक १९३ में है—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदकेतरन् ।
तथा निमज्जतोऽधस्ता दशौ दातृप्रतीच्छकौ ॥

जिस प्रकार पत्थर की नाव पर चढकर मनुष्य जल में डूबजाता है, उसी प्रकार मूर्ख दाता तथा प्रतिग्रहीता दोनों नरक में डूबते हैं, इसी प्रकार गीता में भी लिखा है—

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

जो दान कुपात्रों को निषिद्ध देश काल में दियाजाता है वह तमोगुणी अर्थात राक्षसी दान कहलाता है ।

व्यास स्मृति अध्याय ४ श्लोक ५१ में लिखा है कि शौच से नष्ट तथा व्रत से विहीन ब्राह्मणों को अन्न तक न दें, यथा—

नष्ट शौचे व्रतभ्रष्टे विप्रवेद विवर्जिते ।
दीयमानं रुदत्पन्नं भयाद्वै दुष्कृताकृतं ॥

उक्त अध्याय के ३७ श्लोक में लिखा है कि काठ का हाथी चमड़े का हिरन वैसा ही बिना पढ़ा ब्राह्मण केवल नाम को धारण करने वाला है—

यथा काष्ठ मयो हस्ती यथा चर्म मयो मृगः ।
यश्च विप्रो न धीयन स्त्रयस्ते नाम धारकः ॥

मनु जी महाराज ने अध्याय ४ श्लोक ९० में कहा है कि जो ब्राह्मण तप या विद्या शून्य हैं दान लेकर दाता समेत नरक में जाता है जैसे पत्थर की नाव पर चढ़नेवाला मल्लाह सहित डूबता है—

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रह रुचिर्द्विजः ।
अम्भस्यश्म प्लवेनैव सहते नैव मज्जति ॥

ऐसा ही भविष्य पुराण के तीसरे अध्याय पूर्वार्द्ध तथा शांति पर्व अ० २६ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि जो धर्म भ्रष्ट लोगों को दान देते हैं वह १०० वर्ष तक परलोक में पुरीष भोजन करते हैं, भविष्य पुराण के १३६ अ० उत्तरार्द्ध में कहा है कि अकुलीन मूर्ख लोभी पिशुन ब्राह्मण को कभी दान न दे।

मार्कण्डेय महर्षि ने वन पर्व अध्याय १९७ में लिखा है कि धर्म से हीन पतित, चोर, पापी, कृतघ्न, शूद्र के पुरोहित बेद के बेचनेवाले जिसने वेश्या से समागम किया हो उनको कदापि दान न दें, बिदुर जी ने महाराजा धृतराष्ट्र से कहा है कि नमक, दूध, सहत, तेल, घी, तिल, फल, फूल, शाक, कपड़ा, गुड, अन्न तथा सम्पूर्ण सुगन्धों के बेचने वाले ब्राह्मणों के पैर भी न धोना चाहिये, वृद्ध गौतम संहिता में श्रीकृष्ण जी महाराज ने युधिष्ठिर से कहा है कि हे राजेन्द्र अपात्रों को विपुल दान करना भी राख में हवन करने के समान निष्फल है—

अपात्रे भ्यस्तु दत्तानि दानान्यसु वहून्यपि ।
वृथा भवंति राजेन्द्र भस्मन्याज्याहुतिर्यथा ॥

मनुस्मृति अध्याय ११ के श्लोक ७० में लिखा है कि जो ब्राह्मण निंदित

जनों से दान लेता हो, व्यौपार, शूद्र की चाकरी करता हो, झूठ बोलता हो, उसको दान लेने का अधिकार नहीं रहता।

कृमि कोट वयो हत्या मद्यानुगत भोजनम्।
फलैधः कुशुमस्तेय मधैर्य च मलावहम्॥

आत्रिस्मृति के ३४३ से ३४७ श्लोक तक लिखा है कि अंगहीन, श्रुति स्मृति रहित मिथ्यावादी, व्योपारी, हिंसक, कपटी, भिक्षुक, पीले रंगवाला, काना, जिसकी देह बिगडी हो, केश गिरगये हों, पांडुरोगी, जटाधारी, बोझ का ढोने वाला, जिसके दो स्त्री हों, जिसने शूद्राणी से विवाह किया हो, मनों का फाड़नेवाला, अंग अधिक हो, बहकानेवाला जो दूसरे के गुणों में दोष देखनेवाला, कठोर बुद्धि वाला, इन उपरोक्त ब्राह्मणों को दान न देना चाहिये, यथा—

नहीनांगो न रोगी च श्रुतिस्मृतिविवर्जितः।
नित्यं चानृतवादी च वणिक श्राद्धेन भोजयेत्॥
हिंसारतं च कपटं उप गुह्य श्रुंत च यः।
किंकरं कपिलं काणश्चित्रिणं रोगिणं तथा॥
दुश्चर्माणं शीर्ण केश पाण्डु रोगं जटाधरम्।
भारवाहित रौद्रं च द्विभार्यं व्रषली पतिम्॥
भेदकारी भवेच्चैववहुपीडा करोपि वा।
हीनातिरिक्त गात्रोवा तमप्पयनयेत्तथा॥
वहुभोक्ता दीन मुखो मत्सरी क्रूर बुद्धिमान्।
एतेषां नैव दातव्यः कदाचिन्तु प्रतिग्रह॥

मनुस्मृति के अध्याय ४ श्लोक १९२ में मनु जी महाराज स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि जिस ब्राह्मण की वृत्ति बिल्ली अथवा बगले के समान हो, जो वेद को नहीं जानता, उसको जल मात्र भी दान न दे।

नवार्थपि प्रयच्छेतु वैडाल व्रतिके द्विजे ।
न चकव्रतिके विप्र ना वेद विदि धर्म वित् ॥

लिंग पुराण में लिखा है कि जिसके शरीर पर गर्म करके शंख चक्र की छाप लगाई हो वह जीते जी मुर्दा तथा सर्व धर्मों से पतित के समान त्यागने योग्य है जैसा कि –

शंख चक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते ।
सजीवन् कुणपस्त्याज्यः सर्व धर्म बहिष्कृतः ॥

फिर ऐसे चिन्ह के धारण करने वाले ब्राह्मणों को लिंग पुराण का कर्त्ता जो वैदिक आज्ञा के प्रतिकूल है दान देना उचित नहीं बताता है क्योंकि दान श्रेष्ठों को दिया जाता है नकि पतित को ।

पद्मपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य तमाकू पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है लेनेवाला ब्राह्मण गांव के सुअर का जन्म लेता है, यथा—

धूम्र पानरतं विप्रं दानकृत्वेति यो नरः ।
दातारो नरकं यांति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः ॥

महाभारत शांति पर्व में व्यासजी ने कहा है कि वेद ज्ञान से हीन ब्राह्मण को दान न देना चाहिये जिस प्रकार कपाल में पानी तथा कुत्ते के चमड़े में दूध बिगड़ जाता है उसी भांति कुपात्र को दान देने से पापी बनना पड़ता है, बृहस्पति स्मृति श्लोक ५७, ५८, ६९, ६० में लिखा है कि कच्चे पात्र में रक्खा हुआ दूध दही घी सहत पात्र की दुर्बलता से नष्ट होजाता है उसी प्रकार गौ, सुवर्ण, वस्त्र, पृथ्वी, तिलहन, को जो मूर्ख लेता है वह काष्ठ के समान नष्ट होजाता है अतः कुपात्रों को कभी दान न देना चाहिये ।

प्रिय सज्जन पुरुषो जब उपरोक्त नाम मात्र के पंडितों का पेट सोने चांदी

अन्न घी हाथी घोड़े आदि से भी न भरा तब उन्हों ने स्त्री दान का भी आर्डर पास कर दिया, छिः ! छिः ! हा लज्जा को भी तिलांजली देदी, दोनों के हिये के नेत्र मारेगये, वेदादि सत्य ग्रन्थों में तो स्त्री दान के अर्थ कोई आज्ञा नहीं है, अथोपरांत बुद्धि से भी विचार करना योग्य है कि स्त्री दान करने से क्या हानि लाभ हैं —

प्यारे भाइयो गंगादि स्थानों पर बहुधा मनुष्य स्त्री दान करते हैं फिर पुरोहित जी मुह मांगी दक्षिणा यजमान से लेकर स्त्री फेर देते हैं, अब बिचार कीजिये कि यदि यजमान मुंहमागे दाम न दे तो स्त्री गई यदि दे तो मनमाना धन गया, विना पूरे मूल्य के भेंट किये स्त्री का लेना मानो पाप को मोल लेना है क्योंकि अब तो पुरोहित जी का पूरा अधिकार है अपने सौदे को जितने मूल्य पर चाहें वेचें, अथोपरांत यदि पति स्त्री से नाराज ही हो तो वह पुरोहित जी को मुंह मांगे न देगा तो पुरोहित जी इस सूरत में जो अधिक दाम लगावेगा वह उस माल को लेलेगा, यदि स्त्री नव यौवना हुई तो पुरोहित जी के कुटुम्बी जन ही उसको क्यों बाहर जाने देंगे, तो बताओ इस दशा में उसका पतिव्रत धर्म गया या नहीं, इसके अतिरिक्त पुरोहित जी अपने यजमान की स्त्री को पुत्री के समान जानते हैं तो क्या वह पुत्री का दाम लेते हैं वा उस कहावत को यथार्थ रीति से पूरा कर दिखाते हैं कि "मन में राम बगल में ईंटें" अर्थात् हाथी के दांत दिखलाने के अन्य, खाने के अन्य होते हैं, उसी प्रकार का हाल इन तीर्थ के पंडे पुरोहितादि का जानना चाहिये, धिक्कार है ऐसे यजमान वा पुरोहित पन्डों पर जो ऐसे अनुचित कर्म को खुले मैदान में अच्छे प्रकार से कर धर्मात्मा कहलावें, पर राजदण्ड के भागी न हो !

हे प्यारे दाताओ इन सत्यानाश के मारने वाले दानों को त्यागो, यह

विषयी तथा लालची पुरुषों ने चलाये हैं कि जिससे यजमान से मुंहमागा द्रव्य मिलसके नहीं तो विषय रूपी आनन्द तो कहीं गया ही नहीं !

अथोपरांत सुनिये कि सूर्य ग्रहण चन्द्र ग्रहण में कुरुक्षेत्रादि स्थानों पर भी ऐसी ही लीला रचकर अपना पेट भरते तथा कहते हैं कि ऐसा समय दान का अति दुर्लभ है इस समय दान देने से विशेष फल होता है, इसका कारण यह बतलाते हैं कि जब विष्णु जी देवताओं को अमृत बांट रहे थे उस समय राहु नाम राक्षस देवता का रूप धर उनके साथ बैठगया तथा अमृत पीलिया पर सूर्य चन्द्रमा ने चुगली खा दी तब विष्णु ने क्रोधकर चक्र से राहु का सिर काटडाला पर वह अमृत पीचुका था अतः वह मरा नहीं, इसी से सूर्य-चन्द्रमा को जहां पाता पकड़ लेता है, फिर जब भारतवासी उस समय भंगी आदि को दान देते हैं तो वह छुटकारा पाते हैं इस हेतु सूर्य चन्द्रमा उन लोगों को जो दान देते हैं आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारा सदा भला हो जो तुमने हमको छुडाया ! हा अ-विद्या तूने भारत वासियों के जी में ऐसा विश्वास कराया है, उनको कुछ भी विचार नहीं जो जैसा चाहते हैं गपोडे सुनाकर हाथ मारते हैं, हमारे स्वदेशी भाई बहनों को कुछ भी विचार नहीं, हाय कैसा अचम्भा, क्या ही शोक की बात है देखिये ग्रहलाघव में लिखा है—

"छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमि भाः"

अर्थात् जिस समय पृथ्वी घूमती हुई सूर्य चन्द्रमा के बीच में आजाती है तब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है इसी को चन्द्रग्रहण कहते हैं, इसी भांति जब सूर्य तथा पृथ्वी के बीच चन्द्रमा आजाता है तब चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है अर्थात् सूर्य कटता सा दिखाई देता है इसी को सूर्य ग्रहण कहते हैं, ऐसा ही अथर्व० कां० १४ अनु० १ मं० १ में लिखा है—

"दिवि सोमो अधिश्रितः"

अर्थात् सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है अतः भूमि के बीच में आजाने से चन्द्रमा में अन्धकार होने लगता है अर्थात् चन्द्रमा कटा सा दिखलाई देता है ।

इसी प्रकार अंगरेजों ने भी माना है, कालिजों तथा स्कूलों में पढने वाले विद्यार्थियों पर यह बात अच्छे प्रकार से प्रकट है फिर पुराणों के गपोलों को मानना महा मिथ्या है, फिर भंगी तथा नाम मात्र के ब्राह्मणों या कुपात्रों को सूर्य वा चन्द्रमा के छुटाने के निमित्त दान देना महा मिथ्या है।

देखिये यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र २९ में लिखा है कि गृहस्थ जनों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कार पूर्वक विद्या दान करे वा करावे, सन्यासी आदि की सेवाकर विशेष विज्ञान को ग्रहण करे ।

नमः कपर्दिनेच व्युप्तकेशाय च नमः
सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो
गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो
मीढुष्टमाय चेषु मद्दे च ।

याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि वेद समस्त धर्मों का बतलानेवाला है अतः वेद विद्या का दान सब से श्रेष्ठ है –

सर्व धर्म मयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकंपतः ।
तद्दत्तमवाप्नोति ब्रह्म लोकमविच्युतम् ॥

मनु जी महाराज का वचन है कि जल अन्न गो पृथ्वी वस्त्र तिल सुवर्णादि के दानों से वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है।

संवर्त स्मृति में लिखा है कि विद्या दान से मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा पाता है –

विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्म लोके महीयते।

ऐसा ही मनुमहाराज ने अध्याय ४ श्लोक २३२ में लिखा है "ब्रह्म दो ब्रह्म सार्ष्टिताम्"

प्यारे सुजनों यदि यह दान प्रचलित रहता तो क्या भारत की यह कुदशा होती, मान्यवरो विद्या दो प्रकार की होती है एक परा दूसरी अपरा, परा से आत्मज्ञान तथा अपरा से सांसारिक व्यवहारों की सिद्ध होती है परन्तु ब्रह्म ज्ञान से सांसारिक पदार्थों का ज्ञान आप से आप होजाता है अतः ब्रह्म अर्थात् वेद विद्या का दान सर्वोपरि माना है अतः आओ सब लोग मिलकर पाठशालायें प्रचलित करें उनमें वेदादि विद्याओं का पठन पाठन विद्यार्थियों को कराया जावे, तथा उनके अर्थ भोजनादि का प्रबन्ध कियाजावे तो आशा है कि भारत से अविद्या निकलजावे जब ही आप तथा आप की सन्तानों को पूर्ण सुख मिलसकता है अन्यथा नहीं।

प्यारे सुजनों सब आर्ष ग्रन्थों में सुपात्रको दान करने की आज्ञा है, सुपात्र विद्या तथा ज्ञान से होता है, उस प्रथा को भारत से उठा दिया फिर जब शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध कुपात्र को दान देते हैं तो फल किस प्रकार से आप को मिलसकता है देखिये मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक २०१ में लिखा है कि गाय पृथ्वी सुवर्णादि जो कुछ दान करना हो विधि पूर्वक सुपात्र को दे, यदि अपना भला चाहो तो जान बूझ कर कुपात्र को कभी दान न दो—

गो भू तिल हिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।
ना पात्रे विदुषा किंचिदात्मनः श्रेय इच्छता॥

याज्ञवल्क्य महर्षि जी आज्ञा देते हैं कि पवित्र देश और पवित्रकाल में जो बस्तु श्रद्धा पूर्वक सुपात्र को दीजाती है वह महा उत्तम है—

देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धा समन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्म लक्षणम् ॥

संवर्तस्मृति श्लोक ५६ में लिखा है कि जो मनुष्य उत्तम गुण वाले ब्राह्मण को दान देता है उसको लक्ष्मी प्राप्त होती है ।

ताम्बूलं चैव यो दद्यात् ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः ।
मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥

व्यास स्मृति अ० ४ श्लोक ३२ में लिखा है कि पात्र अर्थात् वेद पाठी तथा तपस्वी को दान दे —

किंचिद्वेद मयपात्र किंचित्पात्र तपो मयं ।
पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥

मनु जी ने अध्याय ४ श्लोक २२७ में कहा है कि जब सत पात्र मिल जावे तो उत्साह के साथ यथा शक्ति दान दे तथा यज्ञादि कर्म करे —

दान धर्मं निशेवेत नित्य मैष्टिक पौर्तिकं ।
परितुष्टेन भावेन पात्र मासाद्य शक्तितः ॥

मनु जी महाराज ने अध्याय ४ श्लोक ९८ में सत पात्र के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं कि जो ब्राह्मण विद्या तथा तप अर्थात् शुद्ध आचरण से युक्त होता है उसका मुख अग्नि के समान होता है उसमें डालागया अर्थात् दान दिया गया हव्य कव्य आदि इस लोक में कठिन रोग, अरि तथा राज पीडा आदि भय तथा बड़े पाप से बचाता है ।

विद्या तपः समृद्धेषु हुतं विप्र मुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्विषम् ॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ३५ में लिखा है कि योग्य ब्राह्मणों को ही दान दे —

"दानानि चैवोद्दयीन ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः"

पाराशरस्मृति अध्याय १ श्लोक ४७ में लिखा है कि अच्छे खेत में बोया हुआ बीज कभी नष्ट नहीं होता इसी भांति सुपात्र को दिया धन उत्तम होता है—

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रेनिक्षिपेद्धनं ।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्यल्पं दत्तं न नश्यति ॥

दक्षस्मृति अध्याय ३ श्लोक ४ में तथा भविष्य पुराण उत्तरार्ध अध्याय १३२ में लिखा है कि सुपात्र को दान देना योग्य है इसी का फल दाता को होता है ऐसीही कपिल तथा युधिष्ठिर महाराज की सम्मति है ऐसा ही वशिष्ठ जीने राजा जनक से कहा है।

याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय १ श्लोक २०० में लिखा है कि केवल विद्या और तप से सत्पात्र नहीं होता हां जो विद्वान् हैं तथा वेदानुकूल उनके सुन्दर आचरण भी हैं उनको सत्पात्र कहते हैं—

न विद्या केवलया तपसा वापि पात्रता ।
यत्र वृत्त मिमेचोभे तद्धिपात्रं प्रकीर्त्तितं ॥

ऐसा ही व्यासस्मृति अध्याय ४ श्लोक ५५ में लिखा है—

यद भुंक्ते वेद विद्विप्रः स्वकर्म निरतः शुचिः ।
दातुः फलमसेख्यातं प्रतिजन्म ददक्षयं ॥

शांति पर्व में महात्मा कपिल ने कहा है कि सत्पात्र वही हैं जिन्हों ने कभी पाप कर्मों का सहारा नहीं लिया तथा जो अग्नि होत्रादि कर्म करते हैं जिनका जन्म कर्म तथा विद्या तीनों पवित्र हैं।

देखिये अत्रिस्मृति श्लोक ३३९--३४० में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद को जानता हो तथा सब शास्त्रों में चतुर हो माता पिता की सेवा करता हो,

अपनी स्त्री के साथ ऋतुगामी हो शीलवान हो उत्तम आचरण हो, जो प्रति दिन प्रातः स्नान कर नित्य कर्म करता हो, अपने कल्याण की इच्छा रखता हो उसको दान दे, यथा —

ब्राह्मणे वेद विदुषी सर्व शास्त्र विशारदे ।
मातृ पितृ परै चैवा ऋतु कालाभि गामिनि ॥
शील चारित्र सम्पूर्ण प्रातःस्नान परायणे ।
तस्यैव दीयते दान यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥

संवर्तस्मृति अध्याय १ श्लोक ४९-५० में लिखा है वेद पाठी कुलीन सुशील बुद्धिमान तथा शुद्ध ब्राह्मण को दान दे ।

शंख स्मृति अध्याय २ श्लोक १३ में लिखा है कि जो ब्राह्मण नियम पूर्वक शुद्ध आचरण से गायत्री का जप करे उसको दान दे, ऐसा ही वन पर्व अध्याय १९९ में लिखा है, हारीतस्मृति अध्याय १ श्लोक २२, २३ में लिखा है कि वेद शास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मणों ही को दान देना चाहिये, ऐसा ही बृहस्पति स्मृति श्लोक ५७ में लिखा है कि कुलीन, दरिद्री, वेदपाठी, संतोषी नम्र, सब का हितैषी, वेदाभ्यासी, तपस्वी, जितेन्द्री, देवताओं में उत्तम ऐसे सज्जनों को दान दिया जाता है वह अक्षय फल को प्राप्त होता है ।

मनु जी महाराज ने ११ अध्याय के ६ श्लोक में लिखा है कि वेद के जानने वाले तथा वन में रहने वाले सुयोग्य ब्राह्मण को दान देने से स्वर्ग होता है ।

देखिये गीता में श्री कृष्ण जी महाराज ने कहा है ।

दातव्य मिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणी ।
देशेकाले च पात्रे च तद्दानं सात्युकंस्मृतम् ॥

अर्थात् देश काल पात्र को देख कर जो दान दिया जाता है उसको सात्वकी दान कहते हैं ।

प्यारे भाइयो देश से यह प्रयोजन है कि जिस मुल्क में जो वस्तु खाई जाती या काम में लाई जाती हो अथवा उस देश में जिस बात की आवश्यकता हो, काल अर्थात् ऋतु यानी सरदी गरमी वर्षा—इन सब को देख भाल कर जो जिस समय में उत्तम हो उसको दान करे, परन्तु पात्र को देखकर जैसा कि पूर्व वर्णन होचुका है दान देना चाहिये, ऐसे ही दानों से दाता यथावत फल को पाता है, सो अब बिना देख भाल किये खस्ता कचौड़ी तथा मोहन भोग के उपरांत गो दान गज दान आदि देते चले जाते हो, हा शोक ! जब ही तो ब्राह्मणों ने वेद का पढ़ना पढ़ाना सुलक्षण होना सत्योपदेश करना यज्ञ करना कराना इत्यादि छोड़ दिया है ।

पूर्व काल में हमारे ऋषि मुनि महात्मा योगी ब्राह्मण नाना भांति से वेदादि विद्या पढ़ाते थे तथा योगाभ्यास कर नाना विद्याओं का प्रकाश करते थे चहूओर यज्ञ तथा हवन होते थे, समस्त भूमण्डल में भ्रमण करके अपने सत्य उपदेश से तम हरते थे, उनके अर्थ लाखों को दान यहां से जाता था, नकि वर्तमान समय की भांति काशी प्रयाग गयादि तीर्थों में स्वार्थी कुमार्गी दुष्ट आलसी लम्पट आदि को हजारों के दान दिये जावें पर विद्या दान पर जिस का पूर्व वर्णन किया गया किञ्चित विचार न किया जावे, शोक का स्थान नहीं तो क्या है ? इसके उपरांत दान के विषय में किसी महात्मा ने कहा है उसके अनुकूल दान करना योग्य है, यथा—

नष्टं कुलं भिन्न तडाग कूपं भ्रष्टं च राज्यं शरणागतं च ।
गौ ब्राह्मणं देव गृहं च जीर्णं य उद्धरेत् पूर्व चतुर्गुणानाम् ॥

(१) नष्ट कुल वही हैं जिन में दूध पीते बालक बालिकाओं का कोई लालन पालन करने वाला न हो जिनको अनाथ कहते हैं, उनकी पालना इस

दान से यतीम खाने वा अनाथालय बनवाकर करना चाहिये ।

प्यारे सुजनों इस ओर आप आंख भी नहीं उठाते हजारों अनाथ पादरियों ने लेकर धर्म भ्रष्ट करदिये क्या यह पाप की बात नहीं कि हमारे तुम्हारे होते स्वदेशियों की संतान को अन्य देशीय पालन कर पीढ़ी दर पीढ़ी का नाश मारदें, क्या यह शोक की बात नहीं, क्या इन सन्ड मुसन्डों के लालन पालन से अधिक पुन्य की बात नहीं ? सच पूछो तो धिक्कार है हमको जो हमारे तुमारे जीते जी भारत सन्तान का धर्म भ्रष्ट कर सदा के लिये अपना दास बनालें तिस पर भी दान का घमंड करें अथवा नशे में चूर रहें, ज़रा खांख खोलो अविद्या रूपी नशे में ऐसे न डूबजाओ जो घर तक की भी सुध न रहे अब उठ बैठिये, क्योंकि अब बरेली तथा फीरोजपुर में अनाथालय नियत होगये हैं, जहां इन दुखियों का अपनी संतान से भी अधिक पालन पोषण होता है, गवर्नमेन्ट भी सहायता देती है, बहुधा देश के शुभचिन्तक भी दान देकर उनको सनाथ कर रहे हैं, अतः अब सम्पूर्ण भारत वासियों को इन के पालन की सुध लेना योग्य है ।

(२) टूटे फूटे कुए तालावों की मरम्मत कराना, अर्थात् कुए बावली तथा तालाब को ऐसे स्थानों पर बनवाना चाहिये जहां ग्रीष्म ऋतु में बिना जल के पथिकों तथा पशु पक्षियों के प्राण संकट में पड़ते हों वा पिआऊ लगवाना कि जिससे दोनों को उत्तम जल मिलता रहे ।

प्यारे सुजनों विना जल के प्राण जाते रहते हैं इस कारण इसका दान करना भी पुण्य है क्योंकि उस समय कोई दान काम नहीं देता अर्थात् रुपया पैसा मोती कंचन आदि भी मिट्टी के सदृश जान पड़ता है, जैसा कि किसी कवि का वचन है—

चौपाई

निरजल बन में प्यास सतावे । मोती सीप काम नहिं आवे ॥

३ – (भ्रष्टराज्यं) अर्थात् राज पर विपत्ति हो तो उसकी सहायता करना भी पुण्य है क्योंकि उसके रहने से नाना भांति के आनन्द रहते हैं ।

४—(शरणागतंच) अर्थात् जो मनुष्य आपत्ति वा बिपत्ति के कारण अपनी शरण आया हो तो उसकी अवश्य ही सहायता तन मन धन से करनी चाहिये परन्तु डाकू चोर बदमाश राज्य का अपराधी आदि कुकर्मियों अधर्मियों की सहायता करना भला नहीं क्योंकि ऐसे खोटे मनुष्यों के बचाने तथा सहायता करने से जो वह संसारी जनों को नाना भांति से क्लेश पहुचावें उनका पाव उन दाताओं की गर्दन पर होगा जिन्हों ने ऐसे कुपात्रों की सहायता की है ।

५ –गौ की रक्षा करना – हे सज्जन पुरुषो यह आप का बड़ा उपकारी जीव है इसी कारण हमारे पूर्वजों ने इसके गुण देख कर 'तरण तारण' नाम इसी को दिया, गौमाता भी इसी को कहते हैं क्योंकि यह माता के समान अपने रक्षकों का समस्त आयु पालन करती है, इसे कामधेनु भी कहते हैं क्योंकि यह सकल कामनाओं को पूर्ण करती है, इसका अमृत रूपी दूध मनुष्यों के जीवन का बीज, आयुर्बल, आकृति, धारणा, स्मृति, कान्ति का धारण, शौन्दर्य शरीर तथा रूप का देनेवाला, शुद्ध तथा मन के मल को पवित्र करने हारा है, ऐसा ही इसका घी भी निर्बलता, शोष (खुश्की) कृशता (दुबलापन), पित्त, वायु का हरनेवाला, जीर्णज्वर, चिहरे की जर्दी, नेत्र विकार आदि विकारों को दूर करता है ।

इन उपरोक्त लाभों के अनंतर इसी के घी से यज्ञ होते हैं कि जिससे वृष्टि होती है, कि जिससे सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं जिनसे संसार की रक्षा होती है, गीता का वाक्य है –

अन्नाद्भवति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥

मनुजी महाराज ने मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १६२ में लिखा है —

आचार्य्यश्च प्रवक्तारम् पितरम्मातरं गुरुम् ।
न हिंस्याद्ब्राह्मणाङ्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥

अर्थात् आचार्य, पिता, माता, गुरु तपस्वी तथा गाय को किसी प्रकार से न सताना चाहिये, क्योंकि इन सब से संसार का उपकार होता है देखो इसी गाय के बच्चे खेती के काम करते हैं जिससे जीव मात्र का पालन पोषण होता है इसलिये ऐसे उपकारी जीव की सर्व प्रकार रक्षा करनी चाहिये बूढ़ी गाय का दान करना भी छोड़ दीजिये गोशाला बनाकर नगर २ से रक्षा करनी चाहिये ।

प्यारे सुजनों ब्राह्मणों की सदा सहायता करना योग्य है क्योंकि इन्ही के सहाय से हमारा देश सदैव उन्नति पाता रहा इन्ही के द्वारा वेदादि सत्य विद्याओं का प्रकाश हुआ, इन्ही के प्रभाव सें ज्ञान रूपी प्रकाश ने संसार के अंधकार को मेट दिया, इन्ही ने हमारे अर्थ अपने घरवार सकल परिवार को त्यागन कर प्राण तक न्योछावर करदिये, सच पूछो तो जो कुछ वैभव प्रकाश तेज होगया सब इन्ही का प्रताप था, फिर भला कौन ऐसा मनुष्य है जो इस उपकार को न मानता होगा, कहा है—

"ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान् परित्यजेत्"

अर्थात ब्राह्मणों तथा गौओं के अर्थ प्राण को भी समर्पण करना चाहिये फिर भला धन की क्या गिनती, परन्तु ब्राह्मणों के लक्षण स्मृति वा गीता आदि में जो लिखे हैं कि जिनका मैं पूर्व वर्णन कर आया हूं उन्ही की ब्राह्मण संज्ञा है यथा "ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं" अर्थात ब्राह्मणों का तप ज्ञान है

अर्थात स्वयं पूर्ण विद्वान् होके धर्म के लक्षणों का यथावत पालन कर सदा दयां युक्त निर्पक्ष हो सत्य सनातन वेदोक्त धर्म का प्रचार करें, सो भ्रातृगणों ऐसे सुलक्षण युक्त पूर्ण विद्वान् ब्राह्मणों के इस समय दर्शन दुर्लभ होगये हैं, इसी कारण तो भारत के सिर का मुकुट गिरगया, समस्त देश बल हीन तेज रहित विद्या विहीन होगया, बर्तमान समय के गोबर गणेश वीर्य से ही ब्राह्मण बन मूर्ख रहकर, पंच महायज्ञों को त्याग, पत्रा पांडे होगये, सत्योपदेश की दूकानें बंद होगईं तथा नाना भांति के प्रपञ्च फैलगये।

हे बन्धुवर्गो सदा देश काल देख कर दान करना उचित है, अर्थात प्रथम प्रत्येक स्थान वा बड़े २ नगरों में संस्कृत पाठशाला खोल कर विद्याध्ययन करना कराना चाहिये कि जिससे यह यथावत विद्वान् बनजावें तो फिर देश का सुधार होना कुछ काठिन नहीं क्योंकि विद्या की प्राप्ति भी मनुष्यों को विद्वानों ही के समागम से होती है अतः प्यारे स्त्री पुरुषो शीघ्र शीघ्र दान करके पाठशालायें खोल कर नाना प्रकार की विद्याध्ययन कराइये जिस स्थान पर ऐसी पाठशालायें हों उनको दान से सहायता पहुचाना चाहिये जिससे हमारे पूज्य ब्राह्मणों की दशा सुधर जावे।

देवग्रह उन स्थानों को कहते हैं जहां पूर्वोक्त गुण युक्त महात्मा ब्राह्मण सन्यासी निवास करते हैं अथवा जहां कहीं सदा नियत समयों पर धर्मोपदेश होता रहता है जिसको सुनकर सर्व जन धर्म अर्थ काम मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

क्योंकि देव नाम विद्वान् का तथा ग्रह नाम घर का है इसी से जिस स्थान में विद्वान् महात्मा निवास करें उसको देव ग्रह कहते हैं, सो हे प्यारे भ्रातृगणों ऐसे देवग्रह प्रत्येक नगर में होने आवश्यक हैं जहां प्रति दिन

नियत समयों पर वेदादि सत्य शास्त्रों के व्याख्यान हों कि जिससे प्राणीमात्र परमेश्वर की आज्ञाओं को जान सदा प्रेमपूर्वक उन आज्ञाओं को पालन कर आनंद को प्राप्त हों, सो वर्तमान समय में इस भांति के व्याख्यान न होने से देखिये भारत की क्या गति होगई, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सब ने अपने अपने धर्म पर पानी देदिया, वेद का नाम ही नाम रहगया, मुख्य तो यह है कि सत्योपदेश के न होने से ही मत मतांतर फैलगये, कि जिनके कारण फूट ने अपना राज्य कर सब को तितर बितर करादिया सुख आनन्द जाता रहा, विद्या का नाम ही मिटगया जिसके कारण देवग्रह के स्थान पर नाना भांति के मन्दिर बनगये जहां मूर्ख बाबा जी झांझ, ढोलक, मजीरा, शंख आदि बजाकर भंग गांजा अफ़यून आदि नशे जमाते हैं, कहीं रंडियों या लड़कों के नाचादि कौतुक होते हैं, सच पूछो तो यह नाममात्र के साधू बैरागी ब्राह्मण संन्यासी आदि ने भारत को गारत करदिया क्योंकि बिना श्रेष्ठज्ञानी, बुद्धिमान, हिंसा रहित, विद्या वा परमैश्वर्य युक्त सत्यवादी उपदेशक बिना 'यथा नाम तथा गुण' देवग्रह मिलना तथा उनमें सत्योपदेश का होना अत्यन्त कठिन बरन दुस्तर होगया कि जिसके कारण लाखों मनुष्य ईसाई होगये कि जिससे धर्म का स्वरूप ही पलट गया ।

प्यारो यह वही भारत भूमि है कि जहां धर्म का नक्कारा बजता था, यह वही भारतवर्ष है जो सभ्यता में अद्वितीय था, यह वही जंम्बू द्वीप है कि जहां के निवासी सत्यता के कारण देव शब्द के नाम से पुकारे जाते थे, यह वही रत्न मय भूमि है कि जहां के निवासी धृति तथा क्षमा के कारण प्रख्यात होरहे थे यह वही भूमि है जहां के सुजनों ने धर्म के अर्थ अपने प्राण तक समर्पण करदिये ।

हा शोक ! आज वही आर्यावर्त रहगया है कि जहां के निवासी अपने धर्म को भी नहीं जानते ! हाय भारत तुम्हारी क्या गति होगई, तुम्हारा तो स्वरूप ही पलट गया, तुम्हारा नाम, प्रकाश, वैभव, प्रतिष्ठा सब सत्योपदेश अर्थात् धर्म पालन ही के कारण हुई थी, सो आज सब खाक में मिलगई, यह फतह का झंडा तुम्हारे हाथ से जाता रहा परन्तु धन्य हैं उस परमेश्वर जगत पितामह अन्तर्यामी को कि जिसने इस अन्धेर के समय में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज को उत्पन्न करदिया कि जिन्होंने धर्मोपदेश कर भारत वासियों को पाखण्डियों के पञ्जे से बचाया है, अब संपूर्ण भारत तथा अन्य देशों में भी यहां के सत्योपदेश की रोशनी पहुंच रही है, बहुधा नगरों में आर्य मंदिर अर्थात देवग्रह बनगये कि जिनमें प्रति रविवार को ४ बजे से ६ बजे तक वेदादि सत्य शास्त्रोक्त धर्मोपदेश होते हैं, जिनको अब हजारों मनुष्य सुनते ही चौंक पड़ते हैं, उनमें से बहुधा जन प्रसन्न चित्त हो उन कार्यों को करते चलेजाते हैं, यद्यपि पाखण्डी तथा पेटार्थी जन नाना प्रकार के कोलाहल करते हैं तथापि धर्म जिज्ञासु धर्म ही को मुख्य जानकर मूर्खों की मूर्खता पर किञ्चित् ध्यान नहीं देते, अतः मैं श्री स्वामी जी महाराज को कोट्यानुकोटि धन्यवाद देता हूं कि जिन्हों ने भारत के धर्म रूपी प्राणों को सत्योपदेश रूपी अमृत पिला कर चैतन्य कर दिया, कि जिसके कारण भारतवासी घोर निद्रा को त्याग कर भारत के पुनरुद्धार के लिये तन मन धन से नाना धांति की चिकित्सा कररहे हैं, पर शोक तो यही कि इतने पर भी लाखों के दान करने पर भी सच्चे दीनों की ओर ध्यान नहीं देते कि जिसके विना भारत का भारत हुआ जाता है ।

प्रत्येक नगर में वेद प्रचार फंड को दान देकर वेद प्रचार कराओ, देवालय अर्थात् आर्य मंदिर बनाकर सदा प्रत्येक उत्सव तथा त्यौहारों पर

बड़े धूम धाम से हवन कराओ, सत्योपदेश सुनो कि जिसके कारण समस्त नगर में धर्म की चर्चा होने लगे, मनुष्य धर्म को जान उस पर चलें कि जिससे भारत ही भारत होजावे।

इन सब दानों के अतिरिक्त अपने कुटुम्ब तथा घराने अर्थात् बिरादरी वा मुहल्ले के दीनों तथा सच्चे प्रेमी भक्तों की प्रत्येक प्रकार से सुध लेना परम आवश्यक है परन्तु ऐसा भी न करना चाहिये जैसा कि किसी कवि ने कहा है—

नौ बुलावे तेरह आये देखो यहां की रीत।
बाहर वाले खागये और घर के गांवें गीत॥

इसी प्रकार नगर की विधवाओं के खान पान तथा उनकी आत्मिक उन्नति के अर्थ शिक्षा सत्योपदेश का प्रबन्ध होना भी परम आवश्यक है कि जिससे वह धर्म पर यथावत आरूढ़ रहें कि जिसके बिना देख लीजिये कि इस भरत की विधवाओं की क्या २ कुगति होगई, ऐसे ही दान के प्रबन्ध से पुत्री शिक्षा होना उचित है।

तदनन्तर प्रत्येक नगर में औषधालय खोलने चाहियें जहां दीनों को औषध नियत समय पर बिना मूल्य के प्रतिदिन मिला करें, धर्मशाला बनवाना कि जहां दीन बटोही तथा नगर के दीनों को आनन्द मंगल के साथ भोजन मिला करें, ऐसे ही जहां पूर्ण विद्वान् महात्मा रहते हों वहां भी क्षेत्र खोलना उत्तम है, पाठशाला के विद्यार्थियों का अच्छे प्रकार भोजनों का सुप्रबन्ध होना उचित है न कि बर्तमान समय की भांति क्षेत्र तथा धर्मशाला, ब्राह्मण भोजनों में लुच्चे गुन्डे पेटभरे पुरुष अच्छे प्रकार से खाजाते हैं पर दीन अंधे लंगडे, विद्यार्थी सच्चे साधु महात्माओं को नाम मात्र भी नहीं मिलता फिर पुण्य क्या खाक होगा।

इसके उपरांत अन्य २ देशोपकारक कार्यों का करना परम आवश्यक है, इसी को 'रिफाह आम' कहते हैं, जैसा बगीचे लगवाना, मार्ग ठीक कराना, दीनों की पुत्रियों तथा पुत्रों का विवाह कराना, नाना भांति के गुण सीखने के अर्थ निर्धनों को सहायता देना, उपदेशकों को मासिक देकर उपदेश कराना, धर्म ग्रन्थों को बांटना, बडे २ हवन कराना परम धर्म तथा पुण्य की बात है, क्योंकि इससे संसार का बडा उपकार होता है।

जिस स्थान पर इन ईश्वरी आज्ञाओं के अतिरिक्त विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थ मूर्खों को दिये जाते हैं तथा विद्वानों का तिरस्कार होता है उसी देश में अकाल मरी तथा नाना प्रकार के उपद्रव होते हैं यथा भारत वर्ष में इस समय होरहा है –

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानांच वितिक्रमात् ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं व्यथा ॥

अतः अब मैं अपने भाई बहनों से प्रार्थना करता हूं कि यदि आप को दान के फल की इच्छा हो तो सदा मन बच कर्म से परमेश्वरी नियमों का यथावत पालन कीजिये क्योंकि परमात्मा की आज्ञा के प्रतिकूल कार्य करने में नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं, अतः उसकी आज्ञा का यथार्थ ज्ञान होने के अर्थ सदा विद्वान् धर्मात्माओं का कि जिन्होंने मन बच कर्म को एक करादिया है, समागम कर सदा पुरुषार्थ के साथ मन को काम क्रोध लोभ मोहादि दोषों से पवित्र करते रहो क्योंकि बिना मन की पवित्रता के किसी प्रकार के दान से उत्तम फल नहीं मिलसकता, अतः मन को दोषों से बचाकर वाणी से सत्य २ बोलने का पूर्ण नियम अर्थात् व्रत धारण करके अपने स्वदेशियों को सत्य वाणी का पूर्ण दान कीजिये कि जिससे प्राणी मात्र को आनन्द मिले तथा श्रद्धा

पूर्वक ऐसे ही सत्यवादी वेदप्रिय महात्माओं की सम्मत्यानुसार धर्मानुसार प्राप्त किये हुए धन को दान कीजिये।

प्यारे सुजनों बाणी से प्रयोजन केवल शब्द ही से नहीं वरन बाणी शब्द अर्थ संबंध तीनों के योग को कहते हैं, सम्पूर्ण संसार का बाणी से ही प्रबन्ध किया जाता है, बाणी ही सारे मनुष्य तथा पशु सृष्टि पर आज्ञा चलाती है, बाणी में जो प्रत्यक्ष शक्ति है वह किसी इन्द्री में दृष्टि नहीं आती बाणी ही ने समय पाकर कामों के विचारों को पलट दिया, बाणी ही मनुष्यों की प्रतिष्ठा के लिये एक सच्चा हथियार है, इसकी सहायता से मनुष्य जाति ने समस्त भूमण्डल के जीवों को अपने आधीन कर रक्खा है, जो बाणी न होती तो शब्द अर्थ संबंध का कुल भी ज्ञान न होता, तो भला मनुष्य तथा पशु में क्या अन्तर होता, यही ज्ञान तथा उसके प्रकाश करने की शक्ति है, अर्थात् बाणी मनुष्य को मोक्ष सुख का आनन्द दिलाती है, यही उसको नर्क के दुख सागर में लेजाती है।

अतः आओ प्यारे भाई बहनो हम सब मिलकर पूर्ण प्रेम के साथ नम्रता पूर्वक उस जगत पिता परमात्मा से मन वच कर्म के साथ उस शुद्ध निर्मल बाणी के अर्थ प्रार्थना करें, जिसको प्राप्त करके मनुष्य ने अपने आप ही को वरन हजारों जीवात्माओं को पाप के अथाह समुद्र से पार लगाया है, आओ प्रिय सांसारिक भारयो हम सब अपने प्रेम से उस जगदीश्वर से प्रार्थना करें, कि वह हमें ऐसी मधुर तथा आकर्षण शक्ति वाली वाणी से विभूषित करे जिसको पाकर संसार के सच्चे शूरों ने अपने सच्चे घर में पहुंचने तथा अपने प्यारे के गले में लपने के लिये अपना तन मन धन सब न्यौछावर करदिया है, जैसा कि वेद में लिखा है—

पावकानः सरस्वती वाजे भिर्वाजिनीवती यज्ञं वष्टुछियावसु ॥

[८—ग्रहस्थाश्रम]

प्रिय सज्जन पुरुषो वेद और स्मृतियों में इस आश्रम को सब से उत्तम माना है जैसा कि मनुस्मृति अध्याय ६ श्लोक ८९ में कहा है—

सर्वेषामेव चैतेषां वेदस्मृति विधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठःसञ्जीनेतान् विभर्ति हि ॥

क्योंकि जिस प्रकार वायु के आश्रय समस्त जीव रहते हैं, उसी प्रकार अन्य आश्रम वाले ब्रह्मचारी बानप्रस्थ तथा सन्यासी अपनी २ जीविका के अर्थ इस आश्रम का आश्रय लेते हैं, मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ७७ में लिखा है कि—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तंते सर्व जंतवः ।
तथा गृहस्थ माश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥

शंखस्मृति अध्याय ४ श्लोक ६ में लिखा है कि ग्रहस्थ ही यज्ञ करता है वही तप और दान देता है अतः यह आश्रम सब आश्रमों से श्रेष्ठ है—

गृहस्थएव यजते गृहस्थस्तपते तपः ।
ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान्ग्रहाश्रमी ॥

श्रीमद्भागवत स्कंद ३ अ० १४ श्लोक १७ में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य नाव में बैठकर समुद्र पार होजाते हैं उसी प्रकार इस आश्रम में रहकर सम्पूर्ण व्यसनों से पार होजाते हैं, यथा—

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।
व्यसनार्णवमत्येति जलजानैर्यथार्णवम् ॥

इसी स्कंद के अध्याय १४ में कश्यप जी ने कहा है कि इस आश्रम से धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ की प्राप्ति होती है इसी कारण यह श्रेष्ठ है ऐसा ही भविष्य पुराण अ० १५० में लिखा है, मार्कंडेय पुराण अध्याय २९ में इसको कामधेनु गाय की समता दी है।

दक्षस्मृति अध्याय २ श्लोक ४५ से ४८ तक लिखा है कि यह आश्रम तीनों आश्रमों की योनि है अतः इस आश्रम के दुखी रहने से सब दुखी तथा सुखी रहने से सब सुखी रहते हैं, अतः व्यास स्मृति अध्याय ४ श्लोक २ में लिखा है कि इस आश्रम के नियमों को यथावत पालन करने से समस्त तीर्थों का फल मिलता है, संवर्त्त स्मृति श्लोक १०० में इसकी पुष्टता की है।

महाशय अब तो आप को ज्ञात होगया कि यह ग्रहस्थाश्रम जिसमें कि आप आनन्द उडारहे हैं कैसा उत्तम है परन्तु इसकी उत्तमता तब ही तक रहती है जब तक इसके ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र रूप चार खंभे अपने २ धर्मों के करने में कटिबद्ध रहें जैसे खंभों के गिरने से उत्तम से उत्तम ग्रह गिरकर चकनाचूर होजाता उसी भांति वर्त्तमान समय में इस आश्रम की दुर्दशा होरही है क्योंकि इस समय में समस्त वर्णाश्रम शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध कार्य कररहे हैं और कृष्ण महाराज का भी वचन है कि जो मनुष्य शास्त्र के प्रतिकूल कार्य करते हैं उनको न सिद्ध न सुख न परम गति प्राप्त होती है, जैसा कि कहा है—

यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्त्तते काम कारतः।
न स सिद्ध मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्॥

अतः अब हम शास्त्रानुकूल वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन करते हैं, विचारिये और कृपा कर इधर ध्यान देकर शास्त्रोक्त कर्म करने का प्रचार कीजिये उसी समय आनंद मिलेगा अन्यथा नहीं।

ब्राह्मणों के लक्षण

अध्यायनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत॥

पूर्ण विद्या पढना पढाना यज्ञ करना कराना विद्या वा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देना, न्याय से धन उपार्जन करने वाले गृहस्थों से दान लेना ब्राह्मणों का धर्म है।

क्षत्रियों के लक्षण

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययन मेव च।
विषयेष्व प्रसक्तश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

दीर्घ ब्रह्मचर्य से वेदादि शास्त्रों का यथावत पढना अग्निहोत्रादि कर्मों का करना, सुपात्रों को विद्या सुवर्ण आदि तथा प्रजा को अभय दान देना, तथा उनका सब प्रकार से यथावत पालन करने वालों को क्षत्री कहते हैं।

वैश्यों के लक्षण

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययन मेव च।
वणिक्पथं कुशीदंच वैश्यस्य कृषिमेयच॥

वेदादि शास्त्रों का पढ़ना अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना दान देना पशुओं का पालन करना देशों की भाषा हिसाब भूगर्भ विद्या भूमि बीजादि के गुण दोषों को जानना सर्व पदार्थों के भाव समझना व्योपार करना कुसीद अ-अर्थात् व्याज का लेना खेती की विद्या का जानना अन्नादि की रक्षा करनेवालों को वैश्य कहते है।

शूद्रों के लक्षण

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभूः कर्म समादिसत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषा मनसूयया॥

जिसको विद्या पढ़ने से भी न आवे ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनों वर्णों की निन्दा रहित प्रीति पूर्वक सेवा करे उसको शूद्र कहते हैं।

प्रकट हो कि उपरोक्त कर्मों में से दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना यह तीन

धर्मार्थ तथा यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना, दान लेना यह तीन जीविकार्थ ब्राह्मणों के कर्म हैं, दान देना, वेद पढ़ना, यज्ञ करना, यह तीन धर्मार्थ तथा प्रजा का पालन करना, अस्त्र धारण करना, यह जीविकार्थ क्षत्री के कर्म हैं, इसी प्रकार दान देना, वेद पढ़ना, यज्ञ करना धर्मार्थ, तथा पशु पालन, व्यौपार, व्याज लेना यह जीविकार्थ वैश्य के कर्म हैं, शूद्र का केवल एक ही कर्म अर्थात् तीनों वर्णों की यथावत सेवा करना धर्मार्थ वा जीविकार्थ हैं ।

मान्यवरो इसी भांति हारीतस्मृति अध्याय १ श्लोक १७ तथा अत्रिस्मृति श्लोक १३, १४, १५; शंखस्मृति श्लोक २, ३, ४, ५ विष्णु पुराण के तीसरे अन्श के ८ अध्याय मारकण्डेय पुराण अध्याय २७ के श्लोक ३, ४, ५, ६, ७ भविष्य पुराण अध्याय १ तथा शुक्र नीति अध्याय ४ श्लोक ५७, ५८, ५९ विदुर नीति तथा गीता, उद्योगपर्व, श्रीमद्भागवत में ऐसा ही वर्णन किया है।

मान्ववरो वर्णों का अन्तर गुण कर्मों के अनुसार नियत है शूद्र ब्राह्मण तथा ब्राह्मण शूद्र होजाता है, यदि ब्राह्मण का बालक कर्मों से भी योग्य हो तो वह यथार्थ ब्राह्मण होता है वरन क्षत्री अथवा वैश्य शूद्र की पदवी को पाता है ।

इसी भांति शूद्र का लड़का मूर्ख हो तो वह शूद्र ही रहता है वरन गुण कर्मों के अनुसार ब्राह्मण क्षत्री वैश्य वर्ण में पहुंच जाता है, इसी प्रकार क्षत्री वैश्य की दशा होती है, मनुजी महाराज ने कहा है—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैतिशूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यस्तथैवच ॥

अथोपरांत यह भी जानना योग्य है कि जन्म समय सब शूद्र होते हैं,

कर्म से द्विज तथा वेद पढ़ने से विप्र, ज्ञान प्राप्त करने से ब्राह्मण होता है जैसाकि मनु जी ने लिखा है –

यन्मना जायते शूद्रः कर्म्मणा जायते द्विजः ।
वेदाध्यापीतु विप्रस्यात् ब्रह्मज्ञानीतु ब्राह्मणः ॥

शुक्रनीति अध्याय १ श्लोक ३८ में लिखा है कि जन्म से ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र म्लेच्छ नहीं होते वरन गुण तथा कर्म के भेद से होते हैं, ऐसा ही गीता में भी लिखा है

चातुर्वर्ण्यं यथा सृष्टं गुण कर्म विभागसः ॥

शुक्रनीति तथा मनुस्मृति में यह भी लिखा है कि ब्राह्मण उत्तम गुणों के कारण सब वर्णों से श्रेष्ठ मानागया है, यथा –

सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायते हि स्वकर्मणः ॥

वनपर्व अध्याय ३१३ में राजा युधिष्ठिर तथा यक्ष का सम्वाद इसी विषय में हुआ है उसको भी सुनिये देखिये यक्ष ने राजा युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि ब्राह्मण--कुल गुण, वेद पाठ, तथा कर्म इन में से किस कर्म के करने से होता हैं तब युधिष्ठिर महाराज ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण न कुल न वेद पाठ से होता है किन्तु आचरण ही का नाम ब्राह्मण है अतः मनुष्य को विशेष कर आचरण ही सुधारना चाहिये क्योंकि जिसका आचरण नहीं बिगड़ा वह निर्बल नहीं है वरन आचरण बिगड़ने ही से हीन अर्थात् नीच कहाता है, पढ़ने पढ़ाने तथा शास्त्र का विचार करने वाले जितने मनुष्य हैं वेदादि शास्त्रों के प्रतिकूल अधर्म का सेवन करें तो सब मूर्ख वा शूद्र हैं तथा जो क्रियावान अर्थात् वेदोक्त धर्म संबंधी कर्म करते हैं वही पंडित अर्थात् ब्राह्मण हैं कोई ब्राह्मण यदि कुल में उत्पन्न होकर चारो वेदों को भी पढ़ा है परन्तु उसके आचरण अच्छे नहीं हैं तो वह शूद्र से भी नीच है तथा जो अग्निहोत्र

आदि कर्म करता है तथा इन्द्रियों वा मन को वश में रखनेवाला है वही ब्राह्मण है जैसा कि –

यक्षोवाच

राजन्कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्योतत्सुनिश्चितम् ॥

युधिष्ठिरोवाच

शृणुयक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणंहि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीण वृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥
पाठकापाठकाश्चैव येचान्ये शास्त्र चिंतकाः।
सर्वे व्यसनिनाः मूर्खाः यः क्रियावान् स पंडिताः ॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादितिरिच्यते।
योऽग्नि होत्र परोदान्तः स ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥

इसके पश्चात् युधिष्ठिर महाराज और सर्प का सम्वाद जो महाभारत वन पर्व अध्याय १७९ है जिसके पाठ मात्र से ही स्पष्ट प्रकट होता है कि गुण कर्म स्वभाव ही से वर्णों की व्यवस्था नियत थी देखो सर्प ने प्रश्न किया कि हे महाराज युधिष्ठिर ब्राह्मण किसको कहते हैं युधिष्ठिर महाराज ने उत्तर दिया कि जिसमें सत्य, दान, क्षमा, शील, लज्जा, तप तथा घृणा हो उसीको ब्राह्मण कहते हैं तब फिर सर्प ने कहा कि ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य शूद्र यह चारो वर्ण वेद का प्रमाण मानते हैं, यदि किसी शूद्र में सत्य, दान, क्षमा, शील, लज्जा, अहिंसा तथा घृणा हो तो क्या वह भी ब्राह्मण होजावेगा ? तब युधिष्ठिर महाराज ने उत्तर दिया कि जो लक्षण

शूद्र में हैं वे ब्राह्मणों में न हों तथा शूद्रों में हों तो शूद्र भी ब्राह्मण होसकता है, शूद्र के लक्षण में ब्राह्मण हो तो वह ब्राह्मण भी शूद्र ही है, यथा—

सर्पोवाच

ब्राह्मणः को भवेद्राजन् वेद्यं किं च युधिष्ठिरः ।
ब्रवीह्यतिमतिं त्वांहि वाक्यैरनुमिमीमहे ॥

युधिष्ठिरोवाच

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥

सर्पोवाच

चातुर्वर्ण्यं प्रमाणंच सत्यं च ब्रह्म चैवहि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दान मक्रोधमेवच ॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिरः ।

युधिष्ठिरोवाच

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्य द्विजे तच्च न विद्यते ।
नवैशूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो नच ब्राह्मणः ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत्सर्प तं शूद्र मिति निर्दिशेत् ॥

श्रीमद्भागवत में लिखा है—

यस्य यल्लक्षणम्प्रोक्तम् पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्राऽपिदृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

कि जिस मनुष्य में जिस प्रकार के गुण होते हैं वह उसी वर्ण में मिलाने के योग्य होते हैं, आपस्तम्ब के सूत्र में लिखा है—

धर्म्म चर्य्यया यद्यन्यो वर्णः पूर्वम्पूर्वम्वर्णमा । पद्यते जाति परिवृत्तौ ।

कि अपने कर्मों से छोटा बडप्पन को पालेवाहै, फिर लिखाहै—

अधर्म्म चर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यञ्जघन्यं ।
वर्णमा यद्यते जाति परिवृत्तौ ।

बुरे कर्मों के कारण ऊंचे वर्ण का मनुष्य भी नीचे वर्ण को पहुंचजाता है, यही कारण है कि विश्वामित्र क्षत्री से तथा नारद ऋषि नीच वर्ण से ब्राह्मण होगये ।

इसके उपरांत भविष्य पुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अध्याय में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद पढ़कर वैश्यादि कर्म कर शूद्र की सेवा करे तथा नट चोरी चिकित्सा से निर्वाह करे वह भी शूद्र कहाता है, मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ९७ में लिखा है कि मूर्ख ब्राह्मण को लकड़ी के हाथी तथा चमड़े के मृग के समान ही समझना चाहिये, शांति पर्व अध्याय ७७ में भीष्म पितामह तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के आपत धर्म प्रकरण में लिखा है कि हस्तक्रिया, लेन देन, गौ, घोड़ा, गाड़ी, व्योपर, मुद्रा, लवण तिल, फल, पत्थर, वस्त्र, रस, मधु, तक्र, मांस, पृथ्वी, कम्बल, शाक, गन्ध इन को कदापि न वेचे, दूध दही मदिरा के बेचने से भी ब्राह्मण हीन वर्ण होजाते हैं, इसी प्रकार नाचने गाने वाला भी शूद्र होजाता है तथा श्रीमद्भागवत स्कंद ११ अध्याय १७ में ब्राह्मण को नीच वृत्ति करने की आज्ञा नहीं है, बशिष्ट स्मृति अध्याय ६ श्लोक ३ में तथा पाराशरि स्मृति अध्याय ८ श्लोक ३ में लिखा है, जो वेद नहीं जानता व्यौपार खेल से आजीविका करता है संध्या अग्निहोत्र नहीं करता, खेती से पालन पोषण करता है वह नाम मात्र को ब्राह्मण है ।

प्रिय सज्जन पुरुषो उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होरहा है कि कर्म ही मनुष्य को ऊंची पदवी अर्थात् उच्च वर्ण में लेजाता है, कर्म से ही नीचा होजाता है, ऐसा ही शांति पर्व अध्याय १८८ में भारद्वाज ने भृगु जी से कहा है, ऐसा

ही भविष्य पुराण अध्याय ३६ में सुमन्त मुनि ने राजा शतानीक की शंकाओं को समाधान कर कहा है कि कर्म ही ब्राह्मण का हेतु हैं, ऐसा ही अनुशासन पर्व अध्याय १४३ में महादेव जी ने पार्वती जी से कहा है, बनपर्व अध्याय १५० में हनूमान जी ने भीमसेन से कहा है कि जो क्षत्री काम क्रोध द्वेष से रहित होकर उचित रीति से दण्ड का विधान करते है वह पण्डितों की जात को पाते हैं।

ऐसा ही अनुशासन पर्व अध्याय १४३ में महादेव जी ने कहा है इसके अतिरिक्त चाणक्यस्मृति अध्याय ११ श्लोक १२, १३, १४, १५, १६, १७ में स्पष्ट रूप से वर्णन कियाहै कि जो ब्राह्मण अच्छे कर्मों को करता हो ऋतुगामी हो वह द्विज तथा जो सांसारिक कर्मों में रत हो पशुओं का पालन बनिगाई तथा खेती करने वाला हो वह वैश्य, जो लाखादि पदार्थ तेल नील कुसुम मधु घी मद्य अथवा मांस का वेचनेबाला है वह शूद्र, जो दूसरे का काम विगाड़ने वाला दम्भी अपने अर्थ का साधने वाला छली द्वेषी मृदु तथा अंतःकरण में निठुर हो वह विलार, जो वाउली कुआ आदि को बिगाड़ता है वह म्लेक्ष, जो देवता वा गुरू के द्रव्य को हरता या परस्त्री से संग करता तथा सब प्राणियों में निर्वाह करलेता वह चांडाल कहाता है इसी प्रकार अत्रि जी महाराज ने ३७१ श्लोक में दश प्रकार के ब्राह्मण लिखे हैं, जिनके लक्षण उपरोक्त कथन से कुछ २ मिलते हैं जिनको अधिक जानने की इच्छा हो वह श्लोक ३७२ से ३८१ तक को देखलें, हम विस्तार के कारण यहां नहीं लिखते।

अनुशासन पर्व अध्याय १४३ में महादेव जी ने पार्वती से कहा है कि कर्मों से ही ब्राह्मण क्षत्री शूद्र होता है।

प्यारे भाइयो इस प्रकार वर्ण व्यवस्था को जान धर्मानुसार वर्णों के धर्म करने से ही कल्याण होता है अन्य वर्ण के धर्म करने से पतित होजाता है मनु जी ने अध्याय १० श्लोक ९७ में लिखा है—

बरं स्वधर्मो विगुणोन पारक्यः स्वनुष्ठितः ।
पर धर्मेण जीवन्हि सद्यः पतित जातिनः ॥

इसी प्रकार गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से, मार्कंडेय पुराण में मदालसा ने अकलर्न से और श्रीमद्भागवत में स्कन्द ३ के २८ अध्याय के २ श्लोक में हारीतस्मृति अध्याय ७ श्लोक १७--१८ दक्षस्मृति श्लोक ३, ४ तथा अत्रिस्मृति अध्याय १ श्लोक ३२ विष्णु पुराण अन्श २ अध्याय ६ में यही आज्ञा है ।

प्यारे भाइयो जब तक इस देश में गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था नियत होने की रीति प्रचलित थी तबतक प्रत्येक मनुष्य परिश्रम करता था, जब से यह भय इस देश से निकल गया अर्थात् जन्म ही से ब्राह्मण क्षत्री वैश्य बनगये उसी दिन से इस देश की हीन दशा होगई, इसका कारण यही है कि कोई दंड देनेवाला नहीं रहा, बिना दंड के कोई नियम ठीक नहीं रह-सकता, मनु जी का वाक्य है –

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्डवाभिररक्षति ।
दण्ड सुप्तेषू जागर्ति दण्डधर्म स्विदुर्बुधाः ॥

दंड ही से प्रजा की रक्षा होती यही शिक्षा देनेवाला यही सोतों को जगाता है, शुक्र नीति में भी लिखा है कि दंड ही से धर्म की रक्षा होती है ।

[९—पति वत्नी धर्म]

प्रिय सज्जन पुरुषों ब्रह्मचर्य पूर्ण होने के पश्चात् जब विवाह हो जाता है तब स्त्री पुरुष एक स्थान पर रहते हैं उस समय परस्पर एक्यता का होना बहुत आवश्यक हैं क्योंकि गृहस्थी एक राज्य है जिसका राजा पुरुष और स्त्री मंत्री है, अब आप जानते हैं कि जबतक राजा और मंत्री विद्वान होने के पश्चात् एक मत होकर अपने २ धर्म को नहीं करते तो उस राज्य की दशा प्रशन्शनीय नहीं होती बरन नाना प्रकार के कष्ट राजा और प्रजा को उठाने पडते हैं और देश् देशान्तरों में अप्रतिष्ठा होती है और शत्रू भी समय पाकर अपना कार्य पूरा करते हैं अर्थात् थोडे ही दिनों में वह राज्य नष्ट होजाता है, मान्यवरो ठीक उसी भांति गृहस्थ रूपी राज्य को समझो यदि स्त्री और पुरुष विद्वान होकर सम्मति के साथ प्रवन्ध नहीं करते तो वह भी शीघ्र नष्ट होजाता है इसलिये शास्त्रकारों ने स्त्री और पुरुष को यही आज्ञा दी है कि परस्पर पूर्ण आयु प्रीति युक्त रह पुरुषार्थ धन और श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्मानुकूल संसारिक और पारलोकिक कार्यों को कर इस संसार में नित्य आनन्द करें।

इषे राये रमस्व सहसे द्युमन ऊर्जे अपत्याय।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावेताम्॥ ३५॥

मनुस्मृति अ० ९ श्लोक १०१ में यही आज्ञा है कि पति पत्नी का परम धर्म यही है कि सम्पूर्ण आयु आपस में प्रीत पूर्वक रहें, जैसाकि—

अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणतिकः।
एषधर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्री पुंसयोः परः॥

इसके उपरान्त इन्ही महात्मा ने अ० ९ श्लोक १०२ में इस की स्पष्ट रूप

से पुष्टी कर दर्शाया है कि जिस कुल में स्त्री और पति आपस में प्रसन्न रहते हैं उसी कुल का कल्पाण होता है जैसाकि –

तथानित्यंयतेयातां स्त्री पुंसौतुकृतक्रियो ।
यथा नाभिचरे तातौ वियुक्ता वितरेतरम् ॥

प्यारे स्त्री पुरुषा जब परमपिता परमात्मा हमारे सुख तथा आनन्द कल्पाण के अर्थ यह उपदेश करता है, उसी के अनकूल ऋषी मुनी महात्मा अपने सद ग्रंथों में आज्ञा देते हैं, तो फिर यदि आप को सुख की इच्छा है तो एकता के साथ परस्पर प्रीति युक्त गृहस्थ रूपी राज्य का प्रबन्ध कीजिये, वरन यही राज्य आप को कारागार जान पड़ेगा जिसको त्यागने की उत्कंष्ठा आप के मन में उत्पन्न होजावेगी फिर आनन्द कैसा इसलिये हम शास्त्र के अनुसार सुख प्राप्त करने के नियम लिखते हैं कृपाकर निम्न लिखित नियमों का पालन कीजिये अवश्य मेव आनन्द मिलेगा और भारत की सुदशा होजावेगी ।

स्त्रीधर्म

प्यारी स्त्रियों वेदानुकूल जीवन का प्रधान फल मुक्ती ही मानागया है उस के प्राप्त करने के उत्तम २ उपाय वेदों में दर्शायेगये है उनके ही अनकूल ऋषी और मुनियों ने भी उपदेश किया है तिनपर चलने से लौकिक पारलौकिक सुख प्राप्त होते हैं, जो हमारे प्राचीन ऋषी मुनियों ने प्राप्त भी किये परन्तु जहांतक हम देखते हैं स्त्रियों के लिये केवल एकही साधन अर्थात् पतिसेवा है जिसके पूर्ण करने से संसार में सुख तथा यश प्राप्त होता परलोक में स्वर्ग मिलता है ।

प्यारी वहनों यह वात स्पष्ट रूप से प्रकट है कि स्त्री का पति ही सर्वोपरि धन वही उसका इष्टदेव है उसकी सेवा करने तथा आज्ञानुवर्ती होने से परम पद

अर्थात् वैकुंठ मिलता है और वही इस भवसागर में सुखों को देता आनन्द को बढ़ाता, उसी से जीवन सुफल होता है, वही सौभाग्य की उन्नति करता तथा शरीर में प्राण के तद्वत् है, मुख्य तो यह है कि पति के तुल्य इस असार संसार में कोई पदार्थ नहीं, यदि है, तो वही पति, क्योंकि वही उसका तन मन धन है, हे सुन्दरियो जब पति तुम्हारा ऐसा इष्टदेव है कि जिसके विना तुम्हारे प्राण नहीं रहसकते तो भला कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि जिस पति के रहने से तुम्हारे प्राण रहते हैं, फिर तुम उसको नाना प्रकार से क्लेशित करती हो, उसकी सेवा आज्ञापालन इस भांति करना योग्य है कि जिससे तुम्हारे प्राणनाथ जीवन मूल सदा आनन्द मग्नानन्द में रहें क्योंकि पति से अधिक तुम्हारा कोई मित्र नहीं, वह तुम्हारे जीवन भर के दुख सुख का साथी है विना उसके तुमको संसार सूना जान पड़ता है, धरती आकाश भी दृष्टि नहीं आता सम्पूर्ण ऐश्वर्य मिथ्या छूछा मालूम होता है, यथार्थ में विना प्राणनाथ के प्राणों को चैन नहीं आता, जो स्त्री अपने पति को दुख देती वा उसके दुःख में साथी नहीं होती उससे अधिक इस संसार में कोई अपराधी नहीं वे ही नर्क को जाती, वही तरुणाई में विधवा होती, उन्हीं को इस संसार में नाना क्लेश उठाने पड़ते हैं, इस कारण हे स्त्रियो तुम सदा पति सेवा को स्वीकार करो जो तुम्हारे अर्थ अमृत रूपी रस है, कि जिसके प्राप्त करने से सर्व सुख मिलते हैं, यथा मनु० अ० ५ श्लोक १६५ में लिखा है

पतिं यानाभि चरति मनोवाग् देह संयता ।
साभर्तृ लोका माप्नोति सद्भिः साध्वीतिचोच्यचे ॥

इस श्लोक का यह प्रयोजन हैं कि जो स्त्री मन वाणी तथा शरीर के दोषों

से रहित होकर अपने पति को त्याग दूसरे का संयोग नहीं करतीं वह भर्तृ लोक को पाती हैं इस लोक में उनको पतिव्रता कहते हैं।

अब धिक्कार ऐसी स्त्रियों पर जो पति को छोड़ अन्य पुरुषों से सम्बन्ध रखती हैं वा उसको किसी प्रकार से क्लेश दे आप रोरव नर्क में जाती हैं, व्यास स्मृति के २ अ० के १८ श्लोक में लिखा है कि पति ही स्त्री का परमदेवता है जो उसकी सेवा करती हैं उनको दोनों लोकों में सुख मिलता है इस से पृथक कोई अर्थ काम नही, यथा –

एक चित्ततयाभाव्यं समानव्रत वृत्तितः।
नपृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्ग विधिसाधनं॥

और ऐसाही इसी अ० के ३५ श्लोक में भी कहा हैं, महाभारत आदि पर्व अध्याय १५८ में कुन्ती महारानी ने भीमसेन से कहा है कि स्त्रियों के लिये नाना प्रकार के यज्ञ, तप नियम, दान इन सब कार्य्यों से परम धर्म यही है कि पति सेवा अर्थात् पति का हित सदां करती रहै, ऐसा ही मनुजी महाराज ने ५ अ० के १४५ श्लोक में तथा पारासर स्मृति के ४ अ० के १६ श्लोक मे भी ऐसाही उपदेश है – वाल्मीक रामायण अयोध्याकांड सर्ग ११९ में अनुसुया जीने सीता जी को उपदेश दिया है कि स्त्रियों के लिये पति ही सुख का दाता तथा बन्धू है इसलिये जो उसको दुख देती हैं उन को नर्क प्राप्त होता है, श्री महारानी ने इसके उत्तर में कहा कि सच है स्त्रियों का जपतपादि एक पति सेवा ही है इसी से वह स्वर्ग पाती हैं जेसाकि सावित्री रोहणी ने पाया, इसके अतिरिक्त ऐसा ही मैं ने वेद शास्त्रों में सुना है।

वालमीकी रामायण अ० का० सर्ग ३८ में कोसिल्या जीने सीताजी को

उपदेश किया हैं कि स्त्रियों को आपत्ति समय में भी अपने पति का अनादर न करना चाहिये और श्रीमद्भागवत स्कंद ६ अ० १८ में कश्यप जी ने दिति से कहा है कि पति ही स्त्री का परम देवता है—

पतिरेवाहि नारीणां दैवतं परमंस्मृतम्।

याज्ञवल्क्य स्मृति श्लोक ८३ में भी लिखा है कि गृहकार्य्यों को कर पति की सेवा में तत्पर रहना ही स्त्रियों का धर्म है और श्लोक ८७ में लिखा है कि जो स्त्री इन्द्रियों को बश में कर पति की इच्छानुसार कार्य्य करती है उसकी इस लोक में प्रशंसा होती तथा परलोक में सुख मिलता है, बन पर्व अ० २०४ में युधिष्ठर महाराज ने कहा है कि जो स्त्री अपने पति की सेवा करती है तथा सत्य को धारण करती तथा संतान के पालन पोषण में नियुक्त रहती है वही पतिव्रता है।

इसलिये प्यारी बहनों चाहे तुम्हारा पति कैसा ही खोटे स्वभाव का हो बृद्ध हो, मूर्ख, रोगी दरिद्री या पातकी हो तो भी तुमको उसका असत्कार न करना चाहिये, जैसा मनुजी ने भी अ० ५ श्लोक १५४ में लिखा है—

विशीलः काम वृत्तो वा गुणैर्वापरिवीर्जतः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥

क्योंकि जो स्त्री पतिव्रत धर्म को छोड देती है उसकी इस लोक में निंदा मरने के पीछे गीदडी के पेट में जन्म लेती है और सदा रोगी रहकर पाप के फल को भोगती है जैसाकि मनु अ० ५ श्लोक १६४ में लिखा है—

व्यभिचारात्तुभर्त्तुःस्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम्।
श्रृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥

फिर दक्ष स्मृति अ० २ श्लोक ११, १२ में लिखा है कि जो स्त्री अपने

दरिद्री व रोगी पति का भी तिरस्कार करती है वह कुत्ती, गीदडी, मच्छी, बार बार होती है - अब धिक्कार ऐसी स्त्रियों पर जो पति को छोडकर अन्य पुरुष से संबन्ध रखती हैं वा उसको किसी प्रकार से क्लेश दे आप रौरव नर्क में जाती हैं, सच पूछो तो स्त्री को धर्म अर्थ काम मोक्ष का देनेवाला केवल एक पति ही है, सो वर्तमान समय में बहुधा स्त्री उसको त्याग अनेक लीला रचती हैं, चेली होजाती हैं, कोइ गंगा यमुना आदि के स्नान में वैकुंठ समझती हैं कोई तीर्थ यात्रा में जन्म सुफल मानती हैं, कि जिनसे हानि के अतिरिक्त कुछभी लाभ नहीं होता ऐसी स्त्रियों के उसलोक विगडने के उपरांत इस लोक में नाना दोष देखने में आते हैं कि जिनके वर्णन करने में लाज आती है हृदय दाणिम सा दडकता है परन्तु देश की दशा देखकर कुछ वर्णन करता हूं।

प्यारी बहनों ऐसी कुचाल स्त्रियों की प्रथम तो संसार में अपकीर्ति होती है और पति को तो मरना ही सूझता है कोई २ मनुष्य ऐसी स्त्री को मार भी डालते हैं दिलों में प्रेम नहीं रहता कि जिस से प्रति दिन क्लेश बना रहता तथा गृहस्थी के प्रबंध में विघ्न पडजाता है और गर्भ भी नहीं रहता, उसके उपरान्त माता पिता बहन भाई आदि को भी लज्जा आती है, बाप दादे का नाम डूबजाता है कहीं लाठी चलती है, न्यायशालों में मुकदमे होते हैं, सच तो यह है कि ऐसी स्त्री दोनों कुलों को दग्धकर देती हैं, धिक्कार है ऐसी स्त्रियों पर जो पलमात्र के सुख में डूबकर अपयश का टोकरा सिरपर धरती हैं, इस के सिवाय, सत्य शास्त्रों में भी ऐसे कर्म करने की आज्ञा नहीं पाई जाती वर्न स्मृतिकारों ने पति ही को देवता कहा हैं जैसा मनु० अ० ५ श्लोक १५४ में लिखा है - "सततं देववत्पतिः"

जिनको तीर्थ स्नान की इच्छा हो वह अपने पति के चरणों को धोकर पीवे जैसे, अत्रि स्मृति श्लोक १३५ में लिखा है -

तीर्थ स्नानार्थिनोनारी पतिपादोदकंपिवेत् ।

इस श्लोक का मुख्य अभिप्राय यह है कि स्त्री जन तीर्थों का तीर्थ अपने पति ही को समझे अर्थात् पति के चरणों के समान जान उधर अपने चित्त की वृत्ती को जाने दें और घरही में पति को तीर्थराज के तुल्य मानकर उन्ही की आज्ञानुसार आज्ञावर्त्ती हो सेवा टहल से प्रसन्न करना अपना मुख्य कार्य समझ जीवन तक उन्ही का हित करना परम धर्म है, १३३ श्लोक में अत्रि जी ने भी कहा है कि तीर्थ यात्रा करने से स्त्री पतित होजाती है इसलिये प्यारी तुम सत्य शास्त्रों की आज्ञानुसार अपने गृह में रहकर ही तीर्थराज अर्थात् पति की सेवा टहल करो तुम्हारा इसी में कल्याण है।

प्यारी स्त्रियों कैसे शोक का स्थान है कि तुम तनिक २ से क्लेशों में अपने पति का साथ छोड देती हो क्या आप ने श्री सीता दमयन्ती द्रोपदी आदि का नाम नहीं सुना जिनका निर्मल यश चहुओर प्रकाश होरहा है इसी कारण उनके नाम आज तक लिये जाते हैं, देखो जब श्री सीताजी ने रामचन्द्रजी को बनोवास में भी नहीं त्यागा यद्यपि उनको सास ससुर आदि ने बहुत समझाया परन्तु श्री सीता जी ने कुछ ध्यान न दिया तिस पर श्री रामचन्द्र जी ने वन और जंगल के क्लेश सुनाये तब श्री महाराणी जी ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि—

चौपाई

मातु पिता भगनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु स्वजन सुहाई । सुत सुन्दर सुशील सुखदाई ॥
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते । पियविन तियहि तरणितें ताते ॥
तन धन धाम धरणि पुर राजू । पति विहीन सब शोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषण भारू । यम यातना सरिस संसारू ॥
प्राण नाथ तुम विन जग माहीं । मोकहँ सुखद कतहुं कोउ नाहीं ॥

जिय विनु देह नदी विनु वारी । ऐसे नाथ पुरुष विनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । शरद विमल विधु वदन निहारे ॥
मैं पुनि समझि दीख मनमाहीं । पिय वियोग सम दुख जगनाहीं ॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय विषाद परिताप घनेरे ॥
पिय वियोग लवलेश समाना । सब मिलि होहिं न कृपा निधाना ॥

जब श्री रामचन्द्र जी ने उनकी ऐसी पूर्ण भक्ति उत्साह तथा प्रेम देखा तो उनको साथ चलने की आज्ञा दी, दमयन्ती भी ऐसी ही प्रेम भक्ति अपने पति राजा नल से रखती थी जब राजा नल अपने भाई पुष्फर के साथ सब राज पाट हार गया तब बारह बर्ष का वनोवास हुआ, उस समय दमयन्ती भी अपने प्राणनाथ के साथ हुई, वन में नल ने उसको दुख सहन करते देखकर कहा कि हे सुन्दरि तू जा घर चलकर रह, मेरे साथ तुझको अत्यन्त क्लेश हैं मैं तेरे दुःख देख कर और भी दुखी होता हूं, दमयन्ती ने उत्तर दिया कि हे कृपासिन्धु हे जीवन प्राण नाथ मुझको आप के साथ ही परम सुख है, अन्यथा नानाभांति दुःख है, क्योंकि स्त्री को पति के समान कोई सुख नहीं, जैसे छाया शरीर से अलग होते ही मरजाती है, कमल को सूर्य और कमोदनी को चांद के रहते ही सुख मिलता है, मछली का प्राण पानी है पपीहा स्वांत की बूंद को चाहता है, हंस को दूध से प्रीत होती है, उसी भांति हे पीतम स्त्रियों को सर्व सुख की जड पतिही का साथ है सो आप मुझको दुखी बताते हैं यह कदापि नहीं होसकता, जब दमयन्ती ने राजा नल का कहना न माना तब नल एक दिन उसको सोताहुआ छोड़कर चलागया तो वह नाना प्रकार से विलाप करती थी कि हे प्रियनाथ ! मुझको अपने सुख दुख का बिचार नहीं है केवल शोक यही है कि मैं आप की सेवा न करसकूंगी जिस समय आप रात को थकित होकर किसी पेड के नीचे विश्राम करेंगे तो आपकी सेवा कौन

करेगा, हे नाथ मुझसे क्या अपराध हुआ जो आपने मुझसे इस समय सेवा भी कराना उचित न जाना, मेरे अपराध को क्षमा कीजिये और दर्शन देकर मेरे मन की कली को खिलाइये ।

इस भांति विनती करती हुई बन जंगल छानती अपने पिता के यहां पहुंची, दूसरे स्वयम्बर के मिस से राजा नल को खोजने का उपाय कराया उसके साथ ही मन में यह भी प्रण कर लिया कि यदि राजा नल आज न मिला तो मैं अपने प्राण अनल में दाह करदूंगी, परन्तु राजा नल मिलगया फिर दोनों ने आनन्द से आयु व्यतीत की ।

इसी प्रकार शकुंतला कि जिसने तपोबन में गन्धर्व विवाह राजा दुष्यन्त के साथ किया था फिर जब वह राजमहलों को गई तो राजा ने भ्रम से उसको नहीं जाना तब उसने कई वर्ष तक पति के विरह में वन में तपस्या की, फिर भेंट होने पर अपने पति दुष्यन्त को उसकी भूल चूक पर लज्जित नहीं किया वरण अपना ही दोष समझ कर राजा को बड़े आदर सत्कार के साथ धन्यवाद देकर निवेदन किया कि हे प्राणनाथ पीतम प्यारे यह आप की बड़ी कृपा है जो आज तक मुझ दासी पर आप का वही स्नेह तथा प्रेम बना है ।

इसी प्रकार पदमावती जो चित्तौर के राजा भीमसिंह से व्याही गयी थी कि जिसका रूप वा गुण तथा सुन्दरता सुन दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चढ़ाई की थी, रानी पदमावती पतिव्रत धर्म बचाने के अर्थ आग में जल कर मरगई, बादशाही को तुच्छ जाना ।

प्यारी बहिनों आप को तो इतने पर भी कुछ ध्यान नहीं होता आप तो तनिक २ से दुखों तथा निर्धनता में साथ छोड़ देती हो, यदि तुम में

इनके समान प्रेम स्नेह होता तो भारत की आज यह कुदशा क्यों होती, इनके उपरांत तारा, सिलोचना, द्रोपदी आदि होगई कि जिनके नाम सुयश के साथ चले आते हैं ।

धन्य है उन सुन्दरियों को जो ऐसी ही सुहावनी चाल से चलकर अपने पति आदि को प्रसन्न रखकर पतिव्रता कहाती हैं ।

हे स्त्रियो तुम्हारी नाव का खेवट पति है बिना उसके तुम्हारा पार करने वाला इस भवसागर में दृष्टि नहीं आता क्योंकि जो स्त्री पति को नाना भांति से दुखित रखती है यदि वह भी तुम्हारी भांति अज्ञान हों, वह भी किसी अन्य स्त्री से प्रीति करलें, तो बताइये कि तुम्हारी क्या दशा हो, मैं तो यही जानता हूं कि फिर यह दुःख तुम्हारे टाले नहीं टलेगा इसी अग्नि में जलकर भस्म होजाओगी, यदि यह कहो कि हम भी ऐसाही करेंगी तो फिर विचारिये कि घर तो गया, नष्टता तो हुई, तिसपर तुर्रा यह होगा कि थोड़ेही दिनों के पश्चात् तुम्हारे अपगुणों से वह भी अप्रसन्न हुआ तथा उसने भी तुम्हें छोड़ दिया तो उस समय तुम्हारी दशा धोबी के कुत्ते के समान होजावेगी, जो घर का न घाट का !

इसके उपरांत ऐसे पुरुष एक स्त्री के बन्धन में नहीं रहते, जहां नवीन शोभायुक्त स्त्री पाते हैं तुरन्त मोहित होकर पहिली स्त्री को पुराने जूते के समान निकाल कर फेंक देते हैं, फिर बतलाइये उस समय आप की क्या गति होगी, सच पूछो तो तुम्हारे प्राण संकट में होंगे और अपने कियेहुए को स्मरण कर पछताओगी परन्तु फिर क्या होता है जब चिडियां चुगगई खेत, फिर तुम अपनी छाती आप ही कूटोगी या अफ़्यून खाओगी या दो दो दानों को मारी २ फिरोगी, यथार्थ तो यह है कि जो स्त्री अपने पति की आज्ञा के विरुद्ध चलती है वह इसी भवसागर में नाना नर्कों को भोगती है।

प्यारी बहनों शास्त्रों में तुम्हारे स्वतन्त्रता से कार्य करने की आज्ञा नहीं है अर्थात् स्त्री बालक हो या तरुण या बूढ़ी परन्तु गृह में स्वाधीन होकर कोई काम न करे, अर्थात् स्त्री बाल अवस्था में बाप के, तरुणाई में पति और पति के देवलोक होने पर पुत्र के आधीन रहै, जैसा कि मनुस्मृति अ० ५ श्लोक १४७ में लिखा है—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
निस्वतंत्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्य्यंगृहेष्वपि ॥

ऐसा ही व्यास स्मृति अध्याय २ श्लोक ५४ तथा याज्ञवल्क्य स्मृति श्लोक ८५ में भी लिखा है।

अथोपरांत पतिव्रता स्त्री पति मरने पर पतिव्रता रहने से विना संतान के स्वर्ग लोक को जाती हैं, जिस प्रकार कुमार ब्रह्मचार्णी गई जैसा कि मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक १६० में लिखा है—

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गंगच्छत्युपुत्रापि तथा ते ब्रह्मचारिणः ॥

वहुधा नारी अपने सासु श्वसुर देवर जेठ जिठानी आदि से बात २ पर लड़ती झगडती हैं अथवा दिन रात अपने पति के कान भरती रहती हैं यहां तक कि विना अलग हुए नहीं मानती, भला विचारियो कि कौन ऐसे सास श्वसुर आदि हैं जो अपने बहू बेटे का भला नहीं चाहते कि जिस बेटे के अर्थ अपना तन मन धन तक अर्पण किया, वहू के आने की बधाई वांटी, धिक्कार उस बहू पर कि जिसने उनको सुख के स्थान पर दुख दिया तथा उनके मन को ऐसी ग्लानि करदी कि जिससे वह बहू का नाम तक नहीं लेते, जव कोई उनके सन्मुख बहू का नाम लेता है ठंढी सांस लेकर

रहजाते हैं, भला विचारिये तो यह धन जो अब तुम्हारे पति कहलाते हैं, कि जिनके ऊपर तुम उछलती कुदती नखरे करती हो, किसने उनको पाल ऐसा किया तो कहोगी माता पिता ने, फिर भला उनके सुख बिना तुम्हें कहीं सुख मिल सकता है कदापि नहीं, वरन थोड़े ही दिनों में जब कि तुम्हारी संतान का विवाह होगा तो वह तुम्हारी नई बहू आते ही तुमको वह फटकार बतावेगी कि तुमारे पते तक न लगेंगे, उस समय तुमको ऊपरोक्त क्लेश जान पड़ेंगे कि हाय २ क्या किया बहू ने आते ही हमारी कुगति करदी अब हमसे काम काज भी नहीं होते हाय यह हमारा बुढ़ापा क्योंकर कटेगा, बड़े दिनों में तो ज्यों त्यों कर यह दिन नसीब हुआ था सो भाग्य वश और भी अधिक दुःख हुआ इससे तो सन्तान न होती तो अच्छा था, अब क्या करें कहां जायं किसी ने सच कहा है—

जाके पैर न जाय बिवाई । सो क्या जाने पीर पराई ॥

इसलिये तुम सदा अपने माता पिता आदि के समान अपने सास श्वसुर आदि को समझकर उनकी आज्ञा पालन और शुश्रुषा करती रहो कि जिससे तुमको भी सुख मिले और दोषभागी भी न हो, इसके उपरान्त क्या तुमारे पति को जो तुमारे साथ में रहता है अपने माता पिता क्लेशित होने से प्रसन्नता रहती होगी, कदापि नहीं, सदा चिन्ता रूपी ज्वाला में शरीर रूपी लकडी के भांति जलता ही रहता होगा, फिर भला कैसा सुख कैसा आनन्द, इससे हे युवतियो तुम कदापि ऐसा न करो वरन पति के नाते के अनुसार प्रत्येक का आदर भाव सदा करती रहो कि जिससे घर में सब प्रकार के आनन्द सुख रहैं संसार में तुम्हारी भलाई हो ।

बहुधा स्त्रियां अपने पति आदि से बस्त्र आभूषणों पर ऐसे २ कटुबचन बोलती हैं कि जिसका कुछ पारावार नहीं, इसके उपरांत रोटी नहीं खातीं सम्पूर्ण गृह की स्त्रियों से प्रत्येक बात पर लड़ती हैं, पति से बात चीत भी नहीं करती भला यह कौनसी बुद्धिवानी की बात हैं, क्या पति आदि को अपनी मान बड़ाई प्रतिष्ठा बढ़ाना मंजूर नहीं है, क्या सास श्वशुर इत्यादि को अपनी बहू का पहरना ओढ़ना खाना पीना अच्छा नहीं लगता, सच पूछो तो वह बहू बेटे के अर्थ अपने प्राणों को भी देना भला समझते हैं परन्तु क्या किया जावे जब उनकी बचत ही न हो, यदि होगी तो तुमको ही वह धन मिलेगा, संतोष करना उचित है, सदा एक सा समय नहीं रहता, कभी ऐसा समय होगा कि तुमारे पति आदि के पास जब धन होगा तो अवश्य ही तुमारे लिये उत्तम २ आभूषण और बस्त्र आदि बनवा देवेंगे।

इसलिये हे सुन्दरियो तुम पति के कठोर बचन को सुन कर अप्रसन्न न हो वरन उनको प्रसन्न करना ही तुमारा परम धर्म है, जिस गृह में स्त्री उत्तर देनेवाली होती हैं वहां भी नाना भांति से हानि दृष्टि आती है तथा पति को तो मरना ही सूझता है, यथा—

दुष्ट भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तर दायकः ।
ससर्पे च गृहे वासाः मृत्युरेव न संशयः ॥

इस का यह अभिप्राय है कि दुष्ट नारी तथा मूढ़ मित्र अथवा नौकर उत्तर देनेवाला हो तो उस घर में हे सुशीलाओ मूढ़ मित्र वा उत्तर देनेवाले चाकर को दूर कर श्रेष्ठ मित्र वा चाकर करसकते हैं कि जिससे सुख मिलसकता है परन्तु स्त्री के त्यागन करने से भी मृत्यु ही होती है।

हे सौभाग्यवतियो तुम उपरोक्त कथन पर ध्यान देकर अपने आचरण को

इसके अनुसार सुधार कर अपने पति अथवा अन्य सास श्वशुर देवर जिठानी आदि से यथायोग्य प्रिय मधुर वाणी से नम्रता पूर्वक सत्य संभाषण करो इसी से तुमको धन सम्पत्ति आदि अनेक सुख मिलसकते हैं, जब तुम सुलक्षणा होजाओगी तो पति आदि अडोसी पडोसी सब प्रसन्न होंगे तथा तुमारी भलाई तन मन से करने पर उद्यत होजावेंगे, प्रति स्थान पर तुमारी बडाई होगी, सर्व जन तुम्हारा आदर सत्कार करेंगे गृह में भी आनंद रहेगा मानों साक्षात् स्वर्ग के सुखों को भोगोगी, जो तुम निठुर, अप्रिय, वा असत्य भाषण करोगी भोजन बस्त्र आभूषण आदि काम काज पर लडोगी तो कदापि आनिन्द के स्वप्न में भी दर्शन न होंगे सदा चिन्ता रूपी ज्वाला में जलकर एक दिन राख की ढेरी बनजाओगी, प्यारी स्त्रियो पति ही तुमारा स्वामी दुःख हर्ता इष्टदेव है अतः किञ्चित जीवन में असन्तोष तथा क्रोध आदि मिथ्या सुखों में फंसकर अमृत रूपी सुखों को क्यों लात मारती हो कि जिससे तुम्हारे दोनों लोक बिगड़ जाते हैं, अथोपरांत शराब या कोई अन्य नशे का पीना, कुमार्गी स्त्री वा पुरुष की संगत, पति से जुदाई, बृथा इधर उधर घूमना, वे समय सोना, दूसरे के गृह में निवास करना, इन छः दूषणों को भी अपने निकट न आने दो जैसा कि धर्म शास्त्र में लिखा है—

पानं दुर्जन संसर्गः पत्यांच विरहोटनम् ।
स्वप्नोन्य गेह वासश्च नारीणां दूषणानि षट ॥

क्योंकि इनके कारण स्त्री का आदर नहीं होता तथा नाना भांति के दोष उत्पन्न होजाते हैं इस कारण इन उपरोक्त दोषों को त्यागना उचित है।

अथोपरांत निम्न लिखित शिक्षाओं पर भी ध्यान देना योग्य है—

(१) माता, पिता, पति, श्वशुर, भाई, मांमा इनके ही दिये बस्त्र आभूषणों को प्रसन्नता पूर्वक धारण करे ।

(२) मन वाणी कर्म से शुद्ध रहे, तथा पति की आज्ञा में सदा तत्पर रहे ।

(३) बडे आदर सत्कार से सब घर के मनुष्यों को उत्तम भोजन बनाकर खिलावे ।

(४) सब से प्रथम प्रातःकाल उठे तथा सब से पश्चात् रात को सोवे ।

(५) नंगी न रहे, प्रमत्त न हो, निष्काम तथा जितेन्द्रिय रहे, ऊंची वा कठोर वाणी से न बोले, बहुत ऐसे वचन न कहे जो पति को प्यारे नहीं ।

(६) किसी के संग लडाई न करे, अनर्थक वृथा न बोले, धर्म तथा अर्थ का विरोध न करे ।

(७) असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्षा, ठगाई, अत्यन्त मान, चुगलपन हिंसा वैर, बड़ा अंहकार धूर्तपन नास्तिकपना, चोरी दंभ इन सबको छोड दे ।

(८) सदा आनंदित रहे, घर के कार्य बुद्धिमानी से करे, घर तथा वर्तनों को पवित्र रक्खे, व्यय करने में उदारता न करे ।

(९) द्वार वा खिड़की के पास खड़ी न हो, जब पति परदेश में हो तो श्रृंगार न करे, और न किसी के घर जावे ।

(१०) जब पति घर आवे उठकर खड़ी होकर आसन दे ।

(११) कभी पति की बुराई न करे ।

(१२) यह समझ कि यही मेरा पति सूर्य चांद से भी अधिक प्रकाशवान सब से बुद्धिमान शूरवीर, धनवान, रूपवान, तथा कुलवान है सेवा में लगी रहे, अन्य पुरुष का चाहे वह कैसा ही बुद्धिमान धनवान, कुलवान रूपवान हो स्वप्न में भी ध्यान न करे ।

भोजन बनाने के विषय में

भोजन नाना भांति के बनते हैं कि जिनका वर्णन अच्छे प्रकार किया जावे तो इसी विषय में बहुत बड़ी पुस्तक बनजाय, अतः हम उन वस्तुओं के बनाने की रीति लिखते हैं जिनका प्रत्येक स्त्री को प्रतिदिन काम पड़ता है—

प्रथम प्रत्येक वस्तु को शोधना योग्य है अर्थात् प्रत्येक अन्न को बीन बान छांट फटक कर ठीक ठाक करले, ऐसे ही हरे २ सागों को धोय धाय भरे सड़े पत्तों को निकाल डाले।

दूसरे कोई वस्तु जलने न पावे न कचकची रहे।

तीसरे सब पदार्थ सुहावने होना चाहिये।

चौथे चौका ऐसे स्थान पर हो जहां वायु भी आती हो तथा धुयें के निकलने के लिये रोशनदान हों।

पांचवें बहुधा भोजन के बनाने में नमक आदि के डालने का पूर्ण ध्यान रखना योग्य है, नहीं तो रस नीरस होजाता है तथा मन उसको अंगीकृत नहीं करता फिर लाभ कैसा जैसा कि कहा है 'रुचे सो पचे'।

[रोटी बनाने की रीत]

प्रथम गेहूं के आटे को छान अच्छी परात में माड़कर थोड़ा सा पानी दे लोच दे फिर उस आटे को भिगोकर रखदे फिर थोड़ी देर के पीछे आटे को माडकर ठीक करलेवे अर्थात् आटा बहुत अच्छे प्रकार लोचदार होजावे, इतने में दाल को जो पहिले से चूल्हे पर होने को रक्खी थी उतार के घये में रखले, चूल्हे पर तवा रखदे फिर छोटी २ लोई तोड़ चकले पर बेलन से बेल तवे पर सेंक घये अर्थात् चूल्हे में अच्छे प्रकार सेकले पर रोटी जलने

न पावे, लोई को हाथ से बढ़ाकर सेकने से रोटी पाचक होती है, चने गेहूं की रोटी बनानी होती है तो गेहूं चने का आटा मिलाकर माड़लेते हैं, बाजरा मका ज्वार की रोटी करने में आटे को लोचदार उसी समय बनाते जाते हैं जिसको ईछना कहते हैं, जो मीठी रोटी करना हो तो आटे को मीठे पानी से माडलेते है, फिर रोटी करने वा सेकने की वही रीतें हैं जो ऊपर लिखी हैं।

[उरद की दाल बनाने की रीति]

उर्द की दाल जो पहिले ही से स्वच्छ कर रक्खी हुई है प्रातःकाल भिगोदे जब भीग जाय हाथों से मलकर चलनी में रखकर पानी डाले तो छीकले उपर आजावेंगे इसी भांति उसको पानी डाल २ कर धोले तत्पश्चात् दाल को फिर साफ करले अर्थात् उसमें के ठोरे आदि निकाल कर बटले में पानी डाल चूल्हे पर रख गर्म कर दूसरे बर्तन में करले फिर बटलोई में घी डाल उसमें हल्दी मिरच पिसी हुई डाल के अनुमान से डाल भूने फिर दाल को डाल ऊपर से वह गर्म पानी जो पहिले से कररक्खा था इतना डाले कि दाल से दो अंगुल ऊपर रहे फिर अनुमान से नमक डाल ढकदे तब धीमी २ आंच दे, जब दाल होजाय तो उसको उतार अंगारों पर रखदे फिर दाल में सोंठि धनियां पैसे २ भर दालचीनी काली मिरच छदाम २ भर इलायची दो इनको महीन पीस कर आधसेर में इस मशाले का आधा डालदे फिर जीरा तथा राई का छौंक दे मानों दाल बनगई।

ऐसे ही मूंग अरहर आदि की दालें बनालें अलबत्ता मसाला कम डालें क्यें कि यह दोनों दालें गर्म हैं, मूंग की दाल में लौंग का छौंक देते हैं।

बहुधा स्त्रियां उर्द वा मूंग की दालों के साथ पालक सोया मेंथी आदि का साग डालती हैं, उनको उचित है कि प्रथम साग डाल कर पकाले, फिर मसाले डाले तत्पश्चात् बघार दें तो अति श्रेष्ठ साग दाल बनजावेगी।

कोई २ मूंग उरद वा चना आदि की दालों मे से दो २ को मिलाकर रांधते हैं उनकी भी यही रीति है।

(चावल बनाने की रीति)

प्रथम चावलों को सोधकर हाथों से पानी में डाल हौले २ मलकर पानी निकाल डाले, ऐसे ही दो तीन बार मलकर पानी निकाल डाले फिर चूल्हे में आग बाल बटले में पानी डाल रख दे जब पानी खौलजावे तब चावल डाल कर करछी से चलाकर ढकदे फिर धीरे २ आंच दे जब चावल गल जाय सेर पीछे उत्तम स्वच्छ एक पाव के हिसाब से बूरा डालकर उतारलें, यदि सुगंधित करना हो तो गुलाब या केवडे के इतर का छींटा देदे।

(खिचडी)

चूल्हे पर बटलोई को चढाकर पानी गर्म करे अर्थात् जब अदहन गर्म होजाय तब चावल धोकर डाले अगर मूंग की खिचडी बनाना हो तो मूंग की यदि उरद की बनाना हो तो उरद की दाल धोकर डालदे तब अनुमान माफिक नोन डाल कर बटोई को ढक दे फिर आंच दे जब पककर एक कनी रहजाय तब धीमी २ आंच दे, थोडी देर पश्चात् एक चावल को निकाल टटोले जब एक कनी रहजाय तब उनको चलनी में पसाकर घी का छींटा दे अंगारों पर रख दे।

(खीर बनाने की रीति)

स्वच्छ चावलों को पानी से धो सुखाकर किञ्चित् घृत से मलकर रखलो फिर दूध को कढाही में अच्छे प्रकार औटा बटोई में चढा एक सेर दूध पीछे छटांक भर कमोद या हंसराज या बांसमती या रहमुनियां वा अन्य कोई श्रेष्ठ चावल डाल उतार अंगारों पर रखदे।

॥ मालपुआ ॥

आधी छटांक सौंफ आधपाव पानी में भिगोदे थोडी देर के पीछे स्वच्छ कर पीसले फिर छान कर एक सेर आटे में आध सेर शरबत खांड या बतासे या मिशिरी वा गुड का साफ कर डालें फिर सब को भले प्रकार मथै कि जिससे उसमें फेन उठ आवे, फिर कढाई में घी डालकर आंच दे जब घी गर्म होजावे तब कटोरे अर्थात् बेले में उस आटे को छोटे बडे जैसे बनाना अभीष्ट हो कडाही में डाल दोनों ओर से सेकें ।

॥ गुजिया ॥

प्रथम आटा की मोटी २ पूरियां बनाकर सेकले फिर उनको कूट कर धूप में सुखावे तत्पश्चात चलनी में छान कर जो टुकड़े रहजावें वह चक्की में पीस ले फिर तीन सेर में सवासेर खांड डाले वह गुली कहलाती है फिर गेहूं के आटे को महीन वस्त्र में छाने जिसको मैदा कहते हैं मांडे जितनी बडी बनाना हो उतनी बडी लोई काटकर पूडियां बेले तिनमें उनके योग्य गुली भर फिर हाथ से ओठे तत्पश्चात् कढाई में घी डाल उत्तम प्रकार से सेकलें ।

॥ अनरसे ॥

प्रथम ढाई सेर चावल साठी वा कोदों को तीन दिन तक पानी में भिगोवे चौथे दिन मलकर साफ पानी से धोकर सुंदर सफेद वस्त्र पर फैलाकर हवा लगने दे जब सरदी दूर होजावे तब ऊखली मूसल से कूटे कूटते समय एक सेर खांड मिला दे पश्चात् थोडी देर तक एक वर्तन में रखदे तत्पश्चात् कढाही में घी देकर पुओं की भांति घी में छोड़ कर एक ओर सेंककर रखलें ।

॥ घुइया ॥

यह दो प्रकार से बनती है एक सूखी दूसरी पतली, बनानेवाले चाहें छीलकर बनावें चाहें ऊबालकर, जब सूखी बनाना हो तो प्रथम कढाही में घी डाले उसमें मेथी, अजवायन, मिर्च, हल्दी, आदि मसाले को अच्छे प्रकार भूने, जब भुन जावे तब उसमें घुइया डाले यदि ऊबली हों तो पानी डालने की कुछ आवश्यकता नहीं वरन थोडासा पानी गलने के योग्य डाल दे, जब गलजावे तब उतारले, जो पतली रसे की बनाना हों तो जितना योग्य जाने पानी छोडदे नमक आदि मशाले भी अनुमान से छोड़ दे ।

नोट—इसी प्रकार आलू रतालू बनाते हैं परन्तु उनमें अजवायन नहीं डालते हैं ।

॥ जमीकन्द ॥

प्रथम जमीकन्द पर कपड़ा लपेट कर चिक्का मिट्टी भिगोकर अच्छे प्रकार भूने अथवा इमली के पत्ते वा उसकी खटाई डालकर उबाल ले, ऐसा करने मे उसकी परपराहट जाती रहती है फिर घुइया के समान बनाले ।

साग बनाने की रीति

प्रथम साग को अच्छे प्रकार बीने और स्वच्छ करले कोई सडागला न रहे फिर किसी बरतन में स्वच्छ करले फिर बनार कर कढाई में उबाल ले जब उबल जावे तब पृथक रखले फिर कड़ाही में घी डालकर मेथी आदि मसाला डालकर साग को डालदे और अनुमान से नमक पीस कर मिलावे फिर जब पानी न रहे तब उतार ले ।

॥ करेला ॥

प्रथम करेलों को चीर उनमें नमक, धनियें, सौंफ, खटाई पीस कर भरदे फिर उवालकर घी वा तेल में छोडकर अच्छे प्रकार भूनले।

॥ आचार नीबू ॥

यदि पांच सेर नीबू हों तो उनमें से आधों का रस निकालले फिर उनमें एक सेर नमक और आध पाव लौंग चूरा अर्क निकाले हुए में डाल दे यदि इच्छा हो तो छुहारा और करेला आदि डाल दे।

॥ आचार नमक ॥

प्रथम सौ नीबू का अर्क निकाल कर बुझावे फिर उसको छान कर उसमें २॥ सेर खांड और आधसेर सांभर की डेलियां और पावभर काली मिर्च आधपाव एलायची इन सब को पीसकर अमृतवान में डालदे एक महीने के पश्चात् खावे।

॥ आलू वनाने की विधि ॥

प्रथम आलुओं को उवालर छील ले फिर जितने आलू हों उनसे चौथ्याई घी कढाई में डाल आलुओं को तले, फिर घर के मनुष्यों के स्वभाव के अनुकूल गर्म मसाला डाल कर आलुओं को घी में भून ले तत्पश्चात् थोडासा पानी और नमक मिर्च डाल दे।

॥ मसालेदार भिंडी वनाने की रीति ॥

भिंडी सेर भर लेकर उनको बीच से खोलकर खटाई, सौंफ, धनियें, अदरख एक एक तोले, लौंग, इलायची, जीरा, दालचानी, एक एक मासे उसी के अनुसार नमक व पिसी हुई हल्दी यह सब मशाले भरकर पावभर घी में भूनें फिर किसी वर्तन से ढक धीमी आंच से होने दे।

॥ बूंदी के लड्डू बनाने की रीति ॥

प्रथम पांच सेर शकर लेकर ऊसमें तीन सेर पानी और आधपाव दूध मिलाकर चासनी बनाले फिर एक सेर वेसन को खूब पतला कर दूसरी कढाई में घी चढाकर बूंदी बनाकर चासनी में छोड़ता जाय फिर उसमें यथाशक्ति मेवा आदि और ६ मासे इलायची डालकर लड्डू बनाले ।

॥ बेसन के लड्डू बनाने की रीति ॥

प्रथम एक सेर वेसन को एक सेर घी में खूब भूने यहां तक कि सुगंध आने लगे नीचे उतार के जब ठंढा होजाय तो १॥ सेर बूरा, बादाम १ छटांक पिस्ते १ छटांक, इलायची १ तोला मिलाकर लड्डू बनाले ।

लाज और परदा

लाज ऐसी चीज है जो प्रत्येक मनुष्य वा स्त्री को करना चाहिये विशेषकर स्त्री का तो भूषण ही लाज है, लाज से यह प्रयोजन है कि अपने सास सशुर पति आदि बड़े बूढों के सामने कोई ऐसी बात न कहे जिसमें ऊनका अपमान हो, बुरे कामों से बचना ही लाज है ।

प्यारी बहनों लाज इसको नहीं कहते कि बडा सा घूंघट काढ लिया या घरों के भीतर बैठरहीं, जब तक तुमारा चित्त सुशिक्षित या तुमारे पास विद्या न होगी, तब तक इस बृथा लाज से कुछ नहीं होसकता, जब से इस देश में अन्य देशियों का राज्य हुआ तभी से इस देश में इस प्रकार का परदा चला आता है, क्योंकि यह लोग सुंदर क्वारी कन्याओं को पकड लिया करते और अपने साथ व्याह करलेते थे तब इस देश के विद्वानों ने परदा चलाया कि जिससे यह लोग इन कन्याओं का धर्म भ्रष्ट न करें ।

इस वृथा परदे से स्त्रियों को निम्न लिखित हानियां होती हैं—

[१] उनको इस परदे के कारण उत्तम वायु और प्रकाश नहीं मिलता जिसके कारण वे नित्यप्रति बीमार बनी रहती हैं, मुंह मेंडक सा पीला पड़जाता है, जिसके कारण हजारों रुपया दवाओं में वैद्यों को देने के अनन्तर नाना प्रकार की खुशामद करनी पड़ती है।

[२] किसी प्रकार की विद्या भी नहीं सीखसकतीं।

[३] बूढ़ी भी शीघ्र होजाती हैं।

[४] मरती भी शीघ्र हैं।

[५] चतुर या फुरतीली तथा चटकीली भी नहीं होतीं।

[६] बलवान भी नहीं होतीं।

[७] सोच विचार का स्वभाव भी नहीं पड़ता।

[८] उनकी संतान भी न्यून बल होती है।

गांववाली अथवा अंगरेजों को देखिये वह कैसी मोटी ताजी होती हैं, कभी बीमार नहीं पडतीं, अंगरेज लोगों की मेम कैसी चतुर तथा बुद्धिवान होती हैं सच है कि जब तक इस देश से परदा की रीति न उठेगी तब तक स्त्री जाति की किसी प्रकार की उन्नति नहीं होसकती, इसके अतिरिक्त परदा केवल सास सशुर पति आदि भले आदमियों से किया जाता हैं परन्तु धोबी चमार धीमर आदि नीच कौम का परदा कभी नहीं करती चाहें वे खराब चलन हों बेधडक घर में चले आते हैं क्या तब लाज नहीं रहती, जब सास सशुर आदि आते हैं तो बड़ा सा घूंघट काढ़ कर भीतर को भागती हैं।

बहुत सी स्त्रियां झनकारदार आभूषण पहन कर मेला आदि में जाती हैं तो क्या दुर्जन लोग अपनी दुर्जनता को काम में न लाते होंगे ?

सोचने की बात है कि जब किसी के ब्याह आदि उत्सव होते हैं तो सिर्फ एक कपड़े की ओट से बहु बेटी अपने बाप आदि के सामने बुरे भले गीत गाती हैं बतलाइये तो सही तब लाज उनकी कहां चली जाती है हाय क्या इसी का नाम लाज है, आजकल की लज्जावती स्त्रियों को निम्न लिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये—

[१] किसी मेला आदि नाच तमाशा में अकेला न जाना।

[२] बुरी पुस्तकें या बुरे उपदेश को न सुनें।

[३] किसी मनुष्य के पास अलग न बैठना चाहिये, चाहें वह बाप भाई आदि क्यों न हो ॥

[४] कुलक्षणी स्त्री की संगत न करनी चाहिये ॥

बहुधा स्त्रियां ब्याह आदि में गीत गाती हैं उनको बन्द करके अगर परमात्मा की प्रार्थना के भजनादि ऐसे गाये जावें कि जिनमें बुरे शब्द न हों तो बहुत अच्छा होगा ॥

अथोपरांत स्त्रियों को रासलीला तथा नाच में भी न जाना चाहिये क्योंकि ऐसी जगह भी उनकी लाज जाती रहती है, उनको ऐसे स्थान पर स्नान भी न करना चाहिये जहां बहुत से मनुष्य हों क्योंकि केवल मुंह ढकने ही से लाज नहीं होती, संड मुसंडे वैरागियों के यहां किसी लालसा से न जाना चाहिये मुख्य प्रयोजन हमारे कथन का यह है कि स्त्रियों को विचार पूर्वक लाज करना चाहिये कि जिससे उपकार हो वृथा इस प्रकार की लाज से नाना दोष भारत संतान में फैलगये हैं ॥

पतिधर्म

मान्यवरो सृष्टि क्रम पर एक साधारण दृष्टि डालने से हमको प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिस प्रकार आंख के लिये सूर्य, सूर्य के लिये आंख, बुद्धि के लिये ज्ञान और ज्ञान के लिये बुद्धि की परम आवश्यकता है इसी प्रकार स्त्री को पुरुष तथा पुरुष के लिये स्त्री का होना भी परम आवश्यक है, वरन जिस प्रकार सूर्य के न होने से आंख को तथा ज्ञान के न होने से बुद्धि को कुछ आनंद नहीं होता, इसी प्रकार पुरुष के बिना स्त्री तथा स्त्री के बिना पुरुष को भी इस गृहस्थी में कुछ आनन्द नहीं प्राप्त होसकता यही घर की सुधारने वाली हैं, यही हमको सब प्रकार के आनन्द देनेवाली हैं, यही हमारे अर्थ नाना प्रकार के कष्ट उठाती हैं।

हमारा गृह जो हरा भरा माळूम होता हैं वही बिना इनके जंगल से अधिक दुखदाई प्रतीत होता है, इन्हीं सें धर्मात्मा, बुद्धिमान, बीर पुरुष उत्पन्न होते हैं कि जो इस संसार के भूषण माने जाते हैं नाना प्रकार के धर्म कार्य करते हैं, सांसारिक कार्य्यों को उत्तमता से चलाते हैं, यही संतान का पालन पोषण करती हैं जो मनुष्यों से असम्भव है, यह हमको नाना प्रकार से उत्तम भोजन बनाकर खिलाती हैं, हमारे मित्रों की सेवा सुश्रूषा करती रहती हैं, इन्ही पर हमारी संतान का सुख दुःख वा सुधार निर्भर है, यही थोडा २ धन भी जमा करलेती हैं, यही गृहस्थी का ऐसा उत्तम प्रबन्ध करलेती हैं कि जिससे बडे २ विद्वान चकित रहजाते हैं, यही हमारे कारण अपने प्रिय माता पिता भाई बांधवों को छोडकर आती हैं, देखिये दमयन्ती ने नल के अर्थ सीता ने रामचन्द्र के साथ किस प्रकार के कष्ट उठाये।

सच तो यह है कि यह हमारे ही आराम को अपना सच्चा सुख तथा

हमारे दुःख को ही अपना दुःख समझती हैं, फिर भला यह सम्भव होसकता है कि इनको दुःख देकर हम किसी प्रकार का आनन्द उठासकें, कदापि नहीं, वरन इनको प्रसन्न रखने ही से हमको सब प्रकार के आनंद प्राप्त होसकते हैं।

याज्ञवल्क्य जी ने लिखा है कि पिता बन्धु पति तथा जाति के लोग सास श्वशुर तथा सब प्रकार के बांधवगण दुर्गुणों को त्याग कर बस्त्र, अन्न आभूषण प्रीति पूर्वक कोमल वाणी से शक्ति के अनुसार स्त्रियों की पूजा अर्थात् आदर सत्कार करें, यथा—

भर्तृ भ्रातृ पितृ ज्ञाति श्वश्र श्वशुर देवरैः ।
बन्धु भिश्चस्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥

मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ५७ में लिखा है कि स्त्रियों को सदा प्रसन्न रक्खे, क्योंकि ऐसा करने से कुल की वृद्धि होती है, जहां वह क्लेशित रहती है वह कुल शीघ्र नष्ट होजाता है, यथा—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥

उसी अध्याय के ५८ श्लोक में लिखा है कि जहां स्त्रियों का यथावत मान्य नहीं होता वह कुल उनके शाप से तत्काल ही नाश होजाता है, अध्याय ३ श्लोक ५६ में लिखा है कि जहां स्त्रियों का आदर होता है वहां देवता प्रसन्न रहते हैं, जहां उनका अनादर होता है वहां धर्म कार्य्य का फल प्राप्त नहीं होता, यथा—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

फिर नही जान पडता कि वर्तमान समय में हमारे भारत बासी बन्धु वर्ग इन पवित्र आज्ञाओं पर क्यों नहीं ध्यान देते ।

कोई २ जन अन्य स्त्री व बालकों से प्रीत करलेते हैं और अपनी स्त्री से वात तक नहीं करते घर का समस्त धन बाहर वालों को खिला देते हैं पर अपनी स्त्री को खाना खिलाना अत्यन्त कठिन होजाता है सैकडो रुपये के कपडे वेश्याओं को वनवाते हैं पर इन विचारियों को केवल अपनी दासी ही मान रक्खा है कि जो दिन भर गृह कार्य करती तथा खाली रहती हैं, इसके अतिरिक्त यह किसी प्रकार का आनन्द नहीं जानती।

सचमुच यही कारण है कि वर्तमान समय में जिधर हम दृष्टि उठाकर देखते हैं कोई गृह हरा भरा नहीं जानपड़ता, परन्तु ग्रहस्थों को ग्रहस्थी के धर्म पूर्ण करने में अधिक कठिनाइयां जान पड़ती हैं, क्योंकि यह स्त्रियां सदा से दुःख पाती हैं जिसके कारण वह कुछ समय में वेदिल होजाती हैं न सास श्वशुर का कहना मानती न पति को कुछ समझती हैं, केवल लडाई झगड़ों में तमाम दिन काटती हैं, फिर मनुष्यों को भी घर से बाहर रहना पसन्द आता है कोई २ परदेश में जाकर साधू होजाते हैं, यहां स्त्रियां बैठी हुई नाना प्रकार के कौतिक रचती हैं कि जिससे उनके वाप दादों के नाम पर धब्बा आता है तथा वंश का भी नाश होजाता है या कोई २ उत्सव समयों पर ऐसा झगडा मचाती हैं कि रस नीरस होजाता है वह आनंद दुख रूप जान पडता है पति कुछ कहता है परन्तु स्त्री अपनी डेढचावल की खिचडी अलग ही पकाती हैं सर्व साधारण घरके भेदों को जानते हैं, जिससे देश देशांतर में हंसी होती है उनका मान्य नहीं रहता देखिये केकई के क्लेश ने राजा दशरथ को कैसा लिया जो महाराजा श्री रानचन्द्र जी को गद्दी देनेंवाले थे उन्ही ने फिर लाचार होकर उक्त महाराज को बन जाने की आज्ञा दी तथा आप शोकातुर होकर परम धाम को सिधारे कि जिसके कारण सम्पूर्ण नगर में दुख ही दुख होगया।

मान्यवरो उपरोक्त मिथ्या बातों को त्यागन कर दीजिये तथा परस्त्री का कभी स्वप्न में भी ध्यान न दीजिये, केवल अपनी से ही संतोष कीजिये तथा उनका खान पान का प्रवन्ध अच्छे प्रकार करते रहिये यही आप का सच्चा व्रत तप नियम है, जिस समय स्त्रियों में कोई दुर्गुण उत्पन्न होजावे उसको छुडाने के अर्थ नाना प्रकार की शिक्षा कीजिये, पुस्तकें दिखलाइये तथा कुसंगत में न बैठनें दीजिये वरन वह पति अथवा पिता के कुल को शीघ्र नष्ट करदेगी, प्रत्येक कार्य को उनकी संमति से कीजिये ।

पंच कर्मादि उत्तम कर्मों में उसकी रुचि वढाइये, गृह कार्य आनंद पूर्वक चलाने के अर्थ धन उपासना का कोई उपाय कीजिये

व्योपार

हे प्यारे सुजनों इस भूमण्डल में उदर पोषण शरीर पालन तथा धन उपार्जन के निमित्त बहुधा वातें हैं, जिनकी गणना खेती, चाकरी, बनज या भीक इन चार नामों से करते हैं, परन्तु जो जिससे होसकता है वह उसी से धन पैदा करता है, यह भी स्मरण रहे कि इन सब में खेती उत्तम है, क्योंकि उसमें परिश्रम अधिक करना पडता है, और स्वाधीन होकर प्रतिदिन बालबच्चों आदि में रहना होता है अन्न शीघ्र पचजाता है शरीर निरोग और हट्टाकट्टा रहता है और काम भी अधिक होता है ।

वर्तमान समय में एतद्देश के खेती करने वाले उस आशा से कि वस्तु अधिक उत्पन्न हो प्रतिसाल विष्टा आदि मलीन वस्तूओं की खाद अधिक डालते हैं इससे कुछ भी लाभ नहीं होता वरन वस्तुऐं बुरी देखने में बदसूरत आरोग्यता नाशक उत्पन्न होती हैं, कि जिनके खान पान करने से सैकडों मनुष्य रोगी होजाते हैं, य० अ० १२ मंत्र ६९ में परमात्मा

ने आज्ञा दी है कि हे मनुष्यो खेती से अत्यंत सुख प्राप्त होते हैं, खेतों में विष्ठा कदापि मत डालो किन्तु बीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोओ! कि जिससे अन्न भी रोग रहित उत्पन्न होकर मनुष्यों की बुद्धि को बढावे, जैसा कि –

शुन ५ सुफाला वि कृषन्तु भूमि ५ शुनं की नाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनासीरा हविषा तोषमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तनास्मै ॥

ययुर्वेद अध्याय २२ मंत्र २३ में लिखा है कि जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, ओषधि पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरबी, आल, कसेरू, रतालू, सकरकंद आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे निरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्यपन तथा दीर्घायु वाले होते हैं ।

हे मान्यवरो उन्ही आज्ञाओं के अनुसार चलिये वरनः कुछ लाभ न होगा समस्त देश को बहुत सा धन इन बस्तुओं को खाकर बीमार होने पर वैद्यों को देना होगा, अपने कार्य्यों को पूर्ण रीति से न करसकेंगे नाना प्रकार के कठिन रोग इस भारत में फैलेंगे जिस प्रकार आप वर्तमान समय में हैजा, महामारी, आदि बीमारियों का नाम सुन रहे हैं जो आन की आन में सैकडों को भक्ष करजाते हैं कि जिनका नाम तक हमारे पूर्वज न जानते थे, क्या इनका पाप आप के सिर पर न होगा अवश्य ही होगा ।

[बनज व्योपार]

वनज में नाना प्रकार के लाभ हैं प्रथम धन की अधिक प्राप्ति, दूसरे देशाटन करने से मनुष्य बड़े चतुर गुणी तथा बुद्धिमान होजाते हैं, तीसरे अन्य देशीय जनों से समागम या मेल होने से प्रीति का अंकुर जमजाता है कि जिस से

अनेकान कार्य सिद्ध होते हैं नाना प्रकार की वस्तु यहां की वहां और वहां की यहां लाते तथा लेजाते हैं कि जिसके कारण कारीगरी अर्थात् शिल्प की उन्नति होती है तथा नाना प्रकार की नवीन अद्भुत तथा अनोखी वस्तु, कलें, यंत्रादि बनने लगते हैं कि जिसके द्वारा मनुष्य धनी होजाते हैं तथा धन के द्वारा सर्व आनंद भोगते हैं।

[चाकरी]

चाकरी से मनुष्य अपने परिवार को छोड़ अपनी जन्म भूमि को त्यागन कर हजारों कोश जाते हैं, नौकरी कैसी ही प्रतिष्ठित वा कैसी ही बड़ी तनख्वाह की क्यों न हो बिना मालिक की आज्ञा के कोई कार्य अपनी स्वतन्त्रता से नहीं करसकता जो परमेश्वर ने उसको दी हैं, उसे अपनी स्वतन्त्रता, धर्म तथा इच्छा को रुपये के पलटे में बेचना पड़ता है इस पर भी धन नाम मात्र को मिलता है, चाकर की समता कूकर से देते हैं, इसमें सुख के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते जिस प्रकार तुलसीदासजी ने कहा है कि "पराधीन स्वपने सुख नाहीं" धर्म शास्त्र में लिखा है कि जो पराधीन कर्म हों उनको प्रयत्न से त्यागन करे, इसी प्रकार जो २ स्वाधीन कर्म हों उनको प्रयत्न से सेवन करे, यथा –

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशंतुस्या त्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥

जितने पराधीन कर्म हैं वे सब दुख स्वरूप हैं, जो स्वाधीन हैं वे सब सुख दायक हैं अर्थात् संक्षेप से यह सुख और दुख का लक्षण है जैसा कि मनु जी ने कहा है –

सर्वं परवशं दुःखं सर्वं मात्म वशं सुखं ।
एतद्विधा समासेन लक्षणं सुख दुःखयोः ॥

किसी चतुर स्त्री ने कहा है—

नींद नारि भोजन परिहरौ । तौ तुम कंथ चाकरी करौ ॥

इन पेशों की एक प्राचीन कहावत भी प्रसिद्ध है—

उत्तम खेती मध्यम बनज, निकृष्ठ चाकरी भीक निदान ।

(घूस)

बहुधा हमारे भाई नौकरी को व्यौपार से इसलिये उत्तम कहते हैं कि व्यौपार में अधिक रुपये की अधिक आवश्यकता होती है तिस पर भी बहुत प्रकार की हानि का भय लगा रहता है तथा चाकरी में मासिक वेतन के उपरांत चपरासी से लेकर बड़ी पदवी तक यथायोग्य प्राप्ति होती है, उन सुजनों को विचार करना चाहिये, प्रथम तो घूस लेना ही महा पाप है, दूसरे जो द्रव्य इस भांति से आती है वह हमारी उन्नति को रोकती है क्योंकि परमेश्वर भले मनुष्यों की सहायता करता है न कि बुरों की, तीसरे जो धन जिस प्रकार आता उसी भांति जाता है, अतः चार दिन की चांदनी पर लोट पोट न होना चाहिये क्योंकि वह हमारे तुमारे सुख चैन रूपी पेड की जड़ काटती है, कहा है—

"चार दिन की चांदनी फिर अंधियारी रात"

किसी कवि ने और भी कहा है—

रहे न कौडी पाप की ज्यों आवे त्यों जाय ।
लाखन को धन पाय के मरे न कफ्फन पाय ॥

यह वार्ता तो स्पष्ट प्रकट है कि घुसिया लोग हजारों की घूस लेने पर

भी कौडी २ को तंग रहते हैं, क्योंकि उनका धन वेश्यागमन शराबखोरी आदि फजूल खर्चों में जाता है यदि इनसे बचगया तो चोरी आदि आकाशी आपत्तों में पड़जाने से तमाम होजाता है, तथा जब कभी इनका भेद सर्कार में खुलजाता है तो बड़ी २ हानियां उठानी पड़ती हैं, अतः इस ओर कदापि ध्यान न देना चाहये।

(भीक)

यह बहुत ही बुरी है क्योंकि इससे घर २ जाना पड़ता तथा नाना भांति के कटुबचन सहने पड़ते हैं तिसपर भी पेट भर नहीं मिलता, फिर ऐसे मनुष्यों की प्रतिष्ठा नाम मात्र को भी नहीं होती अतः यह काम अंधे, लूले, लंगड़े, आदि का है जो परिश्रम नहीं करसकते।

उपरोक्त कथन से व्यौपार की बडाई प्रकट होती है, अथोपरांत जिस देश वाले कारीगरी या व्यापार में लगे रहते हैं वह सदा धनवान बने रहते हैं जिन देशों में चाकरी को मुख्य माना है वह सर्वदा कंगाल तथा निर्धन रहते हैं किसी प्रकार से उनमें चमत्कारी या रौनक नहीं आती इसके लिये आप भारत ही को देख लीजिये जहां व्यौपार से चाकरी की पदवी अधिक है, जिससे अपनी प्रतिष्ठा समझते तथा धन प्राप्ति होने का द्वारा जानते हैं, परन्तु कुछ भी ध्यान नहीं करते कि इस देश में २५ करोड़ आदमी निवास करते हैं उन सब के लिये उच्च पद और निकृष्ट नौकरियां कहां से आसकती हैं, अधिक से अधिक वीस लाख ले लीजिये कि एक आनार व दस वीमार, से भी अधिक यह रोग फैल रहा है कि जिसके कारण और जो कुल माल मता था सब खागये तथा लाखों मनुष्य जो

न शिल्प विद्या जानते न व्यापार करसकते हैं नौकरी की लकीर पर फकीर बने बैठे रहने से अन्न मात्र को भी तंग होगये, यदि व्यौपारी होते तो यह कुदशा इस भारत की कभी न होती क्योंकि लिखा है कि "व्यौपारे बसते धनम्" ।

उपरोक्त वार्ताओं को जान निकम्मे पेशे करने का कभी विचार न करो, जहांतक होसके विद्या पढने के उपरांत उत्तम २ पेशों को तन मन धन से करने की टेव डालो तथा सत्य को काम में लाओ कि जिससे उद्यम रूपी नाव संसार रूपी सागर में अच्छे प्रकार से चली जावे खेती व व्यौपार को नाना भांति से उन्नति दो, उनके अर्थ नवीन व प्राचीन दोनों रीतों को काम में लाओ कि जिससे सर्व प्रकार के सुख तथा आनन्द मिलने लगें ।

प्यारे भाइयो व्यापार से देश को यथार्थ लाभ होते तथा वह चमत्कारी देखने में आती है कि जिसका पारावार नहीं, देखो पूर्व समय में भारत की क्या दशा थी अब क्या होगई, श्रीमान् अंगरेज बहादुर इसी व्यापार की बदौलत बादशाह होगये, जब यह लोग मेज पर भोजनों के अर्थ बैठते हैं तो चीन के बर्त्तनों में बंगाल के चावल, अफ़गानिस्तान के मेवे, फ्रांस की शराब अमरीका की मछली, आदि नाना पदार्थ चुने जाते हैं, यह केवल व्यौपार ही का फल है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि व्यौपार की वृद्धि जब ही होती है जब देश में कारीगरी फैलाई जावे कि जिससे नाना भांति की वस्तु तथा अद्भुत कला यन्त्रादि भी मुल्क में बनने लगें जिस प्रकार इस समय इंगलेंड आदि देशों में होरहा है जहां से करोडों रुपये का माल भारत को आता है, यहां आते ही दुर्र होजाता है, देखिये किस प्रकार कपडे कलों के बने हुए

आते हैं, सूत वारीक तथा नाना भांति के कला यंत्र हथियार अंगरेजी बूट जूते, छडी, संदूक, कागज, पिटारी, झाड फानूस इत्यादि हमारे गृहों में सब सामान उधर ही का दीख पड़ता है, यहां तक कि सुई तथा पेंचक, दियासलाई मेज, कुर्सी आदि, फिर भला वह मुल्क क्योंकर मालामाल न हों।

वह लोग अमरिका, अस्ट्रेलिया, ऐसलेंड, स्कंदरिया, हिन्दुस्तान, आदि प्रत्येक स्थान पर बेधड़क आते जाते तथा लाभ उठाते हैं, अथोपरांत देशांतर की अपूर्व अनोखी वस्तु लाकर उनको अपने देश में बनवाकर उनका प्रचार कराते हैं, इन सबको भी रहने दीजिये प्रथम अपने शरीर ही पर दृष्टि डालिये, सिर से पैर तक तो सिवाय विदेशी वस्तुओं के देशी एक भी न पाइयेगा।

प्यारे सुजनों इसका क्या कारण है क्या सदैव से इस देश की ऐसी ही दशा चली आती है, कि हम लोग इंढमान के निवासियों की भांति कपडों तक परदेशियों के आधीन हैं ? नहीं नहीं कदापि नहीं, स्वप्न में भी नहीं, यदि पहिले से भारत वर्ष की ऐसी दशा होती तो निश्चय जानिये कि आज तक भारत वर्ष का नाम ही नहीं रहता, दासत्व स्वीकार करने पर भी एक समय का भोजन न मिलता, निश्चय जानिये कि हमारे देश में प्राचीन काल में ऐसी शिल्प विद्या की अधिकता थी कि कोई विलायत इसकी समानता नहीं करसकती थी, ढाका की मलमल अरब तक चमकती थी, वनारस की सारी सारे संसार को ढकती थी, गुजरात के मुशरू मिश्र तक भड़कते थे, फर्रुखाबाद के लिहाफ ईरान तक पहूंचते थे, ठाकुरद्वारे की छींटें चीनी छीटों को चुनौती देती थीं, चंदेरी की जरबफत भारत की जर का नमूना सभी देशों के अधिपतियों के चित्तों को लुभाती थी, नदिया की दरियाई ने तातार

के मरुस्थल में मानो दरिया बहा रक्खे थे, अभी थोड़े हीं दिन की बात है कि यही अंगरेज यहां से हजारों रुपयों का माल जहाजों पर लाद अपने देश को लेजाते थे और लाखों का लाभ उठाते थे, चार सौ वर्ष भी नहीं बीते कि युरुप निवासी आर्यावर्त में आने के अर्थ सीधा मार्ग ढूढने के अर्थ कैसे व्यग्र हुए थे, अरब आदि देशवासी भारत से बाणिज्य पदार्थ जो मिश्र देशों में होकर युरुप को लेजाते थे, उनसे सौदागर लोग इतना लाभ उठाते थे कि जितना समस्त भूमण्डल के अन्य किसी में होना असम्भव था, यही कारण था कि अंगरेजों को यहां आने की हलवली मचरही थी उस समय कोई ऐसा देश न था जहां के लोग यहां के आने की अभिलाषा न करते हों अंगरेजों ने जो फर्रुखसियर से जमीदारी ली थी वह इस अर्थ के सिद्ध करने के लिये ही थी कि यहां जुलाहे बसाकर उनसे कपडा खरीद कर सीधा लेजाया करें और घर २ न फिरना पड़े क्या महिमा है उस सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की कि हिन्दुस्तान के जुलाहे तो जुलाहे ही रहे, अंगरेज भारत से वस्त्रादि लेजाने के पलटे इंगलैंडादि से वस्त्रादि माल भारत में लाने लगे, यही कारण है कि वर्त्तमान समय में भारत के समस्त विभागों में इंगलैंड ही इंगलैंड होरहा है।

वर्त्तमान समय इनकी विद्या साहस तथा एकता की तुलना कोई नहीं करसकता, जो आज यह अग्रसोची हैं अन्य कोई दृष्टि नहीं आता, शूर वीरता में पूरी योग्यता कि जिसके कारण पूरे सभ्य गिनेजाते हैं, शोक तो हमको अपने ही देश भाइयों पर है जो व्यौपार व कारीगरी की ओर दृष्टि भी नहीं उठाते, साहस का तो नाम ही मेटदिया, एकता के स्थान पर फूट से काम लिया जाता है, शूरबीरता पर छार डालदी सच पूछो तो आलस्य

में रहना इनको धनवान होने का अभिमान है, ब्याज खाना गोया स्वर्ग पाना जानते हैं, क्योंकि घर बैठे ही बैठे माल आता है चुपचाप सूद की दर प्रतिदिन बढाते चले जाते हैं कि जिसके कारण सामान्य जन अधिक खिसे जाते हैं इससे हमारे देश की और भी हानि होरही है।

प्यारे सज्जनों इन बातों से कभी देश की उन्नति होसकती है ? कदापि नहीं, इसके उपरांत जो माल बिलायत से आता है उसके पलटे यदि यहां से जाता है तो हम यही कहेंगे कि हमारे जीवन मूल या भोग बिलास की मूल बस्तु जैसे गेहूं, रुई, रेशम, नील, सरसों, आदि और जिनके बदले में वहां से वही मेम बाबा लोगों की तसवीरें कांच के भांति २ के गिलास लेंप, तथा काठ के खिलोने बूट जूते, बारीक साफ तार आदि जिनको देख मनुष्य का मन फडक जाता है, जेवर बेंचकर उन बस्तुओं से घर भर लेते हैं फिर अन्नादि क चले जाने से यहां दश सेर बिकने लगा है कि जिसके कारण लाखों जानें मुफ्त चली जाती हैं, इनका मूल कारण भी यही है कि एतद्देश निवासी शिल्प या व्यापार की ओर ध्यान नहीं देते, यहां प्रतिदिन तंगी आने का भी यही कारण है, यही कारण वहां सुख वैभव बढने का हैं क्योंकि हमारे देश के कारीगर हाथ पर हाथ धरे रोते रहते हैं उनको शाम तक पेटभर रोटी नहीं मिलती लाखों मनुष्य भीक मांगते फिरते हैं, यह केवल विलायती बस्तुओं का आदर करने ही का कारण है, हमारे यहां की सोदागरी की यह दशा है कि जिसको फेरी कहना चाहिये क्योंकि कोई तो बनारस से लाहौर लेजाता है, कोई कलकत्ता से बम्बई मंदराज, कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि हमारे सौदागर यहां का वहां तथा वहां का यहां लौठफेर करते हैं, क्या भला ऐसी सौदागरियों से हमारे देश का

प्रकाश होसकता है कदापि नहीं, क्योंकि एक भाई से लिया दूसरे को दिया फिर भला उन्नति की कौन सूरत, क्योंकि जिस ताल में से सैकडों मोरियों द्वारा पानी जाता हो पर आने का एक भी द्वार न हो तो बतलाइये कि वह ताल कबतक खाली न होगा, पस अब आप समझ लीजिये कि यह भारतरूपी तालाव है कि जिसमें से इन्कम् टैक्स संग्राम का भार, अंगरेज लोगों की तनख्वाह और उनके पेन्शन के उपरान्त विलायती वस्तु के मूल्य आदि मोरियों से द्रव्य रूपी जल बडे जोर शोर से चलाजाता और उसमें आने का कोई मार्ग नहीं, भला बताओ तो सही कि यह द्रव्य रूपी जल कब तक रहसकेगा ? देखो हमारे देखते ही देखते इस भारत की क्या कुदशा होगई !

प्यारे भाइयो यह भी एक स्वाभाविक बात है कि जिस किसी वस्तु की अधिक उन्नति होजाती है जैसे प्रातःकाल, मध्यान काल, सायंकाल, बाल्यावस्था तरुण अवस्था, बृद्धावस्था, इसी भांति सदा धन, पराक्रम, विद्या आदि में घटती वढती होती रहती है जैसा कि एक समय भारत ही भारत था, जब इसके बुरे दिन आये तो मिश्र यूनान रूम ने आनन्द उडाया फिर ससय के हेर फेर ने इन को भी लिया, अब वर्तमान समय में इंगलेंड की कला जगमगा रही है, चारो ओर उसी का डंका वज रहा है, पदार्थ विद्या में तो यहांतक हाथ मारे हैं कि मनुष्य गण देखकर चकित रहजाते हैं, देखो तार में हजारों कोस के समाचार आन की आन में आते जाते हैं, समुद्र में जहाजों के आने जाने के मार्ग देखिये, चीन, जापान, एमरीका, आस्ट्रेलिया, इंगलेंड हिन्दुस्तान आदि से नाना प्रकार के पदार्थ लदेहुए चले आते हैं, कलों से कैसा कपडा बुना जाता है, तोप कैसा दूर गोला फेकती है, घड़ी कैसा

समय बताती है, नोट कैसा काम देते हैं, छापे को देखिये कि पुस्तकों को छापकर घर २ करादिया, कौडियों में मिलने लगीं, अंधों के पढाने के अर्थ कैसे २ यत्न निकाले हैं, डाकटरी के पूरे उस्ताद होगये हैं, ज्योतिष, खगोल, भूगोल, आदि में वह उन्नति की है कि जिसको देखकर मन उछलता है, जडी बूटियों के खोज में कैसा परिश्रम किया है, पहाड नदी आदि में कैसे २ काम किये हैं, सच बात तो यह है कि इस समय जो कुछ है वह सब इंगलेंड ही में है ।

प्यारे सुजनों इंगलेंड जाकर इन विद्याओं को सीख अपने देश में आकर प्रचार करो तो भारत की सुदशा होजावे नहीं तो चौपट हुआ जाता है क्योंकि अब विना विदेश गये भारत वासियों का काम किसी प्रकार से नहीं चलसकता यदि भारतवासी आज राजनैतिक अधिकार प्राप्त होने की इच्छा करे, तो भी हमें विदेश ही एक मात्र अवलम्ब देखपड़ता है, यदि हम बिज्ञान आदि विविध बिद्या सीखना चाहें तो भी विदेश ही में बाध्य हैं, यदि न जांवे तो हमने अपने सुख को खोया, अपने देश की भलाई को असमर्थ हुए आप निकम्मे और निर्धन रहे, अतः जिस तरह देखो विदेश बिना हमारी गति नहीं ।

प्यारे सुजनों बिचार कर देखिये आज कौन ऐसा देशहितैषी मनुष्य है, जो विदेश बिनागये दीन भारत भूमि का किञ्चन्मात्र भी उपकार करसके ? क्या राजनैतिक, क्या विद्या बिषय सभों के अवलोचनार्थ आन्दोलन करने, हानि लाभ उठाने का एक मात्र आज हमें विदेश ही होरहा है, अधिक क्या कहें आज विदेश बिना हमारा छुटकारा नहीं, हमारी चुटिया विदेश के हाथ है, जब हम इस प्रकार से विदेश के आधीन होरहे हैं तो यदि विदेश

जाने का उपाय न करें तो क्योंकर भलाई करसकते हैं, इसलिये इस ओर ध्यान देना अभीष्ट है।

हे सुजनो जैसे मलियागिरि पर चन्दन की, असभ्य देशों में ईश्वर वन्दन की, वागों में फूलों की, और वनों में मूल की चाह नहीं, ऐसे ही हमारे स्वदेशीय भाइयों को देशांतर गमन करने को मन नहीं होता, घर की अंधेरी कोठरी में जन्म भूमि की कुंज गलियों में घुट २ कर मरजाते हैं जन्म भूमि में लंघन करके मरना अंगीकार है परन्तु घर के वाहर जाने को सौगन्द वरन नगर छोडना महा शंकट जानते हैं, जन्म भूमि की प्रीति ने उन्हें ऐसा मोहित कर रक्खा है कि उससे अलग होने को उनका जी ही नहीं चाहता, जैसे कोई विषयी किसी रूपवती वेश्या पर आशक्त होकर अपना धन प्रतिष्ठा गौरव और तन को अर्पण करके निर्लज्ज हो उसके द्वार का दास बनजाता है, वही दशा हमारे देश बासियों की जन्म भूमि के स्नेह में वीत रही है।

हे प्यारे भाइयों उत्तम पुरुषों की भांति उद्याग में लगजाइये चाहें प्रथम किसी प्रकार के विघ्न भी सहने पडें, क्योंकि बुद्धिमान वही हैं जो जिस कार्य का आरम्भ करते हैं फिर उसे विना पूर्ण किये नहीं छोडते, मध्यम पुरुष विघ्न होने पर उस कार्य कों छोडदेते हैं, तथा निकृष्ठ जन विघ्नो के भय से कार्य का आरम्भ ही नहीं करते, यथा—

प्रारभ्यते विघ्न भयान्न नीचैः।
प्रारभ्य विघ्न विहिता विरमान्तिमध्याः॥
विघ्नैस्सहस्र गुणितै रपि हन्य मानाः।
प्रारभ्यचोत्तम जना न परित्यजन्ति॥

अथोपरांत यह भी कहा है कि मनुष्य वही हैं जो साहस धीरज, उपाय बल बुद्धि पराक्रम को सदा काम में लाते हैं, कबीर का बचन है—

जिन ढूंढा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरी ढूंढन गई, रही किनारे बैठ ॥

सच तो यह है कि जिस किसी ने उद्योग किया उसने फल पाया, देखो प्राचीन काल में योरोप की क्या दशा थी, जिस समय खलीफा वलीद ने योरप को विजय करने पर कमर बांधी हस्पानियां तक उसे कोई रोकनेवाला न मिला, वे ही हास्पानिया वाले अर्थात् स्पेन तथा पोर्तगालबाले ऐसे बढ़े कि अमरीका अर्थात् नयी दुनियां को दरियाफत किया, वही अंगरेज जो छः सौ वर्ष पहिले वन्य और असभ्य गिने जाते थे, सो अब सारे संसार के शिरोमणि गिने जाते हैं, जिन यूनानियों की शिक्षा से योरोप सभ्य बना बरसों पराधीन रहे, और जिस रूस को मुसलमान लोग निर्धन तथा निर्लोभ जान छोड़ कर चलेआये थे वहां ही के रूसी धरती के छठे भाग के मालिक होगये, जिन पार्सियों ने खलीफा उमर के मारे ईरान छोडकर भारत वास किया था वह अब कैसे होगये, बीसियों जहाज चले आते हैं, बीसियों दस २ भाषा लिख पढ सकते हैं, देश देशांतर में करोडों रुपये के व्यापार करते हैं स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि वह फिरंगिनों की समता करती हैं, अब आप को क्या २ गिनावें संसार में सब की घटती बढती इसी उद्योग के आधीन है, जैसा कि कहा है —

उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मीः,
दैवेन देय मिति कापुरुषा वदन्ति ।

दैवं विलंघ्य कुरु पौरूष मात्म शक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोत्र दोषः ॥

अर्थात् उद्योगी पुरुष सिंह के पास लक्ष्मी जाती है, दैव देगा यह कायर कहते हैं, जो दैव को लांघ कर अपनी शक्ति से पौरुष कर यत्न करने पर कार्य की सिद्ध न हो तो इसमें क्या दोष, और भी कहा है—

दैव दैव करि मूर्ख जन, कुछ न करे व्यवसाय।
क्योंकर कर डोलें विना, कवर पेट में जाय॥
श्रम कीन्हे धन होत है, धन ही सुख को मूल।
व्यवसाई अरु चतुर नर, उद्यम को मत भूल॥

अतः किसी सज्जन का वचन है कि मणि को भी जब तक वह कान में रहता है कुछ प्रतिष्ठा नहीं होती, तलवार जब तक मयान में रहती है कुछ नहीं करसकती, यजुर्वेद में ईश्वर आज्ञा देता है—

आनो मित्रा वरुणा धृतैर्गव्युति मुक्षतम्।
मध्वारजा ९ मिमुक्तम् ॥

जिस प्रकार सांस ऊपर नीचे आता है ऐसे ही शिल्प विद्या अर्थात् जहाज चलाने की विद्या को जानने वाले मनुष्य भ्रमण करते रहें अर्थात् जहाजों में घूमते रहें, जैसे कि सांस काम करता है उसी प्रकार हम लोग भी समुद्र में फिरें, ऐसे कर्म करनेवाले मनुष्यों को वह परमात्मा शुभकारी नामों से पुकारता है तथा अन्त में उपदेश करता है कि देश देशांतरों में फिर कर एक दूसरे से व्योपार करो क्योंकि देश में धन की उन्नति व्यौपार तथा कारीगरी से होती है जिसके बिना किसी प्रकार के आनन्द के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते।

अब आप इन उपरोक्त बार्ताओं को जान पूर्व भारत वासियों की भांति उद्योग को धारण कर बिलायत इंगलिस्तान आदि देशों में जाकर शिल्प विद्या आदि उपयोगी व लाभकारी बातें सीख फिर अपने देश में आकर उन बातों का प्रचार कीजिये तथा व्यौपार के अर्थ अन्य कौमों की भांति पर्यटन कीजिये तो फिर भारत की कुदशा न रहेगी, जैसा कि वर्तमान समय में मदरास, बंबई भडोंच, अहमदाबाद, इन्दौर, कानपुर, कलकत्ता आदि नगरों में कपडे सूत आदि और लखनऊ में कागज कलों से बनता है परन्तु वह सब कलें इतना सूत तथा कपड़ा अथवा कागज़ नहीं बनातीं कि जितनी भारतवर्ष को आवश्यकता हैं, अभी तो इनकी दस बीस गुणी हों और उनमें भांति २ के वस्त्र तथा नाना भांति की आवश्यक वस्तु बनने लगें तो भारत के पेट में चैन पड़े, जिस प्रकार इलाहाबाद में देशी तिजारत के नाम से एक कम्पनी नियत हुई है उसपर ढाके की मलमल, मुरादाबाद के कपडे, नगीने के कलमदान, बरेली की दरी, अमृतसर के धुस्से लोई, बनारस की धोती अहमदाबाद आदि भारत के प्रसिद्ध २ नगरों की प्रसिद्ध २ वस्तु बिकती हैं उसी प्रकार और भी दूकानें भारत के नगरों में होनी चाहियें कि जिससे हमारी देशी वस्तुओं को काम में लाने का प्रचार होजावे ।

हमारे देशीय कारीगरों को उचित है कि वस्तु बनाने में परिश्रम करें कि जिससे उनको भी सुख चैन मिले तथा हमारे भारत से भी व्यौपार की वस्तु बाहर जाने लगें तो यहां भी धनधान्य की बढती होने की पूर्ण आशा होजावे ।

हे हमारे देश के राजा महाराजाओ, सेठ साहूकारो आप इस ओर ध्यान देकर अपने २ नगर तथा राज्य में शिल्प विद्या के स्कूल नियत क-

राइये तथा कलों से काम होना प्रचलित करादीजिये जिससे समस्त वस्तुऐं हमारे देश में बनने लगें, तथा आप भी सब क्रपाकर उनही हेशीय वस्तुओं को काम में लाइये जैसे हमारे पुराने पुरुषा अपनी देशी बस्तुओं का आदर सत्कार करते थे, कि जिससे इन देशीय वस्तुओं को काम में लाने का प्रचार समस्त भारत में होजावे ।

अथोपरांत जब भारत ही में सब वस्तु उत्तम व मनोहर बनने लगेंगी तब वह विलायत की वस्तुओं से सस्ती भी बिकेंगी तो समस्त देशवासी प्रसन्नता पूर्वक अपने ही देश की बनी वस्तुओं का आदर सत्कार करने लगेंगे तब ही आर्यावर्त्त देश की उन्नति होगी ।

अथोपरांत हमारे देश में कम्पनी बनाने की रीति न होने के कारण देश भर को हानि होरही है क्योंकि सर्व जनों के पास अधिक रुपया होना असम्भव है जो ऐसे २ कार्यों को अकेला ही करसके, यही कारण है कि यह देश बड़े २ कार्य नहीं निर्वाह कर सकता, दूसरा मुख्य कारण अविद्या है क्योंकि अविद्या के प्रताप से फूट फैल रही है अपने पेट पूर्ण करने के अतिरिक्त किसी की भलाई का किञ्चित् विचार नहीं, यदि एंगलेंड की भांति एक्यता होती तो क्या एंगलेड तथा फ्रांस आदि के ही मनुष्य थोडे २ रुपये डालकर आप अपने देश को लाभ पहुंचाते ? कदापि नहीं ।

हे भारत वासियों तनिक तो विचार करो कि फूट से हमारी तुमारी क्या दशा होरही है इस कारण देश का लाभ जान कम्पनी बनाने की टेव डालो, कम्पनी को अंगरेजी में सौदागरों के समूह अर्थात् साझियों के झुंड को

कहते हैं, देखो पहिले हिन्दुस्तान में अंगरेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी ही आई थी, व्यौपार करते २ बादशाह होगई, आप लोग भी उठ बैठें और बड़े २ कार्यों को बहुत से मनुष्य पत्ती डालकर एक कम्पनी बनाकर करने लगें तो फिर सब बातें शीघ्र सुधर जावें।

—इति—

आर्य्यदर्पण प्रेस शाहजहांपुर में
मुंशी बखतावरसिंह के प्रबन्ध से मुद्रित हुई

विज्ञापन

भाषा की देखने योग्य नवीन पुस्तकें

नीचे लिखी हुई पुस्तकें मेरी बनाई हुई देखने योग्य हैं इनकी उत्तमता के विषय में मेरे पास अनेकान पत्र आचुके हैं यदि आप को संसार और परलोक में सुख की इच्छा है तो अवश्य इनको देखिये अपने मित्रों विद्यार्थियों और संबंधियों को तुहफे के तौर पर भेंट कीजिये और अपनी संतानों को दिखला जीवन्मुक्ति के सुखों को भोगिये—

(१) वीर्य्यरक्षा—इस पुस्तक में वीर्य रक्षा के गुण, वर्त्तमान समय में उसके बृथा व्यय करने की हानियों का पूरा फोटो खींचकर दर्शाया है, यदि आप को अपनी संतानों पर पूरा प्रेम है और उनके सुधार का मन में विचार है, उनके अल्पायु में असंतान मरने आदि का शोक है तो शीघ्र इसे दिखला दीजिये क्योंकि सर्व प्रकार के सुख वा आनन्द वीर्य रक्षा ही से मिलते हैं, इसी का उर्दू अनुवाद हिफाजत मनी है, मू० ≈)

(२) नीतिशिरोमणि—भारतवर्ष में इससे उत्तम कोई नीति दृष्टि नहीं आती, यह महाभारत का रत्न है जिसमें महात्मा बिदुर जी ने पूर्ण रूप से महाराजा धृतराष्ट्र जी को उपदेश दिया है, उसको सरल भाषा में संस्कृत सहित उत्तम बिलायती कागज पर छपवाया है, मू० ।/)

(३) गर्भाधानविधि—यह संतान उत्पन्न होने की कुंजी है, लडका लडकी होने का ढंग बताती है जिन कारणों से संतान नहीं होती उनको जतलाकर उनके दूर करने का उपाय भी बतलाती है, अथो-परांत शिशुपालन तथा उनके कठिन रोगों की चिकित्सा भी लिखी गई है, अब पांचवीवार मुद्रित हुई है, यह उर्दू में भी छपी है, मू० ≈)

(४) **मौत का डर**—इस पुस्तक का पाठ करने से रोमांच खडे होजाते हैं और मन बुरे कर्मों के करने से भयभीत होता है सांसारिक पदार्थों के प्राप्त करने की तृष्णा जाती रहती है मोह के बश में पड़कर जो नाना प्रकार के कुकर्म करते हैं उनके छोडने पर उद्यत करती है, मूल्य ~)॥

(५) **सन्ध्या दर्पण**—इसमें वेदस्मृति पुराणों से यह सिद्ध किया गया है कि संध्या दोंही काल में करना चाहिये अर्थात् संध्या का समय दोही काल हैं, उसके पश्चात् इस बात को सिद्ध कर दिखलाया है कि तीनों वर्णों की उपासना करने का एक ही गायत्री मंत्र है, यह पुस्तक प्रत्येक मनुष्य को देखना उचित है क्योंकि उपासना के ठीक होने और उसपर यथावत चलने ही से मनुष्य का कल्याण होसकता है, और जिसपर न चलने से भारत का भारत होगया और होरहा है, मू० ~)॥

इसके अतिरिक्त—(६) अनमोलरत्न)॥ (७) ऋषिप्रसाद)॥ (८) रत्न जोडी)॥ रत्न प्रकाश)॥ (९) भरतोपदेश)॥ (१०) ब्रह्मविचार)॥ (११) श्रीमान् पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी के जीवन पर दृष्टि)॥ (१२) बुद्धि और अज्ञान का प्रश्नोत्तर)॥ (१३) इसाई शिक्षा का प्रभाव भारतवर्ष में)॥ (१४) प्राचीन सत्यनारायण की कथा ~)॥

नोट

पुस्तकें वेल्यूपेबिल भेजीजाती हैं, पता स्पष्ट लिखना योग्य है, जिस पर हमारी मुहर न हो वह पुस्तक चोरी की हैं, जो महाशय ऐसी पुस्तक बेचनेवाले का पता बतावेंगे उनको यथायोग्य पारितोषिक दूंगा।

आपका शुभचिन्तक
चिम्मनलाल वैश्य,
तिलहर जिला शाहजहांपुर।

२५ अगस्त सन् १८९७ ई०

25-4-02

नारायणी शिक्षा ॥

अर्थात्

गृहस्थाश्रम

द्वितीय भाग

जिस में

वेदादि सत्यशास्त्रानुसार गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों की व्याख्या है कि जिन पर चलने से शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नति अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥

जिस को

मुझ चिम्मन लाल वैश्य कासगंज ज़िला एटा निवासीने

सर्वोपकारार्थ प्रकाशित किया ॥

इसकी रजिस्टरी ऐक्ट २५ सन् १८६७ के अनुसार कराई गई है।

पं० तुलसीराम स्वामी सम्पादक वेदप्रकाश के

प्रबन्ध से उनके स्वामियन्त्रालय मेरठ में मुद्रित हुई ॥

अक्तूबर [illegible] ई०

प्रथम वार १००० पुस्तक

मूल्य दोनों भागों का

[illegible] रु०

विशेषसूचना ॥

बहुधा मान्य पुरुषों ने इस गृहस्थाश्रम के दो भाग होने की इच्छा प्रकट की थी इस बार ऐसा ही किया गया है परन्तु सर्वसाधारण के सुभीते के लिये मूल्य वही १।) रु० दोनों भागों का रक्खा गया है ॥

अवश्य देखिये मैंने अपने देशहितैषी मित्रों की इच्छानुसार १ अक्तूबर ९७ से पुस्तकों का मूल्य न्यून करदिया है आशा है कि ग्राहकगण अधिक सहायता देंगे ॥

चिम्मनलाल वैश्य

नोट ।

(१) पत्र व्यवहार में नाम पता स्पष्ट लिखना योग्य है अन्यथा पुस्तकें देर में भेजी जाती हैं और न पढ़ने पर भेजी भी नहीं जातीं ॥

(२) महसूल डांक और फीस मनीआडर जिस्में ख़रीदार है ॥

(३) हमारी किताबों के छापने का अन्य किसी को अधिकार नहीं पुस्तक लेते समय मेरी मुहर अवश्य देखलेना चाहिये ॥

(४) पुस्तक हिन्दी में दरकार है या उर्दू में अवश्य लिखिये ॥

(५) आठ आने से नीचे की पुस्तकें वेल्यूपेबिल द्वारा न भेजी जावेंगी ऐसे सज्जन टिकटादि के द्वारा मूल्य प्रथम भेजदें ॥

(६) बैरंग पत्र न लिये जावेंगे ॥

आप का शुभचिन्तक

चिम्मनलाल वैश्य

तिलहर जि० शाहजहांपूर

सूचीपत्र ॥
(प्रथमभाग)

नंबर	विषय	पृष्ठ
	स्वास्थ्यरक्षा (१)	
१	आरोग्यता की आवश्यकता और उस की रक्षा के नियम	१
२	प्रातःकाल उठने के लाभ, शौच	२।३
३	स्नानकी विधिऔर उसकेलाभ	४
४	पैर धोना	६
५	व्यायाम की विधि और उस के लाभ	६
६	बालों का शुद्ध रखना	९
७	अञ्जन और दृष्टि रक्षा के नियम	१०
८	वायु–उस की बनावट, शुद्ध वायु की आवश्यकता और उस के प्राप्त करने के नियम	१०
९	पानी–उस की आवश्यकता और उत्तम जल का लक्षण	१३
१०	रोगकारक जल की पहिचान	१५
११	कुआं बनवाने के नियम	१५
१२	तालाब के शुद्ध जल रखने की विधि	१६
१३	नदियों के जल का शुद्ध रखने का उपाय	१७
१४	भक्ष्य और अभक्ष्य	१८
१५	भोजन का समय और विधि	१९
१६	सत्त्वगुणी, तमोगुणी और रजोगुणी भोजन की मीमांसा	२०
१७	भूंख और अधिक भोजन करने का निषेध	२१
१८	भोजन का स्थान और पचने का उपाय	२३
१९	(उपवास)भूखे रहनेका निषेध	२४
२०	शरद्-वसंत-ग्रीष्म और वर्षा ऋतु के भोजन व नियम	२७
२१	नगर-गांव-मकान	२८
२२	मकान बनवाने के नियम	३०
२३	तुलसी आदि वृक्षों के गुण	३३
२४	मांस खाने का निषेध	३८
२५	मांस बल का दाता नहीं	३९
२६	मांस से रोग की उत्पत्ति	४१
२७	अश्वमेध और गोमेध का मुख्य अभिप्राय	४४
२८	मछली और झींगा खाने का निषेध	४५
२९	शिकार–किसको और कैसे पशुओं का शिकार करना चाहिये ॥	४६
३०	दूध की उत्तमता	४६
३१	गाय भैंस और बकरी के दूध के गुण	४७
३२	दही-उसका गुण और खाने व न खाने का समय	४८
३३	मट्ठा का गुण	४८
३४	माखन मिश्री का गुण	४९
३५	पान खाना - पानों के गुण खाने व न खाने का समय	४९
३६	पानके साथ तंबाकूका निषेध	५०
३७	वस्त्र और धारण करने के नियम	५०
३८	सायंकाल	५१
३९	सोना–सोने का स्थान विधान और उस के नियम	५२
४०	नशों का वर्णन	५२
४१	शराब पीने का निषेध	५६

नंबर	विषय	पृष्ठ
४२	अफ़ीम से हानि	५९
४३	तम्बाकू पर डाक्टरों की सम्मति-तम्बाकू से पवित्रता का नाश व पुराणों से उसका निषेध	५९-६१
४४	गांजा की हानियां	६१
४५	गृहादि को स्वच्छ रखना	६२
४६	क्षौर	६५
४७	उबटन-तेल	६६
४८	आईना-जूता-छाता-छड़ी और पगड़ी के लाभ	६७
४९	खड़ाऊं और लालटेन के गुण	६८
	गर्भाधानविधि (२)	
५०	गर्भाधान का समय	६९
५१	उत्तम पुत्र पुत्री उत्पन्न करने के नियम	७०
५२	गर्भाधान की विधि	७१
५३	विशेष सूचना	७१
५४	गर्भपरीक्षा	७२
५५	आसन्नप्रसवा के लक्षण	७३
५६	व्यथायुत गर्भिणी उपचार	७३
५७	दाई	७४
५८	प्रसूता के रहने का स्थान	७४
५९	शुहागसोंठ बनाने की विधि	७५
६०	पुत्र और पुत्री दोनों का जन्म सुखदायक है	७६
	शिशुपालन	
६१	जन्म समय का कर्त्तव्य	७८
६२	दूध पिलाने के नियम	७९
६३	बालक का भोजन	८१
६४	„ वस्त्र और पहनाने के नियम	८२
६५	बालक के सुलाने का समय और विधि	८२
६६	„ हवा खिलाने के लाभ स्थान और विधि	८४
६७	दांत निकलने की पहिंचान और कष्ट से बचाने का उपाय	८४
६८	बच्चे के पेट में विकार की परीक्षा और उपाय	८५
६९	शीतला और उस का उपाय	८७
	कुमार और किशोर अवस्था	
७०	पुत्र पुत्रियों का सच्चा भूषण और उस के प्राप्त करने का उपाय	८९
७१	संस्कृत की प्रशंसा	९१
७२	संस्कृतविलाप	९२
७३	उर्दू	९३
७४	उर्दू भाषा की पुस्तकें और उन का प्रभाव	९४
७५	पादरीस्कूलों में बच्चों को पढ़ाने का निषेध	९६
७६	आभूषण पहनाना-सच्चा भूषण	९८
७७	वर्त्तमान समय के भूषणों से हानि	९९
७८	जुआ खेलने की हानियां	१००
७९	पक्षी आदि पालने के दोष	१०१
	ब्रह्मचर्य्य (३)	
८०	ब्रह्मचर्य्य का लाभ और समय	१०२
८१	काम का बल उस का परिणाम और उस से बचने का उपाय	१०६
८२	प्राचीन आर्य्यवर्त्त	१०८
८३	मातापिता का ब्रह्मचारियों के साथ कर्तव्य.	१०९

नंबर	विषय	पृष्ठ
८४	ब्रह्मचारियों को शिक्षा	१११
८५	सत्संङ्ग के लाभ	११३
८६	श्रेष्ठ और दुष्ट	११४
८७	समय का व्यय	११५
	विद्या (४)	
८८	विद्या और अविद्या	११८
८९	विद्या की महिमा	११९
९०	पंचयती दण्ड से लाभ	१२३
९१	गुरु और आचार्य्य का धर्म	१२६
९२	गुरु और आचार्य्य कौन हो सक्ता है	१२९
९३	वर्त्तमान समय के गुरु और उन से हानियां	१३१
	स्त्रीशिक्षा ॥	
९४	स्त्रियों का प्रभाव और उन्हें पढ़ाने की आवश्यकता	१३५
९५	धर्मकार्य्यों में स्त्रियों के पढ़े होने की आवश्यकता	१३७
९६	स्त्रियों के कर्म और उन के पूर्ण न होने के कारण और फल	१४२
९७	प्राचीन विदुषी स्त्रियों का वृतान्त	१४३
	विवाह (५)	
९८	न्यून अवस्था के विवाह का निषेध	१४७
९९	विवाह का वेदोक्त समय और उस के लाभ	१४९
१००	विवाह का पुरोणोक्त समय उस की हानियां और डाक्टरों की सम्मति, वर खोजना और वर्गप्रीति मिलाना	१५८
१०१	पुत्र पुत्री के गुण	१६३
१०२	धन देकर विवाह करने का निषेध	१६६
१०३	भाई बारी द्वारा ब्याह से वध आदि	१६८
१०४	उत्तम और निकृष्ट कुल	१७०
१०५	बरात में बहुत भीड़	१७०
१०६	बखेर का फल	१७१
१०७	बागबहारी	१७२
१०८	आतिशबाज़ी	१७४
१०९	रण्डी का नाच और उस से देश की दुर्दशा, और हत्यायें	१७६
११०	भांड़ और उन से सभ्यता का नाश	१७८
१११	विवाह में गालियों का निषेध	१७९
११२	वर्त्तमान समय की प्रतिज्ञा	
	धन की महिमा (६)	१८३
११३	उद्योग और आलस्य	१८५
११४	धन का यथार्थ व्यय	
	दानमाहात्म्य (७)	१८८
११५	दान की आवश्यकता और प्रमाण	१९२
११६	वर्त्तमान समय के साधु संन्यासी और उन को दान देने के दोष	१९४
११७	पण्डित, ब्राह्मण, साधु, वैरागी और महात्मा के लक्षण	१९७
११८	दानपात्र	२०२
११९	स्त्रीदान का निषेध	२०३
१२०	सूर्य्य और चन्द्र ग्रहण होने का कारण	२०५
१२१	वेदविद्या का दान	२०६
१२२	सुपात्र व कुपात्र	२०९
१२३	वर्त्तमान समय के दान की परिपाटी से देश की कुदशा	

नंबर	विषय	पृ०
	गृहस्थाश्रम (८)	
१२४	गृहस्थाश्रम की प्रशंसा	२१९
१२५	ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्र के लक्षण	२२१
१२६	वर्णों का अन्तर और वर्ण-व्यवस्था का सुधार	२२२
	पतिपत्नीधर्म (९)	
१२७	प्रीति की आवश्यकता	२२९
१२८	स्त्रीधर्म	,,
१२९	स्त्रियों को स्वर्ग की प्राप्ति का उपाय	२३०
१३०	स्त्रियों के तीर्थ	२३४
१३१	पतिव्रता स्त्रियों का पतिव्रत	२३५
१३२	स्त्रियों की शिक्षा	२४२
	भोजन बनाना	
१३४	साधारण नियम	२४४
१३५	रोटी बनाना	२४४
१३६	उर्द की दाल	२४५
१३७	चावल, खिचड़ी और खीर	२४६
१३८	मालपुआ गुनिया और अनरसे	२४७
१३९	घुइयां जमीकन्द और साग	२४८
१४०	करेला, अचार नींबू, अचार नमक, आलू, भिंडी	२४९
१४१	बूंदी और बेसन के लड्डू	२५०
१४२	लाज और पर्दा की यथार्थ व्यवस्था	,,५१
	पतिधर्म	
१४३	स्त्रियों की आवश्यकता और उन से वर्त्ताव	,,५४
	व्यापार (१०)	
१४४	चाकरी के दोष	,,५८
१४५	घूस	,,५९
१४६	भीख	२६०
१४७	व्यापार विना देशकी दुर्दशा	,,६१
१४८	कम्पनी बनाने के लाभ	२७०

—*—

[द्वितीय भाग]

—*—

नंबर	विषय	पृ०
	संस्कार (११)	
१४९–१६	संस्कार और नाम	१
१५०	संस्कारों की आवश्यकता	२
१५१	विशेषसूचना	३
१५२	गर्भाधान	३
१५३	पुसंवन—जातकर्म	४
१५४	नामकरण की विधि समय और वर्त्तमान परिपाटी के दोष	४
१५५	हवा खिलाना, चटना, मुण्डन और कनछेदन प्रत्येक का समय और विधि	५
१५६	उपनयनकासमयऔरविधि	५
१५७	उपनयन न होने के दोष	६
१५८	वेदारम्भ—उस का समय और वर्त्तमान समय में उस की कुदशा	८
१५९	विवाह—गृहस्थाश्रम वानप्रस्थ और संन्यास	९
१६०	संन्यासियों के कर्त्तव्य	१०
१६१	मृतकसंस्कार, उस का वेदोक्त विधान	११
१६२	वर्त्तमान कर्मकाण्डऔरकट्टहा को देने का निषेध	१२
१६३	यम का अर्थ	१३
१६४	गङ्गामें मुर्दा डालने कानिषेध	१४

नंबर	विषय	पृ०
१६५	आवागमन (१२)	१५
	धर्म (१३)	१६
१६५	धर्म की प्रशंसा	१८
१६६	धर्म की परिभाषा और तोलने के बाट	२०
१६७	धर्म के दश लक्षण और व्याख्या	२१
१६८	धर्ममार्ग	२७
१६९	वेद	२९
१७०	वेदों के अनादि होने का प्रमाण	३१
१७१	स्मृति	३२
१७२	सदाचार	३४
१७३	धर्मसभा	३७
१७४	प्रिय आत्मनः	३९
	नित्यकर्म (१४)	
१७५	पञ्चकर्मों का त्याग और दोष	३९
१७६	पञ्चयज्ञ—ब्रह्मयज्ञ	४०
१७७	गायत्रीमन्त्र की प्रशंसा	४१
१७८	गायत्री का एक होना	४४
१७९	दो काल संध्या का विधान	४५
१८०	आचार की आवश्यकता	४८
१८१	गायत्री का अर्थ	५२
१८२	वेदपाठ	५३
	देवयज्ञ	
१८३	अग्निहोत्र का समय	५४
१८४	अग्निहोत्र के लाभ	५५
१८५	अग्निहोत्र का त्याग और दोष	५९
	पितृयज्ञ	
१८६	पितृयज्ञ से लाभ	६०
१८७	सच्चा श्राद्ध और तर्पण	६२
१८८	वर्त्तमान समय का श्राद्ध और तर्पण, शंकायें और दोष	६३
१८९	मृदुवचन के लाभ	७४
१९०	नमस्ते शब्द का निर्णय और प्रमाण	७५
१९१	बलिवैश्वदेव	८०
	अतिथिसेवा	
१९२	अतिथिसेवा के लाभ	८१
१९३	अतिथिसेवा का त्याग और दोष	८३
१९४	सच्चे अतिथि—वर्त्तमान समय के अतिथि और उनसे देश की दुर्दशा	८३
	पुराणपरीक्षा (१५)	
१९५	पुराणों का समय	८६
१९६	पुराणों की असम्भव बातें	८७
१९७	पुराणों में परस्पर विरोध	८९
१९८	पुराण और वेदों में विरोध	९१
१९९	वर्त्तमान वा प्राचीन समय के पुराण व उपपुराण	९३
२०१	वेदों का ईश्वरकृत होना	९७
२०२	मूर्त्तिपूजाविचार (१६)	१८
	त्योहार (१७)	
२०३	श्रावणी	१०९
२०४	दशहरा	,,१२
२०५	दिवाली	,,१३
२०६	देवोत्थान	,,१५
२०७	वसन्त	,,१६
२०८	होली	,,१६
	ज्योतिष (१८)	
२०९	उस की वर्त्तमान दशा और दोष	,,१९
२१०	रसायन मन्त्र और तन्त्र (१९)	,,२५

नंबर	विषय	पृष्ठ
२०९	आर्य्य शब्द की व्याख्या और प्रमाण	१३१
	व्रत और तपस्या (२०)	
२१०	वर्त्तमान समय के व्रत और दोष	१३४
२११	वेदोक्त व्रत	१३७
२१४	वर्त्तमान समय की तपस्या	१४१
	तीर्थ और मोक्ष (२१)	
२१५	तीर्थ के लाभ	१४२
२१६	वेदोक्त तीर्थ	१४३
२१७	तीर्थयात्रा के नियम	१४६
२१८	वर्त्तमान समय के तीर्थ और दोष	१४७
२१९	गङ्गास्नान	१४९
	योग का वर्णन (२२)	
२२०	अष्टाङ्गयोग के आठों अङ्गों का वर्णन	१५६

संस्कार ॥

—*—

मनुष्योंके शरीर और आत्माके उत्तम होनेके लिये १६ संस्कार गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्य्यन्त करना चाहियें जैसा मनुस्मृति अ० २ श्लोक १६ में लिखा है—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ।

वे सोलह संस्कार यह हैं—(१) गर्भाधान । (२) पुंसवन । (३) सीमन्तोन्नयन । (४) जातकर्म । (५) नामकरण । (६) निष्क्रमण । (७) अन्नप्राशन । (८) चूडाकर्म । (९) कर्णवेध । (१०) उपनयन । (११) वेदारम्भ । (१२) समावर्त्तन । (१३) विवाह । (१४) गृहस्थाश्रम । (१५) वानप्रस्थ । (१६) संन्यास ॥

व्यासस्मृति अ० १ श्लो० १५ में भी इन्हीं संस्कारोंको बतला कर १६ की गणना की है जैसा कि "संस्काराः षोडश स्मृताः" ॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्धके अ० १ में सुमन्त मुनिने इन्हीं सोलह संस्कारोंके लिये उपदेश किया है क्योंकि जो निषेक आदि वैदिकसंस्कारोंसे पवित्र होते हैं वह अवश्य ही मुक्ति पाते हैं ॥

परन्तु किसी २ स्मृतिमें १७ और किसीमें १५ संस्कार पाये जाते हैं इस न्यूनाधिकका मुख्य कारण यही है कि किसीने दो संस्कारोंको एकके अन्तर्गत कर दिया है किसीने पृथक् २ माना है । अस्तु संस्कार १६ ही हैं इसमें कुछ मतभेद नहीं पाया जाता । यद्यपि "दशकर्म पद्धति" पुस्तक बनाने वाले पण्डितों ने वर्त्तमान समयकी रीत्यनुसार दश ही संस्कार माने हैं तो भी १६ का खण्डन नहीं किया उस गणनासे भी १६ संस्कार सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि उन्होंने उपनयन, वेदारम्भ, समावर्त्तन इन तीनों संस्कारोंको वर्त्तमान समय की रीत्यनुसार एक ही के अन्तर्गत कर दिया है और केशान्त संस्कारको एक देशीय और संन्यास, वानप्रस्थ और अन्त्येष्टिकर्म प्रचार न होनेके कारण नहीं माने इससे १६ संस्कार होजाते हैं इस लिये मैं दशकर्म पद्धति बनाने वाले पण्डितों से प्रार्थना करता हूं कि इस पुस्तकमें उक्त तीनों संस्कारोंकी विधि बढ़ादें जैसा स्मृतिकारोंने आज्ञा दी है जिससे संसारमें संस्कारोंकी परिपाटी बनी रहे ॥

इसके अतिरिक्त इस समय भी जब कि भारतमें धर्मपरिपाटी बहुत अधोगति पर है इनमें से आधेसे अधिक संस्कार प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य के यहां होते हैं यद्यपि उनकी वेदानुकूल रीतें जाती रहीं और नाममात्रके पौराणिक पण्डितोंने मनमानी रीति प्रचलित करली है ॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समयके बहुधा बड़े जन कि जिन्होंने ऋषि मुनियोंके ग्रन्थों पर दृष्टि भी नहीं डाली, जो वेदविद्या और उसके सिद्धान्तों से बिल्कुल अनजान हैं, या जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण आयुको दूसरे देशकी विद्या और उसके रहने वालों में रहकर उनके सिद्धान्तोंको सीख कर उनकी ही पुस्तकों के पाठमें व्यय की है, जो उन्हींके गिरोहोंमें रहते हैं इनके मुख्य मर्मसे निपट अज्ञान रह गर्भाधानादि सोलह संस्कारोंमें नाना प्रकारकी शङ्काएं उत्पन्न करते हैं और बहुधा नेचरिया विवाह आदि दो एक संस्कारोंको तो मानते हैं परन्तु यज्ञोपवीतादि करनेको वे वृथा ही समझते हैं इसका मुख्य कारण यही है कि वह नहीं जानते कि संस्कार का अर्थ क्या है और इसका फल कुछ होता है या नहीं ? देखिये "सम्" पूर्वक कृञ् धातुसे संस्कार शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ अच्छे प्रकार सुधराव करना है ॥

यह दो प्रकारका होता है (१) शरीर सम्बन्धी । (२) आत्मा सम्बन्धी वा अन्तःकरण सम्बन्धी इन दोनों में आत्मा सम्बन्धी संस्कार अति उत्तम है इसी कारण यज्ञोपवीत और वेदारम्भ मुख्य समझे जाते हैं ॥

प्रियवरो ! जितनी वस्तुऐं इस संसारमें परब्रह्मपरमेश्वरने उत्पन्न की हैं मैं जानता हूं कि उन सबको सुधरावकी आवश्यकता है यहां तक कि बिना सुधराव किये हम उनसे अपना कार्य्य भी नहीं ले सक्ते और न वह उत्तम जान पड़ती हैं क्या आप नहीं देखते कि पत्थर जब तक वह अपनी स्वाभाविक दशामें होता है तो अच्छा नहीं मालूम पड़ता परन्तु जब उसको कोई शिल्पकार दुरुस्त करता है तो वहीं पत्थर उत्तम जान पड़ता है प्रत्येक मनुष्य उसको देखकर प्रसन्न होता है इसी प्रकार हीरा आदि रत्न भी बिना सान दिये बेडौल रहते हैं और सान देने पर उत्तम जान पड़ते हैं । यही सान दना एक प्रकारका संस्कार कहाता है इसी प्रकार बुरीसे बुरी और छोटीसे छोटी वस्तु भी अच्छी और बड़ी हो सक्ती है । पक्षीकी भाषा और रङ्ग भी सुधरावसे उत्तम होजाता है ॥

परन्तु शोक है कि हम पशु पक्षियों, और घास आदिके सुधरावके लिये नाना उपाय (संस्कार) करें और मनुष्यमात्रके सुधरावके अर्थ संस्कार करना वृथा समझें । देखिये जिन मनुष्योंका वेदारम्भसंस्कार होकर विद्या पढ़लेते हैं वही सभ्य और जो विद्या नहीं पढ़ते हैं वही असभ्य कहाते हैं इस लिये मान्यवरो ! आप भी मनु महाराजके लेखानुसार वेदानुकूल संस्कार कर २ आनन्द उठाइये जैसा कि अ० २ श्लो० २६ में कहा है ॥

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यके गर्भाधानादि संस्कार वेदमन्त्रोंसे होने चाहियें इससे शरीर और आत्माकी शुद्धि और इस लोक और परलोक में पापसे निवृत्ति होती है अर्थात् संस्कारोंके करनेसे सन्तान शुद्ध निष्पाप और धर्मात्मा होते हैं ॥

विशेष सूचना ॥

इन सब संस्कारोंकी वेदानुकूल विधि मन्त्रों सहित "संस्कार विधि" में श्रीस्वामीदयानन्द सरस्वतीजी महाराजने लिखी है उसीके अनुसार कार्य्य कीजिये और आनन्द उठाइये जिस दिन कि कोई संस्कार करना हो उस दिनसे प्रथम संपूर्ण यज्ञपात्र सामग्री ठीक कर लेवे और प्रातःकाल ही अपने सम्बन्धी व मित्रादि बिरादरीके मनुष्योंको बुलाकर यथाविधि करावे तत्पश्चात् आये हुए मनुष्योंको सत्कार पूर्वक विदा करे ॥

विवाहसंस्कार रात्रि के ८ बजे और शेष संस्कार प्रातःकाल ही होने चाहियें कार्य्यकर्त्ता विद्वान् होना चाहिये जो स्वर सहित वेदमन्त्रोंको पढ़ सके और धार्मिक भी हो प्रत्येक संस्कारके दिवस पुत्र या पुत्रीको थोड़े जल से स्नान कराकर स्वच्छ वस्त्र पहनावे ॥

वेश्याके नाच संस्कारोंमें न हों क्योंकि इससे नाना भांतिकी हानियां होती हैं । अब मैं आपसे प्रत्येक संस्कारकी वेदानुकूल क्रिया संक्षेपसे वर्णन करता हूं:—

(१) गर्भाधान ॥

मान्यवरो ! इसी संस्कार पर हमारी शारीरिक और आत्मिक उन्नति निर्भर है इस लिये महाशयो ! इस पर आपका भी पूरा ध्यान होना चाहिये

इस विषयमें आप गर्भाधानकी रीतोंको जो पहले वर्णन कर चुका हूं पढ़कर कार्य्य कीजिये और आनन्द उठाइये ॥

(२) पुंसवन ॥

यह संस्कार गर्भस्थिति समयसे दो या तीन माह पश्चात् होता है इससे गर्भकी स्थिरता होती है ॥

(३) जातकर्म ॥

यह संस्कार सन्तानकी उत्पत्ति समय होता है जब बालक उत्पन्न हो उसी समय सुवर्ण, मधु और गोका घृत तीनों मिलाकर चटावे क्योंकि यह तीनों वस्तु बुद्धि, आयु, आरोग्य और बलको बढ़ाने वाले हैं तत्पश्चात् नालच्छेदनका विधान करें ॥

(४) नामकरण ॥

पुत्र या पुत्रीके जन्मसमयसे १० दिन छोड़ कर ११ वा १०१ वें वा दूसरे वर्षके आरम्भमें यदि पुत्र हो तो दो वा चार अक्षरका घोष संज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गोंके दो २ अक्षर छोड़कर जिसमें हों तीसरा चौथा पांचवा और य, र, ल, व यह चार वर्ण अवश्य आवें ऐसा नाम रक्खे। यदि पुत्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षरका नाम रक्खे जैसे यशोदा सुखदा इत्यादि इनके उपरान्त इस बातका भी ध्यान रहे कि नाम बहुत, लम्बा चौड़ा न हो सुननेमें प्रिय सार्थक हो और किसी वृक्ष, पक्षी, पर्वत, नदी आदि पर न हो और ऐसा भी नाम न रक्खे जिसके सुननेसे भय मालूम हो। यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा, क्षत्रिय हो तो वर्मा और वैश्य हो तो गुप्त नामके अन्तमें लगावे जैसा—देवशर्मा। देववर्मा। देवगुप्त इत्यादि ॥ ऐसे नामोंके रखनेका मुख्य तात्पर्य्य यह था कि प्रत्येक जान लेवें कि हम ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्य हैं इस लिये हमको सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होना और बुरे कर्मोंसे घृणा करना चाहिये क्योंकि वर्त्तमान समय में भी रायबहादुर, सितारेहिन्द आदि नाम प्रतिष्ठित गिने जाते हैं और जिनको वह मिलते हैं उनको उतना ही अधिक ध्यान उत्पन्न कराते हैं और वह मानते हैं कि हमारा यह काम है, हम प्रतिष्ठित हैं, हमको यह काम करनायोग्य है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समयमें इस उत्तम परिपाटी पर हमारे भाई बहन कुछ भी ध्यान नहीं देते और अंट के संट नाम रखते हैं ॥

(५) निष्क्रमण अर्थात् हवा खिलाना ॥

इसका समय जन्मसे ४ माह तक है। संस्कारके पश्चात् बस्तीके बाहर जहां शुद्ध वायु धीरे २ चलती हो, शुद्ध पवित्र कपड़े पहना कर ले जावे और उस दिन से नित्यप्रति सन्ध्या प्रातःकाल भेजा करे जिससे उस की शारीरिक उन्नति हो। यदि बालक निर्बल या रोगी हो तो विद्वान् जन कोई और समय नियत करलें ॥

(६) अन्नप्राशन अर्थात् चटना ॥

किसी २ ऋषि ने इस का समय छठे महीने लिखा है और किसी ने लिखा है कि यह संस्कार उस समय हो जब बालक को पाचनशक्ति होजावे क्योंकि इस का अभिप्राय यही है कि उस दिवस से बालक को अन्न दिया जावे। संस्कार पश्चात् बालक को भात में दही, घी और सहत मिलाकर खिलावे। तत् पश्चात् उत्तम विधि से बना हुआ नरम थोड़ा भोजन दे जैसा गर्भाधानविषय में लिखा है ताकि बालक को रोग न हो ॥

(७) चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन और कर्णवेध अर्थात् कनछेदन ॥

इन का समय कम से कम ३ और ५ वर्ष है। चूड़ाकर्मसंस्कार के दिन चतुर नाई से बालक के बाल मुड़वावे। और कर्णवेध के दिन चरक सुश्रुत वैद्यकग्रन्थों के जानने वाले के हाथ से कर्णवेध करावे जो नाड़ी को छोड़दे। तत् पश्चात् ऐसी ओषधि उस पर लगावें जिस से कान न पकें और शीघ्र आराम होजावे ॥

(८) उपनयन अर्थात् जनेऊ ॥

इस संस्कार का वेदानुकूल समय ब्राह्मण के लिये ८ वर्ष क्षत्रिय के लिये ११ वर्ष और वैश्य के लिये १२ वर्ष है। जैसा कि मनु० अ० २ श्लो० ३६ में लिखा है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥

और ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लो० १३। १४ व्यासस्मृति अ० १ श्लो० १९ में भी लिखा है। ऐसा ही श्रीमद्भागवत, महाभारत, मार्कण्डेयपुराण, भविष्यपुराण और याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है ॥

इस के उपरांत यह भी लिखा है कि यदि किसी कारण से उपरोक्त समय पर यज्ञोपवीत न हो सके तो ब्राह्मण के १६ क्षत्रिय के २२ और वैश्य के बालक का २४ वर्ष से पूर्व २ यज्ञोपवीत अवश्य होना चाहिये। तत्पश्चात् गायत्री का अधिकार नहीं रहता। जैसा मनु अ० २ श्लोक ३८—

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते ।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥

इसी संस्कार के समय आचार्य बालक को गायत्री आदि वेदोक्त कर्मों के करने की शिक्षा करता है जिस को वह सदा करता रहे। इसी समय बालक ब्रह्मचारी होने का सर्वसाधारण के सामने प्रण करता है। परन्तु शोक है कि वर्तमान समय में बहुधा—क्षत्रिय और वैश्यों के यहां यह संस्कार नहीं होता। यदि उन से पूछा जावे तो कहदेते हैं कि "हम से सध नहीं सक्ता" और पौराणिक पितृकर्म आदि में पहरलेते हैं। बहुधा घरानों में जब घर का बूढ़ा मर जाता है तो उन के पुत्रों में जो सब से बड़ा होता है विना वेदोक्त संस्कार किये जनेऊ धारण करलेता है जिस की आज्ञा कही नहीं पाई जाती है। परन्तु शोक का स्थान है कि सभ्यजन इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते ॥

इस विषय में बहुधा ऋषियों का कथन है कि जिन का यज्ञोपवीतसंस्कार क्रियापूर्वक नहीं हुआ, मनुष्यमात्र उन से विवाह आदिक किसी प्रकार का संबन्ध आपत्काल में भी न रक्खें। न ऐसे मनुष्य गायत्री के अधिकारी रहते हैं जब तक प्रायश्चित्त न करावें। जैसा कि मनु० अ० २ श्लोक ३९ व ४० में लिखा है ॥

अतऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्यविगर्हिताः ॥
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥

व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २० शङ्खस्मृति अ० २ श्लोक ९ और मनु अ० २ श्लोक २७२ में लिखा है कि विना यज्ञोपवीतसंस्कार के मनुष्य वेदमन्त्र उच्चारण करने का अधिकारी नहीं है अर्थात् शूद्रसमान है:—

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥

फिर कैसे शोक की बात है कि यज्ञोपवीत न होने के पश्चात् भी द्विजाति होने का घमंड करें। इस के उपरांत इस संस्कार के न होने से वेदारम्भ संस्कार की आवश्यकता ही नहीं रही फिर वेदों का प्रतिदिन पढ़ना क्योंकर होसक्ता है अर्थात् पंच कर्म करने की शास्त्र की आज्ञा है वह भी नहीं हो सक्ती और न द्विज कहला सकते हैं। इसलिये विचार कर इस धर्म-मर्य्यादा को प्रचलित कर संस्कार उद्धार कीजिये। और वर्तमान समय जो कंठ में कंठी बांधने की रीति अत्यन्त प्रचलित होगई है तिस के लिये कोई वेदोक्त आज्ञा नहीं है और न किसी सत्यशास्त्र में कोई आज्ञा पाई जाती है और उस को शूद्र भी पहिनते हैं मिथ्या जान, ब्राह्मण क्षत्री वैश्य को इस की प्रथा शीघ्र उठा देनी चाहिये। इस के उपरांत यह भी स्मरण रहे कि जब नवीन यज्ञोपवीत धारण करे तो इन मन्त्रों को पढ़ कर पहने—

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥२॥

(१) वेदारम्भ ॥

गायत्रीमन्त्र से लेके सांगोपांग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करने का नाम वेदारम्भसंस्कार कहाता है ॥

यह संस्कार उपनयन के दूसरे दिन वा एक साल के भीतर किसी दिन होता है। उस दिन से ब्रह्मचारी गुरुकुल में जाकर विद्याध्ययन करता है कि जिस से मनुष्य के आत्मिकसंस्कारों की उन्नति होना सम्भव है। क्योंकि बिना वेदादि विद्या पढ़े कभी धर्म के मर्म को नहीं जान सक्ते। पूर्व समय में इसी संस्कार पर अधिक बल दिया जाता था क्योंकि बिना सुधार इस संस्कार के कभी शरीर और विद्या की उन्नति नहीं होती। पूर्व ऋषियों ने इस विषय में बड़े २ ग्रन्थ लिखे हैं और हमारे प्राचीन पुरुष उन के लेखानुसार यज्ञोपवीत संस्कार कराकर अपने पुत्र पुत्रियों को गुरुकुल में भेज यथावत् विद्या उपार्जन कराते थे। और गुरुजन बड़े प्रेम और भक्ति से उन पुत्र पुत्रियों को अपनी निज संतान के समान उन का लालन पालन कर विद्या और ब्रह्मचर्य्य को पूरा कराने का यत्न करते थे। उसी समय भारत में सुपात्र धार्मिक गृहस्थ होते थे जो नियमानुकूल वेदों की आज्ञाओं को पालन कर आगे

आनेवाली सन्तानों के लिये उदाहरण होते थे। परन्तु अब महान् शोक का स्थान है कि माता पिता वेदविद्या से रहित होने के कारण अपनी सन्तानों का यथावत् उपकार नहीं कर सके। जिस के कारण ब्राह्मण क्षत्री वैश्य से यह प्रथा उठ गई और विद्याहीन आचार्य्यों ने एक नया मिथ्या ढकोसला निकाल कर भारतसन्तान का जड़पेड़से खोज मार दिया॥

प्रियवरो! वर्त्तमान समयमें जब यज्ञोपवीत संस्कार होता है तो उसी समय वेदारम्भसंस्कार भी कराया जाता है और ब्रह्मचारी गायत्री का उपदेश लेकर विद्या पढ़ने के लिये काशी जहां किसी समय में बड़ा भारी गुरुकुल था जाने के लिये उपस्थित होता है जिस के लिये यह हितू और सम्बन्धियों से मार्गव्ययादि के लिये भिक्षा मांगकर धन इकट्ठा कर लेता है। परन्तु शोक है उन आचार्य आदि पर कि जो खड़े होकर यह विश्वास देकर कि हम तुम को यहीं विद्या पढ़ा देंगे रोक लेते हैं और फिर उस की कुछ भी सुध नहीं लेते और माता पितादि भी इस विषय में कुछ भी नहीं कहते। वह ब्रह्मचारी के रूप को बदल कर गृहस्थों की भांति गृहकार्य्यों में लग जाता है और फिर थोड़े ही दिनों में गृहस्थ भी बना दिया जाता है। बहुधा अब यह संस्कार विवाहसमय में भी होने लगा है। सज्जन जन विचार करें इसी का नाम हमारे ऋषि मुनियों ने ब्रह्मचर्य्याश्रम रक्खा था। क्या प्राचीन आचार्य इसी भांति वेदारम्भसंस्कार कराकर गुरुकुल के जाने से झूंठा विश्वास देकर रोक लेते थे?। नहीं नहीं नहीं, यदि आप प्राचीन ग्रन्थों को देखेंगे तो स्पष्ट प्रकट हो जावेगा कि इन आचार्यों ने प्राचीन ब्रह्मचर्य्य का सत्यानाश मार दिया। प्रियवरो! यह रीति कौन से वेद या आचार्य की सनातन रीति है? क्या आचार्य का यही परमधर्म है कि अपने शिष्य को झूंठा विश्वास देकर उसकी आत्मिक उन्नति का नाश मारदे? क्या ऐसे आचार्य आत्मा के हतन करने वाले दोष के भागी नहीं होते? अवश्य होते हैं। इस लिये अब माता पिता को योग्य है कि यथावत् समय पर यज्ञोपवीत संस्कार कराकर गुरुकुल में भेजने की प्रथा को यथावत् प्रचलित करें और जब तक वह विद्या को यथावत् प्राप्त न कर लें तब तक कदापि गुरुकुल से अपने घर पर न आवें जैसी कि वेदादि सत्य शास्त्रों में आज्ञा है। उसी समय देश का कल्याण होगा॥

(१०) समावर्त्तनसंस्कार॥

जब ब्रह्मचारी एक, दो, तीन वा चारों वेदों को समाप्त करके विद्वान्

होकर विद्यालय को छोड़ कर अपने घरको आता है उसी का नाम समावर्त्तन संस्कार है। मान्यवरो! जब वेदारम्भ संस्कार ही नहीं रहा तो इस को कौन पूंछता है ॥

(११) विवाहसंस्कार ॥

इस विषय में पहले लिख आया हूं देख लीजिये।

(१२) गृहस्थाश्रम ॥

इस आश्रम में जिन २ बातों की आवश्यकता होती है उन्हीं का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। स्त्री और पुरुषों को योग्य है कि धर्मानुकूल इस आश्रम में रह कर धर्म अर्थ काम मोक्ष प्राप्त करें।

(१३) वानप्रस्थसंस्कार ॥

जब गृहस्थी में मनुष्य पूर्ण आनन्द उठा चुके और अपने पुत्र पुत्रियों का ब्रह्मचर्य्यव्रत समाप्त होने पर विवाहादि कर चुके और पुत्र के भी पुत्र हो जावें तब सम्पूर्ण धन दौलत, पुत्र को देकर अपनी स्त्री को साथ ले या बड़े पुत्र के आधीन करके वन में जाकर जितेन्द्रिय होकर रहे। इस को वानप्रस्थ संस्कार कहते हैं। इस का समय ५० वर्ष के उपरान्त ही है। जब घर को छोड़े तो अपने साथ अग्निहोत्र की सामग्री ले जावे और अपने समय को वेदादि पुस्तकों के पठन पाठन में बितावे। यदि स्त्री साथ हो तो भी प्रसङ्ग न करे। भीख मांग कर खावे। सब से मित्रभाव से वर्त्ते। मनुष्यों को यथायोग्य ज्ञानोपदेश दे। पञ्चयज्ञ करता रहे। भूमि पर सोवे ॥

(१४) संन्यास ॥

यह मनुष्यों के कर्त्तव्य का अन्तिम संस्कार है। यह तीन प्रकार का होता है। एक तो वह जो क्रम से ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ को सेवन करके लेते हैं। यह सब से श्रेष्ठ है। दूसरा वह जो गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ले लेवे। तीसरा वह जो ब्रह्मचर्य्याश्रम से ही विना गृहस्थ और वानप्रस्थ के ले लेते हैं। परन्तु यह अत्यन्त कठिन है। और यदि किसी का मन संसार के विषयानन्द से किसी युक्ति से ब्रह्मचर्य्याश्रम में ही हट गया हो तो अत्यन्त उत्तम है। परन्तु ब्रह्मचर्य्याश्रम से प्रथम अर्थात् विना विद्या पढ़े संन्यास लेना बिल्कुल वेदविरुद्ध है। मनुजी ने लिखा है कि ७० वर्ष की आयु में संन्यास लेवे ॥

संन्यासियों के कर्त्तव्य ॥

(१) अपने समय को वेदादि सत् विद्या के फैलाने और वेदविरुद्ध मतों के दूर करने के लिये सम्पूर्ण संसार में भ्रमण करे और मनुष्यों को सदुपदेश करता रहे। सत्य को ग्रहण करे, असत्य को छोड़ देवे ॥

(२) कहीं घर बनाकर न रहे, जल को छान कर पिये और अपने आचरणों को सुधारे रहे ॥

(३) सब शिरके बाल मुड़ाए रहे, रंगे वस्त्र पहने, जो मिले वह आनन्द प्रसन्न होकर खावे, मद्यादि मादक द्रव्य कभी न पीवे ॥

(४) किसी को पीड़ा न दे, क्रोध को त्याग दे ॥

(५) इन्द्रियों को अपने वश में रक्खे और आठ प्रकार के मैथुनों को त्यागे ॥

(६) मृत्यु तक हो जावे परन्तु सत्य के कहने में न चूके ॥

(७) परमेश्वर के सिवाय अन्य की उपासना न करे और अपने जीवन को परोपकार में लगावे ॥

(८) सांसारिक पदार्थों में अपने दिल को लगाने की चाहना न करे ॥

(१५*) मृतकसंस्कार ॥

इस का कोई समय नियत नहीं और न मनुष्य को यह संस्कार अपने आप करना पड़ता है। वरन इस का करना मनुष्य के सम्बन्धियों का कर्म है इस लिये उन को योग्य है कि जब कोई मरजावे तब यदि पुरुष हो तो पुरुष और स्त्री हो तो स्त्रियां स्नान कराकर, चन्दनादि लेपन करके, नवीन वस्त्र धारण करावें और जितना मनुष्य का शरीर हो उतना घृत यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक परन्तु आध मन से कम किसी तरह न हो चाहे मनुष्य कितना ही दरिद्री क्यों न हो। यदि उस मनुष्य के सम्बन्धी दरिद्री हों तो उस मुहल्ले के श्रीमानों को योग्य है कि इस का प्रबन्ध करादें॥

इस के उपरान्त घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर और एक मन घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और यथायोग्य चन्दन का चूरा भी डाले और शरीर के भार से दूनी लकड़ी श्मशानभूमि में ले जाकर और यथावत्

*यथार्थ में १६ संस्कार हैं परन्तु इस पुस्तक के ७ वें अङ्क में १ चूड़ाकर्म २ कर्णवेध दोनों साथ वर्णित हैं। अतः १६ ही होजाते हैं॥

वेदी बनाकर वेदमन्त्रों की विधि से मृतक का दाहकर्म करें। फिर सब मनुष्य वस्त्रों को धोकर स्नान कर नगर में आकर मृतक के घर पहुंचें। जो लीप पोत कर पहले से स्वच्छ होगया हो। वहां स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण और ईश्वरोपासना कर उन्हीं मन्त्रों के द्वारा गृह में सुगन्धित द्रव्यों सहित हवन करें। कि जिस से गृह में से मृतक का दुर्गन्ध निकल जावे और उत्तम वायु गृह में प्रवेश करे कि जिस से सब मनुष्यों के चित्त प्रसन्न हों। इस के उपरान्त तीसरे दिन मृतक का कोई सम्बन्धी अस्थि उठा कर एक स्थान पर रखदे। परन्तु वर्त्तमान समय में केवल लकड़ियों में ही रख कर जला देते हैं। देखिये इसी संस्कार के वेदरीत्यनुसार न होने से देश में अकाल मरी रोगों की बहुतायत हो गई। पदार्थविद्या के न जानने के कारण इस देश की अधोगति होती जाती है। प्यारे बहन भाइयो! टुक तो विचारो कि जब आप शरीर को लकड़ियों के साथ जलाते हो तो वह मांसादि जल कर दुर्गन्धित वायु कर देता है उस को मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि सूंघते हैं उन को नाना भांति से हानि होती है और उन्हीं परमाणुओं से कालान्तर में बादल बनते हैं फिर मेह बरसता है उस से अन्न, फल, फूल होते हैं जिस को प्रतिदिन खाते हैं। नदियों तलाबों कुओं में भी पानी बिगड़ जाता है उस को पीते हैं जिस से भारतवासियों की दिन पर दिन हीन दशा होती जाती है। उत्तम २ भोजन करने पर भी नाना रोग घेरे रहते हैं। इसलिये अब आप इस हानिकारक प्रथा को दूर कीजिये। देखिये अयोध्या काण्ड सर्ग ६। श्लोक १६, १७, १८ में लिखा है कि जब श्रीमान् राजा दशरथ जी का देहान्त होगया तो सरयूतीर पर लेगये वहां सुन्दर चिता बना कर चन्दन, अगर, साखू—काष्ठ देवदारु आदि सुगन्धित पदार्थों से भस्म किया और ऋत्विक् लोग उचित मन्त्र गाते जाते थे। इसी प्रकार आदिपर्व अ० १२५ में लिखा है कि राजा पाण्डु और माद्रीका भी मृतकसंस्कार इसी प्रकार चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं से हुआ था। और स्त्रीपर्व अ० १६ में लिखा है कि महाभारत में जो बहुत से मनुष्य मरे थे उन सब का मृतकसंस्कार धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार विदुर जी महाराज ने घी चन्दनादि से कराया था। इस के अतिरिक्त इन संस्कारों में पीपल में घड़ा बांधने—एकादशाह द्वादशाह आदि करने का कहीं विधान सत्यशास्त्रों में नहीं पाया जाता जिन की वर्त्तमान समय में बहुतायत है॥

प्यारे सुजनो ! इस रीति के अनन्तर जो दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह, सपिण्डी, मासिक, वार्षिक, गया श्राद्धादि किया जाता है सो यह सब ठगई का जाल है क्योंकि वेदों में इन बातों का वर्णन लेशमात्र भी नहीं लिखा और उस जीव का सम्बन्धियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता । यह जीव अपने कर्मों के अनुकूल यमालय को जाकर गर्भाशय में आता है जहां उस का सम्बन्ध होजाता है । वेद के अनुकूल शरीर छूटने पर वेदमन्त्र द्वारा उस का दाह होना लिखा है उस को उठा कर अपने पेट में धरने के लिये उक्त क्रिया को न कर पिण्ड आदि बनवा कर नाना लीला रचते हैं और अच्छे प्रकार गप्फा लगाते हैं । हमारे भाई गरुडपुराण जो उन्हीं के पुरुषों ने बनाया है 'यम' की कथा सुना अपने सम्बन्धी के लिये डेरा, तम्बू, हाथी, घोड़ा, मुद्रा आदि 'कट्टहा' जी की भेट चढ़वाते हैं कि जिन के आशीर्वाद से ही पापी, कामी, हत्यारे आदि जीव स्वर्ग को चले जाते हैं और उन विद्याहीनों को यही निश्चय होरहा है कि 'कट्टहा जी' के कहने से ही अर्थात् सुफल बोलते ही हमारे माता पिता आदि 'यम' के कोप से बच कर स्वर्ग को चले जाते हैं । प्यारे भाई बहनों ! टुक तो विचारो, क्या ईश्वर भी अन्यायी है जो अच्छे कर्म करने वालों को बिना सुफल के नरक में भेज देता है और बुरे कर्म करने वालों को सुफल के कहते ही स्वर्ग के जाने का हुक्म होजाता है । जो 'कट्टहा जी' दश, पांच, सौ, दोसौ, हज़ार आदि मिलने पर कहते हैं तो क्या ईश्वर भी घुसया है जो घूंस मिलते ही डिगरी की डिसमिस और डिसमिस की डिगरी कर देता है । देखिये क्या अच्छा नुसख़ा निकाला है कि जिस से जन्म भर के पाप 'कट्टहा' जी के प्रसन्न होते ही कट जाते हैं फिर क्यों हमारे पुरुषों ने विद्या पढ़ी आचरण सुधारे । आचार विचार किये जैसा कि जनक, दशरथ, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, व्यास, वाल्मीकि इत्यादि ने नाना प्रकार कष्ट सह कर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को मारा । क्या उन के लड़कों के पास इतने रुपये न थे ? प्यारे भाइयों ! जन्म भर के पाप यदि इन कर्मों से जाते तो फिर क्या था फिर तो पौ बारे थे, परन्तु आप तो कुछ भी विचार नहीं करते और ईश्वर की आज्ञा के प्रतिकूल चलने का अपराध आप के शिर पर चढ़ता है । दूसरे इन का उद्धार 'कट्टहा जी' करते हैं जो आप भी सब रंगों में रंगे रहते हैं । विद्या का नाम नहीं जानते, नाना भांति के कुकर्म करते हैं, उस धन को रंडी भडुओं भंग चरस आदि में खोते हैं । क्या ऐसे महापापियों की ईश्वर बातें मानता है

इन्हों ने तो ईसाइयों को भी मातकर दिया। प्यारे! इन गपोड़ों को त्यागो इस धोखे में अमृतरूपी काया को वृथा मत खोओ। हां, जो कुछ दान आदि माता पिता आदि से कराना हो जीते जी कराकर जैसा दान विषय में लिखा है वैसा दान कीजिये अर्थात् पाठशाला, यतीमख़ाने, भूखे नङ्गे अति उत्तम २ कार्यों में व्यय कीजिये। न कि इन निरक्षर भट्टाचार्यों को जीव के अर्थ उस के मरने पर उस के मिलने की आशा पर थैली की थैली खोल देते हो। जिस से देश को कोई लाभ नहीं होता बरन 'कट्टहों, की एक क़ौम कि जिस में हज़ारों मनुष्य मरने की आशा पर ही आयु व्यतीत करते हैं—नियत होगई है। अर्थात् निकम्मे निठल्ले मिथ्या बातों में समय खोते हैं। क्या यह पाप आप के शिर पर न होगा अवश्य ही होगा। इस के उपरान्त 'यम, की कथा जो इन मिथ्याचार्यों के गुरुओं ने बनाई है झूंठी है क्योंकि वेदानुकूल निम्न लिखित पदार्थों का नाम 'यम, है—

षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ॥ ऋ० मं० १० सू० १६४ मं० १५ ॥ शकेम वाजिनो यमम् ॥ ऋ० मं० २ सू० ५ मं १ ॥ यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ ऋ० मं० १० सू० १४ मं० १३ ॥ यमःसूयमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वायुः पूयमानः। यजुर्वेद अ० ८ मं० ५७ ॥ वाजिनं यमम् ॥ ऋ० मं० ८ सू० २४मं० २२ ॥ यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋ० मं० १ सु० १६ मं० ४६ ॥

(१) यहां ऋतुओं को यम, (२) यहां परमेश्वर, (३) यहां अग्नि को, (४) यहां वायु विद्युत् और सूर्य को, (५) यहां भी वायु को, (६) और यहां परमेश्वर का नाम यम है। इस कारण पुराणों की कथा मिथ्या ही जानना। और 'यम, रूपी परमेश्वर के प्रसन्न होने के अर्थ वेदादि सत्यशास्त्रों को श्रवण करो और समय के अनुकूल आचरण करो तब ही वह न्यायकारी परमेश्वर प्रसन्न होगा। उस समय हम आप नाना भांति के दुःख रूपी नरकों से बच सकते हैं, न कि 'कट्टहा, जी के सुफल बोलने पर। यह सब मिथ्या है धोखे की टट्टी में शिकार खेलते हैं, इसलिये आप सत्यशास्त्रों को विचारो और बुद्धि से भी काम लो नहीं तो यह 'कट्टहा, जी जो प्रातःकाल उठ कर मरने

का ही स्मरण करते हैं कि हमारे महीने में भाग्यवान् अर्थात् रुपये वाला मरे। धन्य ऐसे शुभचिन्तकों को दान देकर पुरुषों को स्वर्ग भेजने के भरोसे पर लाखों में पानी देदेते हो। क्या शोक की बात नहीं है? क्या इस से भी अधिक कोई अन्धेर होगा? ईसा से भी बढ़ कर परमेश्वर के पिता ही बन गये अर्थात् जो पोप जी कहेंगे वही परमेश्वर करेगा। इस के उपरान्त बहुधा जन मुर्दों को पापनिवृत्ति और स्वर्गप्राप्ति तथा मुक्ति का साधन समझ गङ्गा आदि नदियों में डाल देते हैं कि जिस से जल विकारी हो जाता है और जो कोई उस को पीते हैं, उन को नाना रोग हो जाते हैं। जिस के पाप का बोझ भी पुत्रादि पर होता है इसलिये गरुड़पुराण के ऐसे लेखों पर धता भेजनी चाहिये। गङ्गादि में डालने से मुक्ति कभी हो सक्ती है?। (मुक्ति के साधन तीर्थविषय में सविस्तार वर्णन किये गये हैं)॥

इस के उपरान्त—धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती इन पांच नक्षत्रों में पञ्चकें होती हैं। यदि इन में मरण हो तो गङ्गादि नदियों पर जाकर फूंक कर उन में डाल देते हैं। यदि किसी कारण से गङ्गादि पर न पहुंच सके तो उन की क्रिया में गाड़ी के पहिये का कोई टुकड़ा वा सम्पूर्ण पहिया भी रख कर जला देते हैं और कहते हैं कि यह तो कभी न कभी गङ्गा-जल में स्नान कर आया होगा। इस के रखने से पञ्चकों का दोष जाता रहता है। इस के अतिरिक्त अग्नि में जल कर मरने वा सांप के काटने, कुए में गिरने वा दब कर मरने, नदी में डूब कर वा विजली के गिरने से, और औरतों को सोर में मरने आदि को अकाल मृत्य कहते हैं—जिस के दो भेद हैं। प्रथम में मृतक का शरीर उपस्थित हो, दूसरी में मृतक का शरीर न मिले। प्रथम दशा में 'नारायणबलि, करते हैं अर्थात् प्रेतयोनि से छुटाते हैं। दूसरी दशा में 'रामबलि, करते हैं अर्थात् जब मृतक का शरीर नहीं मिलता तो फिर नये सिरे से जौ के आटे का पुतला मृतक के शरीर के बराबर बनाते हैं। उस को मरा हुआ नहीं जानते वरन बीमार समझते हैं। फिर उसी समय जिस समय उस मनुष्य के मरने की ख़बर मिली थी, सब घर के स्त्री पुरुष रोते पीटते चिल्लाते हैं, अर्थात् उस समय उस को मरा जानते हैं फिर नये सिरे से मृतक की सम्पूर्ण क्रिया करते हैं॥

यह सब बातें पोप जी ने अपने पेट भरने ही के अर्थ लिखी हैं क्योंकि लोभ में मनुष्य माता पिता आदि को मार डालते हैं सो इन्होंने वेद के अर्थों

को पलटकर धर्म को मार सर्व प्रकार से अपना ही पेट भरा। इस पर कल न पड़ी तो 'तेरही' के नाम से भी गप्फा लगाया, मासिक वार्षिक पर भी हाथ मारा। मुख्य प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार होसका लूटने में किसी प्रकार कसर नहीं की। अब सत्य ग्रन्थों को श्रवण करो तो गरुण पुराण और नाशकेत और कर्मविपाकादि पाखण्डों से छूटो नहीं तो इन्हीं गपोड़ों में पड़कर भारत का भारत कर दिया। परन्तु शोक तो इसी बात का है कि सब कुछ जानने पर भी विचार नहीं करते। इस के उपरान्त जब कभी मृत्यु हो, अत्यन्त शोकातुर होकर रोना पीटना आदि कर्म न करना चाहिये। क्योंकि मरना जीना शरीर का धर्म है अर्थात् जो उत्पन्न होता है वह मरता है और जो मरता है वह उत्पन्न होता है, इसी को आवागमन कहते हैं—

आवागमन ॥

क्योंकि आवागमन का अर्थ आना और जाना है अर्थात् पाप पुण्य के अनुसार इस संसार में सुख दुःख भोगने के लिये बारम्बार उत्पन्न होना और मरना आवागमन कहाता है। जिस को फ़ारसी में "तनासुख़" और अंगरेज़ी में "टिरेन्समिग्रेशन आफ़ सोल,, कहते हैं।

मान्यवरो! ऋषियों के जीवनचरित्र पाठ करने से जाना जाता है कि वह इस नियम में किस प्रकार लिप्त थे। सारे भारत वर्ष की धर्मपरिपाटी की केवल यही जड़ है। यह वह मनुष्यों का सच्चा मित्र है जो सदा सच्चे ही मार्ग की ओर लेजाता है। यदि हम विचारदृष्टि से देखें तो हम को ज्ञात हो जावेगा कि भारतवासी जन अन्य देशवासियों से धर्मकार्य्यों में क्यों बढ़े हुए थे, क्यों वह कहते थे कि "अहिंसा परमो धर्मः" क्यों वह अपने समान सब को जानते थे, क्यों वह नम्रतापूर्वक सब जीवों से वर्ताव करते थे, किस कारण सांसारिक सुखों को हेच तृणवत् समझते थे?

इस का कारण यही था कि उन के पास यह सच्चा हितैषी था जो प्रतिसमय शिक्षा देता था कि हे सांसारिक सुखों की गहरी नींद में सोने वाले मनुष्यो! सचेत रहो। तुम केवल इस संसार में परीक्षा के लिये उत्पन्न किये गये हो और कुछ समय पश्चात् आप को न्यायकारी परमात्मा के पास जाना होगा जो न्यायपूर्वक धर्मतुला में तुम्हारे कर्मों को तोलेगा यदि कुछ भी हलचल हुए तो फिर पता कहां! फिर भी नाना लोकों में उत्पन्न हो कर सुख और

दुःख उठाते रहोगे। इसी कारण देखिये मनु० अ० १२ श्लोक २३ में लिखा है कि मनुष्य का आवागमन पाप और पुण्य के कारण होता है इस कारण पुण्य की प्राप्ति का यत्न करना चाहिये। जैसा कि—

एतादृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥

और इसी अ० के ३९ श्लोक में लिखा है कि कर्मों के कारण मनुष्य आवागमन में फंसा रहता है, और श्लोक ४० में कहा है कि सत्त्वगुणी देवरूप, रजोगुणी मनुष्यरूप और तमोगुणी पशुयोनि को प्राप्त होते हैं और आवागमन है। श्लोक ७४ में लिखा है कि दुर्जन पुरुषों को निन्दित कर्म करने से निन्दित जन्म लेने पड़ते हैं। और विष्णुस्मृति अ० २० श्लोक २९ में लिखा है कि जिस का जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा और जो मरेगा उस का अवश्य जन्म होगा। इस जन्म मरण के रोकने की सामर्थ्य किसी को नहीं। जैसा कि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
अर्थे दुष्परिहार्य्येऽस्मिन्नास्ति लोके सहायता ॥

इसी अ० के श्लोक ४३ में लिखा है कि कर्मों के अनुसार बार २ शरीर धारण करना पड़ता है और श्लोक ५० में लिखा है कि जैसे पुराने वस्त्र को त्याग कर नवीन वस्त्र को धारण करते हैं वैसे ही जीव पुराने शरीर को त्याग, अपने कर्मों के अनुसार नवीन शरीर को धारण करता है। इन के अतिरिक्त ऋग्वेद अ० ४ अष्टक १ व० २३ मं० ६, व ७ में लिखा है कि—

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्य्यमुचरन्तमनुमते मृडयानः स्वस्ति ॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्या३या स्वस्ति ॥

हे सुखदायक परमेश्वर! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हम को उत्तम नेत्रादि सब इन्द्रियां दीजिये तथा प्राण अर्थात् मन बुद्धि चित्त और अहंकार बल पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये। इसजन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम २ भोगों को प्राप्त हों तथा आप की कृपा से सूर्य्य लोक, प्राण और आप को विज्ञान तथा प्रेमसे सदा देखते रहें। हे अनुमते! सब जन्मों में हम लोगों को सुखी रखिये जिस से हम लोगों का भला हो॥

हे सर्वशक्तिमान् आप के अनुग्रह से हमारे लिये बारम्बार पृथ्वी प्राण प्रकाश चक्षु और अन्तरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें। दूसरे जन्म में सोम अर्थात् ओषधियों का रस हम को उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे तथा पुष्ट करने वाला परमेश्वर कृपा कर के सब जन्मों में हम को सर्व दुःख निवारण करने वाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवें। और य० अ० ४ मं० १५ में लिखा है कि हे परमेश्वर जब २ हम जन्म लेवें तब तब आप हम को उत्तम २ इन्द्रियां प्रदान कीजिये और हमारे शरीर का पालन कीजिये। निरुक्त अ० १३ खं० १९ में लिखा है कि मैंने अनेक बार जन्म धारण किया, हजारों गर्भाशयों का सेवन किया, अनेक माताओं का दूध पिया। इस की पुष्टि योगशास्त्र में पतञ्जलि मुनि ने की है। एमरीका का एमर्सन नामक प्रसिद्ध विद्वान् एक बालक की ओर इशारा कर बोलता है कि इस बालक के भोले भेष पर मत भूलो इस की अवस्था हजारों वर्ष की है। इन के अतिरिक्त प्रोफ़ेसर मेक्समूलर ने कहा है कि जीव जैसा कर्म करेगा वैसा ही भविष्य में पावेगा। प्लाटों पूर्णरूप से पुनर्जन्म मानता था। इस के अतिरिक्त बालक जन्मभर की वस्तुओं को देख २ कर प्रसन्न हो कर हाथ पैर फेंकते हैं और अम्मा अम्मा शब्द शीघ्र कहने लगते हैं जिस से प्रकट होता है कि इन का कुछ २ ज्ञान उन को पूर्वजन्म से है। इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जीव का बराबर आवागमन होता रहता है॥

और गीता में लिखा है कि आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सक्ती, जल गला नहीं सक्ता, पवन सुखा नहीं सक्ता। वह निराकार और मन से परे है। फिर भला बहुत दिनों तक शोक रखना नाना भांति से रुदन करना, व्यर्थ ही है कि जिस से क्लेश के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता जैसा कि—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥

इस के अतिरिक्त मृत्यु का कोई समय नियत नहीं न जाने कब आजावे और मृत्यु के आने पर इसी प्रकार के उपायों से हम लाभ नहीं उठा सक्ते और हमारी कोई सहायता भी नहीं कर सक्ता केवल उस समय पर धर्म ही हमारी सहायता करता है॥

धर्म ॥

क्योंकि वेदादि शास्त्रों के अवलोकन करने और ऋषि और मुनियों के जीवनचरित्रों पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रकट होता है कि इस संसार में सुख प्राप्ति करने और मरने के पश्चात् सुख से रहने का मुख्य कारण धर्मानुसार चलना ही है क्योंकि संसार के धनादि सब पदार्थ यहीं रह जाते हैं अर्थात् स्त्री, पुत्र, शरीर, सम्बन्धी, मित्र, धन, पशु, और पक्षी इत्यादि यह सब प्राणयात्रा के समय पृथक् हो जाते हैं और उस को ऐसे छोड़ देते हैं जैसे पक्षी फलहीन वृक्ष को फिर उस के कमाये हुए धन का कोई और ही स्वामी हो जाता है और उस के शरीर की हड्डी, रुधिर, मांस को अग्नि भस्म कर देती है परन्तु जीव के साथ उस का धर्म ही जाता है जैसा मनुस्मृति अ० ४ श्लोक २३९ में लिखा है—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठति केवलः ॥
अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

महाभारत में लिखा है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्म्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतो बधीत् ॥

चाणक्य ऋषि ने भी स्पष्ट आज्ञा दी है—लक्ष्मी, प्राण, शीशमहल एक दिन चले जाते हैं और अन्त को संसार भी स्थित नहीं रहता हां केवल एक धर्म ही पूरा साथ देता है। इस लिये वही उस का सच्चा मित्र कहाता है—जैसा—"धर्मोमित्रं मृतस्य च"—ऐसा ही अनुशासनपर्व अ० ११० में बृहस्पति जी और शुक्रनीति अ० ३ श्लोक ९ में और वाल्मीकीय रामायण (आर० काण्ड स० ९) में सीता महारानी ने रामचन्द्र महाराज से कहा है कि सुख का मूल धर्म ही है—महात्मा भीष्म का वचन है कि जिस प्रकार सूर्य्य अन्धकार का

नाश करता है उसी भांति धर्म पापों को नष्ट करता है। द्रोणाचार्य्य का वचन है और कृष्ण जी भी यही कहते हैं कि धर्म से जय होती है। हनूमान् जी भी कहते हैं। विना धर्म के सुख नहीं परशुराम और सञ्जय युधिष्ठिर महाराज कहते है कि धर्म आपत्ति में भी न छोड़ना चाहिये क्योंकि यही सर्व सुख का दाता है। जैसा मनु जी ने अ० ४ श्लोक १७१ में लिखा है—

न सीदन्नपि धर्म्मेण मनोऽधर्म्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्य्ययम् ॥

बहुधा जन अधर्म से भी बढ़ती जानते हैं परन्तु प्यारे सुजनों! इस विषय में मनुजी महाराज का कथन है कि अधर्म करने वाला शीघ्र बढ़ता और विजय पाता फिर अन्त को मूल सहित नष्ट होजाता है। जैसा कि—

अधर्म्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥
(मनु० अ० ४ श्लो० ७९)

ऐसा ही य० अ० ६ मं० १२ में भी लिखा है। इसी लिये ऋषिगण धर्म का उपदेश करते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० १९ में लिखा है कि मनुष्यों का श्रेष्ठ धन धर्म ही है जैसा—"धर्म इष्टं धनं नृणाम्" इसी हेतु हमारे परम-पूज्य नीतिज्ञ विदुरजी महाराज यह उपदेश करते हैं कि मनुष्य को आयु भर वह कार्य्य करना चाहिये जिससे मरने के पीछे सुख हो—

यावज्जीवेन तत्कुर्य्याद्येनामुत्र सुखं वसेत् ॥

देखिये धर्म के सहारे ही सूर्य्य तप रहा है। पृथ्वी अपनी कील पर घूमती है। धर्म से ही बेड़ा पार होता है। धर्मात्मा ही संसार के सुखों को भोगते हैं। धर्म से ही मनुष्य कहाता है। और इसी धर्म के बल से मनुष्य को ऋषि मुनि महात्मा देवता आदि की पदवी मिलती है। धर्म से ही विजय होती है। धर्म से ही शरीर आरोग्य और बुद्धि प्रबल होती है। धर्मात्मा ही के सत् सङ्कल्प पूर्ण होते हैं। धर्म से ही स्वर्ग के सुख और मोक्षपद पाता है अर्थात् धर्म से ही इस लोक और परलोक के महान् सुख मिल सक्ते हैं। धर्मात्मा भीष्म ने कहा है कि धर्म ही इस लोक और परलोक में सुख का कारण है। उसी से जय प्राप्त होती है और अधर्मी पुरुषों को सदा दुःख उठाना पड़ता है। बृहस्पति जी ने कहा है—जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाशक है उसी

प्रकार धर्म पापों को नष्ट करता है। कुवेरजी ने कहा है कि जो अधर्म करता है वह नष्ट हो जाता है। द्रोणाचार्य्यजी ने कहा है कि धर्म ही जय का कारण है सञ्जय ने कहा है कि मनुष्यमात्र धर्म को न त्यागे। परशुराम जी ने कहा है कि धर्म्म ही उत्तम पदार्थ है इसी कारण विद्वान् अर्थ को छोड़ और हानि उठा कर उस को करते रहते हैं। वाल्मीकिजी ने कहा है कि धर्म सम्पूर्ण वस्तुओं से बढ़कर है। युधिष्ठिर ने कहा है कि धर्म ही आपत्काल में सहायक होता है। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है कि धर्म से पापों का नाश होता है और धर्मात्मा मित्रों सहित स्वर्ग को जाता है। नागों ने कहा है कि अधर्म ही नाश का कारण है। हनुमान्जी ने कहा है कि विना धर्म के सुख कहां, विना इस के बृहस्पति के तुल्य जन भी नष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि धर्म से ही अर्थ और काम की सिद्धि होती है जो मनुष्य धर्मात्माओं से अधर्मरूप से वर्त्तता है वह शीघ्र नष्ट होजाता है ॥

अब पाठकगण शोचते होंगे कि जिस धर्म की इतनी प्रशंसा की गई वह क्या है? उस के क्या लक्षण और वह किस प्रकार से जाना जाता है?। जिस का मैं क्रम से वर्णन करूंगा। देखिये जैमिनि ने अपने मीमांसादर्शन के अ०१ पा० १ सू० २ में लिखा है कि जिस कर्म में सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की प्रेरणा हो वही धर्म है जैसा कि—

चोदनालक्षणो धर्म्मः ॥

इस के अतिरिक्त कणाद ने वैशेषिक शास्त्र में लिखा है कि जिस से शारीरिक और पारमार्थिक सुखों की उन्नति हो उसे धर्म कहते हैं जैसा कि

यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मः ॥

और लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अ० १० में लिखा है कि उत्तम कर्म को धर्म और निकृष्ट को अधर्म कहते हैं अर्थात् जिस से इष्टफल की प्राप्ति हो उस का नाम धर्म और जिस से अनिष्ट फल मिले उस को अधर्म कहते हैं ॥

हे सज्जनो! धर्म ईश्वर की आज्ञा पालन को कहते हैं जो हम को वेद द्वारा बतलाया गया है वा उन कर्मों के अनुसार चलने का नाम धर्म है कि जिन में परमानन्द और मोक्ष मिलती है वा वेदोक्त न्याय से युक्त हो कर पक्षपात को छोड़ सत्य ही का सदा आचरण और असत्य का त्याग करना भी धर्म कहाता है वा जिस आचरण के करने से संसार में उत्तम सुख और निःश्रेयस

अर्थात् मोक्ष सुख की प्राप्ति हो उस को धर्म कहते हैं, वा मन को पवित्र व वेदविद्यायुक्त करना ही धर्म कहाता है, वा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इन आठ के द्वारा जो निश्चय होता है उस को धर्म कहते हैं। जैसा कि यजुर्वेद अ० १८ मं० ५८ में कहा है—

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा तदनुप्रेत सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥

धर्म के लक्षण ॥

मान्यवरो ! इस उपरोक्त धर्मरूपी गृह के मनुजी महाराज ने—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश खम्भे बतलाये हैं जैसा कि—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

और ऐसा ही याज्ञवल्क्य महाराज ने भी कहा है—

सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः ।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्वउदाहृतः ॥

इसी प्रकार महाभारत में व्यास जी महाराज ने कथन किया है ॥

प्रियवरो ! यही धर्मरूपी गृह के दश खम्भे अन्य शास्त्रों में भी पाए जाते हैं। आप जानते हैं कि जब तक खम्भे ठीक रहते हैं मकान उत्तम बना रहता है और रहने वाले सुख चैन से रहते हैं। और जब खम्भे ठीक नहीं होते मकान शीघ्र गिर कर चूर हो जाता है और रहने वालों को नाना प्रकार के क्लेश होते हैं। इस लिये यदि आप को सुखपूर्वक रहकर परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा है तो इन खम्भों पर पूरा ध्यान रखिये क्योंकि ऐसे ही सज्जन पुरुषों को सुख और परमगति प्राप्त होती है जैसा कि मनु० अ० १० श्लो० ६३ में लिखा है—

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥

प्यारे सुजनो ! इन्हीं उपरोक्त दश लक्षणों पर यथावत् चलने की आज्ञा समस्त ऋषि और मुनियों ने दी है, इन्हीं को स्वर्ग का मार्ग बतलाया है

मनु जी महाराज ने अ० ६ श्लोक ९ में स्पष्ट लिख दिया है—चाहो जिस आश्रम में रहे परन्तु इन दश लक्षणों का अच्छे प्रकार सेवन करता रहे। अब मैं इन्हीं धर्म के दश लक्षणों अर्थात् खम्भों की व्याख्या वेदानुकूल प्राचीन ऋषि और मुनियों के अनुकूल करता हूं। विचार कीजिये और यदि परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा हो तो अवश्यमेव इन्हीं के अनुकूल अपने मन को निर्मल और शुद्ध कीजिये॥

(१) धृति, नाम धैर्य्य धारण करने का है अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यों को चाहिये कि धैर्य्य का कदापि त्याग न करें क्योंकि धैर्य्य करने से ही सांसारिक और पारमार्थिक कार्य्य सुगमता से होते हैं॥

(२) क्षमा अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक दुःखों की प्राप्ति में न क्रोध करना और न हिंसा करना। प्रिय सज्जन पुरुषो! इस से उत्तम संसार में कोई वस्तु नहीं इसी से लक्ष्मी की शोभा होती है और परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। जैसा श्रीमद्भागवत के नवें स्कन्ध के १५ अध्याय में लिखा है। और वनपर्व अध्याय २९ में युधिष्ठिर महाराज ने द्रौपदी से कहा है। क्षमा ही परमधर्म, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही वेद, क्षमा ही ब्रह्म है, क्षमा ही सत्य, क्षमा ही जप, क्षमा ही पवित्र, क्षमा ही से जगत् स्थिर है, क्षमा ही दया, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही तीर्थरूप है। क्षमावान् ही स्वर्ग को जाते हैं, उन्हीं को मोक्ष और यश प्राप्त होता है। ऐसा ही वृद्धगौतमसंहिता में लिखा है जैसा—

क्षमाहिंसा क्षमा धर्मः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः।
क्षमा दया क्षमा यज्ञः क्षमा धैर्य्यमुदाहृतम्॥
क्षमावान् प्राप्नुयात् स्वर्गं क्षमावान् प्राप्नुयाद्यशः।
क्षमावान् प्राप्नुयान्मोक्षं क्षमावांस्तीर्थमुच्यते॥

चाणक्य जी ने कहा है कि शान्ति से अधिक कोई तप नहीं "शान्तितुल्यं तपो नास्ति" व्यासस्मृति अ० २ श्लोक ४४ और आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लोक ५,६ में लिखा है कि क्षमा करने वाले पुरुषों को इस लोक और परलोक में सुख मिलता है॥

(३) दमः, मन को विपरीत कर्मों से हटा कर सदा अच्छे कर्मों में लगाने को कहते हैं। मन अत्यन्त वेग से गमन करता है। यह बड़ा चञ्चल है कभी धन के उपार्जन में डूबता है, कभी लड़ाई झगड़े पर उद्यत होता है, कभी सम्पूर्ण

संसारिक वस्तुओं को छोड़ कर विरक्त बनता है, कभी स्त्रियों पर आसक्त होता है, कभी उन को माता के तुल्य मानता है। कभी जङ्गलों में रहना स्वीकार करता है, कभी संसार के आनन्दों को छोड़ कर ऋषि मुनि बनना चाहता है। इसी के कारण बड़े २ महात्मा, राजा, महाराजा और विद्वानों ने अपयश प्राप्त किया। इसी कारण वही ऋषि, मुनि, देव हैं। जिस ने इस मन को वश कर लिया है। मन का एकत्र करना ही सब से बड़ी तपस्या है। क्योंकि इस के जीतने से सब इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं। और फिर कल्याणमार्ग दृष्टि आता है। और मनुस्मृति अध्याय २ के श्लोक २ में भी ऐसा ही लिखा है। और गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है विना मन के संयम किये सब आचरण मिथ्या हैं। यह मनुष्य का शरीर रथ, मन रथवान् अर्थात् सारथि और इन्द्रिय घोड़े हैं। यदि यह रथवान् बुद्धिमान् है तो ही इन इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने आधीन रख सक्ता है अन्यथा नहीं। देखो य० अ० ३४ मंत्र ६ में—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिनइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरञ्जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

परमेश्वर उपदेश करता है कि मन की दो प्रकृति हैं। एक तो वह जब किसी वस्तु पर आसक्त होता है तो अपने इन्द्रियरूपी घोड़ों सहित उस की तरफ दौड़ता हुआ चला जाता है जिस के अनुसार मूर्ख कार्य करते हैं और कष्ट भोगते हैं। दूसरे वह है जो इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने २ विषय से हटा कर अपने वश में कर विद्वान् सुख भोगते हैं॥

(४) अस्तेय—नाम चोरी न करने का है वह—(१) कायिक—(२) वाचिक (३) मानसिक—तीन प्रकार की होती हैं। (१) कायिक अर्थात् किसी के धन स्त्री आदि पदार्थ को ले लेना कहलाता है (२) वाचिक अर्थात् वचन का चुराना यह दो प्रकार का होता है। एक तो सत्य को छिपाना दूसरे असत्य बोलना। सत्य का छिपाना उसे कहते हैं कि हम किसी वार्ता को अच्छे प्रकार जानते हों और जब हम से कोई मनुष्य पूछे कि आप इस विषय में क्या जानते हो तो हम किसी कारण से उस सें कहदें कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता। असत्य बोलना—अर्थात् जान बूझ कर उलटी बात कहें। ३—तीसरी मानसिक चोरी अर्थात् मन के सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य्य करना। जैसे कोई

मनुष्य परमेश्वर का ध्यान कर रहा हो और उस का मन अन्य विषयों के विचार में लग रहा हो। इस लिये इन तीनों प्रकार की चोरियों का त्यागना अभीष्ट है ॥

(५) शौच अर्थात् पवित्र रहना और पवित्रता दो प्रकार की होती हैं। (१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य अर्थात्—वस्त्र, गृहादि को और शरीर को स्नान द्वारा पवित्र रखना जिस के लाभ आप को स्नान में बतलाये गये। दूसरी आभ्यन्तरिक जो ईश्वराराधन, विद्याध्ययन, विषयवासना और कामादि दोषों के त्यागने से होती है। शुद्धि ही धर्म का मूल है और जो बाहर भीतर से शुद्ध हो वही धर्मात्मा हो सक्ता है। इस लिये महाशय! दोनों प्रकार की शुद्धि पर पूर्ण ध्यान रखिये ॥

(६) इन्द्रियनिग्रह—इन्द्रियों को विपरीत व्यवहार में न लगने देना अर्थात् धर्मपूर्वक कामों में इन्द्रियों को प्रेरणा करना जैसा कहा है कि—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥

जैसे विद्वान् सारथि घोड़े को नियम में रखता है वैसे ही मन और आत्मा को खोटे कामों में खेंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे। क्योंकि जीवात्मा इन्द्रियों के वश हो के निश्चय बड़े २ दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है जैसा कहा है कि—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

इस विषय में गीता के १६ अध्याय के ३८ श्लोक में लिखा है कि विष खाने से तो प्राण एक वेर में ही मरता है परन्तु इन्द्रियों के विषयों के स्वाद भोगने से बारम्बार मरता ही चला जाता है जैसा कि—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतं ॥

इस के उपरान्त महात्मा अष्टावक्र जी ने कहा है कि हे प्यारे सुजनो! जो मुक्तिरूपी सुखों की इच्छा हो तो इन्द्रियों के विषयों को विषवत् त्यागदो।

और य० अ० १७ मं० ६८ में लिखा है कि योगीजन जितेन्द्रिय होकर नियम-पूर्वक परमात्मा को पाकर आनन्दित होते हैं। सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा है कि इन्द्रियों के जीतने वाले महात्मा ईश्वर के दर्शन करते हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि इन्द्रियों के जीतने से बुद्धि बढ़ती है। शान्तिपर्व अ० १५९ में भीष्मपितामह ने कहा है कि चारों आश्रमों के बीच इन्द्रियनिग्रह ही उत्तम धर्म है। इसलिये आओ! ज्ञान के द्वारा विषय वासना में विचरती हुई इन्द्रियों को अपने आधीन कर सुख की प्राप्ति करें॥

(७) धी, नाम बुद्धि का है अर्थात् जिस प्रकार से बुद्धि की उन्नति हो वह कार्य्य करना। मुख्य प्रयोजन यह है कि सदा विचारपूर्वक बुद्धि को अच्छे कर्मों में लगाना और उस की वृद्धि के लिये यत्न करना जिस की तीन रीतें हैं (१) वेद शास्त्रों का विचार करना (२) महात्मा और विद्वानों का सत्सङ्ग करना (३) उत्तम २ गुणों को सीखना॥

(८) विद्या—अर्थात् जिस से पदार्थों का सत्य रूप मालूम हो उसे विद्या कहते हैं जैसा कि—

पदार्थान् याथातथ्येन वेत्ति यया सा विद्या।

और इस के विपरीत दशा को अविद्या कहते हैं अर्थात् नित्य को अनित्य, अनित्य को नित्य—धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानना आदि अविद्या है जैसा कि योग सूत्र में लिखा है:—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नि-
त्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥

और ऐसा ही प्रश्नोपनिषद् में भी लिखा है। सचमुच विद्या से बढ़ कर कोई मित्र और अविद्या से बढ़कर कोई शत्रु नहीं। विद्या ही के कारण मनुष्य इस संसार में सर्व प्रकार के आनन्द पाता है और अन्त को मोक्ष प्राप्त करता है परन्तु अविद्या सब क्लेशों की जड़ है और भगवान् पतञ्जलि ने अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पांच क्लेश माने हैं जैसा कि—

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः"

अविद्या ही के कारण यह देश इस अधोगति को प्राप्त हुआ, अविद्या ही के कारण हम ने सज्जनों और विद्या को छोड़ कर मूर्खों की सङ्गति में पड़

कर नाना प्रकार की बुराइयां सीखी हैं, अविद्या ही के कारण इस देश में वेश्या का नाच होने लगा, अविद्या ही के कारण हम अपने जीते माता पिताओं को दुःख देकर गयादि तीर्थ उन के सुख पहुंचाने को करने लगे जिस से धर्म परिपाटी में अन्तर आगया। अब इस समय में महाशय! आप विद्या और अविद्या को जान कर ही कार्य्य कीजिये जिस से सर्व प्रकार के सुख मिलें और देश की यह दशा न रहे। मुख्य कथन यह है कि वेदोक्त कर्मों के करने को विद्या और वेदविरुद्ध कर्मों के करने को अविद्या कहते हैं ॥

(९) सत्य, अर्थात् मिथ्या व्यवहार कभी न करना। इसी से मनुष्य को सर्व प्रकार के आनन्द मिलते हैं। यही मनुष्य को स्वर्ग में लेजाता है। इस के बिना संसार का कोई कार्य नहीं चल सकता। सच तो यह है कि संसार के सम्पूर्ण कार्य्य इसी पर निर्भर हैं देखो चाणक्य ऋषि लिखते हैं—

सत्येन धार्य्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

सत्य ही से पृथ्वी स्थिर है, सूर्य्य प्रकाशमान और वायु चलती है। और भी कहा है—

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानंतस्मात्सत्यं समाचरेत् ॥

सत्य से बढ़ कर कोई धर्म और झूंठ से बढ़ कर कोई पाप नहीं है, और सत्य से बढ़ कर कोई ज्ञान भी नहीं है। इस लिये सदा सत्य ही बोलना चाहिये ॥ इस के उपरान्त—हनूमान्, व्याध, भीष्मपितामह, मार्कण्डेय, सनत्सुजातमुनि, नारद जी, शकुन्तला और भृगुजी इत्यादि ने कहा है कि द्विजातियों का परम धर्म सत्य है। सत्य से आयु क्षीण नहीं होती, सब गुणों में सत्य ही प्रधान है उसी में अमृत वसता है, वही सब व्रतों में श्रेष्ठ है, सत्य ही पर मधर्म है यही सब की जड़ है, इसी के द्वारा स्वर्ग मिलता है, इसी से कल्याण और हित होता है। और यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र ९४ में लिखा है कि जो मनुष्य शास्त्र के अभ्यास सत्य वचनादि से वाणी को पवित्र करते हैं वही शुद्ध होते हैं। परन्तु सत्य के ग्रहण करने वालों को यजुर्वेद के ब्राह्मण पर भी पूरा ध्यान रखना चाहिये अर्थात् सत्य को मन से

धारण करना न कि मनुष्यों के दिखलाने के अर्थ। क्योंकि जो मन में होता है वही वाणी में आता है और जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। जैसा कि—

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा दवति यद्वाचा वदति तत्
कर्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते ॥

अर्थात् जो मनुष्य सत्य का अनुष्ठान करते हैं वही सच्चे धर्मात्मा कहाते हैं वह इसी के बल से भवसागर से पार होजाते हैं। सच मुच सत्य ऐसा ही पदार्थ है इस लिये सत्य को मन से ग्रहण करना चाहिये ॥

(१०) अक्रोध अर्थात् प्राणीमात्र पर क्रोध न करना। क्योंकि क्रोध सम्पूर्ण पापों की जड़ है, इसी क्रोध में आकर मनुष्य को विचारशक्ति नहीं रहती बहुत सी हानि व्यर्थ में कर बैठता है। प्रसिद्ध है कि एक क्रोधी ने केवल एक चूहे को कष्ट देने के अर्थ अपने गृह में आग लगा दी थी। क्रोध ही इस संसार में परम शत्रु है, क्रोधी मनुष्य की कहीं प्रतिष्ठा नहीं होती, जो मनुष्य क्रोध के वश में रहते हैं उन का शीघ्र नाश होजाता है, अक्रोधी ही को सब प्रकार के आनन्द मिलते, वही अपने कार्य की सिद्धि कर प्रतिष्ठा पाता है, वही सब में श्रेष्ठ और विद्वान् गिना जाता है। हनूमान् जी महाराज ने सुन्दरकाण्ड में कहा है कि धन्य है उन पुरुषों को जो क्रोध को रोक शान्ति का प्रसाद देते हैं ऐसे ही मनुष्यों को महात्माओं की पदवी मिलती है। आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लो० ८ में लिखा है कि क्रोधी पुरुष के यज्ञादि उत्तम कर्मों का भी फल नष्ट होजाता है। इसलिये इन उपरोक्त धर्म के लक्षणों को यथावत् पालन करते हुए धर्ममार्ग पर चलनेका यत्न करते रहिये ॥

धर्ममार्ग ॥

प्रत्येक मनुष्य सदा सीधे और सुगम मार्ग की चाह में रहते हैं। क्योंकि ऐसे मार्ग पर चलने से मनुष्य को कष्ट नहीं होता और उस का प्रयोजन शीघ्र सिद्ध होजाता है जिस से चलने वालों को थकावट का कुछ भी ध्यान नहीं होता। और इस के अतिरिक्त टेढ़े अर्थात् कुमार्ग पर जाने से बहुधा कष्ट उठाने पड़ते हैं और बटोही अपने अभिप्राय को भी नहीं पाते। इस लिये सर्व प्राणीमात्र को धर्म के सीधे अर्थात् सत्य सनातन मार्ग को जानकर चलना चाहिये जिस से प्राचीन पुरुषों की भांति संसार के सुखों के पश्चात् मोक्ष भी प्राप्त हो ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! वर्त्तमान काल में सहस्रों मार्ग अर्थात् पन्थ प्रचलित होगये हैं । कोई इधर खेंचता कोई इधर पकड़ता है, कहीं वाममार्ग के लटके दिखलाये जाते हैं, कहीं फ्रीमेशन की प्रशंसा बतलाई जाती है, कहीं नानकपन्थ कबीर साहिब की साखी सुनाई जाती है और वाह गुरु की विजय कान में फूंकी जाती हैं, कहीं शब्दज्ञान कराया जाता है, कहीं झूठे भोजनों की महिमा सुनाई जाती हैं, कोई गङ्गा और एकादशी आदि व्रत और सत्यनारायण की कथा सुनने को ही धर्ममार्ग बतलाते हैं । बहुधा जन तुलसी, शालिग्राम, महादेव, पार्वती इत्यादि की पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजन करने और उन के सन्मुख नाचने गाने को ही धर्ममार्ग कहते हैं । और कोई बरगद पीपल और केले आदि वृक्षों की पूजा से ही ईश्वरप्राप्ति कहते हैं, कोई २ नाना भांति के तिलक छापे और ठाकुर प्रसाद और तुलसी शालिग्राम के विवाह को ही धर्म कहते हैं । परन्तु हमारे प्राचीन ऋषियों ने और ही धर्म के मार्ग बतलाये हैं, जिन पर हमारे पुरुषाओं ने चल कर नाना प्रकार के सांसारिक सुखों के उपरान्त परमपद को भी प्राप्त किया है और उसी को सनातन धर्म कहते हैं जिस को मनु जी महाराज ने श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा को प्रिय, चार कर्मों को धर्ममार्ग ठहराया है । जैसा कि—

श्रुतिःस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अ० में भी श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपने मन की प्रसन्नता को ही धर्ममार्ग माना है । ऐसा ही महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २५८ और अनुशासनपर्व अ० १४८ में कहा है—

परन्तु लिङ्गपुराण अध्याय १० श्लोक ७ में यह लिखा है कि धर्म वही है जो श्रुति स्मृति के अनुकूल वर्णाश्रम धर्मों को जान कर करते हैं ।

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादिसुखकारिणः ।
श्रौतस्मार्त्तस्य धर्म्मस्य ज्ञानं धर्म उच्यते ॥

ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २४ और अत्रिस्मृति श्लोक ३४९ में भी लिखा हैं । और शिवपुराण विन्धेश्वर संहिता अ० १९ श्लोक ४४ में लिखा है कि जो वेद और स्मृति के कर्म को अनादर कर दूसरे कर्म को करता है उस का फल नहीं होता अर्थात् यही धर्ममार्ग है ॥

(१) वेद ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं जैसा कि मनु जी ने कहा है—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः ॥

इस के उपरान्त मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक ९९ में लिखा है कि वेद सनातन विद्या है वही सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है इसी कारण जीवों के लिये मैं उसी को सब से उत्तम उपाय सुख की प्राप्ति का निश्चय करता हूं—

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥

और २ अ० के ८ श्लोक में लिखा है कि विद्वान् को योग्य है कि विद्या से इस को समझे और वेदोक्त धर्म को स्वीकार करे, और श्लोक १३ में मनु जी ने स्पष्ट लिखा है कि धर्म जानने के लिये श्रुति ही परम प्रमाण है—

धर्म्मञ्जिज्ञासमानानाम्प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥

इसी कारण नित्य कर्मों में प्रतिदिन वेद पाठ करने की आज्ञा दी है उपरान्त १२ अध्याय के ९७ श्लोक में लिखा है कि चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, तीनों काल, सब वेद द्वारा जाने जाते हैं—

चातुर्वर्ण्यन्त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥

इसी लिये मनु जी ने इसी अध्याय के १०६ श्लोक में स्पष्ट लिख दिया है जो मनुष्य वेद के अर्थ को यथार्थ जान कर चलता है वह चाहे जिस आश्रम में रहे जीवन्मुक्ति को पाता है—

वेदाशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

श्रीमद्भागवत में लिखा है धर्म वही है जो वेद में लिखा है उस के अतिरिक्त अधर्म है और वेद नारायण का रूप है—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥
—वेदोनारायणःसाक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुमः ॥

फिर इसी अध्याय में लिखा है कि जो वेदविरुद्ध कार्य्य करते हैं उन को नरक होता है और अध्याय ४ में ऋषभ देव जी ने अपने पुत्रों को श्रुति स्मृति धर्म को मुख्य मानकर उस की शिक्षा की है स्कन्ध ११ अध्याय ३ के श्लोक ४६ में स्पष्ट लिखा है कि वेदोक्त कर्म करने से मोक्ष होती है—

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति अ० २ श्लोक ४० में मनुष्यमात्र को आज्ञा की है कि यज्ञ, तप और शुभकर्मों से द्विजों का सब से बड़ा उपकारक वेद को जानना चाहिये—

यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥

क्योंकि सब कर्म वेद से ही जाने जाते हैं । लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध के ७८ अ० में स्पष्ट लिखा है कि जो मनुष्य वेदविरुद्ध व्रत आचार आदि करते हैं श्रुति स्मृति से विमुख हैं उन पाखण्डियों का उत्तम वर्ण स्पर्श न करे और सम्भाषण न करे:—

वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्त्तबहिष्कृताः ।
पाषण्डिनइति ख्याता न सम्भाष्या द्विजातिभिः ॥

और विष्णुपुराण में द्वितीय अध्याय ६ में लिखा है कि जो वेदविरुद्ध कार्य्य करते हैं उन को (सवन) नाम नरक होता है । ऐसा ही श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ५ अध्याय २६ श्लोक १५ में लिखा है कि जो वेदमार्ग को छोड़ पाखण्डमार्ग में चलते हैं [कालसूत्र] नाम नरक में जाते हैं:—

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं
चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कश्या प्रहरन्ति ॥

मनु जी ने अ० १२ श्लोक ८६ में लिखा है कि वेदोक्तकर्म करने से मनुष्य सुपात्र होता है । श्री रामचन्द्र जी ने वाल्मीकीय रामायण में कहा है कि जो मनुष्य वेदमर्यादा को त्यागते हैं वे पापी होते हैं । इस के उपरान्त उन्होंने चित्रकूट पर भाई भरत को सदा वेदोक्त कार्य्य करने के लिये शिक्षा

की है। शान्तिपर्व अध्याय २०१ में बृहस्पति ने भी यही लिखा है। श्रीकृष्ण महाराज ने भी गीता में कहा है कि वेदविरुद्ध कार्य्य करने वालों को तत्त्वज्ञान नहीं मिलता इसी लिये उन्होंने उद्धव जी को उपदेश किया है कि वेद जानने वाले ही सत्पुरुष को गुरु करना। इसी प्रकार कौशिक मुनि और नकुल, युधिष्ठिर, सनत्सुजात, कपिलमुनि इत्यादि ने कहा है। और सम्पूर्ण स्मृतिकार यही पुकार २ कर कहते हैं। और पुराणों के कर्त्ता भी यही उपदेश करते हैं कि वेद ही के अनुसार कार्य्य कीजिये यही अनादि काल से चले आते हैं॥

वेदों के अनादि होने का प्रमाण॥

मान्यवरो! यदि मुझ को कोई मनुष्य उत्पन्न होते ही एक गृह में बंद कर देता और वहीं भोजनादि देता और मेरे सन्मुख कोई बात चीत भी न करता तो आशा है कि मुझ को बात चीत करना भी न आता न किसी विद्या को जानता। मुख्य कथन यह है कि जो कुछ मैं ने इस संसार में सीखा पढ़ा लिखा यह सब माता पिता और विद्वानों की सङ्गति का ही गुण है। इसी प्रकार हमारे माता पिता ने सीखा और पढ़ा। परन्तु जिस समय संसार उत्पन्न हुआ उस समय कोई सिखाने वाला न था उस समय परमेश्वर ने अपनी कृपा और अनुग्रह से अपने वेदरूपी ज्ञान को अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा महर्षियों के हृदय में प्रकाश किया जो उस समय से आज तक ऋग्, यजु, साम, अथर्व नाम से प्रसिद्ध हैं। इस से प्रकट होता है कि वेद ही सनातन धर्मपुस्तक अर्थात् अनादि है॥

प्रकट हो कि आर्यावर्त्त के विद्वानों और बुद्धिमानों ने सृष्टि की आयु को १४ मन्वन्तरों पर बांटा है इन में से ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके और सातवां अब बीत रहा है और एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं अर्थात् चारों युग ७१ वार बीतते हैं। प्रत्येक की आयु नीचे लिखी है:—

१—सतयुग=१७२८०००
२-त्रेतायुग=१२९६०००
३—द्वापर= ८६४०००
४—कलियुग= ४३२०००

चारों का योग=४३२००००

इससे प्रकट है कि हर चतुर्युगी की आयु ४३२०००० वर्ष की होती है और अगर इस को ७१ गुणा किया जावे तो एक मन्वन्तर हो जाता है जिस के ३०६७२०००० साल हुए इस प्रकार के १४ मन्वन्तर व्यतीत हों तो दुनियां की आयु सम्पूर्ण होगी। परन्तु अब १४ मन्वन्तर में से केवल ६ मन्वन्तर और २७ चतुर्युगी बीती हैं २८ वीं चतुर्युगी अब बीत रही है जिस में से तीन युग—सतयुग, त्रेता, द्वापर बीत चुके हैं और चौथा कलियुग अब बीत रहा है ॥

चुनाचे कलियुग में से सन् १८९६ ई० तक ४९९६ वर्ष बीत चुके हैं इस लिये सृष्टि की उत्पत्ति का हिसाब इस प्रकार है—

एक चतुर्युगी	४३२००००
	७१
एक मन्वन्तर	३०६७२००००
	६
६ मन्वन्तर	१८४०३२००००
७ वें मन्वन्तर में से २७ चतुर्युगी बीत चुकीं	११६६४००००
अब २८ वीं चतुर्युगी है जिस के ३ युग बीत चुके	३८८८०००
कलियुग में से जो वर्षें बीत चुकीं	४९९६
सम्पूर्ण योग	१९६०८५२९९६

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति को १९६०८५२९९६ वर्ष हो चुके हैं और अब संवत् १९६०८५९९७ बीत रहे हैं ॥

स्मृति ॥

द्वितीय धर्म का मार्ग स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र हैं इन की संख्या १८ हैं जिन को मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ ऋषियों ने लिखी हैं कि जिन में उन्हों ने वेद के गूढ़ मन्त्रों की व्याख्या पूर्वरूप से योग और नाना क्रियों से ज्ञान प्राप्त कर के की थी। संसार की दशा सदा एकसी नहीं रहती कभी वृद्धि को प्राप्त होती है और कभी हीन दशा हो जाती है। देखिये यही सूर्य्य जो प्रातःकाल में प्रकाशित हो कर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है और सायंकाल को जिस हीनदशा को प्राप्त होता है इसी प्रकार जब यह देश अविद्या को प्राप्त हुआ नानाप्रकार के

विद्वान् भी अपने लाभ के लोभ में फंस गये और लोभ में धर्म का विचार नहीं रहता इसलिये उन्हों ने भी स्वार्थ सिद्धि के अर्थ अनेकान श्लोक बना कर मिला दिये इस कारण अब स्मृतियों और वेदों में भी बहुधा भेद हो गया है परन्तु कुछ शोक नहीं क्योंकि हमारे ऋषि मुनि अपनी २ स्मृतियों में लिख गये हैं कि धर्म विषय में वेद ही का प्रमाण मानना चाहिये जैसा मैं ने ऊपर वर्णन किया और जो स्मृतियां वेदानुकूल हों उन को भी मानना अभीष्ट है परन्तु वेदविरुद्ध स्मृतियों के मानने की मनु आदि ऋषि आज्ञा नहीं देते। मानना कैसा! देखिये मनु जी महाराज ने अ० १२ श्लोक ९५ में लिखा है जो स्मृति वेद के विरुद्ध है उस से कुछ फल नहीं हो सक्ता, समझ लेना चाहिये कि वह तमोगुणी पाखण्डियों की बनाई हुई है—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥

इस के उपरान्त जब स्मृतियों में भी आपस में अन्तर हो तो मनुस्मृति का लेख प्रमाण होगा क्योंकि सामवेद के छान्दोग्यउपनिषद् में लिखा है कि जो कुछ मनु जी ने कहा है वह मनुष्य के लिये औषधि की औषधि है जैसा—

"यद्वै किञ्चन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः"

बृहस्पति स्मृति में लिखा है:—

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् ।
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्नैव शस्यते ॥

कि उस स्मृति की प्रसंसा नहीं होती जिस का लेख मनुस्मृति से नहीं मिलता। प्रिय सज्जन पुरुषो! मनु जी महाराज स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि मैं ने वेदानुकूल ही लिखा है और वेदानुकूल ही मेरी आज्ञा को मानना चाहिये अर्थात् मेरा लेख वही है जो वेद से मिलता हो। जैसा मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २ में लिखा है—

यः कश्चित् कस्य चिद्धर्म्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥

फिर इसी अध्याय के ८ श्लोक में और भी पुष्टता की है। इस लिये मनु जी ने १२ अ० के ९५ श्लोक में स्पष्ट आज्ञा दी है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध

हों वह माननीय नहीं अर्थात् अठारह स्मृतियों में जिस २ स्थान पर वेदानुकूल न हो वह प्रमाण के योग्य नहीं। इस कारण जब किसी विषय में स्मृतियों में अन्तर हो अथवा समझ में न आता हो या पेटार्थूजन कुछ का कुछ कहें तो आप को योग्य है कि वेदों के प्रमाण से उस को प्रामाणिक अन्यथा अप्रामाणिक समझना चाहिये। और इसी प्रकार जब स्मृति और पुराणों में विरोध हो तो स्मृति के अनुसार कर्म करना चाहिये। तात्पर्य्य इस कथन का वही है जो मैं ने ऊपर वर्णन किया अर्थात् धर्म विषय में श्रुति ही स्वतः प्रमाण है और स्मृति और पुराण परतःप्रमाण अर्थात् वेदानुकूल होने से प्रामाणिक हो सक्ते हैं अन्यथा नहीं। और ऐसा ही व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४ में लिखा है जैसा कि—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥

सदाचार॥

मान्यवरो! यह दोनों उपरोक्त धर्ममार्ग अत्यन्त कठिन हैं क्योंकि जब तक कोई मनुष्य विद्या पढ़ कर विद्वान् न हो वह इन को पूर्ण प्रकार से नहीं जान सक्ता और विद्वान् होने के लिये बहुत समय की आवश्यकता होती है। परन्तु धर्म का अङ्कुर बाल्यावस्था ही से बालक के हृदय में लगता है इस लिये हमारे मुनियों ने तृतीय धर्म का मार्ग सदाचार माना है। यह शब्द सत् और आचार से संयुक्त है अर्थात् जो कुछ सत्य धर्म अपने प्राचीन पुरुषाओं को करते देखा वा सुना अथवा उन के लिखित पुस्तकों के द्वारा जाना गया हो उस को करना। इस बात को सुनकर हमारे बहुधा भाई यह कह देंगे कि हम तो वर्त्तमान समय में वही कार्य्य करते हैं जो हमने अपने बाप दादे को करते हुए देखा है फिर आप उस को क्यों नहीं धर्म मानते और क्यों नाना प्रकार की शङ्काएं करते हैं। मान्यवरो! इस का मुख्य कारण यही है कि प्राचीन काल में महाभारत के बड़े भारी सङ्ग्राम होने से लाखों विद्वान् मारे गये फिर आलस्यादि दोष उत्पन्न होकर विद्यारहित होने लगे। इस के अनन्तर बौद्ध, जैन मतों ने भारतवर्ष में लकलका जमाया, वेदादि रीति को उठाया। इस के पीछे मुसल्मानों ने राज्य किया कि जिस में हमारे धर्मपुस्तक जलाये गये, डुबाये गये, हमारी कुमारी लड़की छीनी

गईं, ज़बरदस्ती मुसलमान् बनाए गये, रात दिन लूटे मारे गये क्योंकि बारह मरतबा महमूद ने लूट की फिर शहाबुद्दीन ने ८ मरतबा चढ़ाई कीं, लाखों मनुष्यों को पकड़ ले गया और उन के ख़ून से गारा बनवाया, फिर चंगेज़ख़ां ने दुन्द मचाया। तैमूर ने दिल्ली, तुलम्बा, भेटनेर आदि में हाहाकार मचाया। फिर नादिरशाह ने आकर दिल्ली में ५ दिन तक क़तल आम कराया और इस के पीछे अहमदशाह ने तीन चढ़ाइयां कर लूट मार की और सन् १६५७ ई० से १७०७ ई० तक औरङ्गज़ेब ने दिल्ली के तख़्त पर बैठ कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में भारतखण्डियों पर ज़ुल्म किये। इस के बीच ही में नानक, कबीर, आदि ने अपने २ पन्थ नियत किये। मेरे कहने का मुख्य तात्पर्य्य यह है कि महाभारत के पश्चात् अंगरेज़ी राज्य के आने तक हमारे पुरुषों को जान बचाने के लाले पड़ रहे थे क्योंकि इन उपरोक्त दुन्दों के कारण यहां से वहां भागकर अपनी जानों को बचाते रहे फिर भला ऐसे समयों में इन वेदानुकूल रीतों को कौन पूंछता है क्योंकि कहा भी है कि "आपत्काले मर्य्यादा नास्ति" फिर उन पुरुषाओं का धर्म हमारे लिये क्योंकर माननीय हो सक्ता है। हां यदि हम उन मनुष्यों के धर्म पर चलें जो उस समय में रहते थे जब कि वेदविद्या का बिल्कुल प्रचार था, बालक से लेकर वृद्ध तक उसी के अनुसार चलते थे, लोभ और कामादि के त्यागी थे, धर्म पर जीवन को नोछावर कर धन पर धता भेज धर्म ही को मुख्य समझते थे। इस लिये आप अपने कुल की दश बीस पीढ़ियों की रीति पर न चलो वरन सृष्टि के आरम्भ से आज पर्य्यन्त वेदानुसार सनातन रीति पर चलना योग्य है अर्थात् जिस मार्ग पर हमारे सत्पुरुष पिता पितामह चले हों उसी पर चलें और जो पिता पितामह ने अनुचित कर्म किये हों तो उन के मार्ग को कभी स्वीकार न करें जैसा मनुजी ने लिखा है—

येनास्य पितरो याताः येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥

और ऐसा ही यजु० अ० ४ मं० २० में भी लिखा है—

अनुत्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता स गभ्र्योऽनु सखा सयूथ्यः॥ सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु

स्वस्ति सोम सखा पुनरेहि ॥

और य० अ० २१ मं० ५० में लिखा है कि सन्तानों को योग्य है कि जो २ पितादि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म होवे उस २ का सेवन करें और जो अधर्म युक्त हो उस २ को छोड़ देवें। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि जिस आचार पर श्रेष्ठ चलते हैं उसी पर इतर जन चलें—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्त्तते ॥

और ऐसी ही य० अ० १२ मं० १११ में भी आज्ञा है। फिर भला आप क्यों प्राचीन पुरुषाओं की धर्ममर्यादा को तोड़कर नवीन पुरुषाओं के अनाचार का प्रमाण देते हो। जब कि पुरुषाओं ने जितेन्द्रियता को मेंट, विद्या का पठन पाठन ही उठा दिया फिर आचार का क्या ठीक। देखिये मनुजी महाराज ने श्रेष्ठों के यह लक्षण लिखे हैं अर्थात्—

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥

शिष्ट उन ब्राह्मणों को समझना चाहिये जिन्हों ने विधिपूर्वक वेद को मीमांसासहित पढ़ा है। जो वेदोक्त वाक्य को प्रमाण से समझ सक्ते हैं। इसी कारण विदुर महाराज ने धृतराष्ट्र महाराज से कहा है—१ मतवाला २ नशे पीने वाला ३ बेहोश ४ थकाहुआ ५ क्रोधी ६ भूखा ७ शीघ्रता करने वाला ८ लोभी ९ डरपोक १० कामी यह दश मनुष्य धर्म को नहीं जानते। जैसा कि—

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र! निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥

इसी हेतु अब आप—व्यास, पराशर, मनु, राजा दशरथ, राजा जनक, अर्जुन, भीम, श्रीकृष्ण आदि सनातन पुरुषाओंकी रीति पर चलिये क्योंकि अब वह समय नहीं है कि किसी की धर्मसम्बन्धी परिपाटी में बाधा डाली जावे। बरन सरकारी राज्य में शेर बकरी एक घाट पर वैर त्याग कर रहते हैं। इस लिये आप भी इन प्रचलित रीतों को वेद से मिलाइए। यदि उन के

प्रमाण वेद में मिल जावें तो स्वीकार कीजिये अन्यथा वेदविरुद्ध कार्य्यों को कर पापभागी न बनिये चाहो सहस्र जन क्यों न कहें। और धर्म के निर्णय के लिये प्रत्येक नगर वा बड़े २ नगरों में सभा नियत कर उस की आज्ञानुसार कार्य्य कीजिये उसी को धर्मसभा वा आर्य्यसभा कहते हैं। प्राचीन काल में ऐसा ही होता था। देखो य० अ० ३ मं० ४५ में ईश्वर उपदेश करते हैं कि चारों आश्रम वाले मनुष्यों को मन वाणी कर्मों से सत्य का आचरण कर पाप वा अधर्म को त्याग कर के विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम२ शिक्षा का प्रचार कर के प्रजा की उन्नति करना चाहिये, देखिये मनु जी महाराज ने लिखा है—

दशावरा वा परिषद्यन्धर्मम्परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तन्धर्मन्न विचालयेत्॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये॥
एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
सविज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वन्न विद्यते ॥
ये वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥

जिस सभा में तीनों वेद मीमांसा न्याय निरुक्त और धर्मशास्त्र के जानने वाले ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ हों वह सभा दशावरा कहलाती है। और जिस में सम्यक् तीनों वेदों के ज्ञाता तीन सभासद हैं वह त्र्यवरा कही जाती है। धर्मसंशय में इन्हीं के द्वारा निर्णय होना चाहिये अथवा एक भी वेदवित् आपत् में जिस धर्म की व्यवस्था करे वह माननीय है न सहस्रों मूर्खों का कल्पित धर्म। सत्य भाषणादि व्रत से रहित स्वाध्याय से भ्रष्ट केवल जाति

के आश्रय से आजीविका करने वाले सहस्रों मूर्खों के झुंड को सभा वा समाज नहीं कह सकते। ऐसे लोग धर्म के मर्म को नहीं जान सक्ते और न उन की दी हुई व्यवस्था माननीय हो सक्ती है। ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक ९ और अत्रिस्मृति श्लोक १४०, १४१ में लिखा है। और विदुरजी ने महाभारत में कहा है कि वह सभा नहीं जहां वृद्ध न हों और वह वृद्ध नहीं जो धर्म को न कहें, वह धर्म नहीं जो सत्य न हो और वह सत्य नहीं जिस में छल हो। जैसा कि—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में मनुष्य जान कर इस बात पर कुछ ध्यान नहीं देते और शास्त्र के लेखानुसार विद्वान् धर्मात्माओं से धर्म की परीक्षा नहीं कराते और आप और अपनी आगे आने वाली सन्तानों का सत्यानाश करते चले जाते हैं। प्रियवरो! थोड़े थोड़े धन के निर्णय करने के लिये बड़े २ वकीलों को, सोने की परीक्षा के लिये चतुर सुनार को बुलाते हो। क्या यह धर्मपरीक्षा मूर्ख, अविद्वान्, लोभी कर सक्ते हैं? कदापि नहीं। कदापि नहीं। कदापि नहीं। इस लिये इस धर्मकार्य्य को महत्कार्य्य जान उत्तम पुरुषों से परीक्षा करा कर स्वीकार कीजिये जिस से भारतसन्तान को सुख प्राप्त हो॥

प्रियमात्मनः॥

जब शास्त्रों में धर्ममर्यादा के अनुसार किसी विषय में दो भिन्न २ आज्ञाएं पाई जावें तो उन में से किसी एक के अनुसार जो अपने मन बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल हो कार्य्य करना आत्मप्रिय कहलाता है। प्रियवरो! इसी धर्म पर हमारे अनेकान जन्मों का सुधार निर्भर है इसलिये लल्लो पत्तो में डालकर समय को वृथा न खोइये, वरन अच्छे प्रकार तर्क कर धर्म को निश्चय कीजिये। देखिये मनुजी महाराज स्पष्ट आज्ञा दे रहे हैं—

आर्षन्धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

इस लिये आप निर्भय हो शान्तिपूर्वक धर्म का निर्णय कर सत्यासत्य को

विचार सनातन धर्म के अनुकूल पञ्चकर्मों को श्रद्धा और भक्ति से यथाविधि से यथावत् कीजिये ॥

नित्यकर्म ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो! कर्म दो प्रकार के होते हैं एक नित्यकर्म जो प्रतिदिन किये जाते हैं दूसरे नैमित्तिककर्म जो किसी नियत समय पर होते हैं। इस स्थान पर हम उन नित्य कर्मों अर्थात् पञ्चयज्ञों की व्याख्या करते हैं जिन की आज्ञा सत्यशास्त्रों में पाई जाती है और प्राचीन पुरुषों ने इन यज्ञों को प्रतिदिन कर महान् सुख उठाया था। परन्तु शोक वर्त्तमान काल में बहुधा जन इन यज्ञों के नाम तक भी नहीं जानते फिर करना कैसा। प्यारे भ्रातृगणों इन पञ्चयज्ञों के करने से आत्मिक ज्ञान की उन्नति होती है वरन यों कहा जावे यह सब कर्म परमात्मा के पूर्ण ज्ञान होने के साधन हैं। देखिये विदुर जी महाराज ने विदुरनीति में लिखा है—पंचयज्ञों को प्रतिदिन यत्नपूर्वक करना चाहिये—

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्य्याः प्रयत्नतः।

यही पराशरी स्मृति के १२ अ० ५ श्लोक में आज्ञा है—

सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतातिथिपूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने ॥

शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक २ और पाराशर स्मृति अ० २ श्लोक १५ में लिखा है पञ्चयज्ञों का त्याग करता है वह पञ्च हिंसाओं का प्रतिदिन भागी होता है संवर्त्तस्मृति के प्रथम अ० के ३५ में भी यही उपदेश है—

अतः पञ्चमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः।न हापयेत्० ॥

चाणक्यनीति में लिखा है।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं हि सन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्म्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतः सेवितव्यं क्षीणे मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥

कि विचारवान् पुरुष उस वृक्ष की नाईं हैं जिस की मूल संध्या और शाखा वेद है उस में धर्म कर्म रूप पत्ते लगे हुऐ हैं अतएव मूल अर्थात् सन्ध्या का सेवन यत्न से करना चाहिये क्योंकि मूल के नष्ट होने से अर्थात् सन्ध्या का अभ्यास त्याग देने से न तो वेदरूपी शाखा और न धर्म कर्मरूपी

पत्र ही स्थित रह सकते हैं अर्थात् सब नष्ट हो जाते हैं। भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध के ७० अ० में लिखा है कि जो मनुष्य विना पञ्चयज्ञ किये भोजन करते हैं वह मानो रुधिर पीते हैं। श्रीमद्भागवतस्कन्ध ५ अ० ६ श्लोक १८ में लिखा है कि ऐसे मनुष्य कौओं के समान हैं और मर कर ऐसे स्थान पर जन्म लेते हैं जहां कृमि भोजन को मिलते हैं। लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध के २६ अ० में यही आज्ञा है कि जो इन पंचयज्ञों के किये विना भोजन करता है वह सूकर की योनि में जाता है—

अकृत्वा च मुनिः पञ्चमहायज्ञान् द्विजोत्तमः।
भुक्त्वा च शूकराणान्तु योनौ वै जायते नरः॥

श्रीमद्भागवतस्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अ० ८४ में जब बलदेव जी महाराज संन्यास धारण करने को उद्यत हुए तब श्रीकृष्ण महाराज ने उन से कहा कि जो पुरुष गृहस्थ हो कर देव, ऋषि, पितर ऋण उद्धार किये विना पञ्चकर्मों को त्यागता है वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है। ऐसा ही तुलाधार ने जाजलि मुनि को उपदेश दिया है और राजा पाण्डु का भी यही कथन है। इसलियेप्यारे सुजनो! प्रेम उत्साह के साथ इस सनातन आज्ञा के अनकूल पंचयज्ञ करने का प्रचार करो और वह पंचयज्ञ यह हैं जैसा मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ७० में लिखा है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो वलिर्भौतो नृयज्ञो तिथिपूजनम्॥

(१)—वेद के पढ़ने पढ़ाने, सन्ध्योपासन अर्थात् ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, करना आदि को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं—

(२)—अग्नि में पुष्टिकारक, सुगन्धित, रोगनाशक, मिष्ट इन चार प्रकार के पदार्थों को मन्त्र सहित डालने को देवयज्ञ कहते हैं—

(३)—माता, पिता, गुरु, आचार्य्य के श्रद्धा पूर्वक तृप्त करने का नाम तर्पण है—

(४)—भोजनों के समय मिष्टान्न को मन्त्रसहित अग्नि में चढ़ाना फिर सब पदार्थों में से छः ग्रास निकाल कर कङ्गाल रोगी आदि को देने का नाम वलिवैश्वदेव है—

(५)—पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्योपदेशक, शान्तचित, निर्भय इत्यादि गुणयुक्त, संन्यासी, भ्रमण करता हुवा गृहस्थ के यहां

आकर निवास करे, तो उस का अच्छे प्रकार सत्कार कर के तृप्त करने को अतिथियज्ञ कहते हैं ॥

ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय १७ श्लोक ५० में लिखा है कि वेदाध्ययन से ब्रह्म को, श्रद्धा से स्वधा कर के पितरों को, होम कर के देवताओं को, बलिवैश्वदेव कर भूतों को, अन्न और जल से मनुष्यों को, तृप्त करना परम आवश्यक है ॥

वेदाध्यायः स्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति के स्नानप्रकरण के प्रथम श्लोक में लिखा है—

बलिकर्म स्वधा होमः स्वाध्यायातिथिसत्क्रियः ।
भूतपितृपरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥

यही उपदेश शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक ३, ४ और कात्यायनस्मृति खण्ड १३ श्लोक २ में पाया जाता है ॥

ब्रह्मयज्ञ ॥

सन्ध्या ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! सन्ध्या काल में ईश्वर की उपासना वेद मन्त्रों से करने की आज्ञा है उस में भी गायत्रीमन्त्र के जपने का उपदेश किया है । और बहुधा हमारे प्राचीन ऋषि मुनि और प्राचीन पुरुष इसी मन्त्र के द्वारा परमेश्वर की उपासना करते थे । स्मृतिकारों ने इसी मन्त्र को वेदमाता कहा है । और पुराणों के कर्त्ताओं ने भी इस की बड़ी महिमा दिखलाई है । देखिये हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ४ में लिखा है "गायत्रीं वेदमातरं" और व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २१ में भी गायत्री को वेदमाता माना है । शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक ११ में लिखा है कि गायत्री वेदों की माता है यह पापों का नाश करती है और अभीष्ट फल को देती है जैसा कि—

अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममभीप्सितम् ।
गायत्रीवेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥

और १२ श्लोक में लिखा है कि गायत्री से परे पवित्र करने वाला कोई मन्त्र नहीं नरकरूपी समुद्र में पड़ने वाले मनुष्यों को हाथ पकड़ कर निकालने

वाली गायत्री है और श्लोक १६, १७ में इस के जप से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति का माहात्म्य बतलाया है संवर्त्तस्मृति के २१७ श्लोक में लिखा है कि सब पापों की शुद्धि के लिये वेदों की माता गायत्री का वन में नदी के तट पर जाप करे जैसा कि—

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ।
गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशुद्धये ॥

और श्लोक २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२४ में गायत्री और दक्षस्मृति के २ अ० के ४२ श्लोक में लिखा है कि "गायत्रीजप उच्यते" मनुस्मृति अ० ३ के श्लो० ८३ में लिखा है कि सर्वोपरि गायत्री मन्त्र है जैसा कि "सावित्र्यास्तु परं नास्ति" फिर इसी के जप की आज्ञा ७५, ७७ श्लोक में की है और श्लोक ७८ में लिखा है कि इस के जप से मनुष्य बड़े पापों से छूट जाता है। और ८२ श्लोक में लिखा है परमपद को पाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १ श्लोक २२, २३ और शिवपुराण विन्ध्येश्वर संहिता अ० २३ श्लोक १८ में गायत्री के जप की आज्ञा है। हारीतस्मृति अ० ४ श्लोक ४९ में कहा है कि गायत्री के प्रतिदिन जप करने से पापों का नाश होजाता है जैसा "गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते" मनुजी महाराज ने प्रायश्चित्त विषय में लिखा है कि जहां तक होसके गायत्री का जप करे "सावित्रीं च जपेन्नित्यं" और पाराशर-स्मृति में "गायत्री परमोत्तमा" अर्थात् गायत्री सब मन्त्रों से उत्तम है। संवर्त्तस्मृति श्लोक २२१ पापियों के पाप का शोधक गायत्रीसे परे कोई मन्त्र नहीं इसीलिये ओंकार महाव्याहृति समेत गायत्री का जप करें। गरुडपुराण अ० ८ में लिखा है कि प्रेत योनि से छूटना चाहे वह नम्र होकर गायत्री का जप करे। लिङ्गपुराण अ० १५ में गायत्री के जप की आज्ञा है और २३ अ० में बड़ी महिमा दिखलाई है। भविष्यपुराण अ० ३ में कहा है कि जो गायत्री का जप करता है बड़े पद को पाता है। गीता अ० १० श्लोक ३५ में श्रीकृष्ण महाराज का वचन है कि सब मन्त्रों में गायत्री श्रेष्ठ है। शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक १ में गायत्री को श्रेष्ठ मन्त्र माना है "सावित्री विशिष्यते"। इस के उपरान्त हमारे प्राचीन पुरुषा भी इसी मन्त्र से उपासना करते थे देखो अयोध्याकाण्ड सर्ग ६ श्लोक ५ से प्रत्यक्ष प्रकट है कि श्रीरामचन्द्र महाराज सन्ध्या कर गायत्री का जप करते थे और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण महाराज का गायत्री

मन्त्र से परमात्मा की उपासना करना प्रकट है। इस के उपरान्त इसी पुस्तक से प्रकट होता है कि जड़ के पिता ने गायत्री का उपदेश किया था ॥

प्रिय मान्यवरो! जब सम्पूर्ण ऋषि मुनि हमको गायत्री का उपदेश करते हैं और प्राचीन पुरुषाओं ने इस के जप से महान् सुखों को प्राप्त किया फिर हम नहीं जानते सर्वमान्य मन्त्र को त्याग कल्पित और आधुनिक मन्त्रों का क्यों जाप करते हैं जिन की किसी स्मृति के कर्त्ता ने आज्ञा नहीं दी और हमारे परमपूज्य श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्ण इत्यादि ने इन मन्त्रों का मान्य भी नहीं किया अर्थात् आप भी इन का जप नहीं किया वरन उसी परम पवित्र वेदोक्त मन्त्र ही का जप कर संसार के लिये उपदेश भी किया। वर्त्तमान समय में ऐसे मन्त्रों की संख्या अनगिनत हो गई है जिन के जप के बड़े माहात्म्य भी स्वार्थी जनों ने बना लिये हैं, मिथ्या जाल शीघ्र त्याग कर गायत्री मन्त्र से ही परमेश्वर की उपासना करो, क्योंकि अत्रि ऋषि महाराज ने अत्रिस्मृति श्लोक ६३ में लिखा है कि जो मनुष्य सायङ्काल और प्रातःकाल प्रमाद से सन्ध्या का त्याग करते हैं वह एक हज़ार गायत्री के जप से शुद्ध होते हैं। मनुस्मृति अ० २ श्लोक ८० में लिखा है कि जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य गायत्री का जप नहीं करता और अपने धर्मों को नहीं करता तो उस को साधुजन निन्दा करते हैं। और इसी अध्याय के १०२ श्लोक में लिखा है जो द्विज प्रातः सायङ्काल में सन्ध्या के समय गायत्री का जप नहीं करता वह शूद्र के समान है अतः द्विजों के समान कर्म करने का अधिकारी नहीं रहता जैसाकि—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥

इसलिये (ओं नमोनारायणाय) और (ओं नमोभगवते वासुदेवाय) इत्यादि मन्त्रों को त्याग—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य जिन को द्विज कहते हैं एक ही गायत्री से परमात्मा की उपासना कीजिये क्योंकि तीनों वर्णों को द्विज कहा है तीनों को वेद के पढ़ने का अधिकार है और यह मन्त्र भी य० वेद के ३६ वें अध्याय का तीसरा मन्त्र है फिर इस के भिन्न होने का क्या कारण? श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र आदि ने भी गायत्री के कहीं भेद नहीं लिखे मनु जी महाराज ने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य के यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड में तो भेद लिख दिया परन्तु तीनों वर्णों की तीन गायत्री होने वा जप करने का

उपदेश नहीं किया वरन मनुस्मृति अ० २ श्लोक ७७ में स्पष्ट लिखा है (ओं, भूः, भुवः, स्वः) और गायत्री के तीनों पाद जो तीनों वेदों से निकाले हैं। तीनों वर्णों को गांव के बाहर इसी के जाप करने की आज्ञा अ० २ श्लोक ७९ में की है जैसा कि—

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः ।
महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाऽहिर्विमुच्यते ॥

फिर भेद कैसा ? इस के उपरान्त तीनों वर्ण के यहां १६ संस्कार होते हैं उन के यहां यही—

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे० इत्यादि ॥
शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाविश्ववेदाः० इत्यादि ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्० ॥

इत्यादि वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं और शनैश्चर, बृहस्पति की प्रसन्नता और अकाल मृत्यु से बचने के लिये पुरोहित जी अपने यजमानों से इसी का जप कराते हैं। इस के उपरान्त सम्पूर्ण सत्यशास्त्रों में वेदारम्भ संस्कार के समय प्रथम गायत्री मन्त्र के उपदेश की आज्ञा है इसी कारण गुरुमुख से सुने जाने के कारण गुरुमन्त्र कहते हैं किसी और मन्त्र के उपदेश के सुनाने की आज्ञा किसी स्मृतिकारने नहीं दी। और न उपदेश किया कि ब्राह्मण को ब्रह्म और क्षत्री को क्षत्री और वैश्य को वैश्य गायत्री सुनाना, यह इस के अतिरिक्त ब्रह्म गायत्री के तो यही अर्थ हैं कि ऐसा छन्द जो ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान कराता है जिस की सब को अवश्यकता है परन्तु क्षत्रीगायत्री और वैश्य-गायत्री के क्या वही अर्थ हैं जो उस समय के लिये आवश्यक हैं ? कदापि नहीं। इस के उपरान्त पुराणों में भी तीनों वर्णों के लिये ब्रह्मगायत्री के जप करने की आज्ञा है। देखो लिङ्गपुराण के उत्तरार्द्ध के अध्याय २० और २२ में स्पष्ट लिखा है और भविष्यपुराण अ० ३ में यही लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य उस गायत्री का जप करे जिस को ब्रह्मा ने तीनों वेदों से निकाला है जप करना चाहिये। इस के अतिरिक्त शङ्खस्मृति में स्पष्टरूप से गायत्री का पता भी बतला दिया है देखो शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक १ में लिखा है कि प्रथम

मन्त्र के देवता, ऋषि, छन्द को देख ले अर्थात् उस गायत्री का सूर्य्य देवता, विश्वामित्र ऋषि और गायत्री छन्द हो उस का ही जप करना चाहिये ऐसा ही दक्षस्मृति अ० २ श्लोक ४३ में लिखा है यही गायत्री सब से श्रेष्ठ है। जैसाकि—

सविता देवता यस्या मुखमग्निस्त्रिपात् स्थिता।
विश्वामित्रऋषिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते ॥

यह सब बातें इसी गायत्री मन्त्र में हैं। इस के अनन्तर वेदों में अनेक स्थानों पर एक विचार और सब आशय और पुरुषार्थ सब समान और अभिन्न हों। जैसा कि—ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४९ मं० ३

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

प्यारे! इसी भिन्नताने तो भारत का चौपट कर दिया अब विचारपूर्वक विचार कर एक ही गायत्री मन्त्र से दोनों काल परमात्मा की उपासना कीजिये देखिये य० अ० २१ मं० ५० लिखा है—

देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमा-
स्यऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥

अर्थात् जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य्य चन्द्रमा अर्थात् सायङ्काल प्रातः काल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम २ यत्न करते हैं तथा इन्हीं दोनों वेलाओं में सोने और आलस्य प्रमाद को छोड़ कर ईश्वर का ध्यान करते हैं बहुत धन अर्थात् उत्तम सुखों को पाते हैं। अथ० का० १९० अनु० ७ मं० ३, ४ में लिखा है कि हम लोग प्रातः सायङ्काल उपासना करते हुए सौ वर्ष तक ऋद्धि सिद्धि और पुष्टि को प्राप्त हों।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य-
दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥

और कठोपनिषद् में भी लिखा है कि जो प्रातः सायंकाल परमेश्वर में ध्यान लगाता है वह कभी व्याकुल नहीं होता। मनु अ० २ श्लोक १०१, १०२,

१०३ याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ब्रह्मचर्य्य प्रकरण श्लोक २४ व २५ महाभारत वनपर्व अ० १९९ श्लोक ८१ भविष्यपुराण अ० ३ और श्लो० ७१७ में मार्कण्डेपुराण अ० ३४ में मन्दालसा ने कहा है शिवपुराण विन्ध्येश्वरसंहिता अ० ९ श्लोक ३७ वाल्मीकीयरामायण वा० स० ३५ श्लोक ३० और अयोध्या का० स० ४५ श्लोक १३ और स० ७४ श्लोक ४३ से सन्ध्या करने के दो ही काल पाये जाते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ७ अ० ११ श्लोक १ युधिष्ठिर को नारद जी ने प्रातः सायंकाल ही परमेश्वर कीउपासना करने का उपदेश किया है—

सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ॥
उभे सन्ध्ये च यतवाग्जपन् ब्रह्म सनातनम् ॥

अत्रिस्मृति श्लोक ६३ में "सायं प्रातस्तु यः सन्ध्यां" विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक १८, २३ से भी दो काल—

सावित्रीं च जपंस्तिष्ठेदासूर्य्योदयना-
त्पुरा—१८ सायं सन्ध्यामुपासीत ।

अ० २ के श्लोक ३१, ३७ से और हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ७, ८ और अ० ४ श्लो० १४ संवर्त्तस्मृति श्लोक ८ और बृहस्पतिस्मृति के ७४ में कात्यायनस्मृति प्रपाठक २ के श्लोक ११ में दो काल ही शास्त्र की आज्ञा है जैसे "संध्याद्वये" शङ्खस्मृति अ० १० में भी द्विजातियों को दोनों काल की संध्या करने की विधि बताई है इस से भी दो ही काल सिद्ध होते हैं—

एष एव विधिः प्रोक्तः सन्ध्यायाश्च द्विजातिषु ।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥

दक्षस्मृति अ० २ में भी दो ही सन्ध्या काल बतलाये हैं। बुद्धि से विचार करने से भी जाना जाता है कि यही दोनों समय सन्ध्या करने के उत्तम हैं क्योंकि विद्या प्राप्त करने और संसारी कार्यों के अर्थ बहुत समय की आवश्यकता है, यदि प्रातःकाल से सायंकाल तक सन्ध्या किया करे तो हल जोतना, अन्न का व्यापार करना, विद्यार्थियों को विद्या पढ़ना और आचार्य को पढ़ाना, राजकर्मचारियों को प्रजा की रक्षा करना क्योंकर सम्भव है, फिर भला सिवाय प्रातःकाल और सायंकाल के दिन भर मन एकाग्र नहीं रह सक्ता और बिना एकाग्रता मन के बेगार टालने के अनुसार सन्ध्या करना न करना एक सा है, दूसरे वह समय जो संसारी कार्यों के करने में व्यय होता था ऐसी सन्ध्या

करने में वृथा जाता है और कुछ प्राप्त नहीं होता। इस के उपरान्त सन्ध्या शब्द इस बात की प्रत्यक्ष गवाही देरहा है कि दोनों समय मिलने के अतिरिक्त और कोई समय सन्ध्या का नहीं है, सन्ध्या शब्द के अर्थ मिलने के हैं, जैसे दिन रात या रात दिन प्रातःकाल सायंकाल के समय आपस में मिलते हैं ऐसे ही समय पर जीव और परमात्मा भी आपस में मिलें, और इन्हीं दोनों समय पर एक विशेष गुण यह भी है कि स्वाभाविक रीति से मनुष्य को इन दोनों समयों पर प्रसन्नता होती है और मन एकाग्र होता है और पेट भी ख़ाली होता है कि जिस के कारण अच्छे प्रकार मन लगा कर परमेश्वर का ध्यान होता है जो और किसी समय पर किसी प्रकार से नहीं होसकता। शोक का स्थान है कि हमारे स्वदेशीय भाइयों ने अन्य देशीय लोगों की देखा देखी मध्याह्न काल में भी सन्ध्या करने का समय नियत कर दिया, यदि मध्याह्न काल के समय दोनों पहर मिलते हैं तो प्रत्येक घण्टे और प्रत्येक मिनट और सेकेंड और पल पर दो मिनट दो सेकेंड और दो पल भी मिलते हैं यदि इन का मिलना भी सन्ध्या शब्द के अर्थ में समझा जाय तो फिर यही योग्य है कि प्रत्येक समय सन्ध्या के उपरान्त कोई संसारी कार्य्य न करना चाहिये फिर विचारिये कि संसारी कार्य्य क्यों कर होंगे। इसी कारण हारीतस्मृति अ० ४ में लिखा है कि जो द्विज प्रातः सायं काल संध्या को त्यागता है वह नरक में जाता है।

तस्मान्न लङ्घयेत्सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः।
उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥

अत्रिस्मृति अ० १ श्लोक ६३ में लिखा है कि जो प्रमाद से प्रातः सायंकाल की सन्ध्या का त्याग करे वह स्नान कर एक हज़ार गायत्री के जप से शुद्ध होता है और मनुस्मृति अ० २ श्लोक १०१ में लिखा है कि जो द्विज दोनों काल की सन्ध्या न करे उस को शूद्र समझना चाहिये और श्रीमहाराज भरतने भी जब कौशल्या से शपथ की है वहां यही कहा है यदि श्रीरामचन्द्र महाराज मेरी सम्मति से वन को गये हों तो मुझ को वह पाप लगे जो दो काल सन्ध्या न करने वालों को होता है—इस के अतिरिक्त प्रातः सन्ध्या पूर्वाभिमुख और सायं सन्ध्या पश्चिमाभिमुख करने की आज्ञा है—परन्तु जिन पुराणों में तीन काल सन्ध्या करने की आज्ञा की है उन में मध्याह्न काल में किसी दिशा का

कोई विधान नहीं किया—इस के उपरान्त प्रातः सन्ध्या तारे रहते समय आरम्भ करने की आज्ञा है और सायं सन्ध्या उस समय प्रारम्भ करे जब कि सूर्य्य छिपने पर हो परन्तु मध्याह्न सन्ध्या का कोई नियम नियत नहीं किया।

इसलिये सन्ध्या दो ही समय करना योग्य है, हां यह बात ठीक है कि परमेश्वर को सर्वव्यापक जान कर किसी समय और किसी स्थान पर उस की याद मन से दूर न करे, परन्तु यह उसी समय होसकता है कि जब हम परमेश्वर के गुणों से जानकार हो उसी के अनुसार अपने आचरण को सुधारें, जैसे परमेश्वर सत्यस्वरूप है वैसे ही मनुष्य को योग्य है कि किसी काम में सत्य को हाथ से न जाने दे अर्थात् सत्य ही बोले, सत्य ही कहे, सत्य ही माने—यही परमेश्वर का प्रत्येक समय का जप है।

प्यारे सज्जन पुरुषो ! इस को नाम जप नहीं है कि हाथ में गज़भर की माला और जिह्वा से प्रत्येक समय राम २ कृष्ण २ ओं २ शिव २ आदि की रट लग रही है और मन में नाना भांति के राग द्वेष भरे हुए हैं, इस जप से कुछ भी लाभ नहीं होगा जब तक उस के गुणों को जानकर उन को काम में न लाया जावे, जैसा कि मिश्री २ कहने से कुछ लाभ नहीं होसकता या इस बात के जान लेने से कि मिश्री मीठी होती है, जब तक कि मिश्री खाई न जाय। वा मिश्री का नाम लेकर शङ्खिया खा लिया जावे तो उस से मुंह मीठा न होगा वरन उलटा कड़ुआ हो जायगा जिस का अन्तिम फल मरण होगा, अर्थात् जब तक राम शिव ओं आदि शब्दों के अर्थ मालूम न हों और उन पर वर्ताव न हो तब तक कुछ लाभ नहीं होसकता जैसा कि कहा है—

माला तेरी काठ की, धागा दई पिरोय।
मन में गांठी पाप की, राम जपे क्या होय॥

ऐसा ही य० अ० ६ मं० ६ में लिखा है कि धर्म का मूल आचार ही है जैसा कि—

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा॥

जब तक मनुष्य श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उस को स्वीकार नहीं करता और जब तक जिस को ईश्वर स्वीकार नहीं

करता तब तक उस का पूरा २ आत्मबल नहीं होता और बिना आत्मबल के पूर्ण सुख नहीं मिल सक्ता और वशिष्ठस्मृति में लिखा है-

आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडङ्गा अखिलाः सयज्ञाः
के प्रीतिमुत्पादयितुं समर्था अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥

जैसे अन्धे मनुष्य को रूपवती स्त्री से सुख नहीं होता वैसा ही जिन के आचार अच्छे नहीं उन को वेद उन के अङ्ग पढ़ने और यज्ञ करने से कुछ फल नहीं मिलता इस के अतिरिक्त और भी कहा है कि-

आचारः परमोधर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥

अर्थात् आचार ही परमधर्म है और पाराशर दक्ष ने कहा है-

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम् ।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥

चारों वर्णों को आचार से रहना धर्म है और जो भ्रष्ट होते हैं वह धर्म नहीं जानते । मनु जी ने कहा है:-

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव च ॥

जिस के कर्म अच्छे नहीं होते उस की निन्दा होती है वही सदा दुःखी रहता है रोगादि उस का पीछा नहीं छोड़ते उस की आयु क्षीण होजाती है । और भी कहा है-

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

जिस का मन विषय भोग में लगा हुआ है उस को दान यज्ञ नियम तप किसी का फल नहीं मिलता मुख्य कथन यह है कि बिना शुद्ध आचरण के कुछ लाभ नहीं इसीलिये य० अ० ९ मं० २ में आज्ञा दी है इस लिये गायत्री का जप करते हुए उस के ही अनुकूल आचरण सुधारते हुए उपासना करने से लाभ होता है अन्यथा नहीं इसलिये वेद के पढ़ने और उपकार के करने और पञ्चयज्ञों के करने में सदा तत्पर रहना चाहिये जैसा मनु जी ने लिखा है

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥

परन्तु आज कल के पण्डित सूतक पातक के ढकोसलों की टट्टी की आड़ में नित्यकर्म करने में पाप बतलाते हैं यह अत्यन्त अज्ञानता की बात है क्योंकि श्वास प्रश्वास प्रतिदिन चलते रहते हैं खाना पीना प्रतिदिन होता है फिर क्या कारण है कि अच्छे कर्म सूतक पातक के मिथ्या प्रपञ्चों के कारण छोड़ दिये जावें देखिये अत्रिस्मृति श्लोक १०० जहां सूतक का वर्णन है वहां लिखा है कि वेद और स्मृतियों में कहे हुए नित्य कर्म (सध्या आदि) नैमित्तिक कर्म काम्य यज्ञादि जो स्वर्ग के साधन (दानादि) हैं उन्हें सदा करता रहे—

तस्माद्धर्मं सदा कुर्यात् श्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥

देखो झूंठ बोलने से सदा पाप होता है उसी प्रकार सत्य बोलने से पुण्य होता है तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप हो सक्ता है? कदापि नहीं। दक्षस्मृति अ० ५ श्लोक ८ में लिखा है कि स्नान, आचमन, जप, दान और होम विना किये जो भोजन करते हैं उन सब को जीवन पर्य्यन्त अशौच रहता है जैसाः—

न स्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्वा हुत्वा च भुञ्जतः ।
एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥

तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय प्राप हो सकता है, कदापि नहीं कदापि नहीं ॥

कहानी ॥

एक योग्य पुरुष बहुत दिनों से बीमार थे जिस के कारण उन से चलना फिरना न होता था रात्रि दिन चारपाई पर पड़े रहते थे परन्तु स्थिर स्वभाव और समय के बन्धानू थे। प्रति दिन प्रातःकाल और सायङ्काल चारपाई ही पर पड़े २ ईश्वर का ध्यान किया करते थे, एक दिन प्रातःकाल एक तरुण मित्र उन से मिलने को गये तो देखा कि आप भजन में मग्न होरहे हैं इस लिये चुप चाप बैठ गये, जब वह सज्जन पुरुष निश्चिन्त हुए तब उस मित्र ने उन से कहा कि अजी साहिब! चारपाई पर पड़े २ अशुद्ध दशा में भजन करना योग्य नहीं ऐसे भजन से न करना भला है। तब उस सज्जन ने पूंछा कि हे मित्र! किस दशा में ईश्वर को भूलना चाहिये? तो उस ने उत्तर दिया कि जब ऐसी दशा हो जैसी आप की। ऐसी बात के सुनते ही सज्जन पुरुष

की आंख से आंसू निकल पड़े और चिल्ला उठा कि यदि इस अशुद्ध शाद में ईश्वर मुझे भूल जाता तो मेरी क्या दशा होती !

नाम के पण्डितो ! हे कृतघ्नो ! तुम किस मुंह से कहते हो कि आज हम सूतक पातक के कारण भजन नहीं कर सकते, जब ईश्वर सब दशाओं में तुम्हारी सुध लेता है तो तुम्हें कब योग्य है कि उस के धन्यवाद करने से बन्द रहो। इस के उपरान्त शरीर भी अनित्य पदार्थ है इस लिये धर्म करने में कभी किसी दशा में न रुकना चाहिये, क्या ऐसी दशा में परमेश्वर की प्रजा नहीं रहती जो उस की आज्ञा को उन दिनों में नहीं मानती, क्या पवन पानी को ग्रहण नहीं करते, क्या अन्न का भोग नहीं लगाते, फिर बड़े शोक की बात है कि शरीर का नित्यकर्म किसी दशा में बन्द न हो और आत्मिक पञ्चयज्ञ बन्द कर दिये जावें, यह अज्ञान नहीं है तो क्या है ? इस लिये किसी दशा में शुभ कर्मों को न त्यागना चाहिये। ऐसा ही यजुर्वेद अ० ४० मं० २ में लिखा है कि संसार में कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष पर्य्यन्त अर्थात् जब तक जीवन हो तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे क्योंकि संसारी फल भोग की इच्छा से पृथक् होकर काम करते हुए मनुष्य में वैदिककर्म नहीं लिप्त होते। जैसा कि—

कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवन्त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

नित्य और नैमित्तिक कर्मों को जो लोग त्यागन कर, नगर को छोड़ जङ्गल चले जाते हैं वा नगर में रहते हैं और कहते हैं कि हम निष्काम होगये अर्थात् कर्मों के बन्धन से छूट गये उन को यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक स्थूल शरीर विद्यमान है तब तक कर्मों से छुटकारा नहीं हो सक्ता।

ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में स्पष्ट लिखा है और मनु जी महाराज भी यही कहते हैं, गीता में भी इस की साक्षी मिलती है फिर भला कर्मों से कोई पृथक् हो सकता है ? जो मनुष्य ऐसा कहते हैं वह पुरुषार्थी नहीं, आलसी हैं, और ईश्वरीय नियमों से या तो वह बिलकुल अज्ञान हैं या अपने घमण्ड के कारण उस सच्चे नियम अर्थात् गायत्री मन्त्र पर दृष्टि नहीं डालते वह यह है—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् ॥

अर्थ–(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार उकार और मकार के योग से (ओम्) यह अक्षर सिद्ध है सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिस में सब नामों के अर्थ आजाते हैं जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है वैसा ही ओंकार के साथ परमात्मा का है इस से सब नामों का बोध होता है जैसे अकार से 'विराट्' जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है, 'अग्नि, जो ज्ञान स्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है, 'विश्व' जिस में सब जगत् प्रवेश कर रहा है जो सर्वत्र प्रविष्ट है इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिये।

'हिरण्यगर्भः' जिस के गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं और जो सूर्यादि लोकों के प्रकाश करने वाला है इस से ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं ज्योति के अर्थ हिरण्य अमृत और कीर्ति हैं, 'वायु' जो अनन्त बल वाला और सब जगत् का धारण करने वाला, 'तैजस' जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार से जानना चाहिये।

'ईश्वर' जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी, "आदित्यः" जो नाशरहित है, 'प्राज्ञः' जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना चाहिये।

यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया अब महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते-हैं–(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीवन का हेतु और प्राण से भी प्रिय है इस से परमेश्वर का नाम 'भूः, है, (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इस लिये परमेश्वर का नाम 'भुवः, है, (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता है और सब को ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इस से परमेश्वर का नाम 'स्वः, है यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिखा गया।

अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं–(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य का देने वाला (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करने वाला सब सुखों का दाता (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है (तत्) उस को (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः)

हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके बुरे कर्मों से पृथक् करके सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करे ॥

इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि सत्चित्आनन्दस्वरूप नित्यज्ञानी नित्य मुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, सर्वव्यापक, कृपालु संसार का धारण करने वाले परमेश्वर की यथाविधि सदाचारयुक्त उपासना करें तो फिर किसी प्रकार के पाप नहीं लगते अर्थात् ऐसे पुरुष किसी प्रकार के पाप कर्म का मन से भी विचार नहीं करते।

वेदपाठ ॥

प्यारे सुजनो ! सन्ध्या करने के पश्चात् प्रतिदिन वेदपाठ करने की आज्ञा है देखो व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ९, १०, ११ दक्षस्मृति अ० २ श्लोक० २८ विष्णु-स्मृति अ० २ श्लोक ३३ और मनु जी महाराज आज्ञा देते हैं कि जिस कार्य्य के करने से वेदपाठ करने में विघ्न हो और धन भी मिलता हो तो भी उस वेदपाठ को न छोड़े क्योंकि वेद के पढ़ने से सब कार्य्य सिद्ध होते हैं—

सर्वान् परिज्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथा तथाध्याययंस्तु साह्यस्य कृतकृत्यता ॥

और अ० ४ श्लोक १९ में भी वेद पढ़ने की आज्ञा है श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि जो द्विज प्रतिदिन वेद पढ़ता है वह बड़े फल को पाता है संवर्त्तस्मृति के ९ श्लोक में लिखा है कि गायत्री जप के पीछे वेद पढ़ने का आरम्भ करे। प्यारे पाठकगणो ! बहुधा आज्ञायें पाई जाती हैं कि सन्ध्या करने के पीछे वेदपाठ करना अभीष्ट है यथार्थ में इस से अनेकान लाभ हैं प्रथम तो वेद उ-पस्थित रहते थे—द्वितीय कोई धोका नहीं देसक्ता था—तृतीय वेदानुकूल कर्म होते थे किसी प्रकार की भूल नहीं होती थी—चौथे सन्तानों के लिये दृष्टान्त हो जाता था—पांचवें वेदों की पुस्तकें घरों में रहती थीं जिस से उन के पठन पाठन की प्रथा प्रचलित रहती थी कि जिस के कारण ही देश में आनन्द ही आनन्द दृष्टि आता था, अब यह प्रथा उठ गई अर्थात् गायत्री मन्त्र के स्थान पर अनेकान मन्त्र हो गये गायत्री भी तीन और चौवीस हो गई उसी प्रकार पूजन करने के पीछे भी सूर्य्यमाहात्म्य, गङ्गालहरी, विष्णुसहस्रनाम, पञ्चरत्न इत्यादि का पाठ करते हैं। इसलिये मान्यवर ! वेदानुकूल गायत्री मन्त्र

से दोनों समय शुद्ध आचरण करते हुए वेदादि सत्यशास्त्रों के पाठ का नियम प्रचलित करोगे तब ही हमारा और आप का कल्याण होगा अन्यथा नहीं।

देवयज्ञ ॥

प्रकट हो कि वेदादि सत्यशास्त्रों में दोनों काल हवन करने की आज्ञा है इसी को देवयज्ञ कहते हैं। देखिये य० अ० १८ मं० ४२ में लिखा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं अर्थात् आप सुखी होकर औरों को भी सुख देते हैं जैसा कि—

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम।सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातुतस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥

और संवर्त्तस्मृति अ० १ श्लोक ८ में लिखा है। अग्निकार्यं च कुर्वीत। और व्यास स्मृति अ० १ श्लोक २४ में आज्ञा है कि "मन्त्रहुतिक्रिया" कात्यायनस्मृति खण्ड ३१७ में भी दोनों काल अग्निहोत्र की आज्ञा है। दक्षस्मृति अ० २ श्लोक २३, ३८ में भी यही उपदेश है " संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते" विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३३, ३७ हारीतस्मृति अ० १ श्लोक २८—कृतहोमस्तु भुंजीत सायंप्रातरुदारधीः। और अ० ४ श्लोक २० शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक १५ "सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि,, याज्ञवल्क्यस्मृति अ० २ श्लोक २५—अग्निकार्यं ततः कुर्यात्। गीता अध्याय ३ श्लोक १४ में उपदेश है कि सकल प्राणियों का जीवन अन्न से होता है और अन्न वर्षा से होता है और वर्षा यज्ञ से होती है इसलिये—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

ऐसा ही विष्णुपुराण अ० १ और य० अ० ३ मं० ४९ में लिखा है। चाणक्यनीति में लिखा है, "अग्निहोत्रफलो वेदः,, अर्थात् वेद पढ़ने का फल उसी समय होता है जब मनुष्य अग्निहोत्र करता है इसी प्रकार विदुरनीति में आज्ञा है और ऐसा ही नारद जी ने युधिष्ठिर से कहा है शान्तिपर्व में नकुल महाराज का वचन है यज्ञ करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। देवस्थानी महर्षि का वचन है कि यज्ञ करने से मनुष्य की सम्पूर्ण कामना सिद्ध होती हैं—यमने गोतम से कहा है कि अश्वमेधयज्ञ करने से उत्तम लोक मिलता है

राजा ययाति का वचन है कि यज्ञ करने से दीर्घ आयु होती है। विदुर महाराज कहते हैं यज्ञ करना धर्म का एक लक्षण है। भीष्म जी कहते हैं कि अग्निहोत्र करने से ब्रह्मलोक मिलता है। और मयूररश्मिक ऋषि का कथन है कि यज्ञ करने से स्वर्ग मिलता है। इसी पर्व के अ० ५३ से प्रकट है कि श्रीकृष्ण महाराज प्रतिदिन हवन किया करते थे और ऐसा ही श्रीमद्भागवतस्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अ० १ श्लोक २४, २५ में लिखा है। वाल्मीकिरामायण से प्रकट है कि राजा दशरथ जी के सन्तान उत्पन्न नहीं होती थी उस समय महात्मा विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि ऋषियों ने अग्निष्टोम यज्ञ कराया था। श्रीरामचन्द्र महाराज जब बन को गये थे तो उन्हों ने विपत्ति की दशा में भी अग्निहोत्र को परित्याग नहीं किया और आपने भरत जी से भी अग्निहोत्र और यज्ञ करने के विषय में चित्रकूट पर पूंछा था और रावण को मार कर राजसूय और राजा युधिष्ठिर ने गद्दी पर बैठ कर राजसूय यज्ञ किया था। राजा बलि ने सिद्धाश्रम पर एक बड़ा भारी यज्ञ किया था। आर्य्यावर्त्त देश में राजा सगर ने और राजा जनक ने मिथला देश में बड़ा भारी यज्ञ किया था—विश्वामित्र महाराज श्रीरामचन्द्र जी को यज्ञ की रक्षा के अर्थ लेगये थे इन उपरान्त प्राकृत नियमों के देखने से ज्ञात होता है कि वायु शुद्धि के दो ही मुख्य उपाय हैं प्रथम आंधियों का चलना द्वितीय वायु में सुगन्धित पदार्थ मिलाना, और आंधी आने का मूल कारण अग्नि है सूर्य की गर्मी का हवा पर बहुत असर होता है इस से वायु और आंधी चलती है, अर्थात् सूर्य की उष्ण किरणें वायु के परमाणुओं को स्थूल से सूक्ष्म कर देती हैं जिस से एक स्थान की हवा हल की होकर दूसरे स्थान में जाती है और उस के स्थान पर दूसरी हवा आती है और इस परस्पर की टक्कर से हवा बहने लगती है, और अग्नि का यह स्वाभाविक गुण है कि जिस पर बल करती है उस के परमाणुओं को छिन्न भिन्न कर देती है इस के प्रभाव से हवा का परिचाल होता है और अधिक टक्कर से आंधियां आती हैं कि जिन से बहुत दिन की बसी हुई दुर्गन्धित वायु प्रचण्ड वेग के कारण सब बाहर निकल जाती है और स्वच्छ वायु आजाती है इस के उपरान्त वृक्षों से भी सदा सुगन्धित वायु जिस को प्राणप्रद वायु कहते हैं निकला करती है, मानों परमेश्वर जगत् रक्षक स्वयं वायु की शुद्धि के लिये सूर्य की अग्नि और वृक्षों के साकल्य द्वारा हवन कर रहा है और जीवों को उपदेश करता है कि तुम लोग भी इसी भांति करो, पस इस शिक्षा और लाभदायक कार्य

के अर्थ सुगन्धित रोगनाशक पुष्टिकारक पदार्थ जलाये जाते हैं, क्योंकि वायु की दुर्गन्ध दूर करने से आरोग्य मिलता है। यह तो सब मनुष्य जानते हैं कि पवन पानी के बिगड़ने से रोग की बहुधा उत्पत्ति होती है और उसी के अधिक बिगड़ने से विशूचिका आदि बड़े २ रोगों की उत्पत्ति होजाती है कि जिस से सहस्त्रों जीवों की हानि हो जाती हैं। डाक्टर वर्मन ने कपूर अर्क को बना कर हज़ारों हैज़े के रोगियों को अच्छा किया है, लाखों शीशियां उन की प्रतिवर्ष विकती हैं, वही कपूर हवन में पड़ता है। इसी भांति और पदार्थों के गुणों को जानो जो हवन में पड़ते हैं, यदि उन पदार्थों के अलग २ गुणों की व्याख्या की जाय तो एक पुस्तक बन जायगी इसलिये प्रत्येक के गुण नहीं लिखे। अग्नि में जो वस्तु पड़ती है उस के परमाणु भिन्न २ होकर वायु मण्डल में मिल जाते हैं क्योंकि प्राकृतिक नियम है कि हलकी वस्तु ऊपर को जाती है और भारी नीचे को आती है जैसे तैल पानी से हलका होने के कारण ऊपर रहता है और घी वा बर्फ़ आंच पर रख कर देखिये कि पिंघल कर पतला हो जाता है और भाफ उठने लगती है, थोड़ी देर पीछे देखिये तो कुछ नहीं रहता क्या यह नष्ट होगया ! नहीं यह सूक्ष्म होकर हवा में मिल गया, यह पदार्थविद्या के जानने वाले भली भांति जानते हैं, यह बात भी प्रकट है कि किसी वस्तु का सर्वनाश नहीं होता केवल दशा बदल जाती है, वह जो उन से भाप बनती है हवा में मिल जाती है और भाफ वायु में सर्वदा कुछ न कुछ मिली रहती है, अतएव यह शुद्ध वायु जहां २ स्पर्श करेगी वहां की दुर्गन्ध दूर हो जायगी और इस भाफ से जो बादल बनेंगे उन से शुद्ध वृष्टि होगी और शुद्ध वृष्टि से जल अन्न और वनस्पति आदि सकल पदार्थ शुद्ध होंगे जो सम्पूर्ण जीवों को आरोग्यदायक और पुष्टिकारक होंगे। वर्तमान समय में जो लोग यह कहते हैं कि अन्न पूर्व समय का सा उत्पन्न नहीं होता और ओषधियों के गुण ग्रन्थों के लेखानुसार नहीं देख पड़ते, मनुष्य रोगी बलहीन अल्पायु होते जाते हैं और वृष्टि बहुत कम होती है, सो यह सब बुराइयां हवन के न होने के ही कारण होरही हैं, हा ! क्या शोक का स्थान है कि मनुष्योंने हवन को यहां तक छोड़ दिया है कि मुर्दा जलाने में भी जहां अतीव दुर्गन्ध फैलती है कोई प्रकार का सुगन्धित पदार्थ नहीं डालते, केवल माशे भर घी चन्दन से उस की खोपड़ी का मांस बघार देते हैं। बहुधा विदेशी जन कहते हैं कि भारतखण्ड में मुर्दा जलाने की रीति

बहुत अयोग्य है। सच मुच अब तो ऐसा ही होगया है इसलिये मुर्दा जलाने के समय अवश्य ही सुगन्धित द्रव्य डालने चाहियें ताकि यह दोष जो अज्ञान के कारण होरहा है जाता रहे ॥

इसलिये प्रत्येक मनुष्य को प्रातःकाल और सायङ्काल हवन नैत्यिक धर्म जानकर करना योग्य है और पूर्व भारतखण्डी ऐसा ही करते थे, जैसा कि हम ने पहले वर्णन किया। यदि सम्पूर्ण देश इस उत्तम कार्य को करने लगे और छः मासे घी और उसी के अनुसार कपूर आदि सामग्री डालें तो लाखों मन हवन सहज में ही हो सकता है, इसलिये मन्त्रों सहित नित्यप्रति हवन करना योग्य है क्योंकि मन्त्रों में हवन करने के लाभों का वर्णन है और विना मन्त्र के कार्य करना ऐसा है जैसे किसी ओषधि का विना गुण जानने के व्यवहार की कोई आज्ञा देदेवे तो क्या कोई उस दवा को किसी काम में लावेंगा? कदापि नहीं, क्योंकि विना गुण के कोई कार्य शुद्धता से नहीं होता। अब इस समय संस्कृत विद्या के प्रचार कम होजाने से उन मन्त्रों के अर्थों को भी भूल गये इसी कारण तो हवन की प्रथा हमारे भारत से लुप्त होगई। अब जिस किसी के कोई शुभ कार्य होता है तो हवन क्या पुरानी लीक मात्र पीट दी जाती है, इसी एक छोटी बात से समझ लीजिये कि जहां मालिन फूल पत्ते लाती है उसी के साथ अपनी छोटी टोकरी में ५, ७ सिरकी सी पतली समिधें धर लाती है, शोक का स्थान है कि यज्ञ का काष्ठ मालिन की टोकरी में! भला सरोवर सिमट कर कैसे घड़े में समा सकता है? प्राचीन इतिहास पुकार २ कर कहते हैं कि उन दिनों न केवल घर २ में वरन वनोपवन में तपोधन ऋषि मुनि अपनी २ कुटियों में बैठे सायङ्काल प्रातःकाल हवन करते थे कि जिन के स्वाहा शब्द की प्रतिध्वनि नभमण्डल में व्याप्त हो रही थी, धर्मशीलसम्पन्न सत्यव्रती अग्निहोत्री महात्माओं के शुद्ध तप यज्ञों से मलिनता ने भयभीत होकर ध्रुवों में शरण ली थी और पुराणों में जहां कहीं कुशल प्रश्न किया है वहां राजाओं ने ऋषियों से प्रथम यही पूंछा है कि हे भगवन्! आप कुशल से हैं? और आप शान्तिपूर्वक निरन्तर यज्ञ किये जाते हैं? वस्तुतः ऋषि मुनियों के आश्रमों की यही पहिचान थी उन के समीप वृक्ष यज्ञ धूम्र से धुमैले दृष्टि आते थे। देखो नित्य कृत्य के अतिरिक्त होली, दिवाली, श्रावणी, आदि पर्वों पर विशेष हवन होता था, क्योंकि इन दिनों में रोग अधिक उत्पन्न होते थे, उन के निवारणार्थ बड़े

हवन होते थे, जिस भांति शत्रु लोग विपक्षी का युद्धसम्बन्धी पूरा सामान देख कर बारूद के धुवें की महक आते ही भयभीत हो भागते हैं इसी भांति विशूचिका बुखार आदि शत्रु, हवन के धुएं की गन्ध और स्वाहा की ललकार के मारे पलायित हो जाते हैं। इसी कारण होली, दिवाली, श्रावणी आदि पर्व बड़े अवसर से नियत किये हैं, पर समय के एर फेर से दिवाली और श्रावणी पर हवन का नाम मात्र ही रह गया है, होली में अब भी काष्ठ जलता है परन्तु घी और सुगन्धादिक द्रव्यों का नाम भी नहीं लिया जाता॥

प्यारे भाइयो! बहिनो! प्रत्येक उत्सव पर जो घर में पदार्थ बनते हैं उन का यही अभिप्राय है कि प्रथम उन द्रव्यों से हवन कर तत्पश्चात् सम्पूर्ण घर के तथा अन्य जनों को भोग लगाना चाहिये परन्तु अब विना जगदीश्वर के भोग लगाने के आप भोग लगा जाते हैं, यह बहुत अनुचित बात है, कदापि न करना चाहिये। यहां अपने परमेश्वर की आज्ञानुसार प्रत्येक उत्सव पर अच्छे प्रकार हवन कर देश का उपकार करना योग्य है। इस समय में बड़े मेलों में उखड़ते समय हैज़ा फैलता है उस का मुख्य कारण यही है कि हवन नहीं होता केवल भोजन बनाने आदि में जो आग जलती है उस की गर्मी से दुर्गन्धित वायु हटती है परन्तु मेला उखड़ते ही आग भी ठंढ़ी हो जाती है, इसी से पुनः दुष्ट वायु आक्रमण कर लेती है साथ ही हैज़ा फैल जाता है और हज़ारों का भक्षण कर जाता है॥

हे प्यारे सुजनो! जब तक प्राचीन रीत्यनुसार प्रतिदिन और प्रत्येक होली आदि पर्वों और हर उत्सव पर हवन होने की रीति प्रचलित न होगी तब तक इस भारत में रोग ही रोग बना रहेगा, क्योंकि हज़ारों ओषधियों की ओषधि, लाखों स्वच्छता की एक स्वच्छता होम है, विना इस के रोगों की शान्ति होना अति कठिन है जैसा कि भारतवर्ष में इस समय हो रहा है, यदि भला चाहो तो अपनी प्राचीन रीति के अनुकूल जैसा ऋषि मुनि महात्माओं ने नित्य होम करने की आज्ञा दी है करना योग्य है, क्योंकि हुत द्रव्यों से वायु शुद्ध आरोग्य देती है और वृष्टि शुद्ध होती है और अन्न वनस्पति स्वच्छ और रोगनाशक और पुष्टिकारक आदि होते हैं और शुद्ध खान पान से बुद्धि निर्मल होती है और बल बढ़ता है, और बुद्धि से सब पदार्थ सिद्ध होते हैं जिन से शारीरक आत्मिक और सामाजिक उन्नति होती है। इस

कारण हवन करना सर्वथा और सर्वदा श्रेष्ठ और उत्तम है। इसी कारण उस को महापुण्य कहा है ॥

इसलिये जो मनुष्य इन आज्ञाओं का उल्लङ्घन कर अग्निहोत्र का त्यागन करते हैं उन को शूर वीर की हत्या करने का पाप होता है जैसा कि आपस्तम्बस्मृति के अ० १० श्लो० १४ में लिखा है—"अग्निहोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत्"—शान्तिपर्व अ० १०२ और चाणक्य राजनीति में लिखा है कि जिस घर में हवन नहीं होता देवता लोग श्मशान के समान उस को छोड़ देते हैं। भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध के ५ अ० में लिखा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र को त्यागन करते हैं उन को सुरापान के तुल्य पाप लगता है। इसी भांति भीष्मपितामह ने शान्तिपर्व अ०९६५ में कहा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र को छोड़ते हैं वह पतित होजाते हैं। इसी कारण ऋषि जनों ने इस को नित्यकर्म में लिखा और आज्ञा दी कि दोनों काल अग्निहोत्र करे यही कारण है कि यज्ञोपवीत होने पर गुरु जनों को मनुजी महाराज ने आज्ञा दी कि वह शिष्य को जनेऊ कराकर पवित्रता आचार अग्निहोत्र और संध्योपासन की रीतें सिखलावें जैसा कि—

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ॥

कैसे शोक का स्थान है कि गुरुजनों ने ही इस आज्ञा को मेट दिया फिर शिष्य को कौन उपदेश करे। प्यारे भाईयो! यह कर्म सोलह संस्कारों में किया जाता है मुख्य कथन यह है कि जगत् के सुखी रहने का मुख्य उपाय यह भी है इसी कारण यजुर्वेद अ० १७ मं० ५७ में इस की अच्छे प्रकार व्याख्या की है वहां यह भी लिखा है कि उस में चार प्रकार के पदार्थ प्रथम सुगन्धित जैसे केसर, जावित्री, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल कपूर, कस्तूरी, गूगल। द्वितीय पुष्टिकारक घी, दूध, पक्कफल जैसे बेल, अंबरा, अमरूद, आम, नासपाती, अंगूर, सेव, केलादि कन्द जैसे सकरकन्द, सुथनी, सेमरमुसरा, कसेरु इत्यादि अन्न जैसे चावल चना, मूंग, गेहूं, उरद, जौ आदि। तृतीय मिष्टान्न जैसे—शक्कर, शहत, छोहारा, मुनक्का, किशमिश आदि। चतुर्थ रोगनाशक ओषध्यादि जैसे सोमलता अर्थात् गुरच शतावर, मूसली सफेद, बीजबन्द, तालमखाने के बीज इत्यादि, नाना प्रकार मोहनभोग, मीठा भात,

खीर, लड्डू, खस्ते की पूरी, मालपुवा इत्यादि प्रत्येक वस्तु बहुत स्वच्छ और उत्तम हो परन्तु निमक, खटाई, कडुई वस्तु, तेल आदि कि जो जल वायु के विगाड़ने वाली हों न डाले इस के उपरान्त प्रत्येक ऋतु का भी ध्यान रहे अर्थात् उपरोक्त पदार्थों में गर्मी, शरदी, वर्षात के अनुकूल न्यूनाधिक भी करना उचित है जैसा कि य० अ० १८ मं० ९ में आज्ञा पाई जाती है।

पितृयज्ञ ॥

हे पुत्र पुत्रियो ! इस संसार में परमेश्वर के उपरान्त हमारे माता पिता आदि कर्त्ता और रक्षक हैं, जब हम बेसुध और अज्ञान वरन हाथ पैर चलाने और हिलाने और रोने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते, वही हमारे शरीर की सर्व प्रकार से सुध लेते हैं, फिर भला उन से अधिकतर कौन हमारा उपकारी हितैषी हो सक्ता है। कदापि नहीं कदापि नहीं। इसलिये हम सब को भी ईश्वर के अतिरिक्त अपने माता पिता सुख कर्त्ता, दुःख हर्त्ता, परमरक्षक, परमदयालु, की मन वाणी शरीर से सेवा टहल करनी चाहिये कि जिन के प्रसन्न रहने ही से हम सब को संसार में सुख और अप्रसन्न रहने से दुःख मिलते हैं सच मुच इन की सेवा करने से मेवा मिलती है क्योंकि संसार के नाना मत और मतान्तर और सर्व प्रकार के ग्रन्थ और उत्तम पुरुष यही उपदेश करते हैं कि माता पिता आचार्य की सेवा करना परमधर्म है। इस विषय में मनु जी महाराज ने लिखा है—

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्य्यादाचार्य्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ १ ॥
तएव हि त्रयो लोकास्तएव त्रय आश्रमाः।
तएव हि त्रयोवेदास्तएवोक्तास्त्रयोग्नयः ॥ २ ॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याऽफलाःक्रियाः॥ ३ ॥

अर्थात्—माता, पिता, आचार्य्य इन तीनों का प्रिय नित्य ही करना इन तीनों के सन्तुष्ट होने से सब तपस्या समाप्त होती है ॥१॥

तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि यही तीनों माता पिता आचार्य हैं ॥२॥

जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर नहीं किया उस की सब क्रिया निष्फल हैं ॥३॥

इस के उपरान्त तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है—

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥

अर्थात्—माता, पिता, आचार्य, अतिथि यह सब देवतारूप पूज्य हैं। और य० अ० १२ मं० ३९ में ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे पुत्रो तुम अपने माता पिताओं की सदा सेवा करके उन को सब प्रकार का आनन्द दो और उन के साथ कभी विरोध न करो ॥

प्यारे बालक बालिकाओ! देखो तो हम तुम को कैसे २ दुःखों और क्लेशों से पाला, हमारे तुम्हारे खान पान वस्त्रादि के अर्थ अपने प्राण देने को भी उद्यत रहे और आप सदा भूखे नंगे रहे परन्तु हम तुम को उत्तम २ भोजन मनोहर वस्त्र पहनाये कि जिन को देख २ कर और भी प्रसन्न होते रहे, अपने दुःख को हमारे आनन्द विलास पर कुछ भी न जाना, जहां हमारे मुखड़े के प्रकाश की छवि में कुछ अन्तर आया, ज़रा भी अनमने हुए, माता, पिता, को चैन न हुआ, घरबार वरन व्यापार को भी तुच्छ जाना हमारे तुम्हारे अर्थ इधर उधर दौड़ धूप करने में रात दिन का भी ज्ञान न किया; वैद्यों, हकीमों आदि के देवाज़ों की खाक को छान डाला, परमेश्वर की प्रार्थना करने से भी अचेत न रहे, मुख्य तो यह है कि माता पिता ने विना हमारे आराम चैन के अपना सुख नहीं जाना। मान्यवरो! उपरोक्त उपकार से उद्धार होने के अर्थ पितृयज्ञ नियत किया है देखिये य० अ० २१ मं० ११ में लिखा है कि अपने माता पिताओं की सेवा करके मनुष्य पितृऋण से उद्धार होवें जिस प्रकार माता पिताओं ने सुख दिया है उसी प्रकार वह भी माता पिताओं को आनन्द दें जैसा कि—

यदा पिपष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतदग्ने अनृणो भवाम्यहं तौ पितरौ मया स्थ मद्रेण पृङ्क्त विपृचस्थ विमा पाप्मना पृङ्क्त ॥

अनुशासनपर्व अ० ६ में लिखा है जिस ने माता पिता गुरु को प्रसन्न कर लिया, मानो उस ने सर्व धर्मों को सन्तुष्ट कर दिया। मनुस्मृति अ० २ श्लोक २२ में लिखा है कि उत्पत्ति के समय जो क्लेश माता सहते हैं उस से

मनुष्य सौ वर्ष में भी उऋण नहीं हो सक्ता। परन्तु माता इन सब में बड़ी है जैसा कि—

यन्माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

वाल्मीकिरामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ३० के ३४, ३६ श्लोकों में भी यही लिखा है कि जो माता, पिता, गुरु की यथार्थ सेवा करते हैं उन को सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं। हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ११ में भी यही उपदेश है कि इन तीनों की सेवा करने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। शङ्खस्मृति अ० २ श्लोक ४ में लिखा है कि माता पिता और गुरु की सदा पूजा करे जो इन तीनों का आदर सत्कार नहीं करता उस की सब क्रिया निष्फल जाती हैं जैसा कि—

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयस्सदा नृणाम् ।
क्रियास्तस्याऽफलाः सर्वायस्यैतेनादृतास्त्रयः ॥

वनपर्व अ० २१४ में धर्मव्याध ने एक उत्तम ब्राह्मण को उपदेश किया है कि मैं माता, पिता को परम देवता समझता हूं और इन्द्र के समान मैं इन का सन्मान करता हूं गृहस्थ का परमधर्म यही है कि इन की सेवा टहल करता रहे—यही शान्तिपर्व अ० ११९ में गौतम ऋषि ने यम-र्सि और अ० २१२ में इन्द्र से प्रह्लाद ने, कुन्ती ने कर्ण से और श्रीरामचन्द्र से कौसल्या ने कहा है कि माता पिता की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है। श्रीकृष्ण महाराज ने श्रीमद्भागवतस्कन्ध १२ अ० ४५ में कहा है कि माता, पिता—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देने वाले शरीर को उत्पन्न करते हैं इसलिये सौ वर्ष तक सेवा करने पर भी उद्धार नहीं होता—जो पुत्र समर्थ होने पर शरीर अथवा धन से माता पिता की सेवा नहीं करते उन को परलोक में यमदूत उन का मांस काट २ उसी को भोजन कराते हैं।

प्रियवरो! इस पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम है "श्रत्सत्यं दधाति या क्रिया सा श्रद्धा श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उस को श्रद्धा और जो श्रद्धा से किया जाय उस का नाम श्राद्ध है और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्" जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर तृप्त हों उस को तर्पण कहते हैं सच तो यह है कि जो बाल

और बालिकायें अपने माता पिता की सेवा और आज्ञा पालन कर पितृ ऋण से उद्धार पाते हैं उन को सर्व प्रकार के आनन्द और सुख मिलते हैं, अन्यथा प्रतिदिन क्लेशों ही में फंसे रहते हैं। हे प्यारे बालको! माता पिता कैसे ही क्यों न हों परन्तु तुम को उन की सेवा टहल यथायोग्य करना तुम्हारा परम धर्म है क्योंकि तुम्हारे माता पिता ही ने तुम को सर्वगुणालंकृत किया है, उन्हीं ने तुम्हारे अर्थ अपना तन मन धन लगा कर तुम को इस पद पर पहुंचाया है फिर तुम उन को विद्या आदि गुणहीन होने से तुच्छ दृष्टि से देखते हो, धिक्कार तुम्हारे विद्यादि गुणों पर क्योंकि यदि वह अपनी आत्मा तुम को न जानते और न मानते तो तुम आज क्या इस पद पर होते? नहीं, नहीं, नहीं, सच पूंछो तो यह सब उन्हीं का प्रभाव है, इसलिये तुम उन की सेवा टहल सदा नम्रतापूर्वक करते रहो और धर्मसम्बन्धी आज्ञाओं में अपने जगत्पिता परमात्मा की आज्ञाओं को मानो देखो प्राचीन समय में श्री रामचन्द्र जी महाराज ने अपनी सोतेली माता की आज्ञा मान, धन सम्पत्ति राज्य त्यागन कर बारह वर्ष जङ्गल में व्यतीत किये जहां उन को नाना भांति के क्लेश और दुःख उठाने पड़े परन्तु अपनी माता की आज्ञा को यथार्थ पालन किया। सचमुच वीरता, भाग्यशालिता के यही लक्षण हैं जिन के कारण श्रीमान् का नाम इसे जगत् में सदा ही बना रहेगा। परमेश्वर वर्त्तमान समय के पुत्र पुत्रियों में भी ऐसे ही शुभ गुण दे॥

वर्त्तमान समय को देखिये कि जहां पुत्र को होश आया और बाहर भीतर आने जाने लगे और प्राणप्यारी के दर्शन हुए फिर तो हरदम तिउरी चढ़ी हुई बात सीधी करना कठिन होगया माता पिता प्रेम के कारण अपने प्राण तक न्यौछावर किये हुए फूले नहीं समाते, परन्तु उन को बात करना ही बुरा जान पड़ता है प्रथम तो मुखारविन्द से बात करते ही नहीं यदि कुछ कहा भी तो उस समय इस प्रकार से वार्त्तालाप करते हैं मानों किसी सेवक को शिक्षा कर रहे हैं। धन्य आप की विद्या और बुद्धि को! क्या आप को वह समय स्मरण नहीं रहा जब माता अपने ही दूध से तुम्हारे प्राणों की रक्षा करती थी, प्रत्येक समय छाती से लगाये रहती थी, सोने उठने बैठने खाने पीने का समय सदा स्मरण कर तुम्हारा पालन करती थी, हाय शोक कि उसी माता की बात तक आप को नहीं सुहाती धिक्कार है!

जब माता पिता की यह कुदशा है फिर गुरु और पाठक के ऊपर कृपा-दृष्टि का क्या कहना, आप तो सदा प्राणप्यारी के साथ वा किसी मित्र के सङ्ग प्रतिदिन प्रसन्नता से हलुवा पूरी उड़ाते, पान चबाते, स्वच्छ वस्त्रों पर शयन करते, गर्मियों में खश की टट्टियां लगाते, नौकर चाकर सेवकाई में उपस्थित रहते, परन्तु माता पिता दो २ दानों को तरसते हैं कोई यह भी नहीं पूंछता कि तुम कौन हो ! सचमुच उन्होंने ऐसा ही अपराध किया है ! उन की सेवा टहल की क्या आवश्यकता है ! आप तो गर्मियों में शरवत पीते हैं परन्तु माता पिता को शीरा तक नहीं मिलता, प्रतिदिन स्वच्छ वस्त्र धारण किये इतर फुलेल लगाये हुए अपने मित्रों के साथ बाज़ारों में फिरते हैं। परन्तु माता पिता मेले कुचैले कपड़े पहने लज्जा के कारण घर ही में छुपे हुए बैठे रहते हैं और बाहर आने में लज्जित होते हैं कि कोई हमारी यह कुदशा देखकर हमारे पुत्र की निन्दा न करे। देखिये और विचारिये कि माता पिता इस दशा में भी प्रेम के वशीभूत हो पुत्र की निन्दा कराना भला नहीं जानते चाहों आप मर तक जायें। धन्य है धन्य है। मुख्य यह है कि वर्त्तमान समय में रंडी लौंडे के ऊपर हज़ारों फूंक देते हैं परन्तु माता पिता को फूटी कौड़ी देना मानों हलाहल पीना है। परमेश्वर जगत्कर्त्ता हमारे प्यारों को इस पाप से बचावे ॥

हे मेरे प्यारे भाइयो ! मेरे इस कथन से आप को अत्यन्त क्लेश हुआ होगा और मेरे अर्थ भी मन में कटु वचन उच्चारण करते होगे परन्तु यदि ध्यान लगाकर विचार करोगे तो मैं आप को सच्चा हितैषी जान पड़ूंगा क्योंकि मित्र वही है जो अपने मित्र के गुण दोषों को जान उन का यथार्थ प्रकाश कर शुभगुणों के धारण करने के अर्थ प्रयत्न करे। और बैरी वह है जो उस के अवगुणों का प्रकाश न करे। इसलिये अब विचारपूर्वक माता पिता गुरु इत्यादि की तन मन धन से सेवा टहल करो कि जिससे संसार में यश और सुख, परलोक में आनन्द प्राप्त हो, नहीं तो इसी पाप में आप को नाना भांति के क्लेश उठाने पड़ेंगे, संसार में अपयश होगा। परलोक में भी घोर नरक के दर्शन करने पड़ेंगे ॥

इस के उपरान्त कनागतों में कैसा पानी देते हो और ब्राह्मणों को नानाभांति के भोजनों से परिपूर्ण कर देते हो अर्थात् उत्तम से उत्तम वस्तु हलुवा, पूरी, ख़स्ताकचौड़ी, दुधलपसी, मोहनभोग, लड्डू, पेड़े, भांति २ की

तरकारियां, अचार, मुरब्बे, सोंठि, पापर इत्यादि खिलाते हो और कहते जाते हो कि महाराज जी दो पूरी और खालीजिये एक कटोरा दूध पी लीजिये तो बहुत ही अच्छा हो, अब आप से मेरी यह प्रार्थना है कि अपने विद्यमान माता पिता की भी इस प्रकार सेवा और टहल की थी या कि मरने पर ही आप को प्रेम अधिक आगया, यदि आप उन के रहते इस भांति आदर सत्कार करते तो क्यों भारत का भारत होजाता ॥

इस के उपरान्त वर्षी चौवर्षी इत्यादि में कैसे पदार्थ ब्राह्मणों को देते हो आगे चल कर गया जी का सामान करते हो सौ दो सौ रुपये वहां इस प्रयोजन के अर्थ देते हो कि हमारे पिता इत्यादि वैकुण्ठ चले जावें और प्रेत योनि से छूट जावें, हाय कैसे शोक का स्थान है कि इन मिथ्या कामों के लिये तो आप तन मन धन सब अर्पण कर दो परन्तु जीते माता पिता के नाम एक कौड़ी देना भी कठिन हो जाता है जैसा किसी ने कहा है—

जियत न देहौं कौरा, मरे ढुलैहौं चौरा ।
जियत पिता से जंगी जंगा, मरे पिता पहुंचाये गङ्गा ।
जियत पिता की पूछ न बात, मरे पिता को दाल औ भात ॥

इसलिये जीते माता पिता आदि की यथावत् सेवा टहल करना योग्य है देखो गीता के अनुसार जीव एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धर लेता है जैसा हम ने पूर्व वर्णन किया। फिर भला तुम जो नाना लीला रच कर हज़ारों रुपयों पर पानी फेर देते हो कहीं यह भी सुना है कि हमारे पिता जी अमुक स्थान पर बैठे हैं, आप तो कभी रुपये की रसीद भी नहीं चाहते, वैसे तो एक रुपये के लिये अच्छे प्रकार लिखा पढ़ी करा लेते हो परन्तु यहां टस्स से मस्स भी नहीं करते ॥

प्यारे भाइयो! जीते माता पिता की सेवा टहल का ही नाम श्राद्ध तर्पण है, फिर भला ब्राह्मणों को भोजनादि का कराना और नाना भांति से द्रव्य भेट करना आदि श्राद्ध कहां से जाना, यदि ऐसा ही मान लिया जावे तो विचारिये कि जब वह विद्यमान थे उस समय में वे राति दिन में दो तीन बार भोजन करते और चार पांच दफ़े पानी भी पीते थे और अब मरने के पीछे उन को साल में एक बार भोजन करने और कनागतों में पन्द्रह दिन पानी पीने की आवश्यकता होती है और साल भर तक विना भोजनों और

पानी के व्यतीत कर देते हैं भूख प्यास नहीं लग सकती, भला यह आप ने कैसे ठीक जान लिया और एक दिन के भोजन पर एक वर्ष भूख न लगना कैसे जान लिया, इस के उपरान्त जब आवागमन ठीक है तो फिर मरे हुओं का श्राद्ध और तर्पण कैसा, वह तो दूसरी जगह तुरन्त ही चले जाते हैं इस के अतिरिक्त पितृ, के अर्थ संस्कृत में पालन करने वाले के हैं और आप पितृ से मरे हुए बाप दादे को समझते हैं, भला यह तो बतलाइये कि मरे हुए आप का किस प्रकार से पालन कर सक्ते हैं, कैसे शोक का स्थान है कि जीते माता पिता जो हमारा सब प्रकार से पालन करते हैं उन को पितृ न समझ कर नाना भांति के क्लेश देते हैं, और मरने के पीछे पितृयज्ञ की आशा पर कठिन २ कार्य करते हैं और कुछ भी विचार नहीं करते, अब तो आप समझ गये होंगे कि पितृ जीते ही माता पिता को कहते हैं और श्राद्ध तर्पण भी जीते ही माता पिता का सम्भव है और मरे हुओं का असम्भव और बुद्धि के विपरीत है, अब मेरे प्यारे भाइयो सुन लीजिये कि पिण्ड देना और एकादशाह करना महाब्राह्मण को माल असबाब इत्यादि देना इसी भांति वर्षी चौवर्षी करना गया जाना इत्यादि सब मिथ्या और धोखे की टट्टी है, जैसे कि मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण है, और पिंड देना शब्द के अर्थ शरीर के हैं और शरीर बनाना माता पिता का काम है किसी और का नहीं और वह भी रीत्यनुसार, तो फिर जब माता पिता का काम पिण्ड देना है तो बड़े शोक की बात है कि लड़का बाप और मा के पिण्ड देता है और उस को अपने लिये योग्य समझता है और जानता है कि मैं उन के हक़ से अदा हो गया क्या इसी का नाम बुद्धि है ? टुक तो विचार कीजिये कि आप अपने माता पिता के कौन ठहरे अपने ही जी में समझ जाइये मुझे कहते लाज आती है यदि कोई आप से ऐसी बात कहे तो आशा है कि आप बहुत अप्रसन्न होवें परन्तु पिण्ड देने के समय बुद्धि से कुछ काम नहीं लेते इस के उपरान्त जब जीव दूसरे शरीर में चला गया तो फिर आप के पिण्ड देने की क्या आवश्यकता है वह तो बिदून आप के पिण्ड दिये पिण्ड पाता है, अब वर्षी चौवर्षी पर दृष्टि डालिये यह सब झूठी बातें हैं क्योंकि जो जीव तुरन्त दूसरे शरीर में चला जाता है और एक पल मात्र भी नहीं ठहरता वह किस प्रकार से एक वर्ष तक ठहर सकता है कि जिस के लिये आप वर्षी चौवर्षी करते हैं, अब गया जाने के विषय में विचार कीजिये तो प्रत्यक्ष

प्रकट है कि वेदादि सत्य शास्त्रों में लिखा है कि जीव अपने कर्मानुकूल शरीर धारण करता है और अन्यत्र भी ऐसा ही लिखा है जैसा कि " कर्म प्रधान विश्व कर राखा' जो जस कीन तैस फल चाखा"

अब बतलाइये कि गया जाने से आप के माता पिता आदि क्या अपने कर्मों के फलों से पृथक् हो सकते हैं ? कदापि नहीं, हां एकादशाह इत्यादि छोटे २ ठगों की ठगई है और यह बड़े २ उस्तादों के हाथ। यदि गया जाने का फल ठीक है तो वेद और शास्त्रों में आवागमन झूंठ है फिर मनुष्य के अच्छे कर्मों की क्या आवश्यकता है यह तो बहुत ही सहल गुटका हाथ आ गया कि सौ दो सौ रुपये में पाप से छूट जाता है, भाई टुक तो विचारो क्या आप यहां बुद्धि से भी काम नहीं लेते, और कामों में तो आप सब प्रमाणों की छान बीन करते हैं परन्तु यहां कुछ भी नहीं, इस के उपरान्त गया के पण्डे जो धन आप का लेते हैं वह सब मिथ्या कामों में व्यय करते हैं और पापभागी बनते हैं यह सब पाप आप के सिर पर है देखिये इन कर्मों के करने से आप का धन व्यर्थ जाता है और परिश्रम भी होता है, और पाप-भागी भी बनना पड़ता है, फिर बुद्धिमान् ऐसे कार्यों को क्योंकर करें जिस में अन्त को कुछ लाभ न हो, इसी भांति 'कट्टहा' के देने में पाप होता है क्योंकि यह कर्म वेदविरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं तिस पर प्रसन्न होकर हाथ जोड़ अपने मरे हुओं को वैकुण्ठ जाने की आशा करते हैं, मानों वैकुण्ठ का ठेका महाब्राह्मणों के हाथ में समझ लिया और यह भी विचार न किया कि नरक स्वर्ग किस का नाम और उस का दाता कौन है ॥

सुनिये संसार में वेदानुकूल चल मोक्ष प्राप्त करने ही का काम वैकुण्ठ और उस के विरुद्ध ही नरक और दुःख। दुःख सुख के देनेवाले मनुष्य के कर्म हैं। अब बतलाइये कि 'कट्टहा' जी किस प्रकार से वैकुण्ठ को भेज सक्ते हैं कि जिस के लिये नाना भांति से भेंट चढ़ाते हो। और जहां उसने प्रसन्न चित्त होकर आप की पीठ पर हाथ फेर दिया और सुफल बोली उसी समय आप फूले नहीं समाते मानों स्वर्ग में भेज ही दिया क्या ही सोच की बात है ॥

इसलिये हे मेरे प्यारे भाइयो ! झूंठी और मिथ्या बातों को छोड़कर जितना रुपया मरे पितरों के श्राद्ध और तर्पण में व्यय करते हो वह विद्य-मान पितरों के आदर सत्कार में व्यय कीजिये और दोनों लोकों में यश लीजिये ॥

बहुधा जन ऐसा कहते हैं कि राजा कर्ण जो बड़ा दानी था जब मरा तो मुक्त होकर स्वर्ग में पहुंचा उस ने रुपया और जवाहर बहुतायत से पुण्य किया था परन्तु अन्न बहुत कम, इसलिये उस के आगे स्वर्ग में सोने और जवाहर के ढेर लग गये परन्तु भोजनों को कुछ नहीं। तब राजा साहिब ने इस का वृत्तान्त पूंछा तो जान पड़ा कि तुमने अन्न बहुत कम पुण्य किया है तब राजा साहिब ने पन्द्रह दिन की और भी आज्ञा मांगी कि मैं वहां जाकर अच्छे प्रकार दान करलूं यह प्रार्थना उस की स्वीकृत हुई और उस ने आकर पन्द्रह दिन तक अच्छे प्रकार से भोजन कराये यहां तक कि उस को इतना छुटकारा न मिला कि बाल बनवाता और वस्त्र धुलवाता, देखना चाहिये कि मोक्ष सर्व दुःखों के छूटने को कहते हैं अर्थात् सदा परमानन्द में रहने का नाम मोक्ष है फिर जब वह मुक्त होगये फिर भी खाने का दुःख ही बना रहा और स्वर्ग के अर्थ भी सुख के हैं। इसलिये यही जान पड़ता है कि मोक्ष और स्वर्ग के अर्थ ही नहीं समझें। इसके अतिरिक्त और भी विचार करो कि जब उस की यह प्रार्थना स्वीकृत हुई तो बतलाइये राजा ऊपर से किस प्रकार से आया अर्थात् गर्भाधान की रीति से या ऊपर से गिरपड़ा और आते समय उस की अवस्था क्या थी लड़कपन वा तरुणाई वा बुढ़ापा। यदि कहो गर्भाधान के द्वारा उत्पन्न हुआ तो राज्याधिकारी होना कठिन है और इस कार्य के अर्थ बहुत समय की आवश्यकता है क्योंकि नौ महीने गर्भ में रहना फिर उत्पन्न होकर बड़ा होगा तब ब्राह्मण खिलाने के योग्य होगा। और उस को आज्ञा पन्द्रह दिन तक रहने ही की थी, यदि कहो कि ऊपर से गिरपड़ा तो यह वार्त्ता सृष्टिक्रम के अन्यथा है न कभी ऐसा हुआ न होगा दूसरे यह कि जीव तो मुक्त होकर स्वर्ग को गया था और शरीर यहां जला दिया गया था तो क्या वह जीव दूसरा शरीर धारण करके ऊपर से आया था, नहीं तो विना शरीर के पहचानना अत्यन्त कठिन है। इस के उपरान्त कर्ण कलियुग के आदि में हुए हैं इस से ज्ञात होता है कि सतयुग, द्वापर, त्रेता युगों में यह कार्य प्रचलित न था। यदि कोई कहे कि दान देना तो उचित है वह किसी प्रकार से दिया जाय, तो हम कहते हैं कि दान देना अत्यन्त ही योग्य है परन्तु जब लोग गपोड़े मार कर माता पिता आदि के नाम से धोका देकर ठगई का बाज़ार गर्म करके लूटते चले जावें तो यह पुण्य नहीं

कहावेगा इसलिये इस प्रकार कदापि पुण्य न करना चाहिये। इस के उपरान्त इन दिनों में वर्षा के अन्त होने से वायु भी बिगड़ जाती है और भोजनों में पूरी, कचौड़ी, घुइयां इत्यादि बराबर पन्द्रह दिन तक समय और कुसमय पर खाने में आती हैं इसलिये विशेष कर हैज़ा आदि रोग उत्पन्न कर नाना भांति से दुःख देते हैं और अनेकान यमपुर को भी चले जाते हैं तो बतलाइये कि इस का अपराध यजमानों के सिर पर है या ब्राह्मणों या पुरुषाओं या राजा कर्ण के ? ॥

हे प्यारे सुजनो ! यह सब बातें मिथ्या हैं और स्वार्थियों ने अपने पेट भरने के लिये राजा कर्ण का नाम लेकर अपना प्रयोजन निकाला है यदि राजा कर्ण की मोक्ष हो गई तो वहां उन को किसी बात की भी कमी नहीं, यदि मुक्ति नहीं हुई तो नहीं मालूम कि उन्हों ने किस प्रकार किस योनि में जन्म लिया यहां आवागमन चला आता है जो पन्द्रह दिन में यह सब होना असम्भव है इसलिये राजा कर्ण से पहिले जैसे हमारे और आप के पुरुषे जिस रीति पर चलते थे उसी रीति अर्थात् वेदानुकूल ही चलना चाहिये, जैसा कि यजुर्वेद अध्याय २० मं० ३४ में लिखा है—

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परि
स्रुतम् । स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥

ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं, जैसा कि उन्हों ने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम को पाला है, वैसे ही हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं, जिस से हम लोगों के बीच से विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों ॥

इस के उपरान्त गरुड़पुराण में लिखा है कि जीव एक अंगूठे के समान या प्रेत हो कर भ्रमता रहता है और इसीलिये दस दिन तक एक एक पिण्ड आटे का इस को खिलाते हैं, दसवें दिन जब वह पिण्ड खाकर मोटा ताज़ा हो जाता है तब ग्यारहवें दिन एक बड़ा भारी पिण्ड जिस को सपिण्डी कहते हैं बनाते हैं फिर मन्त्रों के बल से उस में प्रेत को बुलाते हैं फिर एक कुश के तिन के से महाब्राह्मण सपिण्डी के तीन बराबर भाग करता है और प्रत्येक भागको ऊपर

के पितरों में मिला देता है अर्थात् एक भाग को बाप में, दूसरे को दादा में और तीसरे को परदादा में, इसी भांति स्त्रियों को। मानो एक प्रेत को काट २ कर तीन स्थानों में मिलाते हैं तब वह प्रेत से पितर हो जाते हैं, इस सब के उपरान्त यह भी जानना चाहिये कि गरुड़पुराण में जो गरुड़ एक प्रकार का पक्षी है इस के और परमात्मा के प्रश्नोत्तर हैं और उस परब्रह्म ने गरुड़ से सब वृत्तान्त कहा है अब आप टुक तो विचार कीजिये यदि ईश्वर को वर्णन करना ही आवश्यक था तो क्या कोई मनुष्य इस योग्य न मिला कि जिस से यह सब वृत्तान्त कहते, दूसरे गरुड़ से मनुष्य के मृतकसंस्कार का हाल कहने से क्या लाभ? यदि गरुड़ को हाल बताना ही था तो सांपों को बताना था कि अमुक स्थान पर सांप है और अमुक समय पर तुम को मिल सकते हैं तो आशा है कि गरुड़ अपना भक्षण पाकर प्रसन्न होता। यह मिथ्या और बुद्धि के विरुद्ध बाते हैं—केवल प्रत्येक प्रकार से अपना ही प्रयोजन निकाला है। मान्यवरो! यदि आप मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण मानेंगे तो बहुतसी शङ्काएं इस विषय में ऐसी उत्पन्न होंगी कि जिन का समाधान होना बिलकुल असम्भव हो जायगा प्रथम तनिक ध्यान दीजिये कि श्राद्ध क्यों किया जाता है तो ज्ञात होता है कि अपने २ पुरुषाओं को आराम देने के अर्थ। क्या महाशय! आप किसी प्रकार अपने मरे हुए पुरुषाओं को आराम पहुंचा सकते हैं?। कभी नहीं क्योंकि वेदादि सत्यशास्त्र पुकार २ कह रहे हैं कि मनुष्यों को अपने ही किये हुए कर्मों का फल मिलता है मरने पर माता पिता पुत्रादि कुछ नहीं कर सक्ते देखिये य० अ० २ मं० २८ में लिखा है:—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकम्।
तन्मेराधीदमहं य एवास्मि सोऽस्मि॥

जैसा प्राणिमात्र कर्म करता है वैसे ही फल को पाता है प्राणी अपने कर्मविरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इसलिये सुख भोगने के लिये धर्म युक्त कार्य्यों को करे जिस से कभी दुःख न हो और मनु० अ० ४ श्लोक २३८ में भी ऐसा ही लिखा है जैसा कि—

नामुत्र हि सहायार्थं पितामाता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

प्रत्यक्ष भी जान पड़ता है कि जो मनुष्य भोजन करता है उसी की भूख जाती है और जो औषधि पान करता है उसी का रोग नाश होता है इस के अतिरिक्त कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ फिर भला आप के कर्म आप के पुरुषाओं को क्यों कर आराम पहुंचा सक्ते हैं तुलसीदास ने भी कहा है—

"कर्मप्रधान विश्व कर राखा। जो जस कीन तैस फल चाखा" ॥

क्या कोई कार्य्य संसार में ईश्वरीय नियम के विरुद्ध भी हो सक्ता है कदापि नहीं गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है धर्मयुक्त कार्य्य करने से किसी की दुर्गति नहीं होती। महाभारत में लिखा है एक ही मनुष्य पाप करता है वही भोगता है। श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अ० २४ पूर्वार्द्ध श्लोक १४ में लिखा है कि कर्म का फल कर्त्ता ही को मिलता है अन्य को नहीं। स्कन्ध ११ अ० ४९ में अक्रूर जी महाराज ने धृतराष्ट्र जी से कहा है कि जीव अकेला ही जन्म लेता है अकेला ही मरता है अकेला ही पाप पुण्य को भोगता है जैसा कि—

एकः प्रसूयते जन्तुरेकएव प्रलीयते।
एकोनुभुङ्क्ते सुकृतमेकएव च दुष्कृतम्॥

इस से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिस मनुष्य ने अपने जीवन में धर्म का सञ्चय किया उस को अवश्य ही सुख मिलेगा वरन मरने पर अन्य सम्बन्धी किसी कार्य्य को कर उस को सुख नहीं पहुंचा सक्ते। इस के उपरान्त पौराणिक मतानुसार मा बाप के मरने के पश्चात् गया को जाते हैं और वहां श्राद्ध करते हैं तत्पश्चात् फिर श्राद्ध करने की आज्ञा नहीं है इस से श्राद्ध नित्यकर्म नहीं हो सक्ता परन्तु वेदादि सत् शास्त्रों में नित्य श्राद्ध करने की आज्ञा पाई जाती है। इस के उपरान्त जहां वस्तु और सुख का भोक्ता होता है वहीं सुख होता है अन्यथा नहीं। जहां जल और प्यासा होता है वहीं प्यास शान्त होती है। जहां दीपक होता है वहीं उजाला होता है। फिर भला यदि आप ने अपने पुरुषाओं के सुख पहुंचाने के लिये ब्राह्मणों को भोजन भी कराये तो क्या उन को सुख मिल सक्ता है कदापि नहीं। क्या मैं खाकर आप की तृप्ति कर सक्ता हूं यदि हो सक्ता है तो अति ही सुन्दर। इस से हमारे परदेश में रहने वालों को भोजनादि बनाने और खाने पीने का भी कष्ट दूर होना सम्भव था। परन्तु ऐसा नहीं होता, यदि मरों ही का श्राद्ध करना सनातन समझा जावे तो महाशय बतलाइये कि सृष्टि की आदि

में जो ब्रह्मादि उत्पन्न हुए थे उन्होंने किस का श्राद्ध किया होगा। यदि इन असम्भव बातों को मान भी लें तो बतलाइये जो मरते हैं वे कहां जाते हैं यदि पृथ्वी पर जन्म लेते हैं तो श्राद्ध में बुलाते समय कैसे पहुंचते हैं यदि जीव ही श्राद्ध में जाता है तो जब तक वह वहां रहे उस का शरीर मर-जाना चाहिये परन्तु यह हम को दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि यह प्राणी अन्य ही लोकों में उत्पन्न होते हैं तो पृथ्वी पर यह नये आत्मा कहां से आते हैं यदि जीव आत्मा असंख्य माने जावें तो भी इस दशा में उन का अन्त होना सम्भव हुआ क्योंकि जिस मनुष्य के पास बहुत धन हो और आमदनी कुछ भी न हो वरन व्यय ही होता रहे तो कभी न कभी उस के धन का अन्त अवश्य ही होगा ॥

यदि जीव आत्मा नया उत्पन्न होता है तो उस का शरीर के तुल्य मरना भी सम्भव होगा फिर कर्मों का भोगने वाला कौन रहा कि जिस को वेदादि शास्त्र पुकार २ कर कह रहे हैं क्या यह सब झूंठे हैं ?। और धर्म अधर्म क्यों माना ? क्या यह झूंठ है नहीं नहीं नहीं। यदि जीवात्मा नया ही शरीर के साथ उत्पन्न हुआ तो उस को विशेष दुःख सुख क्यों हुआ क्योंकि वह पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ था और बुरा भला कर्म भी नहीं किया यदि ऐसा माना जावेगा तो मनु आदि ऋषियों के वाक्य झूंठे होजावें गे कि सत्त्वगुणी लोग देवता होते हैं रजोगुणी मनुष्य और तमोगुणी पशु आदि योनियों में उत्पन्न होते हैं जैसा कि—

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥

इन उपरोक्त बातों से सिद्ध हुआ कि मरों का श्राद्ध करना बिलकुल अ-सम्भव है इस लिये इस का मुख्य कारण यही जान पड़ता है कि पहले स-मय में मनुष्य विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण और अपने पुरुषाओं को भोजनादि से तृप्त करते थे परन्तु जब ब्राह्मणों ने अपने कर्म धर्मों को त्याग दिया और अविद्यारूपी अन्धकार छागया तो उन्होंने जाना कि अब हमारा श्राद्ध न होगा इस लिये उन्होंने यह परिपाटी चलाई होगी कि जो तुम हम को खिलाओगे तो तुम्हारे बाप दादे को मिलेगा क्योंकि संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने लिये मांगना बहुत बुरा मानता है इस के अतिरिक्त जब वह जीते

थे तब नाना प्रकार की कमाई करके हम को खिलाकर प्रसन्न होते थे और शेष हमारे लिये जमा करते थे आप तीन वार भोजन करते थे कई वार जल पीते थे अब मरे पश्चात् ब्राह्मणों के खिलाने से प्रसन्न होते हैं और केवल एक साल में एक ही दिन भोजन खाने लगे—यह सब असम्भव बातें हैं ॥

प्यारे भाइयो ! इन सब बातों से सिद्ध होता है कि जीते माता पिता की सेवा टहल ही का नाम श्राद्ध तर्पण है फिर भला ब्राह्मणों को खिलाने, गयादि जाने और महाब्राह्मण (कट्टहा) के देने से क्या लाभ हो सक्ता है वरन पाप ही होता है क्योंकि उपरोक्त जन इस प्रकार के पाए हुए धन को बुरे कर्मों में व्यय करते हैं नाना प्रकार के पाप कर्म करते हैं जिन का पाप भी दाता ही के सिर होता है इस के अतिरिक्त इन कर्मों के करने से सत्यग्रन्थों की आज्ञाए भङ्ग होती हैं देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध अध्याय १ श्लोक ३९, ४० में लिखा है जिस समय शरीर का अन्त होता है उस समय जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार परवश हो दूसरे देह को प्राप्त हो पूर्व देह को त्यागता है जैसे चलते समय मनुष्य अगले पांव को धर लेता है तब पिछले पांव को उठाता है और जोंक भी इसी भांति अगले तृण को पकड़ कर पिछले को छोड़ती है उसी भांति जीवात्मा कर्मों के बस और देह को प्रथम ग्रहण कर इस पूर्व देह का त्याग करता है जैसा—

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥
व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥

फिर आप की वर्षी चौवर्षी और कनागतों में धनादि व्यय करने से क्या लाभ? पाठकगणो! कैसे अन्याय की बात है कि आप केवल अपने मा बाप दादा दादी के अर्थ तो कनागतों में ब्राह्मणों को नाना प्रकार के उत्तम २ भोजन खिलाते हो और उन के बाप दादों आदि का ध्यान भी नहीं करते क्या वह आप के पूज्य नहीं थे ? क्या आप उन के वंश में नहीं हैं ? क्या यह आप के बाप दादों को प्रिय हो सक्ता है ? जब कि उन के माता पिता उन के सम्मुख भूखे बैठे रहें जिन को वह भोजन करा कर आप भोजन करते थे

मान्यवरो ! क्या यह बातें आप के धर्मशास्त्रों पर धब्बा नहीं लगातीं अवश्य ही । यह विषय वेदादि ग्रन्थों में नहीं है हां वेदों का वचन है कि मनुष्य को अपने पिता माता दादा दादी परदादा परदादी की धन्यवाद पूर्वक आयुपर्य्यन्त नित्यप्रति सेवा करनी चाहिये क्योंकि इस असार संसार में सम्भव नहीं है कि कोई मनुष्य अपने दादे के पिता की भी सेवा कर सके इसलिये विद्यमान माता पिता आदि का शिष्टाचार नम्रतापूर्वक करना योग्य है क्योंकि शिष्टाचार मनुष्यों के सत्स्वभाव का दर्पणस्वरूप निर्मल और प्रदेशान्त नदी के तट वृक्ष लतादिकों का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार परिलक्षित होता है तिसी प्रकार बोल चाल आचार व्यवहार के देखने से मनुष्यों के भीतरी भाव का अनुभव होता है चाहे कोई किसी अवस्था में क्यों न हों शिष्टाचार के द्वारा अवश्य वे प्रशंसा लाभ कर सकते हैं क्योंकि मधुर वचन के बोलने से सम्पूर्ण जीव सन्तुष्ट होते हैं जैसा कि कहा है—

मधुर वचन से जात मिट उत्तम जन अभिमान ।
तनक शीत जल सों मिटै जैसे दूध उफान ॥

इस कारण जो कोई इस को त्यागन करता है मानों वह अपनी जड़ आप काटता है, क्योंकि यह ऐसा मन्त्र है कि जिस के धारण करने से सब जीव वश में हो जाते हैं देखिये जो कोई शिष्टाचार सहित प्रिय वचन बोलते हैं वह बड़ी २ आपदाओं को सुगमता से टाल देते हैं, और जिन पुरुषों में यह शक्ति होती है वही देश का नाना भांति से उपकार कर सकते हैं क्योंकि शीतलता से कार्य सिद्ध होते हैं, इसी के द्वारा सहस्त्रों जनों को अपना बना राज्य कर लेते हैं, यह वह पदार्थ है कि जिस से सिंह से घातक जीव आधीन हो जाते हैं शत्रु के मन में भी शीतलता से दया आजाती है, सच पूंछो तो वशीकरण मन्त्र यही है जैसा कि कहा है—

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजत चहुं ओर ।
वशीकरण यह मन्त्र है तजदेउ वचन कठोर ॥

प्यारे भाइयो ! जो संसार में सुख की इच्छा हो तो कदापि कटु वचन और व्यङ्ग शब्द न उच्चारण करो यह विदेश में भी अपमान कराता है और विदुर जी ने भी कहा है कि सुन्दर वाणी के बोलने से संसार में अनेकान सुख मिलते हैं देखो श्रीरामचन्द्र जी ने अपने मधुर और शीतल वचनों से

परशुराम के क्रोध को ऐसा शान्त किया कि वह मारने के पलटे आशीर्वाद देकर वन को चले गये ॥

सत्य तो यह है कि जिन मनुष्यों में यह शक्ति है वही यथार्थ मनुष्य हैं वह अपने सेवकों और टहलुओं से भी ऐसा काम लेसकते हैं कि अन्य की सामर्थ्य नहीं हो सकती, इस के अतिरिक्त राजाओं में प्रतिष्ठा मिलती है सामान्य जन उन का सत्कार करते हैं ॥

इस लिये सर्व शास्त्र और बुद्धिमानों की यही शिक्षा है कि अपने बड़ों का शिष्टाचार नम्रतापूर्वक प्रिय वाक्यों से करे क्योंकि इसी से सर्वजीवों को आनन्द प्राप्त होता है जैसा चाणक्य ऋषि ने कहा है–

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

इसलिये माता पिता के उपरान्त मामा, चाचा, श्वशुर, ऋत्विज् और गुरु को जो अपनी अवस्था से छोटे भी हों तो भी उन को नमस्ते करना योग्य है ॥

नमस्ते ॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में संस्कृत विद्या के प्रचार न होने के कारण देश भाषा के शब्द प्रतिदिन छूटते जाते हैं और दूसरी भाषा के शब्द प्रसन्न चित्त होकर बोलते और अनेकान पुरुष कुछ का कुछ अर्थ समझा देते हैं कि जिस के कारण बहुधा हानि होरही है जैसा 'नमस्ते' शब्द की दुर्दशा करदी है ॥

प्यारे सुजनो ! 'नमस्ते' यह शब्द यौगिक है 'नमः+ते' 'नमः' का अर्थ झुकना, नवना, मान करना, सत्कार करना । 'ते' युष्मद् शब्द की चौथी विभक्ति है जिस के अर्थ तुम को, तुम्हारे लिये । जब यह दोनों शब्द मिलते हैं तो व्याकरण की रीति से 'नमः' के विसर्ग का 'स्' हो जाने से 'नमस्ते' वाक्य बन जाता है जिस का यह अर्थ है कि आप के सम्मुख झुकता हूं, नवता हूं, आप का मान करता हूं, बड़ा समझता हूं इत्यादि । मुख्य अभिप्राय छोटों को बड़ों का शिष्टाचार करने का है और शिष्टाचार के अर्थ सत्कार के हैं जैसा कि बड़ों के आने पर उठ कर खड़ा होना, शिर झुकाना वा शिर नवाना अर्थात् 'नमस्ते' करना, ऊंचे स्थान पर विठाना, प्रियभाषण करना आदि शिष्टाचार कहलाता है जैसा वर्त्तमान समय में प्रचलित है अर्थात् जब कोई

मनुष्य छोटे के स्थान पर जाता है वा अन्य स्थान पर मिलता है तो नवता है और नाना भांति से आदर सत्कार करता है। आज कल जो 'नमस्ते' कहना अच्छा नहीं जानते परन्तु उस के अर्थों पर प्रतिदिन चलते हैं उस का कारण अविद्या ही है ॥

स्वार्थीजनों ने 'नमस्ते' के अर्थ इस प्रकार सुना दिये हैं कि 'मस्ते' माथे अर्थात् मस्तक को कहते हैं 'न' निषेध का चिह्न है अर्थात् नमस्ते के अर्थ बेशिर के हैं। हा शोक ! हा शोक !!

प्यारे सुजनो ! यह संस्कृत विद्या के त्यागने ही का कारण है यदि हम व्याकरण जानते तो पण्डित जी के ऐसे अनगढ़ बेजोड़ अर्थ को न सुनते, परन्तु सत्य छुपाये से भी तो नहीं छुपता। यदि आप कुछ भी बुद्धि से विचारें तो स्पष्ट सिद्ध होजावेगा कि नमस्ते के अर्थ बेशिर के नहीं हैं क्योंकि बहुधा ग्रन्थों में नमस्ते पद आया है जिन पुस्तकों का प्रायः नित्यप्रति पाठ करते वा उन की कथा सुना करते हैं तिस पर भी यह अन्धेर ! देखिये।

विष्णुसहस्रनाम में लिखा है:—

ओं नमोस्त्वऽनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने।
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोस्तुते ॥

पार्थिवपूजन में लिखा है—

नमस्ते भगवन् रुद्र देवाय रसानां पतये नमः।
सर्वोपासितरूपाय सुरासुरपतये नमः ॥

श्रीमद्भागवत में "नमः, नमो, नमस्ते, पद आया है। और पाण्डवगीता में लिखा है कि—गोविन्द गोविन्द नमोनमस्ते।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

देवीभागवत में लिखा है—

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे नमस्ते जगद्व्यापिके चित्स्वरूपे॥
नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते जगत् तारिणि त्राहि दुर्गे नमस्ते ॥

सारस्वत में लिखा है—

नमस्ते भगवन्भूयो देहि मे मोक्षमव्ययम् ।

सत्यनारायण में लिखा है—

नमस्ते वाङ्मनोतीतरूपायानन्तशक्तये ।
आदिमध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥

दुर्गापाठ के ५ अ० के श्लो० १३ से लेकर ७९ तक अनेक स्थानों पर नमस्ते शब्द आया है इसी भांति और २ पुस्तकों में भी यह शब्द पाया जाता है॥

अब तो स्पष्ट प्रकट हो गया कि नमस्ते के अर्थ बेसिर के नहीं है और भी सुनिये कि आज कल के पण्डित और अनपढ़ ब्राह्मण जब आपस में मिलते हैं तो नमस्कार करते हैं जो इसी 'नमस्ते" शब्द से बना है क्या उस के भी बेसिर वाले के अर्थ हैं कदापि नहीं, कदापि नहीं, कदापि नहीं। हां इतना अन्तर अवश्य है कि 'नमस्कार' ब्राह्मणों ने इस समय अपने लिये बना लिया है और अन्य वर्ण के लिये 'राम राम' बतादी है इसी कारण 'नमस्ते' के अर्थ ऐसे उलटे समझाते हैं धन्य पण्डित जी ! आपने तो वेदमन्त्रों के 'नमस्ते' पद का अर्थ पलट दिया क्यों न हो पण्डिताई तो इसी का नाम है, देखिये वेद में लिखा है—

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥

(य० अ० ३६ मं० २१)

नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इति । य० अ० १६ मं० १
नमस्ते आयुधायानाततायेति । य० अ० १६ मं० १४
नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय चेति । य०अ०१६ मं० २९

भ्रातृगणो ! वैद्यकग्रन्थ के कर्त्ता वाग्भट जी ने इस विद्या के पूर्व आचार्यों को नमस्ते किया है देखो सूत्रस्थान श्लोक २—"नमोऽस्तु"—

क्या यहां भी (नमस्ते) के अर्थ बेसिर के हैं कदापि नहीं, कदापि नहीं, कदापि नहीं ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट हो गया कि अनादि

काल से नमस्ते पद चला आता है यही कारण है कि प्राचीन पुरुष मिलने के समय नमः, नमस्ते—करते थे देखो—श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय ४९ श्लोक १३ में कुन्ती ने श्रीकृष्ण महाराज को (नमः) अर्थात् नमस्ते किया—

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परात्मने ॥

ऐसा ही प्रश्नोपनिषद् अध्याय ६ श्लोक ८ में पिप्पलादादि ऋषियों को सुकेशादि ऋषियों ने (नमः) ही पद उच्चारण किया है—श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय ५२ में श्रीकृष्ण महाराज ने उत्तम ब्राह्मणों को (नमस्ते) किया है—

विप्रान् स्वलाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ।
निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥३३॥

देखो बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि राजा जनक ने आसन से उठ कर याज्ञवल्क्य जी को नमस्ते कर कहा है कि हे भगवन् ! मेरे को पढ़ाओ—

जनको ह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्ते
याज्ञवल्क्यानुमाशाधीति ॥ बृ० अ० ६ ब्रा० २

गीता अध्याय ११ श्लोक ३९ से स्पष्ट प्रकट होता है कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण महाराज को नमस्ते किया था—

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वम् प्रपितामहश्च ॥
नमोनमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमोनमस्ते ।३८।

प्यारे सज्जनो ! जब हमारे प्राचीन पुरुष नमस्ते करते थे फिर हम को क्या सन्देह ? क्योंकि इतरजनों को वही कर्म करने चाहियें जिन को श्रेष्ठ पुरुषों ने किया हो—यही सत्य शास्त्रों की आज्ञा है इस के उपरान्त सीता महारानी ने (विराध) नाम राक्षस से कहा कि हे राक्षसों में उत्तम ! मैं तुम को नमस्ते करती हूं मुझे इस वन में शार्दूल और रीछ आदि खा जांयगे तू मुझ को हर ले और रामलक्ष्मण को छोड़ दे देखो वाल्मीकिरामायण आरण्यकाण्ड सर्ग ४ श्लोक ३—

मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा ।
मांहरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ॥

मान्यवरो ! जब सीता महारानी ने राक्षस को नमस्ते की तो फिर हम को आपस में नमस्ते करना क्या अनुचित है और हम "राम राम" कहने

को बुरा नहीं समझते क्योंकि जो सब में रमा हो उस को राम कहते हैं और इस कारण से राम नाम परमेश्वर का है इसका स्मरण रखना अच्छा ही है अपन्तु शिष्टाचार के समय राम राम कहने से आदर सत्कार का कोई अर्थ नहीं निकलता इसलिये प्रत्येक शब्द के अर्थ को समयानुकूल बोलना सभ्यता का काम है अन्यथा यह लक्षण मूर्खों का ही है। इस के उपरान्त जब हम किसी ब्राह्मण वा पण्डित से मिलें तो कहते हैं कि महाराज पालागें अर्थात् मैं पैर छूता हूं वा पायं पड़ता हूं तब वह उत्तर देते हैं कि प्रसन्न रहो, आनन्द रहो और जब वह आपस में मिलें तो एक दूसरे से कहते हैं "नमस्कार" कैसे शोक की बात है कि जब हम आपस में अपने बड़ों से मिलें तो उनका शिष्टाचार न करें और परमेश्वर का स्मरण करें, यह हमारे पूज्य ब्राह्मण जब आपस में मिलें तो एक दूसरे का शिष्टाचार करें क्या अपने लिये राम राम उत्तम पद का स्मरण करना उत्तम नहीं समझते? इसी स्वार्थ ने तो देश को साफ़ कर दिया। इस लिये मान्यवरो! अब इन उपरोक्त बातों को स्मरण कर शिष्टाचार के समय प्रत्येक स्त्री पुरुषों को नमस्ते शब्द का प्रचार करना अभीष्ट है क्योंकि परमात्मा वेद में हम को आज्ञा देते हैं ॥

यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ३२ में लिखा है कि जब परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब (नमस्ते) इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़ों छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणादिकों वा ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें जैसा कि—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

नमः । ज्येष्ठाय । च । कनिष्ठाय । च । नमः । पूर्वजायेति पूर्वऽजाय । च । अपरजायेत्यपरऽजाय । च । नमः । मध्यमाय । च । अपगल्भायेत्यपऽगल्भाय । च । नमः । जघन्याय । च । बुध्न्याय । च ॥

इन के उपरान्त मौसी, सास, फूफी भी गुरु की स्त्री के समान हैं इसलिये उन की भी सेवा टहल गुरु की स्त्री की भांति करना चाहिये और फूफी और बड़ी मौसी को माता के तुल्य समझना उचित है। शिष्टाचार करने के समय और अन्य स्थानों पर भी शील को न त्यागना चाहिये देखिये मनु

जीने लिखा है कि जो मनुष्य सदा नम्रतायुक्त शीलसहित प्रतिदिन विद्वान् और वृद्धों को अभिवादन और उन की सेवा करते हैं उन की आयु, विद्या, कीर्त्ति और बल यह चार पदार्थ बढ़ते हैं जैसा कि—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

फिर भला जब ऐसी सेवा से उपरोक्त फल मिलते हैं कि जिन का प्रत्यक्ष प्रमाण भी है तो कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि किसी प्रकार के घमण्ड में आकर शिष्टाचार को त्याग अप्रिय कठोर और असत्य वचन बोलकर चारों पदार्थों को खोदें ॥

इन बातों के उपरान्त यह भी स्मरण रखना योग्य है कि जिस आसन पर बड़े मनुष्य बैठे हों उस पर आप न बैठे यदि आप आसन पर बैठा हो तो उठकर आसन छोड़कर उन को प्रणाम करे और स्थान दे और कभी ऐसे परोपकारी सज्जन पुरुषों के सम्मुख पैर फैलाकर अथवा सहारा देकर न बैठे और न प्रश्न के अतिरिक्त अधिक उत्तर दे और उन के पीछे गमन भाषणादि की नकल न करें ॥

बलिवैश्वदेव ॥

यह चतुर्थ नित्यकर्म है देखो मनुस्मृति अ० ३ श्लो० ८४ में स्पष्ट आज्ञा है कि यथावत् प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करना चाहिये—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

और गीता अ० ४ श्लो० ३१ में लिखा है कि जो यज्ञ करने के पीछे अमृतरूपी अन्न को भोजन करते हैं वह सनातन ब्रह्म को पाते हैं और जो इन यज्ञों को नहीं करते उन को इस लोक और परलोक में सुख नहीं मिलता और अ० ३ श्लो० १३ में भी इस कार्य्य की बहुत प्रशंसा की है जैसा—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ४।३१।
यज्ञाशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ ३।१३।

ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ में भी लिखा है। इन के अतिरिक्त व्यासस्मृति अ० २ श्लो० २८। विष्णुस्मृति अ० २ श्लो० ३५। हारीतस्मृति अ० १ श्लो० २६ में भी प्रतिदिन वैश्वदेव करने की आज्ञा है। कात्यायनस्मृति खण्ड १२ श्लो० १० में लिखा है जो दोनों काल बलिवैश्वदेव नहीं करता वह पापभागी होता है। पराशरस्मृति श्लोक ५६ में लिखा है कि जो द्विजाति विना बलिवैश्वदेव किये भोजन करते हैं वे कौवे की योनि में जाते हैं॥

अतिथिसेवा ॥

मान्यवरो! गृहस्थ पुरुषों के उद्धार के अर्थ अतिथि ही देवतास्वरूप है जैसा कि तैत्तरीयउपनिषद् में लिखा है कि "अतिथिदेवोभव"—और यथार्थ में यही साक्षात् मूर्त्तिपूजा है—क्योंकि अतिथि की यथावत् सेवा करने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है अर्थात् इन्हीं के सत्सङ्ग से मनुष्य दोनों लोकों से आनन्द उठाता है प्रियवरो! इस असार संसार के पार करने के लिये अतिथि ही नावरूप है इसी कारण प्रतिदिन अतिथिसेवा करने की आज्ञा वेदादि सत्यशास्त्रों में पाई जाती है। देखिये यजु० अ० ३ मं० ४२ में लिखा है कि जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उन की सेवा गृहस्थों को निरन्तर करना चाहिये औरों की नहीं। जैसा कि—

येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ॥
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ९४ में मनु जी ने स्पष्ट आज्ञादी है बलिवैश्वदेव के पश्चात् अतिथि को भोजन कराये और विधिपूर्वक संन्यासी और ब्रह्मचारी को भिक्षा दे—

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमातिथिं पूर्वमाशयेत् ।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥

और ऐसा ही व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ३९, ४० और विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३८, ३९ हारीतस्मृति अ० ४ के श्लोक ५७ और शङ्खस्मृति अ० ५ के श्लोक १३ और याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ श्लोक १०७ में भी लिखा है जैसा कि—

पादधावनसम्मानाभ्यञ्जनादिभिरर्चितः ।
त्रिदिवं प्रापयेत्संद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥

कालायतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः ।
द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥४०॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ।३८।
तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ।
कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना ।
स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः ।५७।
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा ।
गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥१३॥
आतिथित्वेन वर्णानां देयं शक्त्यानुपूर्वशः ।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपिवाग्भूतृणोदकैः ॥१०७॥

इन सब श्लोकों का तात्पर्य्य यह है कि जब गृह पर अतिथि पधारे तब उठकर नम्रतापूर्वक उस को आसन दे, पैर धोवे, उत्तम भोजन करावे फिर विद्या का विचार करे यही अतिथियज्ञ स्वर्ग की प्राप्ति का द्वारा है इसी से गृहस्थ की उन्नति होती है और कात्यायनस्मृति खं० १२ में लिखा है कि अतिथि-पूजन को ही मनुष्ययज्ञ कहते हैं—लिङ्गपुराण अध्याय २९ श्लोक ४८ में भी लिखा है कि अतिथि का अपमान न करे क्योंकि अतिथि साक्षात् शिव स्वरूप है इसलिये अपने शरीर को अर्पण करने में कुछ सन्देह न करे अर्थात् अच्छे प्रकार सेवा करे जैसा कि—

त्वया वै नावमन्तव्या गृहे ह्यतिथयः सदा ।
शर्व्वएव स्वयं साक्षादतिथिर्यत् पिनाकधृक् ।
तस्मादतिथये दत्त्वा आत्मानमपि पूजयेत् ॥

विदुर जी ने कहा है कि जो अतिथियों का यथायोग्य सत्कार करता है उस का इस संसार में यश होता है। वनपर्व अ० २ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि अतिथिसेवा करना परमधर्म है और अध्याय १८४ में महात्मा

(वक) ने इन्द्र को उपदेश किया है अतिथि के आदर सत्कार से गौ दान के समान फल होता है शान्तिपर्व अ० २२१ में भी भीष्मपितामह ने कहा है कि जो मनुष्य अतिथियों को प्रतिदिन भोजन कराते हैं उन को (अमृताशी) कहते हैं और अ० २४२ में लिखा है कि अतिथि की यथावत् सेवा करने से चन्द्रलोक मिलता है अनुशासनपर्व के अ० २ में गृहस्थ का परम श्रेष्ठ धर्म अतिथिसत्कार कहा है अरण्यकाण्ड में अगस्त्य मुनि का वचन है कि हे रामचन्द्र! जो तपस्वी होकर अतिथियों का सत्कार नहीं करता वह झूंठी साक्षी देने वालों के समान परलोक में जाकर अपना मांस आप भोजन करता है—प्रियवरो! जब तपस्वियों की यह दशा होगी तो फिर गृहस्थों की दुर्दशा का क्या ठीक! मनु जी ने कहा है कि जो गृहस्थ अतिथि से प्रथम आप भोजन करता है उस को दूसरे जन्म में कुत्ते और गिद्ध खाते हैं श्रीमद्भागवतस्कन्ध ५ अ० २६ श्लोक ३५ में लिखा है जो गृहस्थ अतिथि को बारम्बार क्रोध की दृष्टि से देखते हैं उन की आंखें गीध, कौआ, बटेर इत्यादि मरने पर निकालते हैं। पराशरस्मृति श्लोक ४६ में लिखा है कि जो अतिथि का सत्कार नहीं करता उस को हज़ारों घड़े घृत के होम से कुछ लाभ नहीं होता और श्लोक ५८ में लिखा है कि जो बलिवैश्वदेव और अतिथि का सत्कार नहीं करते नरक वा कौवे की योनि में जाते हैं ॥

भ्रातृगणो! वैदिक समय में बहुधा संन्यासियों और वानप्रस्थों की अतिथियों में गणना की गई थी जो अपनी आयु के दो वा तीन भाग संसारी आनन्दों में व्यतीत करके सब प्रकार से सन्तुष्ट होजाते थे जिस से उन का मन फिर संसारी वस्तुओं की ओर कभी स्वप्न में भी न झुकता था। संसार के सम्पूर्ण भेदों को जानकर नियमपूर्वक संन्यासी होते थे जिन की कहीं भी नियत कुटी नहीं होती थी जो प्रत्येक नगरों में जाकर भयरहित होकर वेदरूपी सत्धर्म्म का उपदेश करते थे। इसी कारण उन की सब प्रकार से सेवा करना हमारा परमधर्म था हम उन की सेवा के अर्थ तन मन धन से उद्यत रहते थे। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी का कहीं पता भी नहीं चलता जिधर दृष्टि उठाकर देखते हैं एक झुण्ड अनपढ़ नाममात्र के संन्यासियों का दीख पड़ता है जिन की शारीरिकदशा का कुछ वर्णन नहीं होसक्ता कोई भुस खाता है। कोई बड़े २ लकड़ी के गट्ठों की माला पहने होते हैं। बड़े २ बाल बढ़ाये हुए हैं। कोई हाथी आदि उत्तम सवारियों पर चलते हैं। कोई दिन और रात चरस की दम लगाया

करते हैं। सच मुच यह भी सांसारिक मनुष्यों की भांति नाना प्रकार के सुखों के अभिलाषी होते हैं। जैसे हमारी आप की स्त्रियां होती हैं इन के साथ भी स्त्रियां होती हैं कि जिन को बाईजी कहते हैं। जिस प्रकार हम अपनी सन्तान को लड़के बाले कहते हैं यह अपनी सन्तान को चेला चाटी कहते हैं। हम अपने निवासस्थान को गृह कहते हैं और इन का निवासस्थान कुटी कहलाता है जिस में सर्व प्रकार की वस्तु जिन की गृहस्थी में आवश्यकता होती है भरी हुई पाई जाती हैं। सच मुच यह गृहस्थ हैं परन्तु जीविका के अर्थ यह वेष धारण कर लेते हैं और नाना प्रकार से धन उत्पन्न कर कुकर्मों में व्यय करते हैं किसी के साथ एक झुण्ड आठ २ दस २ वर्ष के बालकों का (जो इस संसार के तृणमात्र से भी निपट अज्ञान होते हैं) होता है यह सब संन्यासियों के वेष में रहते हैं। मान्यवरो! यह कदापि संन्यासी नहीं कहे जा सक्ते देखिये शातातपजी कहते हैं कि संन्यासी वही है जिस की सब सांसारिक पदार्थों में अप्रीति हो जैसा कि—

यदा सर्वपदार्थेषु वैराग्यं यस्य जायते ।
अधिकारी सविज्ञेयइति शातातपोऽब्रवीत्॥

इन का तो केवल यही उद्देश है कि प्रातःकाल होते ही नगर की ओर जाते हैं घर पर जाकर घण्टों खड़े होकर मांगते फिरते हैं जिस की निन्दा बहुत प्रकार से की गई है देखिये —

आहारमात्रेपि नातिस्पृहा कार्य्यासंन्यासिनेति भिक्षाप्रकरण-
वाक्यात् प्रतीयते ॥

नेक्षयेद्द्वाररन्ध्रेण भिक्षालिप्सुः क्वचिद्यतिः ।
न कुर्याद्वै क्वचिद्घोषं न द्वारं ताडयेत् क्वचित्॥
देहि देहीति यो ब्रूयाल्लवणव्यञ्जनादिकम् ।
गोमांसतुल्यं तद्भैक्ष्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

अर्थ—संन्यासियों को आहारमात्र में भी बहुत इच्छा न करनी चाहिये यहां तक कि भिक्षा की इच्छा करता हुआ द्वार में न देखे न मांगे न दरवाज़े को खटखटावे। लाओ २ जो ऐसा शब्द कहता लवण या व्यञ्जनादि भोजन

मांगता है वह गोमांसतुल्य होता है उस को खाकर चान्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है। फिर कहिये कि यह संन्यासी कैसे ! यह तो केवल अपनी स्त्री माता पिता आदि से लड़ झगड़ कर वा सांसारिक आनन्दों से निराश होकर देश देशान्तरों में भ्रमण कर देश की रेड मार रहे हैं—इसलिये आप भी जान बूझ कर कार्य्य कीजिये। देखिये लिखा है कि वेदविरुद्ध कार्य्य करने वाले, झूंठ बकने वाले, तथा वगुला और बिलाव की वृत्ति रखने वाले दुष्टों का वाणीमात्र से भी सत्कार न करना चाहिये ॥

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥

इसलिये मान्यवरो ! केवल उन हीं पुरुषों का सत्कार कीजिये जो अपने २ वर्णों के धर्मों को पूर्ण रूप से करने में उद्यत हैं अन्यथा कुछ लाभ नहीं वरन जितने पाप कर्म ऐसे जन आप का धन पाकर करते हैं उन के पाप के भी आप भागी होते हैं। इस के उपरान्त यह जन आप ही की लड़ेती सन्तान को स्वप्नवत् सुख दिखलाकर रंगे स्यार बना कर लेजाते हैं कि जिन के दुःखों में आप प्राण गवाने तक उद्यत हो जाते हैं इसलिये शास्त्रानुसार अतिथियों की परीक्षा करके वेदानुकूल अतिथिसेवा का प्रचार कीजिये देखिये य० अ० २१ मं० १४ में लिखा है कि धर्मात्मा और विद्वान् अतिथियों की सेवा करे। सचमुच ऐसी ही आज्ञाओं पर चलने से इस अभागे भारत की सुदशा हो सक्ती है ॥

अब मैं इस स्थान पर वर्तमान समय के अठारह पुराणों की संक्षेपरूप से कुछ व्याख्या करता हूं उस को विचारिये और फिर दृष्टि डालिये कि यह पुस्तकें वेदों के सम्मुख किस प्रतिष्ठा के योग्य हैं इस के उपरान्त इन के अन्तर्गत मूर्तिपूजा, त्योहार, ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र, व्रत, तपस्या, तीर्थयात्रा, मोक्ष के विषय में क्या क्या लिख मारा है और इन विषयों में ऋषिगणों का क्या सिद्धान्त है ॥

पुराणपरीक्षा ॥

पुराण जिन का वर्तमान समय में अधिक प्रचार हो रहा है और अनेकान जन तो इन्हीं को धर्मपुस्तक मानते हैं—मान्यवरो ! यह धर्मपुस्तक कदापि नहीं हो सक्ते क्योंकि पुराणों के कर्त्ता वेद ही वेद पुकारते हैं और उसी के अनुकूल चलने की आज्ञा देते हैं द्वितीय उन के पाठ करने से

प्रकट होता है कि वह ऐसे मनुष्यों के निर्मित किये हैं जो वेदमत के विरुद्ध थे परन्तु शोक का स्थान है वर्तमान समय में निडर हो कर यह कहते हैं कि—"अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः" अर्थात् इन अठारह पुराणों को व्यास जी ने बनाया है—मान्यवरो! इस विषय के जानने के लिये यह भी जानना आवश्यक है कि व्यास जी महाराज कब उत्पन्न हुए और वह किस धर्म के मानने वाले थे—फिर इन पुराणों में जो कुछ लिखा है वह उन के धर्म के अनुकूल है या प्रतिकूल ?

(१) इस के उपरान्त यह भी देखना चाहिये जो विषय इस में एक स्थान पर वर्णन किया है उस के विरुद्ध तो किसी स्थान पर नहीं लिखा? जिन सज्जनों ने महाभारत को अवलोकन किया होगा वह जानते होंगे कि व्यास जी महाराज महर्षि पराशर के पुत्र थे उन के बहुधा अमूल्य वचन भिन्न २ स्थानों पर पाये जाते हैं उसी समय से कलियुग का आरम्भ होता है जिस को अब तक ४९९६ वर्ष हुए अर्थात् व्यास को हुए ४९९६ वर्ष व्यतीत हुए अब ध्यान देना चाहिये यदि व्यास जी इन पुराणों के कर्त्ता हैं तो वह उसी समय बने होंगे परन्तु ऐसा नहीं जान पड़ता क्योंकि पुराणों के विषय अपने २ समय को पृथक् २ बतला रहे हैं—श्रीमद्भागवत के एक स्थान पर लिखा है एक समय श्रीनारद जी महाराज व्याकुल हो कर विष्णु के पास गये जो कि बदरिकाश्रम पर तपस्या कर रहे थे विष्णु ने नारद जी को व्याकुल देख कर पूंछा कि आप कैसे आये? नारद जी महाराज कहने लगे कि म्लेच्छों ने महादेव का मन्दिर तोड़ डाला और महादेव जी कुए में गिर कर डूब गये। इतिहास के जानने वाले इस विषय को ख़ूब जानते होंगे यह वृत्तान्त औरंगज़ेब के समय में हुआ था जिस ने १६५७ ई० से १७०७ ई० तक राज्य किया इस से ज्ञात होता है कि भागवत को बने हुए केवल १८७ वर्ष हुए जिस की पुष्टि देवीभागवत का टीकाकार करता है।

(२) बहुधा पुराणों में बुद्ध को अवतार माना है और इतिहासों से ज्ञात होता है कि बुद्ध विक्रमी संवत् से ६१४ वर्ष पूर्व हुए थे और ८० वर्ष की आयु में मर गये जिस को आज तक केवल २५६७ वर्ष हुए फिर व्यास जी ने पुराणों को क्यों कर बनाया ?

(३) ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि इस घोर कलियोग में जो तम्बाकू पीता है वह नरक को जाता है और पद्मपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य तम्बाकू

पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है और ब्राह्मण गांव के सुअर का जन्म लेता है ॥

सम्पूर्ण इतिहासज्ञाता इस विषय को एक सम्मत हो कर कह रहे हैंकि तम्बाकू एमरीका से अकबर के समय में भारतवर्ष में आया। इस से ज्ञात होता है कि ब्रह्माण्ड और पद्मपुराण अकबर के समय में या उस के पश्चात् बनाये गये ॥

(४) राधावल्लभी सम्प्रदाय सं० १६४१ में प्रचलित हुआ है और संस्कृत के किसी प्राचीन पुस्तक में राधा का नाम नहीं पाया जाता परन्तु ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण में उस का बहुत कुछ माहात्म्य वर्णन किया है जिस से प्रकट है कि ब्रह्मवैवर्त्त पुराण सं० १६४१ के पश्चात् बना है। इस के अतिरिक्त जो महाशय जगन्नाथ जी को गये होगें उन को ज्ञात होगा कि उस मन्दिर पर विक्रमी सं० १२३१ पड़ा है और स्कन्दपुराण में इस का बहुत माहात्म्य वर्णन किया है इस से ज्ञात होता है वह पुराण १२३१ वि० के पश्चात् बनाया गया इसी प्रकार अन्य पुराण अपने २ विषय से अपने २ समय को बतला रहे हैं हम विस्तारभय से नहीं लिखते ॥

(५) व्यास जी महाराज ने अनेकान स्थानों पर उपदेश किया है जो महाभारत से प्रकट है उस से उन की विद्या और वेदोक्तधर्म का प्रकाश होता है. इस के अतिरिक्त उन्होंने वेदान्तसूत्र और मीमांसा की व्याख्या और योग भाष्य निर्मित किया है जिन में बड़े २ वेदोक्त विषय भरे हुए हैं जिस के समझने वाले इस समय बहुत कम हैं जो सब प्रकार से बुद्धि और सृष्टिक्रम के अनुसार हैं जिन पर चलने से मोक्ष प्राप्त होती है। और पुराणों के कर्त्ताओं ने भी श्रीमान् को त्रिकालदर्शी माना है परन्तु शोक का विषय है कि इन्हीं पुराणो में उन के नाम से ऐसी २ लीला भरी हैं जिन को मूर्ख भी ठीक नहीं कह सक्ता। देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ अ० १ श्लोक २१ में लिखा है कि राजा प्रियव्रत ने इस जगत् में ११ अरब वर्ष तक राज्य किया ॥

(६) एक महापापी अजामिल नामक ब्राह्मण ने कि जिस ने अपनी सम्पूर्ण आयु केवल कुकर्मों के करने में व्यय की थी अन्त को अपने दासीपुत्र "नारायण" का नाम लेने से स्वर्ग पाया ॥

(७) शुकदेव जी महाराज दो अरणी की लकड़ियों में से विना गर्भाशय के व्यास जी का वीर्य्य गिरने से उत्पन्न हुए ॥

(८) एक समय श्री वेदव्यास जी महाराज ने जो त्रिकालदर्शी थे मनुष्यों की कुगति देखकर एक वेद के चार वेद किये और शूद्रों के लिये महाभारत बनाया ॥

(नोट) मान्यवरो ! चारों वेद सृष्टि के आदि से ही चले आते हैं जिस को हमारे मुनि व्यास जी महाराज भी मानते थे फिर यह कब सत्य होसक्ता है ।

(९) श्रीकृष्ण और उन के दासों की सेवा से मनुष्य पापों से छूटता है वैसा तप, ब्रह्मचर्य्य, शम, दम, दान, सत्य, शौच, यम, नियम आदि से नहीं ॥

(१०) और वाल्मीकिरामायण में लिखा है जब महादेव जी के वीर्य्य को अग्नि और पार्वती की बहिन गङ्गा अत्यन्त उष्णता के कारण न झेल सकी तो अशक्त होकर छोड़ दिया उस के भूमि पर पात होने से उस वीर्य्य से सोना, चांदी, तांबा, लोहा, रांगा, सीसा आदि नाना प्रकार की धातु उत्पन्न हुईं ॥

(११) एक समय दिति नामक राक्षसी ने तीनों लोकों के जीतने वाला पुत्र उत्पन्न करने के अर्थ तपस्या की एक दिन दुपहर को वह नींद के कारण बहुत अशक्त होकर तपस्या के नियम के विरुद्ध दिन में सो रही पस इन्द्र ने उस स्थान से जिस का लिखना सभ्यता के विपरीत है दिति के गर्भ में प्रवेश किया भीतर जाकर वज्र से गर्भ के सात टुकड़े कर दिये परन्तु अब तक उस बेचारी को कुछ ख़बर न हुई । रोने पीटने का शब्द सुन कर दिति जाग उठी और मत मारो मत मारो ऐसा कहा इसी प्रकार तुलसीदास जी भी कहते हैं ॥

सुधावृष्टि भई दोऊ दल माहीं ।
जिए भालु कपि निश्चर नाहीं ॥

मान्यवरो ! क्या यह बातें सत्य और व्यास जी वा वाल्मीकि जी की कहीं हो सक्ती हैं कदापि नहीं, कदापि नहीं । यह तो बिलकुल, सृष्टिक्रम, शास्त्र और बुद्धि के विरुद्ध है इसी कारण अत्रि जी महाराज ने कहा है कि—

वेदैर्विहीनाः पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥

वेद से हीन लोग शास्त्र पढ़ते हैं, शास्त्र से हीन पुराण वांचते हैं, पुराणों से हीन हल जोतते हैं और सब से पतित भागवत पुराण वांचते हैं । फिर भला ! आप को मुक्ति इन के द्वारा क्योंकर मिल सक्ती है । बहुधा हमारे

भाई शङ्का करते हैं कि बाल्मीकिरामायण, महात्मा वाल्मीकि ने रामचन्द्र की उत्पत्ति से कई हज़ार वर्ष पहले लिखी थी परन्तु यह बात भी उसी रामायण के बालकाण्ड के आदि के दूसरे श्लोक में नारद ने वाल्मीकि से पूंछा कि इस लोक में अब इस समय कौन गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, दृढ़व्रत और सत्यवादी राजा है जैसा कि—

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्। धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥

इस के उत्तर में वाल्मीकि जी ने रामचन्द्र जी का नाम लिया है इस पर आगे कथा चली है जिस को बहुधा लोग दश हज़ार वर्ष पहले रामचन्द्र जी से रामायण बनाई हुई बताते हैं यह कैसे सोच की बात है। इस के अतिरिक्त इन पुराणों का कथन एक दूसरे के भी विरुद्ध है देखिये पद्मपुराण में लिखा है—

व्यामोहाय चराचरस्य जगतश्चैते पुराणागमास्तां—
तामेवहि देवतां परत्रिकां जल्पन्ति कल्पावधि ।
सिद्धान्ते पुनरेकएव भगवान् विष्णुस्समस्तागम-
व्यापारेषु विवेचनं व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते ॥

इस का तात्पर्य्य यह है कि सब पुराण मनुष्य को भ्रम में डालने वाले हैं और उन में अनेक देव ठहराये गये हैं एक ईश्वर का निश्चय नहीं होता केवल एक भगवान् विष्णु ही पूजने योग्य हैं। अब देखिये शिवपुराण में शिव को परमेश्वर मान कर विष्णु, ब्रह्मा, गणेशादि को उन का सेवक ठहराया है और विष्णुपुराण में विष्णु को परमात्मा मान शिवादि को उन का दास और देवीभागवत में ब्रह्मा, विष्णु, महेश को आदि शक्ति श्री नाम की स्त्री से उत्पन्न हुए और वह उन की माता इन पर मोहित होगई और तीनों से भोग करने को कहा कि जिस में महादेव ने भोग किया और मार्कण्डेयपुराण के दुर्गापाठ में लिखा है कि विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए जैसा कि—

स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।

मत्स्यपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा से शिव उत्पन्न हुए यथा—

ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम् ।

नारदीयपुराण में लिखा है कि नारायण के दाहिनी ओर से ब्रह्मा बांई ओर से विष्णु और मध्यम भाग से शिव भी उत्पन्न हुए और मार्कण्डेयपुराण में लिखा है कि महालक्ष्मी से विष्णु महाकाली से महादेव और महासरस्वती से ब्रह्मा पैदा हुए और अनुशासनपर्व में लिखा है कि महादेव जी श्रीकृष्ण के शिर से उत्पन्न हुए और ब्रह्मा महादेव जी के पेट से उत्पन्न हुए हैं और उसी अनुशासनपर्व अ० १४ में लिखा है कि विष्णु को महादेव जी ने उत्पन्न किया इस से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा और विष्णु के जन्मदाता महादेव जी हैं॥

इस के अतिरिक्त पाण्डव लोग जब विराट नगर में प्रवेश करने लगे हैं तब महाराज युधिष्ठर ने जो देवी की स्तुति की है उस के पढ़ने से मालूम होता है कि देवी ने विष्णु आदि को बनाया अब बतलाइये कि हम किस का कथन ठीक जाने और किस को व्यास जी मानते थे ? ।

प्यारो ! इन पुराणों के मानने से ही फूट का बाज़ार गर्म हो गया है देखिये जब चार पुराणों के श्रोता इकट्ठे होते हैं वहां सब अपनी २ सुनी कथा कहते हैं एक कहता है कि विष्णु बड़े दूसरा कहता नहीं ब्रह्मा, तीसरा कहता महादेव चौथा कहता कि तुम सब भूलते हो आदि शक्ति माया बड़ी है, इन बातों के प्रामाणिक होने के अर्थ इन्हीं पुराणों के प्रमाण भी देते हैं उस समय कुछ भी निर्णय नहीं होता सब भ्रम में पड़ चुप हो जाते हैं हां जो भक्तिपक्ष में रंगे हुए हैं वे कहते हैं कि यह तीनों ब्रह्मा विष्णु महेश एक ही हैं इन में भेद न मानना चाहिये परन्तु पुराण इन के भोलेपन का खण्डन करते हैं शिव के मन्दिर में श्री लगा के जाने का निषेध है देखिये भागवत में लिखा है–

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ताभजन्ति ह्यनसूयवः ॥

अर्थ–शिव जी की सेवा करें और उस के मत पर चलने वालों की बात मानें अर्थात् शैव मत पर चलें वे सत्य शास्त्र के शत्रु और पाखण्डी हैं, मुमु-

क्षुओं को भयानक भूतपति को छोड़ शान्तरूप नारायण को भजना चाहिये, और पद्मपुराण को सुनिये–

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम् ।
अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥
ब्राह्मणः कुलजोविद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवी मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥

जो तिलक (वैष्णवीमार्क) धारण नहीं करता उस का मुख श्मशान के तुल्य है इसलिये देखने योग्य नहीं कदाचित् देखपड़े तो इस का प्रायश्चित्त करे अर्थात् तुरन्त सूर्य का दर्शन कर लेवे ब्राह्मण कुल में जो विद्वान् होकर भस्म धारण करे उस को शराब के जूठे बासन की नाईं त्याग देवे, अब शिवपुराण को देखिये–

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम् ।
नहि शिवमयी वाणी तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥

अर्थ–विभूति (भस्म) जिस के माथे पर नहीं और अङ्ग में रुद्राक्ष नहीं पहिने मुंह से शिव २ ऐसा न कहे वह चाण्डाल की नाईं त्याज्य है ॥

ऐसी ही गरुडपुराण में नाना प्रकार से पोपलीला गाई हैं जैसा कि 'यमराज' जिन के मन्त्री चित्रगुप्त जी हैं उन के गण जिन के शरीर पहाड़ के तुल्य होते हैं, जीव को पकड़ लेजाते हैं, और पाप पुण्य के अनुकूल नरक स्वर्ग पाते हैं इस के लिये दान पुण्य श्राद्ध तर्पण गोदानादि वैतरणी उतारने के अर्थ लिखी है यह सब मिथ्या है क्योंकि "यमेन वायुना सत्यराजन्" यम नाम वायु का है शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं और पक्षपात से रहित न्यायकारी परमेश्वर "धर्मराज" है वही न्यायकर्त्ता है और मरने के पीछे जीव को कुछ नहीं मिलता ॥

(१) इस के अतिरिक्त वेदों में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य को जनेऊ धारण करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में कण्ठी कण्ठ में बांधने का बड़ा माहात्म्य लिखा है और शूद्रों के भी बांधी जाती है ॥

(२) वेदों में न्यून से न्यून २५ वर्ष ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् विवाह की आज्ञा है परन्तु अब पुराणों की रीति पर आठ वर्ष की कन्या का विवाह होता है ॥

(३) वेदों में स्त्रीशिक्षा की आज्ञा पाई जाती है परन्तु पुराणों में इस का निषेध है ॥

(४) वेदों में प्रतिदिन पञ्चयज्ञ करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में इस के अतिरिक्त नाना प्रकार के कपोलकल्पित मन्त्रों के जप और अनेक प्रकार की पूजा के बड़े २ विधान और माहात्म्य दिखलाये हैं ॥

(५) वेदों में केवल एक ईश्वर की उपासना करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में नाना देव और वृक्षादि पशुओं के पूजने की आज्ञा है ॥

(६) वेदों में ज्ञान प्राप्त करना मुक्ति का साधन बतलाया है परन्तु पुराणों में (राम) आदि के बारम्बार कहने से मुक्ति पाना बतलाया है ॥

(७) वेदानुकूल धर्म ही मरने पर सहायक होता है पुराणों में गयादि का जाना मरने पर कट्टहा आदि का देना भी सहायक होना बतलाया है॥

(८) वेदों में स्त्रियों को सर्वोपरि पतिसेवा ही धर्म बतलाया है परन्तु पुराणों के अनुकूल नित्य प्रति उपवास और पेड़ आदि की पूजा करने की आज्ञा और मुक्ति के साधन और हैं ॥

(९) वेदों में मांस और नशों के पीने का निषेध किया है परन्तु पुराणों में उस के खान पान की आज्ञायें मिलती हैं ॥

(१०) वेदानुकूल मनुष्य की आयु ४०० वर्ष की मानी गई है पुराणों में ११ अरब तक आयु लिखी है ॥

(११) वेदों में सत्यादि यम नियम पालन करने का नाम व्रत कहा है पुराणों में भूखे रहने अथवा विना अन्न जल के दिन रात्रि व्यतीत करने को व्रत बतलाया है॥

(१२) वेदों में ईश्वर अजन्मा वर्णन किया है और सर्वसामर्थ्य कहा है परन्तु पुराणों के कर्त्ताओं ने सर्वसामर्थ्य पर धब्बा लगाया है क्योंकि अवश्य कार्य्य करने को पृथ्वी पर जन्म लेना प्रकट किया है अर्थात् बहुत प्रकार के अवतार बतलाये हैं जिन में कच्छ, मच्छ, वराह भी अवतार माने गये हैं ॥

(१३) वेदों में ईश्वर निराकार सर्वव्यापक माना गया है। पुराणों में ईश्वर को साकार माना है और अनेक प्रकार की मूर्त्ति मानते इसी प्रकार मूर्त्तिपूजा का बड़ा माहात्म्य लिखा है और वह मूर्त्ति धातु आदि की बनाना लिखा है। वेदों में योग के द्वारा सर्वोपरि उपासना मानी गई है और ज्ञानी जन इसी रीति से परम धाम को जाते हैं। इसी कारण हम यह कहते हैं—

ब्रह्मपुराण। पद्मपुराण। ब्रह्माण्डपुराण। अग्निपुराण। गरुड़पुराण। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण। शिवपुराण। लिङ्गपुराण। नारदपुराण। स्कन्दपुराण। मार्कण्डेयपुराण। भविष्यपुराण। मत्स्यपुराण। कूर्मपुराण। वाराहपुराण। वामनपुराण। भागवतपुराण। विष्णुपुराण। वायुपुराण। देवीभागवत। मानसपुराण। इत्यादि पुराण प्राचीन पुराण नहीं हैं इन पुराणों की संख्या के अनुसार १ नृसिंहपुराण २ बृहन्नारदीयपुराण ३ शिवपुराण ४ दुर्वासःपुराण ५ कपिलपुराण ६ मानवपुराण ७ औशनसपुराण ८ वरुणपुराण ९ कालिकापुराण १० शाम्बपुराण ११ नन्दीपुराण १२ सौरपुराण १३ पाराशरपुराण १४ आदित्यपुराण १५ महेशपुराण १६ भार्गवपुराण १७ वशिष्ठपुराण १८ भविष्यपुराण १९ ब्रह्माण्डपुराण और कूर्मपुराण सब उपपुराण २१ होते हैं. यद्यपि अग्नि और वह्निका एक ही अर्थ है परन्तु अग्निपुराण और वह्निपुराण दो जुदे २ ग्रन्थ हैं ब्रह्मवैवर्त्त यद्यपि एक ही पुराण प्रसिद्ध है परन्तु आज कल उस के दो प्रकार के पुस्तक पाये जाते हैं इस कारण एक नाम ब्र० वै० और दूसरे का नाम प्राचीन ब्रह्मवैवर्त्तपुराण रक्खा गया है स्कन्दपुराण का आज कल कोई स्वतन्त्र पुस्तक प्रचलित नहीं परन्तु उस के कई भाग काशीखण्ड, रेवाखण्ड, उत्कलखण्ड, कुमारिखण्ड और भीमखण्ड आदि स्वतन्त्र पुस्तक रूप से प्रचलित हैं ॥

अनुमान होता है कि अठारह पुराण बन जाने के पश्चात् किसी तीर्थविशेष वा देवताविशेष का माहात्म्य की प्रसिद्धि करके टका कमाने की इच्छा से लोगों ने अन्यथा पुराणों को प्रकाशित कर दिया जब स्कन्दपुराण का पुस्तक विलुप्त होगया तब बनारसी गुरुओं को काशीखण्ड बना के स्कन्दपुराण के नाम से प्रचलित करने में कौन रोक सक्ता था। स्कन्दपुराण के नाम से केवल खण्ड नामक आधुनिक पुस्तक ही प्रचलित नहीं हुए हैं वरन व्यास के नाम को कलङ्कित करने वाले कितने ही माहात्म्य भी लोगों ने स्वार्थसिद्धि के वास्ते प्रचरित कर दिये जैसे पद्मपुराण के अन्तर्गत अग्नीश्वरमाहात्म्य, अनन्तशयनमाहात्म्य, तुङ्गभद्रमाहात्म्य, अग्निपुराण के अन्तर्गत अर्जुनपुरमाहात्म्य, और काबेरीमाहात्म्य स्कन्दपुराण का भाग इन्द्रावतार, क्षेत्रमाहात्म्य, कदम्बनमाहात्म्य, कमलालयमाहात्म्य, कान्तेश्वरमाहात्म्य, कार्त्तिकमाहात्म्य, कुमारक्षेत्रमाहात्म्य, कृष्णमाहात्म्य, गोकर्णमाहात्म्य, चिदम्बरमाहात्म्य, ब्रह्मवैवर्त्त के अन्तर्गत गरुडाचलमाहात्म्य, घटकाचलमाहात्म्य इत्यादि अनेक मा

हात्म्य तथा सत्यनारायण आदि नवीन पुस्तकें बनगई मान्यवरो! यह वह ग्रन्थ नहीं है जिन को "पुराण नाम से" पाणिनि आदि ने अपने २ ग्रन्थों में लिखा है जो व्यास जी से बहुत पूर्व हुए है जैसेः—

इतिहासमधीतेऽसौ—ऐतिहासिकः ।
तथा पुराणमधीतेऽसौ पौराणिकः ॥

इतिहास के पढ़ने वाले ऐतिहासिक और पुराण के पढ़ने वाले पौराणिक कहाते हैं क्या कोई पण्डित वा साधारण भी यह कह सक्ता है कि जब तक व्यास जी ने पुराण नहीं बनाये तब तक ऐतिहासिक पौराणिक शब्द ही नहीं थे यदि थे तो किन पुराणों के पढ़ने वाले पौराणिक कहाते थे इस से यह सिद्ध हुआ कि जो पुराण पहले से वर्णाश्रम धर्म के वेदानुकूल प्रतिपादन करने वाले थे उन्हीं को वात्स्यायन ऋषि ने प्रामाणिक कहा है क्योंकि इस समय प्रवृत्त पुराणाभास के तो बनाने वाले कोई नहीं जन्मे थे तो प्रामाणिक किस को कहते और भी देखिये महर्षियों का सिद्धान्त है कि—

दशमेऽह्नि किंञ्चित् पुराणमाचक्षीत ॥

अश्वमेधयज्ञ में दशवें दिन थोड़ी कथा कहे आप लोगों के विचारानुसार अश्वमेधयज्ञ जब कलियुग में वर्जित है और पुराण कलियुग के आरम्भ में बने यह वचन सर्वथा व्यर्थ हुआ क्योंकि जब अश्वमेध होते थे तब तो पुराण ही न थे कथा किस की कहते। और जब से पुराण बनाये गये तब से अश्वमेध करना ही रोक दिया और करने के सामर्थ्य वाले चक्रवर्त्ती राजा भी न रहे इसलिये यह जो आज्ञा है कि अश्वमेध में दशवें दिन थोड़ी पुराण की कथा कहे यह जब ही ठीक होगा जब कि व्यास जी से पहले भी पुराण माने जावें। यह बात अनेक प्राचीन ग्रन्थों से सिद्ध है कि पुराण बहुत प्राचीन काल से चले आते हैं ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुधा इतिहास पुराण के नाम से आये हैं। और ब्राह्मणों को अपौरुषेय वेद मानते हो तो कहिये कि व्यास जी जब नहीं थे तब कौन से ग्रन्थ पुराण शब्द से लिये जाते थे वा जब तक आप के पुराण नहीं बने तब तक ब्राह्मण ग्रन्थों का यह लेख है कि इतिहास पुराण वेदों में पांचवां वेद है व्यर्थ ही रहा। और जैसे रघुवंशी आदि अनेक राजाओं ने अनेक अश्वमेधयज्ञ किये तब व्यास जी कृत पुराण न होने से किस की कथा सुनते थे इस वास्ते आवश्यकता हुई कि इतिहास पुराण वही माने

जावें जिन को वात्स्यायन ऋषि ने प्रामाणिक माना है। हम यह नहीं कहते कि पुराणों के मानने की आज्ञा सद्ग्रन्थों में नहीं है अवश्य ही है। परन्तु भागवतादि नवीन ग्रन्थों का नाम पुराण ही नहीं है वरन पुराण नाम ब्राह्मण ग्रन्थों का है। इस बात को केवल हम हीं नहीं कहते वरन भागवत आदि को जिन लोगों ने बनाया है वह भी इस बात को अपने ग्रन्थों में लिख गये हैं। परन्तु आश्चर्य्य का विषय है कि आज कल के हिन्दू अपने ग्रन्थों को श्रद्धा और विचार के साथ नहीं पढ़ते देखिये पद्मपुराण में लिखा है कि—

ब्रह्मणा सर्वशास्त्राणां पुराणं प्रथमं स्मृतम्।

इसी के अनुकूल वायुपुराण में भी लिखा है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

अ० १ श्लो० ५६

ब्रह्मा ने पहले पुराण को बनाया पश्चात् उस के मुख से वेद निकले। ऐसा ही मत्स्य पुराण में भी लिखा है।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।
मीमांसा न्यायविद्या च प्रमाणाष्टकसंयुता ॥

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ब्रह्मवैवर्त्त के बनाने वाले भी ब्राह्मण ग्रन्थों ही को पुराण मानते थे क्योंकि यदि ब्रह्मवैवर्त्त को वह लोग पुराण मानते तो ब्रह्मा के मुख में उन की उत्पत्ति न लिखते। पुराण नामधारी नवीन ग्रन्थों को ब्रह्मा का बनाया हुआ कोई नहीं मानता इस कारण ब्राह्मण ही पुराणशब्दवाच्य है ऋग्वेद के उपोद्घात में हिन्दुओं के परममान्य सायणाचार्य्य भी लिख गये हैं—

"देवासुरा संयत्ता आसन्नित्यादयइतिहासाः। इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादिजगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्"

जिन शङ्कराचार्य्य को हिन्दू लोग महादेव का अवतार मानते हैं उन्हीं ने ही बृहदारण्यकोपनिषद् (चतुर्थ ब्राह्मण) के भाष्य में लिखा है–

इतिहासइत्युर्वशीपुरुरवसोः संवादादिरुर्वशीह्याप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणम् ॥

अर्थात् ब्राह्मणग्रन्थ में उर्वशी और पुरुरवा का संवादरूप इतिहास है इस कारण ब्राह्मण ही पुराण हैं ॥

पुराण नामधारी नवीन पुस्तकों में पुराणों के पांच लक्षण लिखे हैं वे भी ब्राह्मणग्रन्थों में ही घटते हैं भागवत आदि में नहीं पाए जाते वह पांच लक्षण ये हैं ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर, वंशो का चरित्र इन पांचों का जिन में वर्णन हो उसे पुराण कहते हैं ब्राह्मणग्रन्थों में सृष्टि का वर्णन तो स्पष्ट ही लिखा है देखिये तैत्तिरीयब्राह्मण के प्रथम अष्टक प्रथम अध्याय तृतीय अनुवाक में लिखा है ॥

आपो वावेदमग्रे सलिलमासीत् । तेन प्रजापतिरश्राम्यत् । कथमिदꣳस्यादिति । सोपश्यत् पुष्करपर्णन्तिष्ठत् । सोमन्यत । अस्ति वै तावत् । यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति । स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत् । स पृथ्वीमध आर्च्छत् । तस्याउपहत्योदमज्जत । तत्पुष्करपर्णे प्रथयत् तत् पृथिव्यै पृथिवीत्वम् ॥

इस ब्राह्मण वाक्य में जो सृष्टिक्रम का वर्णन है वह तैत्तिरीयसंहिता के एक मन्त्र का अर्थ है इस से ब्राह्मण ग्रन्थ वेद भी नहीं हैं वरन वेदों की व्याख्या और पुराणशब्दवाच्य है, गाथा वा वंशानुचरित ब्राह्मणग्रन्थों में स्पष्ट ही लिखे हुए हैं देखिये ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है ॥

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेन दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्मन्तिमभिषिषेच तस्माद्भरतो दौष्मन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परियाय ॥

अर्थात् ममता का पुत्र—दीर्घतमा ऋषि ने इस ऐन्द्र अभिषेक द्वारा महाराज दुष्मन्त के पुत्र भरत का अभिषेक किया था इसी कारण दुष्मन्तनन्दन भरत ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीत के भ्रमण किया था इस के अतिरिक्त शतपथब्राह्मण (१३ । ५ । ४ । १) में लिखा है ॥

"एतेन हैन्द्रेतो दैवा यः शौनकः जनमेजयं पारिक्षितं याजयांचकार तेनेष्ट्वा सर्वां पापकृत्यां सर्वां ब्रह्मत्यामपजघान"

शतपथादि ब्राह्मणों में मिथिलाधिपति महाराज जनक तथा महाराज दुष्मन्त और अनेक ऋषियों की कथा लिखी हुई है इस कारण वेदार्थों को जानने वाले प्राचीन महर्षियों के बनाये ब्राह्मणग्रन्थों की पुराणसंज्ञा है—यह सब को स्वीकार करना उचित है इसलिये प्यारे भाईयो ! भागवतादि नवीन अठारह पुराणों को जो व्यास जी के नाम से स्वार्थियों ने बनाऐ हैं कि जिन में बहुत हानिकारक बातें भरी हुई हैं उन को त्याग कर वेदोक्त ही कार्य्य कीजिये क्योंकि वेद ही सनातन ईश्वररचित पुस्तक है पुराणादि कदापि नहीं होसक्ते ॥

ईश्वरकृत वेदों का होना ॥

मान्यवरो ! ईश्वरकृत वही पुस्तकें हो सक्ती हैं जिस में निम्न लिखित बातें पाई जावें॥

(१) यह कि वह किसी देश की भाषा न हो, क्योंकि अगर अरबी होगी तो अरब वालों को, फ़ारसी होगी तो फ़ारिस वालों को, अंगरेज़ी होगी तो इङ्गलिस्तान वालों को, हिन्दी होगी तो हिन्दवालों को सुगम होगी, पस ऐसी विद्या सिवाय संस्कृत के कोई नहीं है क्योंकि वह किसी देश की भाषा नहीं है इस में सम्पूर्ण देशनिवासियों को एक सा परिश्रम करना पड़ता है यदि किसी देश की भाषा होती तो उस से परमेश्वर में पक्षपात अर्थात् विकार पाया जाता और वह निर्विकार है इसलिये ऐसी भाषा में वेदों को प्रकट किया कि वह किसी देश की भाषा नहीं है ।

(२) किसी कौम की तरफ़दारी न हो ।

(३) सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही प्रकट हुई हो, न कि थोड़ा या बहुत समय व्यतीत होने पर ।

(४) उस की आज्ञा सब जगह एकसी ही हो ऐसा न हो कि एक आज्ञा उस की दूसरी आज्ञा को काट सके ।

(५) सृष्टिनियम जो उसी का रचा हुआ है उस के विपरीत न हो।
(६) न्याय और खगोल भी उस को झूंठा न कर सके।
(७) किसी ख़ास मनुष्य पर ईमान लाने की आज्ञा न हो, वरन उस में केवल एक ईश्वर ही माननीय पूजनीय हो।
(८) मनुष्यों की बुद्धि को उन्नति करने वाली हो।
(९) उस में किस्सा कहानियां न हों।
(१०) जितनी विद्या दुनियां में प्रचलित हैं उन सब का कोष हो, इन गुणों से परिपूर्ण जो कोई पुस्तक इस संसार में हो वह ईश्वरकृत पुस्तक हो सक्ती है ॥

मूर्त्तिपूजाविचार ॥

सब से प्रथम यह जानना चाहिये कि "मूर्त्ति" किस को कहते हैं देखिये बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

द्वे वा ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च। अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चेत्यादि ॥

ईश्वर की सृष्टि में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक मूर्त्त, दूसरे अमूर्त्त इन में आकाश वायु से भिन्न सब मूर्त्त और आकाश वायु अमूर्त्त हैं अर्थात् पञ्चभूतों में पहले दो मूर्त्त और अन्त में तीन स्थूल हैं और इन तीन भूतों के विकार भूत सभी पदार्थ स्थूल (मूर्त्त) हैं और इसी को आकृति कहते हैं अर्थात् जो नेत्रद्वारा प्रत्यक्ष हो उसी को मूर्त्त वा मूर्त्ति कहते हैं और कोष के अनुसार मूर्त्ति शब्द के दो अर्थ हैं—

"मूर्त्तिः काठिन्यकाययोः"

अर्थात् कठिनाई और शरीर का नाम मूर्त्ति है और इसी से मूर्त्तिमान् शब्द भी बनता है, इस से प्रत्यक्ष प्रकट है कि पाषाणादि से बनी हुई मूर्त्तियों ही का नाम मूर्त्ति नहीं है जो हिन्दू मन्दिरों और ठाकुरद्वारों में ताले के भीतर बन्द रखते हैं।

अब यह विचार करना चाहिये कि मूर्त्ति शब्द के साथ जो पूजा शब्द लगा है उस का क्या अर्थ है तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि सत्कार करने का नाम पूजा है, किसी प्रकार के कोष वा व्याकरण के प्रमाण से पूजा शब्द का अर्थ धूप दीप नैवेद्य वा चन्दनादि पदार्थ जड़ वस्तु पर चढ़ाने का प्रसिद्ध नहीं है,

हां पूजा शब्द का अर्थ चेतन वस्तुओं के प्रसंग में आता है अमरकोष में जहां पूजा शब्द आया है उस प्रकरण को देखने से निश्चय होता है कि इस पूजा शब्द का अर्थ चेतनों ही से सम्बन्ध रखता हैं, देखो अमरकोष के द्वितीय-काण्ड के सप्तम ब्रह्मवर्ग में पूजा शब्द आया है वहां उस से पहिले अतिथि और पाहुन का प्रसंग है इसलिये ठीक सिद्ध है कि पूजाशब्द चेतनसम्बन्धी है और सर्वचेतनों के बीच में मनुष्य ही बुद्धिमान् हैं इसलिये इस की ही पूजा करना योग्य है जैसा कि मनु जी महाराज ने कहा है—

आचार्य्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्त्तिरात्मनः ॥

आचार्य गुरु ब्रह्म की मूर्त्ति है अर्थात् जिस भावना से आचार्य की पूर्ण सेवा करेगा वही अभीष्ट सिद्ध होगा, ब्रह्म नाम वेद वा परमेश्वर का यथा-वत् ज्ञान गुरु की पूजा के आधीन है जब गुरु सन्तुष्ट होगा तो उस को सुग-मतापूर्वक वेद वा ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करादेगा ईश्वर और शब्दार्थ सम्बन्ध रूप वेद दोनों अमूर्त्त हैं परन्तु आचार्य के अन्तःकरण में स्थित हैं इस कारण आचार्य को ब्रह्म की मूर्त्ति कहा जिस को ब्रह्म की पूजा करना अभीष्ट हो वह आचार्य की पूजा करे, क्योंकि धर्मशास्त्र आज्ञा देता है कि ब्रह्म की मूर्त्ति आचार्य है और ऐसा किसी ने नहीं कहा कि "पाषाणो ब्रह्मणो मूर्त्तिः" क्योंकि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" अर्थात् ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती और पाषाणादि जड़ पदार्थ ज्ञान होने में सहायता नहीं दे सकते क्योंकि वह स्वयं ज्ञानरहित हैं इसलिये आचार्य गुरु की ठीक ठीक सेवा किये विना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, और पिता सृष्टिकर्त्ता की मूर्त्ति है उसी से शरीररूप पुत्र होता है अर्थात् पिता उस पुत्ररूप शरीर का बनाने वाला है इसलिये जहां सृष्टिकर्त्ता की मूर्त्ति पूजना हो वहां साक्षात् पिता की मूर्त्ति को पूजे जिस से ऋण का उद्धार होजावे माता पृथ्वी की मूर्त्ति है, क्योंकि "इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते" अन्नादि की उत्पत्ति के समान प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान भूमिस्थानी माता है जिस ने सब प्रकार के क्लेश सह के उत्पन्न कर पालन पोषण कर बड़ा किया है उस की साक्षात् मूर्त्ति पूजनी चाहिये और सहोदर भाई अपनी मूर्त्ति है अर्थात् एक स्थान और एक पिता से उत्पन्न होने के कारण सब भ्राता एक ही मूर्त्ति हैं इसलिये जितनी सेवा भ्राता की करे वह जानों अपनी मूर्त्ति की पूजा है जैसा कि—

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्त्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥

आचार्य्य माता पिता और ज्येष्ठ भाई ये यदि किसी प्रकार का दुःख भी दें तथापि इन का अपमान कदापि न करें यह उपदेश सब वर्णों के लिये है परन्तु ब्राह्मण के लिये विशेष है क्योंकि वह धर्म की मर्यादा को अधिक जानता है।

प्यारो! इसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा प्राचीन काल से आर्यों में चली आई है और इसी प्रकार की पूजा का आर्ष ग्रन्थों में बहुत उपदेश है, जैसा इन तीनों की सेवा से तप की समाप्ति मनुस्मृति में लिखी है वैसे पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजने से तप का पूर्ण होना किसी ऋषिकृत ग्रन्थ में नहीं लिखा अब बहुधा लोग मूर्त्ति पूजन को ईश्वर की उपासना के सम्बन्ध में लगाते हैं कि ईश्वर के अवतारों की प्रतिमा बना कर पूजने से ईश्वर में भक्ति और उस का ज्ञान होगा, उस को विचार करना चाहिये कि जब न्यायादि शास्त्रों के अनुसार रूपादि गुण जीवात्मा के भी नहीं मानते अर्थात् जड़स्वरूप पञ्च भूतों के गुण रूपादि हैं किन्तु चेतन में रूपादि का अभाव होने से उस को इन्द्रियगोचर नहीं कह सकते तो उस परमात्मा की प्रतिमा कैसे बनी? यद्यपि अवतार शब्द और उस के वाच्यार्थ का विचार करना इस प्रसङ्ग में अभीष्ट नहीं है तथापि जो जो लोग श्रीरामचन्द्रादि को ईश्वर का अवतार मानते हैं उन से केवल इतना ही निवेदन है कि आप यदि चिदात्मवाद को लेकर रामचन्द्र जी आदि को ईश्वर मानें तो चेतन वस्तु उन के शरीरों में भी रूपादि गुण रहित ही था, कोई कदापि त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं कर सकता कि अमुक चेतन की मूर्त्ति में नीरूपत्वादिगुणयुक्त देखी तो अवतारों के शरीरों को (कि जो पृथ्वी का विकार है) ही प्रतिमा बन सकती है किन्तु उन के शरीरों में जो आत्मा है उस की प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है और यदि देहात्मवाद को मानते हो अर्थात् भौतिक शरीर को आत्मा मानते हो तो अविद्या का फल है क्योंकि योगशास्त्र में कहा है कि अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धि करना अविद्या का लक्षण है और किसी शास्त्र का सिद्धान्त नहीं है कि शरीर को आत्मा माना जावे, इसलिये परमेश्वर की प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है, और यदि मनुष्यों की स्वाभाविक वृत्ति

पर ध्यान दिया जावे कि वे अपना उपास्य देव कैसा मानना चाहते हैं तो यही सिद्ध होगा कि हमारा उपास्य देव वही होना चाहिये जिस से ऊपर कोई न हो, यदि हमारे उपास्य देव के ऊपर उस को दबाने वाला कोई अन्य भी हुआ तो हमारा उपास्य देव छोटा हो जायगा फिर हम यथावत् उस की भक्ति न कर सकेंगे और यही चित्त में आवेगा कि हम अपना उपास्य उसी को मानें जो सर्वोपरि है, तात्पर्य यह है कि जब हम किसी पुरुषविशेष पर दृष्टि देवें तो शास्त्रों के अनुसार उन २ पुरुषों के ऊपर भी ऐश्वर्यवान् प्रतीत होते हैं, क्योंकि जिन लोगों ने अवतार माने हैं उन का यही सिद्धान्त है कि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ब्रह्म का अवतार नहीं होता तो उस की प्रतिमा कैसे बन सकेगी रहे ब्रह्मादि सो सर्वतन्त्रसिद्धान्त से संसारान्तर्गत हैं क्योंकि ब्रह्मा से लेकर स्थावरान्त जगत् कहाता है, जब संसार में है तो विशेषविभूति वाले होकर भी कर्मानुसार शुभाशुभ कर्मफल के भागी होते हैं जैसा हमारा राजा विशेषविभूति और ऐश्वर्यवान् है पर भोग उस को भी कर्मानुसार मिले हैं तो जिन को ईश्वर मान कर उन की प्रतिमा बनाना चाहते हैं और वे साक्षात् परमेश्वर नहीं तो उन प्रतिमाओं से परमेश्वर की पूजा क्योंकर कही जावेगी, यदि अस्मदादि की अपेक्षा विशेष ऐश्वर्यवान् होने से वे ईश्वर माने जावें तो आज कल के राजा लोग क्यों नहीं माने जाते, और राजादि का ईश्वर नाम केवल विशेष ऐश्वर्य ही के कारण है किन्तु उपास्य देव की दृष्टि से नहीं है, तो जिन का अवतार होना मानते हैं वे उपास्य प्रकरण में ईश्वर ही नहीं फिर उन की प्रतिकृति (तस्वीरों) के बनाने और पूजने से किस प्रकार अभीष्ट सिद्ध हो सकता है, और अवतार मानने वालों से यह भी निवेदन है कि जब चौबीस अवतार हुए मानते हो तो सब अवतारों की प्रतिमा क्यों नहीं बनाई गईं और पांच ही प्रकार की मूर्तियां क्यों बनाईं, यदि शूकर देव वा कच्छपादि की मूर्ति बना कर पूजी जाती तो क्या लोग प्रसन्न होते कि बहुत अच्छे अवतार की प्रतिमा है, कदाचित् शूकरादि की प्रतिमा इसी लज्जा से पूजा में न लीगई हो। सो यदि लज्जा है तो क्या ऐसे अवतार मानने में लज्जित न होना चाहिये, हां श्रीमान् राजा रामचन्द्रादि की प्रतिकृति किसी ने प्रचरित की तो बहुत अच्छे विचार से की होगी किन्तु ईश्वर का अवतार समझ कर नहीं की यदि अवतारों की ही प्रतिमा बनने का कोई नियम किया चाहे सो ठीक नहीं क्योंकि महादेवादि कई की प्रतिमा

बनती हैं और वे अवतारों में नहीं गिने जाते तो यह कहना भी नहीं बनता कि जिन २ ने मनुष्यादि योनि में शरीर धारण किया उन्हीं की प्रतिमा पूजनार्थ बनाई गई और यह भी विचारणीय है कि जैसे महादेव जी शरीरधारी नहीं थे तो उन के लिङ्ग की प्रतिमा कैसे बनी, यदि साकार मानो तो उन के लिङ्ग की प्रतिमा जैसे बन गई वैसे ही विष्णु भी साकार हो सकते हैं और उन की विना शरीर धारण किये भी प्रतिमा बन सकती है फिर शरीर-धारण अर्थात् विष्णु का अवतार लेना व्यर्थ है क्योंकि जब पहिले ही साकार थे तो शरीर धारी के तुल्य दैत्यबध आदि काम कर सकते थे ॥

अब इस के तत्त्व पर दृष्टि डालिये कि प्रतिमा पूजन की जड़ क्या है तो यह प्रतीत होता है कि प्रतिकृति (तस्वीर वा फ़ोटो) के बनाने की परिपाटी तो सदा से है और होनी भी चाहिये क्योंकि इस से अनेक प्रयोजनों की सिद्धि समझी गई है, जब किसी की किसी के साथ अधिक प्रीति होती है तो देशान्तर होने के समय वा शरीरान्त होने के पश्चात् उस की प्रतिकृति सामने रहने से उस के गुणों का स्मरण करते और उस से चित्त को सन्तोष पहुंचता है तथा अनेक भद्र पुरुषों की तस्वीर देख के उन के सुने गुण कर्मों का स्मरण होता है, इस से मनुष्य को गुणवान् होने में सहायता मिलती है और यह भी विचार होता है कि जब ऐसे २ गुणी लोग संसार में न रहे तो क्या हम रह सकते हैं हम को भी कभी न कभी यह सब छोड़ना ही है इस से विषयासक्ति कम होती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं जिन के लिये तो प्रतिकृति का प्रचार बहुत ही उत्तम है परन्तु मुख्य प्रयोजन जो उन से निकलते हैं उन से यथावत् काम लेना विद्वानों का काम है, जब समय के हेर फेर से विद्या और शिक्षा प्रणाली आर्यावर्त्त में घटती गई तो सामर्थ्य हीन होने से उन प्रतिमाओं को ईश्वर की प्रतिमा मानने लगे, क्योंकि जिन दिनों श्रीरामचन्द्र जी आदि की प्रतिकृति प्रचरित थी उन के गुण कर्म सुने तो बहुत अधिक थे अपने सामने ऐसे गुणी पराक्रमी कोई हुए नहीं तो उन्हीं को ईश्वर मानने लगे, सो यह सब अविद्या देवी का प्रताप है, क्योंकि जिस ने अच्छे विद्वानों की विद्वत्ता को नहीं जाना वह यदि लालबुझक्कड़ को बड़ा पण्डित कहे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, जैसा आज कल भी बहुत से ग्रामीण मनुष्य रेल के इञ्जन को काली देवी की साक्षात् मूर्ति मान कर घी गुड़ से पूजते हैं अर्थात् जिस ने विद्या शिक्षा वा सत्सङ्ग के यथावत् न

होने से परमेश्वर के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् नहीं सुना वह विशेष ऐश्वर्य वाले शरीरधारियों के गुण कर्म सुन के उन को ईश्वर माने वा उन की प्रतिकृति को ईश्वर की प्रतिकृति समझे तो इस में कुछ आश्चर्य नहीं है, इस से यही प्रतीत होता है कि जो २ महात्मा सज्जन धार्मिक विद्वान् पराक्रमी हुए उन की प्रतिकृति बनी तो देखने आदि के लिये थी पर अविद्या के प्रताप से उन का अभिप्राय लौट कर कुछ का कुछ होगया, और अब यह भी निश्चय नहीं कि जो २ प्रतिमा प्रचरित हैं वे २ उन २ महात्माओं की आकृति के अनुसार हैं, हम को कदापि प्रतीत नहीं होता कि राजा रामचन्द्र जी वा श्रीकृष्णचन्द्र जी की आकृति ऐसी ही हों कि जैसी भयानक प्रतिमा अक्खड़दासी बैरागियों ने त्रिवेणी आदि पर रक्खी हैं यदि उन महात्माओं की ठीक २ प्रतिमा जैसी उन की आकृति थी मिले और कोई अनेक प्रकारों से निश्चय करादेवे कि अमुक महात्मा ऐसे ही थे तो अभी प्रायः लोग ऐसी प्रतिकृतियों को अपने पास रखने की अवश्य चेष्टा करेंगे और उन की प्रतिकृतियों को देख २ आर्यों को बड़ा सन्तोष होगा, जब लोगों ने मनमानी आकृति बनाली तो प्रतिकृति से जो लाभ होना सम्भव था सो भी होना कठिन होगया और प्रतिमा बनाने का प्रचार प्रायः ऐसा है कि शरीर के अन्य अवयवों की प्रतिमा नहीं बनाते अर्थात् कटिभाग से ऊपर की तसवीर प्रायः बनाई जाती है यदि कोई सर्वाङ्ग भी बनावे तो उस का अभिप्राय भी ऊपर के भाग पर ही अधिक होता है और यही होना भी चाहिये क्योंकि मुख का नाम उत्तमाङ्ग है मुख की पहिचान ही मुख्य समझी जाती है, यदि किसी का शिर न हो तो उसे मदरा से पहिचान लेना भी कठिन है, और विषयासक्त लोगों की विषयों में रुचि बढ़ने के लिये उन २ अवयवों की स्पष्ट और शृङ्गारादि सहित भी शिल्पी लोग प्रतिमा बनाते हैं परन्तु केवल लिङ्ग की कोई तस्वीर नहीं बनाता क्योंकि यह तो मूत्र का मार्ग है उस की तस्वीर से क्या प्रयोजन होगा अब यदि कोई प्रश्न करे कि महादेव जी कि जिन को योगिराज मानते हैं उन के लिङ्ग की प्रतिमा क्यों बनाई गई क्या उन के मुख नहीं था, जब जटाजूट में गङ्गा फिरती रही और उस को पार नहीं मिला तो हज़ारों कोस बन के समान केश होंगे उस में शिर भी बड़ा भारी होगा, तीन नेत्र के कहने से भी शिर का होना सिद्ध होता है, कण्ठ में विष पी लिया था इस से भी कण्ठ और शिर का होना सिद्ध होता है तो सब शरीर वा उत्तमाङ्ग की तस्वीर

क्यों नहीं बनाई गई, क्या कारण है जो महादेव जी के लिङ्ग की तस्वीर बनाई गई ? अवश्य इस में कोई विशेष कारण है जिस को अपना पूज्य वा बड़ा मानते हैं उस के पग पूजा करते हैं यही शिष्टों का व्यवहार है, महादेव जी को ऐसा पूज्य मान कर उन के लिङ्ग की पूजा चलाई गई इस में यही कारण प्रतीत होता है कि विषयी लोगों ने वाममार्ग चलाने के लिये यही जड़ रक्खी है, यदि विरक्त से तात्पर्य था तो पद्मासनस्थ विभूति रमाये समाधिस्थ महादेव जी की प्रतिमा बनाते जिस से सज्जनों को हर्ष होता ॥

ऐसे प्रश्न सब के अन्तःकरण में नहीं उठते अनेक लोग तो यह भी नहीं जानते कि महादेव जी के लिङ्ग की यह आकृति है किन्तु जो पूजना उन को बताया गया है सो करते जाना उन का काम है, इस में उन का क्या दोष है। जो लोग आग्रही वा पक्षपाती हैं उन से ऐसा प्रश्न किया जाय तो वे नास्तिकादि कहकर गालियां प्रदान के विना अन्य कुछ भी उत्तर नहीं देते इसलिये वेदानुकूल माता पिता आचार्य आदि मूर्त्तिमान् देवों का सदा आदर सत्कार करना अभीष्ट है ॥

अनेक लोग यह कहते हैं कि यह पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजन मूर्खों के लिये है क्योंकि वे ईश्वर की भक्ति वेद वा मन्त्रादि द्वारा नहीं कर सकते और जब उन के चित्त में प्रेम बढ़ते २ ज्ञान होजायगा तो आप ही उस को छोड़ देंगे। जैसे छोटी २ लड़कियां पहिले गुड़ियों के द्वारा खेला करती हैं और जब उन को सच्चे पति का ज्ञान होजाता है तब वह इस खेल को आप ही छोड़ देती हैं, उसी भांति मूर्ख लोग ज्ञान होने पर इस को त्याग कर देते हैं। यदि ऐसा ही हो तो अभी तक ऐसा देखने में नहीं आया कि किसी मूर्खमण्डली को पाषाणादि मूर्त्तियों की पूजा करते २ ईश्वर का ज्ञान हुआ हो और उन्होंने मूर्त्तिपूजन छोड़ दिया हो। हां यह तो देखने में आया है कि सहस्त्रों मूर्ख जन्म जन्मान्तरों तक मूर्त्तिपूजन करते २ मरजाते हैं परन्तु किसी को ज्ञान नहीं होता, इस का कारण यही है कि वहां उन मूर्त्तियों में स्वयमेव ज्ञान का लेशमात्र भी नहीं होता तो भला फिर सेवकों को कहां से आजावेगा क्योंकि जो पदार्थ जिस के पास होता है वही दूसरों को देसकता है हां जैसा मूर्त्तिपूजन वेदादि शास्त्रानुकूल हैं अर्थात् चेतन मूर्त्तियों की यथावत् सेवा करना उस से अवश्य ज्ञान हो सकता है। इस के उपरान्त यह भी विचार करना योग्य है कि यदि मूर्खों के लिये पाषाणादि पूजन है

तो किन मूर्खों के लिये ? अर्थात् एक तो जन्म से बाल्यावस्था से सभी मूर्ख होते हैं तथा एक मूर्ख वे हैं कि जिन को बड़ी अवस्था में भी किसी प्रकार की विद्या वा सत्सङ्ग से ज्ञान नहीं हुआ। यदि बालकों के लिये है तो उन को सन्ध्योपासनादि का विधान जैसा ब्रह्मचर्य्य आश्रम से ही धर्मशास्त्रों में किया गया है वैसा धर्मशास्त्र का उपदेश क्यों नहीं किया गया और उन बालकों को सन्ध्योपासनादि वा विद्याभ्यास से जब ज्ञान हुआ तो उन के लिये पाषाणपूजन का उपदेश निरर्थक है। दूसरे प्रकार के मूर्खों को इस मूर्त्तिपूजा से ज्ञान होना ही असम्भव है, कदाचित् मान भी लिया जावे कि मूर्खों के लिये है, तो फिर विद्वान् लोग क्यों करते हैं, यदि कोई कहे यह सब पूजन शूद्रों के लिये है तो भी उन को कालान्तर में ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, हां विद्वान् महात्माओं की सेवा उन शूद्रों और मूर्खों से कराई जावे कि जिस से उन को भी सत्सङ्गरूपी गन्ध पहुंच कर उन के अन्तःकरण की धीरे २ शुद्धि होने लगे, शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा करना बतलाया गया है, बहुधा जन यह भी कहते हैं कि प्रतिमा में मन लग जाता है परन्तु उपासना प्रकरण में वेद वा किसी सत्यशास्त्रकार ने प्रतिमा में मन को ठहरा कर उपासना करना नहीं लिखा, फिर किस प्रकार से माना जावे, देखिये अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज से कहा है कि मन बड़ा चञ्चल है इस का रोकना अत्यन्त कठिन है जैसा कि—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

इस पर श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने उत्तर दिया कि सच मुच मन ऐसा ही चञ्चल है उस का ठहरना बहुत कठिन है तथापि अभ्यास और वैराग्य से ठहराया जाता है। ऐसा ही योग सूत्र में भी लिखा है—

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"

अर्थात् चित्त का निरोध अभ्यास और वैराग्य से करना चाहिये, मन को स्थिर करने के लिये प्रतिदिन अभ्यास और जिन वस्तुओं के लिये मन अधिक चलता है उन से वैराग्य करके रोकना चाहिये क्योंकि जिस की उपासना करना चाहते हैं उस आत्मा में चित्त को स्थित करने के लिये बार २ यत्न करने को अभ्यास कहते हैं तथा संसारी वा परमार्थसम्बन्धी सुखों के

भोग की तृष्णा को छोड़ना वैराग्य कहाता है। और ऐसे ही भगवद्गीता में लिखा है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

स्थिरतारहित चञ्चल मन जिधर को निकले उधर से बार २ रोक कर अन्तःकरण में वशीभूत करे इत्यादि प्रकार से मन को स्थिर करने के अर्थ अनेक उपाय शास्त्रकारों ने लिखे हैं, पर यह किसी ने नहीं लिखा कि ईश्वर की प्रतिमा पाषाणादि की बना कर उस में चित्त को ठहरावे, तो किस प्रकार मान लिया जावे कि चित्त को स्थिर करने के लिये प्रतिमा होनी चाहिये, और यह बात युक्ति से भी सिद्ध नहीं कि जो विषय भौतिक इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष करें उसी को हम जान सकें, यदि ऐसा हो तो भूख प्यास सुख दुःख हानि लाभ आदि अनेक विषय हैं जिन को हम कभी इन्द्रियों के द्वारा न प्रत्यक्ष किया और न कर सकेंगे कि भूख इतनी लम्बी चौड़ी मोटी पतली काली पीली आदि है, परन्तु जानते अवश्य हैं कि यह भूख प्यास आदि है किन्तु उस निराकार भूख प्यास आदि के जानने के लिये किसी पाषाणादि की प्रतिमा बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और मूर्ख पण्डित सभी उस को जानते हैं तो निराकार ईश्वर को जानने के लिये पाषाणादिनिर्मित प्रतिमा की क्या आवश्यकता है, देखिये—

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित् जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

जो धातु आदि में आत्मबुद्धि करते हैं और नदी नाले पहाड़ स्थान आदि में तीर्थबुद्धि और स्त्री पुत्रादि में ममता रखते हैं वे मनुष्यों के बीच में गधे वा बैल हैं। महाभारत में लिखा है—

तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठपाषाणमृण्मये।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नरा मूढचेतसः ॥

तीर्थ और पशुओं के यज्ञ, काष्ठ, पाषाण, मिट्टी की प्रतिमा अर्थात् तसवीरों में जिन का मन है वह मनुष्य मूर्ख हैं, और भी कहा है—

मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धयः। क्लि-
श्यन्ति तपसा मूढाः परां शान्तिं न यान्ति ते ॥

जो जीव सर्वव्यापक परमात्मा न्यायकारी की धातु पत्थर लोहा पीतल चान्दी सोना आदि किसी भांति की मूर्त्ति बनाते हैं वे अज्ञानी हैं, और गीता में भी लिखा है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परंभावमजानन्तो ममाव्यक्तमनुत्तमम्॥

अविवेकी विचाररहित, मुझ निराकार को मूर्त्तिमान् मानते हैं मेरे परम भाव अर्थात् मुख्य प्रयोजन को नहीं जानते। यजुर्वेद अ० ४० मं० ९ में लिखा है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूयइव ते तमो य उ संभूत्याꣳ रताः॥

अर्थात् जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं, और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं। इस के उपरान्त य० अ० ४० मं० ८ में लिखा है—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

उक्त मन्त्र में अकाय, अव्रण, अस्नाविर, जो ईश्वर के विशेषण दिये हैं इन से स्पष्ट जाना जाता है कि ईश्वर निराकार है क्योंकि 'काय' नाम शरीर का है जिस के 'काय' शरीर नहीं वह अकाय कहाता है तथा वेदों में और भी बहुत मन्त्र हैं जिन में ईश्वर को निराकार कहा है, तथा उपनिषदों में भी लिखा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥

अर्थात् वह ईश्वर हाथ पैरों से रहित है पर वेगवान् और ग्रहण करने वाला है, वह नेत्रवान् नहीं पर देखता है, वह कानों से रहित है पर सुनता

है, वह सब को जानता है परन्तु उस का जानने वाला कोई नहीं, उस को अग्रय पुरुष पुराण परमात्मा कहते हैं ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥
दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः ।
अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात् परतः परः ॥

इत्यादि वाक्यों में जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप तथा अनादि, अनन्त, अमूर्त्त और नित्य आदि विशेशण ईश्वर के लिये दिये हैं इस से निश्चय है तथा वेदों में अन्य भी अनेक मन्त्र हैं जो ईश्वर को निराकार प्रतिपादन करते हैं, और युक्ति से भी ईश्वर निराकार है क्योंकि जो पदार्थ साकार है वह एक देश में रह सकता है सर्वव्यापक कभी नहीं हो सकता, ईश्वर सर्वव्यापक है तो फिर वह साकार कैसे हो सकता है ? हां अन्तर्यामी सर्वोपरि विराजमान सनातन आदि गुण सहित परमेश्वर की उपासना करने को सगुण और 'अकाय' अर्थात् काया से रहित, पापाचरण कभी नहीं करता, सुख दुःख कभी नहीं होता इत्यादि गुणों से पृथक् मान कर जो उपासना करते हैं वह निर्गुण उपासना कहलाती है । देखिये य० अ० १० मं० २५ में परमात्मा आज्ञा देते हैं कि जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवनादि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं होसकता । जैसा कि:—

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्ज्जम्मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥

और ऐसा ही इसी अ० के २४ वें में भी लिखा है इस लिये प्यारे सांसारिक भाइयो आओ ! हम सब मिल कर उस परमेश्वर को वेद द्वारा जान कर नाना प्रकार से उस की स्तुति, प्रार्थना, उपासना सदा करें और कभी किसी समय में भी उस परमपिता अन्तर्यामी को क्षणमात्र के लिये भी त्याग न करें क्योंकि वही हमारे आत्मिक रोगों का नाश करने वाला डाक्टर है वही हमारा पालन करने वाला हमें ज्ञान देने वाला और हम को दुःखों से छुटाकर सुख प्रदान करने वाला है उस के उपरान्त कोई दूसरा नहीं ॥

त्योहार ॥

इस समय भारतखण्ड में 'त्योहारों' की भी धूम धाम है, कोई महीना ऐसा न होगा कि जिस में कोई त्योहार न होता हो, वरन दो २ चार २ त्योहार एक २ महीने में आन पड़ते हैं जिन के नियत करने के कारण भी पृथक् २ हैं परन्तु अब कुछ के कुछ समझे जाते हैं और प्राचीन समय में इतने त्योहार न थे। हां जब से भारत में विद्या का प्रकाश कम हुआ और अविद्या ने अपना राज्य किया तब से स्वार्थियों ने नाना लीला रचकर अपने २ मतलब गांठने के अर्थ अनेकान त्योहार नियत कर लिये जिन का यदि ब्योरेवार वर्णन किया जावे तो एक बड़ी पुस्तक बन जावे। इस कारण हम श्रावणी, दशहरा, दिवाली, इयोथान, वसन्त, होली जो सब से प्राचीन त्योहार हैं उन का संक्षेप से वृत्तान्त और मुख्य प्रयोजन लिखते हैं कि जिस कारण यह त्योहार नियत किये गये हैं। और अब जैसा गड़बड़ कर लिया है उस को भी सज्जनों के सम्मुख प्रकाश करता हूं। अब निष्पक्ष हो विचारपूर्वक प्रत्येक त्योहार के मुख्य कारण को जान यथार्थ व्यवहार करना उचित है और इन सम्पूर्ण त्योहारों में जो २ मिथ्या वार्त्ता हैं उन का त्यागना अभीष्ट है कि जिस से आगे को सुख हो ॥

ऋषितर्पण वा श्रावणी ॥

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमात् ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं व्यथा ॥

इस श्लोक के अर्थों से प्रकट होता है कि इसी ऋषितर्पण त्योहार पर कि जिस का अशुद्ध नाम 'सलोना' प्रसिद्ध है, अब हम इस के तात्पर्य्य को प्रकाश करते हैं कि मुख्य प्रयोजन इस का क्या है और हम को क्या करना चाहिये।

प्यारे सुजनो! यह बात स्पष्टरूप से प्रकट है कि संसार में विद्वानों और महात्माओं की प्रतिष्ठा करना ही सुख का हेतु और भलाइयों का मूल है और जिस स्थान पर ऐसे गुणी और सत्पुरुषों का अच्छे प्रकार से आदर सत्कार नहीं होता वहीं नाना प्रकार के उपद्रव मचते हैं जैसा कि उपरोक्त श्लोक के अर्थों से प्रकट होता है। जहां अपूज्य अर्थात् मूर्खों की पूजा और ज्ञानी महात्माओं का असत्कार होता है वहां तीन बातें होती हैं। अकाल, मरी, व्यथा। जो अधर्म के फैलने से प्रकट होती हैं। हमारे प्राचीन सत्य-

शास्त्रों में भी तीन प्रकार के क्लेश लिखे हैं—पहिला 'आध्यात्मिक' जो कि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीडा होती है। दूसरा 'आधिभौतिक, जो प्राणियों से होता है। तीसरा 'आधिदैविक, जो मन और इन्द्रियों के विकार अशुद्धि और चञ्चलता से क्लेश होता है। यदि ध्यान लगाकर देखा जावे तो यह तीनों दुःख विद्वान् और महात्माओं के निरादर करने से उत्पन्न होते हैं क्योंकि 'आध्यात्मिक, जो अन्तःकरण के दोषों से होता है और उस की शुद्धि और अन्तःकरण की शुद्धि सत्योपदेश से होती है। सत्योपदेश विद्वानों का (जो ऋषि मुनि वा देवता के नाम से पुकारे जाते हैं) काम है इस के उदाहरण उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत से पाये जाते हैं कि मन की शान्ति के लिये बड़े २ विद्वान् भी सत्योपदेश सुनने को आत्मतत्त्वज्ञानियों के निकट जाया करते थे। 'आधिभौतिक' शारीरक रोगों वा घातक जन्तुओं से होता है जिस से आराम पाना वैद्यक विद्या के आधीन है जो पूर्ण विद्वानों के सत्सङ्ग से जाते हैं। तीसरा 'आधिदैविक' जो सर्दी गर्मी वर्षा के न्यूनाधिकत्व से होता है उस का उपाय और दूर होना भी महात्माओं के हाथ है क्योंकि यह सज्जन सदा हर एक ऋतु और मौसम के अनुकूल योग्य पदार्थों से हवन यज्ञ करते थे जिस के प्रभाव से साफ़ वायु शुद्ध हो कर समय २ पर यथावत् वर्षा होती थी, और कभी मरी बबा और हैज़ा का नाम न सुना जाता था। और जो दुःख चोर डांकू और घातक जन्तुओं होंते हैं उन का प्रबन्ध राजऋषि करते थे। इस उपरोक्त व्याख्यान से स्पष्ट प्रकट होगया कि सब प्रकार के दुःख विद्वानों और महात्माओं के परिश्रम से दूर हो सकते हैं, जहां उन की प्रतिष्ठा नहीं वहां उन का मिलना दुर्लभ है। ऐसा ही वेदों में भी पाया जाता है जैसा कि अथर्ववेद के प्रपाठक ३५ काण्ड १९ अनुवाक १ मं० १४ में लिखा है—

शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण देवता (विद्वान् लोग) प्रत्येक प्रकार के दुःख दूर कर के शान्ति करने वाले हों।

इसी प्रकार और भी अथर्व वेद में लिखा है कि जो विद्वानों में श्रेष्ठ यज्ञ कराने वाले हैं और जो यज्ञ में सत्कार करने योग्य हैं जिन के लिये 'हव्य' अर्थात् उत्तम सामग्री के भाग किये जाते हैं और वह सर्व विद्वान् (देवता) अपनी स्त्रियों के साथ आकर इस यज्ञ को उत्तम बुद्धि से पूर्ण करें—

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्यवावन्तोदेवा समिषा माऽदन्ताम् ॥

अ० प्र० १९ कां० ५७ अनु० ५९ मं० १०

इन मन्त्रों से स्पष्ट प्रकट है कि हमारे सम्पूर्ण कार्य विद्वान् महात्मा ऋषिओं के द्वारा ही हो सक्ते हैं यही कारण था कि प्राचीन राजा महाराजा विद्वानों और ज्ञानियों का आदर सत्कार तन मन धन से करते थे, देखिये महाराजा दशरथ ने श्रीविश्वामित्र जी महाराज जो वन के रहने वाले एक ऋषि थे, जब महाराजा के निकट आये तब उन्हों ने उन का यहां तक मान और सत्कार किया कि अपने प्यारे कुलभूषण श्रीरामचन्द्र जी को यज्ञ की रक्षा और उस की सेवा सहायता के अर्थ साथ कर दिया, इसी प्रकार राजा और प्रजा अपनी शक्ति के अनुकूल इन सत्पुरुषों की सहायता और सेवा करते रहे हैं परन्तु वर्षा के इन चार महीनों में विशेष कर सेवा और सत्कार का अधिक प्रचार था क्योंकि इन्हीं दिनों में वर्षा की अधिकता के कारण व्यापार कम होता था व्यापारी जन अपने घरों पर निवास करते थे और ऋषि महात्मा विद्वान् लोग जङ्गल पहाड़ों से आकर नगरों में निवास करते थे, इसलिये यह समय सत्सङ्ग के लिये अत्यन्त उचित और योग्य था, घर से मनुष्य उन के पास जाकर उन के सत्सङ्ग से नाना लाभ उठाते थे, आषाढ़ और सावन दो महीने के सत्सङ्ग से गृहस्थी और राजपुरुष लोग विचारते थे कि अमुक ऋषि वा महात्मा इस सत्कार वा सम्मान के योग्य हैं, वैसा ही इस पूर्णमासी के दिन जो श्रावण महीने का अन्त दिवस है, प्रत्येक ऋषि महात्मा विद्वान् के साथ यथायोग्य वित्तसमान दान देते थे, और जो मनुष्य यज्ञोपवीत से भ्रष्ट होते थे उन को यज्ञोपवीत दिया जाता था, और जो कुसङ्ग के कारण पतित हो जाते थे उन को भी इस समय पर शुद्ध किया जाता था वह सम्पूर्ण महात्मा इन गृहस्थी और राजपुरुषों से सम्मान पाकर धर्मोपदेश किया करते थे और राजा प्रजा को हवन यज्ञ की ओर रुचि दिलाते, अपने हाथों से भी करते कराते थे, यज्ञ के लाभ अनेक हैं कि जिन का वर्णन पञ्चयज्ञों में किया है ॥

इस ऋतु में अधिक यज्ञ करने की प्रेरणा इस कारण है कि इन दिनों में स्थान स्थान पर पानी रुक जाता है कि जिस से वायु बिगड़ जाती है

कि जिस से नाना रोगों के उत्पन्न होने का भय होता है इस कारण प्राचीन समय के ऋषि मुनियों ने इन सब बुराइयों के मेटने का उपाय एक यज्ञ करना ही विचारा था और वह आप इन परोपकारी यज्ञों में वेद मन्त्रों को उच्चारण करते थे कि जिन में यज्ञ की रीति और फल, परमात्मा की उपासना और प्रार्थना होती है करते कराते थे। कैसा शुभ समय वह होता होगा क्योंकि प्रथम तो वर्षा ऋतु के कारण हरे २ पौदों की हरियाली आंखों को आनन्द देती होंगी, दूसरे 'यज्ञ' के होने से उस की सुगन्धों की लपटें सब स्थानों और शरीर को सुगन्धित कर देती होंगी, तीसरे ऋषि और महात्माओं के सत्योपदेश से अन्तःकरण के मल दूर होते होंगें, तदनन्तर वह सर्व जन उन सत्पुरुषों और ऋषि मुनि महात्माओं को आदर सत्कार कर बिदा करते थे, उसी समय वे महात्मा जन उन को आशीर्वाद देते थे, जिस को ऋषितर्पण कहते हैं, आर्यों में जो देवयज्ञ करने की शिक्षा है वे विशेष कर इन्हीं महीनों में पूर्ण होते थे, राखी वा कलावा हाथ में बान्धने की रीति जो अब तक प्रचलित है, यह उन यज्ञों में जाने का चिह्न था, जो मनुष्य इन दिनों में महात्माओं के सत्सङ्ग और उपदेश से लाभ उठाते, उन के हाथ में यह शुभ चिह्न बांधा जाता था ॥

दशहरा ॥

यह हमारे देश का प्रसिद्ध त्योहार है जो श्रीरामचन्द्र धर्मात्मा परोपकारी के स्मरण का दिन है कि जिन के नाम का स्मरण प्रत्येक की जिह्वा पर है। जिन को मरे हुए लाखों वर्ष होगये परन्तु उन के गुणों की प्रशंसा प्रत्येक जन करता है। ये महात्मा उस समय के मनुष्यों में सर्वोपरि थे जिन के समान इस समय तक पृथ्वी पर श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के सिवाय और कोई नहीं हुआ देखिये अपने पिता की आज्ञा को मान राज्य के सुखों को त्याग कर चौदह वर्ष वन में रहना स्वीकृत किया और वहां सेना के न होने पर भी वनवासियों के दुःखों को दूर किया। चौदह वर्ष की आयु में विश्वामित्र ऋषि की सेवा टहल कर अनेक दुष्टों को मारा और सदा सत्य को ही सम्पूर्ण कार्यों में प्रधान समझ कर उस को कभी त्याग न किया। इसी कारण सम्पूर्ण प्रजा जन उन को अधिक चाहते थे। आप ही ने राजा जनक का प्रण पूरा कर जानकी के साथ विवाह किया था यह आप ही की सामर्थ्य थी कि वन के बीच में होने पर भी दुष्ट राक्षसों को मार कर वनवासियों को

आराम दिया। क्या कोई नहीं जानता कि इन्हीं प्रतापी महात्मा ने लङ्का के राजा रावण को मारा था। यह राजा भी महाबली और बलवान् था। जिस दिन इस दुष्ट को मारा था वह दिन कुआर शुदी १० थी जिस को विजयदशमी कहते हैं। जो श्री महाराजा के स्मरणार्थ आज तक उसी दिन पर त्योहार मनाया जाता है। दूसरे वर्षा के दिनों में सम्पूर्ण असबाब राजाओं का पड़ा रहता है क्योंकि वर्षा के दिनों में चढ़ाई आदि बहुत कम होती है और हथियारों पर भी मैल जम जाता है इसलिये वर्षा के अन्त पर एक दिन नियत किया गया कि उस तारीख़ को सम्पूर्ण माल असबाब ठीक हो जावें और बड़ी धूमधाम की जावे और वर्ष भर का हिसाब किया जावे, इत्यादि बातों के लिये यह त्योहार किया जाता है ॥

परन्तु कैसे शोक का स्थान है कि वर्त्तमान समय में मुख्य अभिप्राय को छोड़ कर ऐसा आश्चर्ययुक्त रंग रचा है जो बुद्धि के अत्यन्त विरुद्ध है क्योंकि ऐसे सच्चे परोपकारी धर्मात्मा के स्थान पर ऐसे २ मूर्ख लड़कों के स्वांग बना कर दिखलाते हैं जिन को किसी प्रकार का ज्ञान नहीं, तिस पर उन के चाल चलन ऐसे ख़राब कि जिन के कथनमात्र से लाज आती है। लुच्चों की गोद में सोते हैं उन्हीं का नाम राम लक्ष्मण इत्यादि होता है और नक़ल बनाना बहुत बुरा है जैसा मनु जी ने लिखा है—

दशसूनासमश्चक्रं दशचक्रसमोध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः॥

अर्थात् किसी की नक़ल बनाने में मनु जी ने १००० गोहत्या का पाप लिखा है भाट भंडेले बहुरूपिये आदि तो इस पाप कर्म से सदा अपना जीवन ही करते हैं परन्तु स्वांग बनाने वाले तथा रामलीला कृष्णलीला बनाने वाले अपना धन व्यय कर के नक़ल बना कर इस पाप में क्यों पड़ते हैं ॥

दिवाली ॥

इस के विषय में पुराणों के वचन सुनाते हैं—देखिये कार्त्तिकमाहात्म्य में लिखा है कि प्राचीन समय में एक ब्राह्मण था जो धन की लालसा में विष्णुमहाराज जी की सेवा करने लगा थोड़े दिनों में जब विष्णु महाराज उस के तप से प्रसन्न हुए तो उस के निकट पहुंचे और पूंछा कि तुम क्या चाहते हो उस ने धन (लक्ष्मी) के मिलने की प्रार्थना की उन्होंने कहा कि

तुम अपने स्थान पर जाकर राजा से यह मांगो कि मिती कार्तिक बदी अमावस की रात्रि को कोई नगर में दिया न जलाने पावे जब यह प्रार्थना अङ्गीकृत हो जावे तो तू अपने घर में अच्छे प्रकार से दियों को जलाना इस दिन लक्ष्मी उस नगर में आवेगी और सब नगर में अन्धेरा होने के कारण घबड़ा कर तेरे घर में घुस पड़ेगी इस वरदान को पाकर घर आ, विष्णु की आज्ञानुसार राजा से प्रार्थना की जो तुरन्त स्वीकार हुई उस ब्राह्मण ने वैसा ही किया, जब आधी रात का समय हुआ और लक्ष्मी जी आई जो चारों ओर नगर भर में अन्धेरा फैला हुआ देख कर उस ब्राह्मण के घर में कि जो नानाभांति से सजा हुआ प्रकाशित हो रहा था घुस गई, तब ब्राह्मण डंडा लेकर पीछे पड़ा कि तू निकल मेरे घर से तू बड़ी चञ्चल विष्णु की स्त्री है, तू कहीं नहीं ठहरती मेरे घर में भी नहीं ठहरेगी, इसलिये मैं तुझ को अपने घर में रक्षा न करूंगा, लक्ष्मी ने निहायत खुशामद की और प्रण किया कि मैं तेरे घर से कभी न जाऊंगी वह ब्राह्मण लक्ष्मी के कारण धनाढ्य हो गया, लोगों ने उस को धनवान् देख कर लक्ष्मी की चाहना में उसी के अनुसार उस दिन सब घरों को स्वच्छ और सुथरा कर दीपमालिका की । उसी दिन से यह रीति चली आती है जिस से इस कार्य के कर्त्ता धन दौलत से भरे पुरे रहते हैं ॥

अब इस उपरोक्त लेख पर दृष्टि डालने से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि ब्राह्मण ने दुःखी हो कर धन (दौलत) की प्रार्थना की थी न कि विष्णु महाराज की स्त्री की, फिर श्रीविष्णु जी ने लक्ष्मीप्राप्ति का यह अनोखा उपाय ब्राह्मण को क्यों बतलाया ऐसे विष्णु को आप क्या कहेंगे कि जिस ने अपनी स्त्री के मिलने का उपाय दूसरे को बताया और आप ने सदा के लिये अपनी स्त्री की जुदाई स्वीकार की यदि उस शहर वा नगर में राजा के हुक्म से अन्धेरा था तो और आस पास के नगर गांव में तो आधीरात थी वहां क्यों न चली गई, तिस पर भी उस ब्राह्मण के कटु वचन सुन कर उस के गृह मे सदा के लिये रहना स्वीकार किया, पर यह नहीं लिखा कि वह क्योंकर लक्ष्मी की बदौलत धनवान् होगया क्योंकि वह अपने साथ कुछ लाई न थी, उपाय क्या किया कि जिस से वह ब्राह्मण द्रव्यवान् होगया ? ॥

अब देखिये कि इस के विरुद्ध शिवपुराण में दिवाली के विषय में इस प्रकार लिखा है—

श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजा ! प्राचीन समय विष्णु महाराज ने 'वामन' अवतार राजा बलि के फुसलाने के अर्थ लिया और इन्द्र को राज्य दिला कर बलि को पाताल में नियत किया, और केवल एक दिन इस पृथ्वी पर राजा बलि के राज्य के अर्थ नियत किया इसलिये कार्तिक बदी अमावस को पृथ्वी पर दैत्यों का राज्य होता है और वह अपने स्वभाव के अनुकूल कार्य्य करते हैं इसी से उस दिन जुआ खेलने की आज्ञा है ॥

प्यारे सुजनो ! अब विचारिये कि एक 'दिवाली' कि जिस के अर्थ दो रायें, वह भी एक दूसरे के विरुद्ध, तो बताइये किस को सच कहें और किस को झूंठ, यदि उस दिन दैत्यों का राज्य मानते हो तो दैत्यों के कार्य में शामिल होना और त्योहार मान कर खुशी करना भी वृथा और अनुचित है ॥

अब हम आप को ठीक २ वृत्तान्त इस त्योहार का सुनाते हैं उस को विचारिये और सच को मानिये—

यह त्योहार वर्षा के समाप्त होने पर होता है, अत्यन्त वर्षा होने के कारण सम्पूर्ण मकानों की शकल सूरत बुरी और भोंडी हो जाती है, हमारे बड़े २ ऋषि, महात्मा, जो पदार्थ विद्या को यथावत् जानते थे और शौच को धर्म का एक लक्षण मानते थे यह एक दिन इसी लिये नियत किया था कि उसी दिन तक प्रजा के सब मकानों की सफ़ाई ठीक २ होजावे कि जिस से उन की सुन्दरता में अन्तर न होजावे और वायु अशुद्ध न होने पावे इस कारण इस कार्य को आवश्यक समझ कर इस दिन त्योहार मान लिया कि जिस से सम्पूर्ण स्थानों में यह कार्य होजावे ॥

अब रहा दीपमालिका का होना यह भी प्रयोजन से पृथक् नहीं है क्योंकि बुद्धि से ऐसा जाना जाता है कि श्रीरामचन्द्र जी विजयदशमी को रावण को मारकर कार्त्तिक वदि अमावस को अयोध्या में पधारे थे क्योंकि राजा रामचन्द्रजी महाराज चौदह वर्ष पश्चात् वन से आये थे जो प्रजा के अत्यन्त प्यारे थे इस प्रसन्नता को प्रकट करने के लिये दीपमालिका की थी और नवीन अन्न इत्यादि का हवन परमेश्वर का धन्यवाद मानकर प्रसन्नता मनाई थी। यह यादगार अब तक चली जाती है और ऐसे ही चली जायगी ॥

देवोत्थान अर्थात् ड्योठान ॥

यह त्योहार मिती कार्त्तिक शुदि ११ को होता है पूर्वकाल में ऋषि, मुनि, देवता, विद्वान्, महात्मा जो कि वर्षा ऋतु में शहरों में आजाते थे इस

तिथि से फिर अपना दौरा आरम्भ करते थे। इस समय तक ज्वार बाजरा आदि अन्न और गन्ना भी तय्यार होजाता था। इसलिये इस दिन सम्पूर्ण जन हवन करके प्रकार २ के पदार्थ विद्वानों को अर्पण करके प्रार्थना करते थे कि हे विद्वानो! आप संसार के भिन्न २ भागों में जाकर अपने सदुपदेश से मनुष्यों को धर्मात्मा बनाइये। बहुधा मनुष्य ऋतु की नई २ वस्तुऐं भी इस कारण से इस तिथि तक नहीं खाते थे क्योंकि वे अपक्व रहती हैं इसलिये आज हवन करके विद्वानों को खिलाकर गन्ना आदि खाते थे वर्त्तमान समय में भी स्त्रियां एक पले के नीचे दिये और ऋतु के पदार्थ रखकर सम्पूर्ण गृह स्त्री पुरुष कहते हैं कि उठो देव बैठो देव पामरिया चटकाओ देव आदि। इस से भी वही अभिप्राय पाया जाता है जो ऊपर वर्णन हुआ। इस से ज्ञात होता है कि मनुष्यमात्र मुख्य अभिप्राय को भूल गये मगर लीक पीटते चले आते हैं॥

हिमेष्टि अर्थात् वसन्त ॥

यह त्योहार मिती माघ शुदि ५ को होता है क्योंकि इस ऋतु में नई २ कोंपलें और हरे२ पत्ते दरख्तों से निकलते हैं, पुष्प भी खिलते हैं और वसन्त ऋतु आरम्भ हो जाता है और फस्लरबी भी फूलने फलने लगती है जिस से प्रजा का पालन होता है इसलिये सब मनुष्य मिल कर यज्ञ कर के परमात्मा से धन्यवादपूर्वक प्रार्थना करते थे, कि यह फस्ल अच्छे प्रकार से निर्विघ्न समाप्त हो, परन्तु अब तो केवल गेहूं जौ की बाल और सरसों राई आम के फूलों को ब्राह्मण लोग लाते हैं और धनिक लोगों को प्रसन्न करने के अर्थ देकर कुछ प्राप्त करते हैं॥

होली ॥

यह त्योहार फसल रबी का उत्सव है। इस वसन्त ऋतु में वह अन्न फल फूल उत्पन्न होते हैं कि जिन से मनुष्यों का जीवन आधार है। क्योंकि होली पर यह सब अन्न आधे पक जाते हैं इसलिये इस त्योहार का नाम होलिका रक्खा है। क्योंकि संस्कृत में "अर्द्धपक्वमन्नम् होलिका" अर्थात् आधे पके अन्न को होलिका कहते हैं। यह बात प्रत्यक्ष प्रकट है कि चनों के बूटा जो बहुधा गांव के लोग भून लेते हैं उन को होले कहते हैं जो कुछ पक्के और कच्चे होते हैं। इन से जाना जाता है कि होलिका अर्थात् आधे

पके नाज का पूजन, इस के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि उस को आग में भूने वा पकाया जाय क्योंकि पूजा शब्द का यही अर्थ है कि जो पदार्थ जैसा है उस के साथ उसी प्रकार वर्त्ताव किया जावे। इसलिये होली का जलाना अर्थात् नाज का भूनना उस की पूजा है। परन्तु बड़े शोक की बात है कि जिस को हम देवी मान कर त्योहार मनायें फिर उसी को जलाकर राख की ढेरी बनाकर प्रसन्न हों!

हमारे देश में होली के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि प्रह्लाद परमेश्वर का भक्त था, उस का बाप हिरण्यकशिपु नास्तिक था और प्रह्लाद को ईश्वराराधन करने को मना करता था परन्तु वह इस को नहीं मानता था। इस से उस को नाना भांति से कष्ट देता था। यहां तक कि उस को आग में डाल दिया। यह भी प्रसिद्ध है कि हिरण्यकशिपु की बहन कि जिस को यह आशीर्वाद था कि वह आग में न जलेगी, उस के साथ बिठाई गई परन्तु वह तो जलगई और प्रह्लाद को परमेश्वर की कृपा से आंच भी न आई और इस पर जो हरिभक्त थे उन्हों ने अधिक प्रसन्नता की और कहा कि प्रह्लाद! तू बचगया और वह (होली) जलगई। निदान यह वही होली है इसी कारण इस का वही नाम पड़ गया है॥

प्यारे सुजनो! यह बात महामिथ्या है क्योंकि आग में डालने से कोई बच नहीं सकता चाहो कैसा ही भक्त हो यह कभी हो नहीं सकता कि दो मनुष्य आग में बैठें एक उन में से मरजाय और दूसरे को कुछ आंच न आये यदि परमेश्वर अपने भक्त को भक्ति करने के कारण जलने न दे तो वह न्यायकारी नहीं रहता अर्थात् जो नियम और रीति और सृष्टिक्रम रचा है वह जाता रहे सो यह असम्भव है। इसलिये परमेश्वर के प्रतिकूल कोई कार्य हो नहीं सकता, यदि ऐसा ही मानलिया जावे तो हरिभक्त के बचने की प्रसन्नता में जो आनन्द मनाया जावे उस में शराब भङ्ग पीना, माजून नशे खाना, खाक उड़ाना, कीच फेंकना, नाचना आदि मिथ्या प्रपञ्च क्यों रचे जायं ऐसे समयों पर तो परमेश्वर के गुणानुवाद गाना और हवन आदि यज्ञ करके जगदीश्वर का धन्यवाद गाना चाहिये कि जिस ने ऐसी कृपा की थी। भला बताओ तो सही यह कौन.सी नीति और धर्म की बात है कि परमेश्वर तो ऐसी असम्भव कृपा करे और हम तुम उस के पलटे में और अशुभ कार्य करें। इस के उपरान्त इसी त्योहार के साथ एक त्योहार धुरहड्डी का भी है।

यदि होली की व्युत्पत्ति यही मानीजाय तो धुरहडी की वजह क्या है ? इस का सबब यों वर्णन करते हैं कि धुरहडी के दिन जो राख उड़ाई जाती है यह उसी आग की राख का चिह्न है। परन्तु हम नहीं जानते कि इस से क्या उत्तम बात प्राप्त होती है। यदि राख उड़ाते तो राक्षस उड़ाते कि जिन के अफ़सर की बेटी आग में जलगई थी। हरिभक्तों को ख़ाक उड़ाने से क्या प्रयोजन ? इस के सिवाय प्रह्लाद रात्रि के समय आग में डाला गया था चुनाचे होली भी रात को ही फूंकी जाती है इस से प्रकट है कि होली फूंकने की रात्रि से पहिले दिन खुशी करने का समय नहीं है वरन उस दिन रञ्ज करने का समय है क्योंकि उस दिन प्रह्लाद के जलजाने का सन्देह था फिर इस का क्या कारण है कि रञ्ज के दिन खुशी मनावें और उस के अगले दिन ख़ाक उड़ायें। योग्य तो यह था कि धुरहडी के दिन खुशी मनाई जाती और होली के दिन रञ्ज किया जाता, इस को भी जाने दीजिये। अब ज़रा विचार कीजिये कि जिस आग को जलाकर हम और आप पूजते हैं वह सचमुच राक्षसी की चिता है मानो आप होली की पूजा नहीं करते वरन राक्षसी की क़बर अर्थात् चिता पूजते हो। इसी प्रकार की और भी हज़ारों शङ्का उत्पन्न होती हैं कि जिन का उत्तर कुछ नहीं। इस से प्रत्यक्ष प्रकट है कि होली और धुरहडी की व्युत्पत्ति महामिथ्या है। और होली का मुख्य वही प्रयोजन है जो हम ने ऊपर वर्णन किया और धुरहडी की व्युत्पत्ति यह है कि यह त्योहार चैत वदि अमावस को होता था जैसा कि वर्त्तमान समय में दक्षिण में अब भी होता है। और उसके अगले दिन चैत्र शुदि प्रतिपदा को महाराजा विक्रमादित्य के गद्दी पर बैठने का दिन है। पस श्रीमहाराज के गद्दी पर विराजमान होने के पीछे होली के बाद यह दूसरा त्योहार बढ़ाया गयाहै ॥

इन सब के सिवाय अबीर गुलाल उड़ाने, रङ्गपाशी करने की जो रीति प्रचलित है यदि पौराणिकों से उस का कारण पूंछा जावे तो वह कुछ नहीं बताते सिवाय इस के कि कृष्णचन्द्र महाराज ने गोपियों के साथ रंग खेला है कि जिस का किसी पुस्तक में प्रमाण नहीं इस से यह कहना मिथ्या जान पड़ता है। बुद्धि से विचार करने से जाना जाता है कि यह केसर कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुऐं हवन यज्ञ करते समय गुलाब आदि में पीस कर केवड़ा गुलाब की भांति गुलाबपाशी में भर कर जैसा कि विवाह आदि में छिड़के जाते हैं, छिड़के जाते होंगे ॥

ज्योतिष ॥

प्रकट हो कि ज्योतिष शास्त्र का नाम लेकर वर्तमान समय में नाम मात्र के पण्डित लोग जातकर्म नामकरण विवाह और व्यापारादि में ग्रहों की दूकान खोल नाना भांति से धन हरण करते हैं यह केवल हमारे और आप के संस्कृत विद्या के न जानने ही का कारण है प्यारे भाइयो ! ज्योतिष शास्त्र छः शास्त्रों में से एक शास्त्र है उस में गणित मुख्य है शेष फलित अनुमान मात्र है परन्तु आज कल इस फलित के द्वारा लाखों के धन हरण करते चले जाते हैं जिस के महूर्तचिन्तामणि, लघुजातक, नीलकण्ठी, जातकाभरण आदि नवीन ग्रन्थ बनते चले जाते हैं शोक तो हम को अपने देशीय भाइयों पर है जो यह भी विचार नहीं करते कि भूत, भविष्यत्, वर्तमान, इन तीनों कालों को जानने वाला सिवाय उस परमात्मा सर्वव्यापक के कोई नहीं होसक्ता सो इस समय में भाषा के जानने वाले ब्राह्मण जिन को पत्रापांड़े कहते हैं त्रिकालदर्शी का दम भरते हैं फिर नहीं मालूम कि हमारे पत्रापांडे कैसे जानलेते हैं जैसा कि उत्पन्न होने के समय और अन्य २ समयों पर जन्मपत्री बना कर सुनाते हैं, कि इस लड़के को चौथे आठवें महीने बड़ी कठिनाई से व्यतीत होंगे इस के ग्रह ननसाल के लिये उत्तम हैं परन्तु माता के लिये उत्तम नहीं हैं धन स्थान में इस के ऐसा ग्रह पड़ा है जो बाप के धन को भी सोख लेगा मृत्यु स्थान में सौम्यग्रह बैठा है इसलिये इस के जीवन में खटका है इत्यादि बातें महामिथ्या हैं कि जिन के सुनने से हानि के अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं होता हां जन्मपत्री अवश्य बनाना चाहिये कि सरकार दर्बार विवाह आदि में अवस्था तिथि आदि की आवश्यकता पड़ती है इस में वार तिथि मास संवत् बाप दादे का नाम ही लिखना योग्य है ॥

इसीलिये हमारे पुरुषों ने इस को बनवाया था इस के उपरान्त ग्रह इत्यादि लिखे जाते हैं यह सब अनुमान मात्र है जिन से हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं जान पड़ता प्यारो! ज्यों २ इन जन्मपत्रियों की दक्षिणा अधिक मिलती गई त्यों २ यह भी अपनी दशा पलटती गईं अर्थात् बहुत बड़ी नाना प्रकार के रङ्गों और चित्रों समेत बननेलगीं जिस में अष्टोत्तरी विंशोत्तरी जन्मकुण्डली चन्द्रकुण्डली आदि नवग्रहों तिथि वार लग्न इत्यादि के भाव लम्बे चौड़े लिख कर यजमान को देते हैं। बीमारी के समय तो यह अच्छे प्रकार हाथ मारते हैं अर्थात् पत्रा और जन्मपत्री को खोल कुम्भ मीन मेष

कह मुंह बिगाड़ अपने चेलों से यों कहते हैं कि सूर्य और चन्द्र अरिष्ट पड़े हैं और इस वर्ष जन्म लग्न और वर्ष लग्न भी एक ही है इतनी बात के सुनते ही मुखड़े का प्रकाश फींका हो गया अति गिडगिडाय पण्डित जी के पैरों पर गिर पड़ते हैं और कहते हैं कि हे गुरु जी! अब आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये और इस से छूटने का कोई उपाय बतलाइये सच तो यह है कि हमारे सीधे साधे भोले भाई उन पण्डितों को परमेश्वर ही मानते हैं और पण्डित जी भी परमेश्वर का भय न कर परमेश्वरी नियमों को तोड़ यजमान से कहते हैं दशलक्ष दुर्गा जी का पाठ और सूर्य चन्द्र इत्यादि का दान करादो तो यह कष्ट दूर हो जावेगा और यदि बहुत बड़े साहूकार हुए तो उन को गौसठ तुलसी शालिग्राम का विवाह ब्रह्मभोज महामृत्युञ्जय आदि का जप बता कर हज़ारों रुपये चट कर जाते हैं हमारे प्यारे भाई बहनें पण्डित जी के भरोसे पर रहते हैं यहां तक कि जप होते ही होते दम निकल जाता है और मुख्य उपाय अर्थात् चिकित्सा कराने से बेसुध रहते हैं या उधर पूरा ध्यान नहीं देते और जब कोई पण्डित जी से कहता है कि यह जप आप ने कैसा किया तब अति क्रोधित हो कर कहते हैं कि 'कर्म गति कौन जाने' हम क्या परमेश्वर से बड़े हैं जो मृत्यु से बचा सकें उस की मृत्यु ही बदी थी! पस सोचने का स्थान है जब उन के कहने के अनुसार मरने वाले को कोई नहीं बचा सकता फिर ग्रहों के नाम पर दान और उन के जप का क्या लाभ क्योंकि जिस का जीवन होगा वह अवश्य ही बच जावेगा इसलिये बीमारी के समय औषध करना योग्य है और यथायोग्य रीति पर दान करना उत्तम है न कि धोखे की टट्टी में शिकार मारना ॥

इस के उपरान्त जब यह पत्रापांडे आप वा उन के घरों में कोई बीमार होता है तब वह क्यों वैद्य की चिकित्सा कराते हैं यह आप उस समय जप और ग्रहों के दान करा कर क्यों नहीं बीमारी को दूर कर लेते यह प्रत्यक्ष प्रकट है कुछ कहने की बात नहीं क्योंकि हमारे भाई प्रतिदिन देखते हैं कि पण्डित साहिब शीशी में मूत्र लिये वैद्यों और अत्तारों के यहां मारे मारे फिरते हैं कैसे शोक का स्थान है कि यह ज्योतिषी हम को तो जप और ग्रहों के दान में फंसा कर सत्यानाश करा देवें और आप अपनी और अपने बच्चों की औषध करा कर जान बचालेवें, हाय क्या ही अचम्भे की बात है कि अपने घर के तरुण बच्चे को तो मरजानेदें और हमारे घर के लोगों को जप ग्रह दान से बचाने का उपाय रचें! हाय मूर्खता तेरा मुंह काला हो॥

इसी प्रकार जब कोई मुक़द्दमा होता है तो एक पण्डित मुद्दई और दूसरा मुद्दायले को जाकर घेरता है और दो चार बातें इधर उधर से कह सुन कर मुक़द्दमें की चर्चा छेड़ते हैं और उपदेश देते हैं कि यदि आप शिव जी इत्यादि किसी देवता का जप करादेवें तो आप की जय हो जायगी और हमारी आप की एक बात है जो कुछ आप देदेंगे वह हम लेलेंगे क्योंकि आप हमारे यजमान हैं इस में बड़ी २ मिहनत करनी पड़ेगी रात्रि में जप जङ्गल में जा करना होगा, जिस की दक्षिणा इतनी है परन्तु आप के मन में आवे सो देदेना क्योंकि आप के घर से हम को प्रतिवर्ष मिलता ही रहता है लेकिन इतने रुपये की सामग्री आप आज ही घर पर भेजदें और दो पण्डितों के भोजनों का आप प्रबन्ध किसी दूकान से करादें। अब विचार करने का स्थान है कि दोनों में एक की जीत तो अवश्य ही होगी पण्डित जी के ठहराये हुए रुपये चित्त हो गये और उस के घर में और मित्रों में ज्योतिषी जी की प्रतिष्ठा सदा के लिये हो गई, भाइयो! मुक़द्दमे का मन्त्र क़ानून सर्कारी सुबूत आदि हैं न कि ग्रहों का जप और दान, यदि आप को ग्रहों पर ही ऐसा विश्वास है तो वकील आदि की सम्मत्यनुसार सुबूत आदि न दीजिये फिर हम देखें कि ज्योतिषी का जप किस प्रकार डिगरी कराता है, और जब आप दोनों बातें करते हो मानों डिगरी हो भी गई तो आप को यह कैसे ज्ञात हुआ कि आप की जीत ग्रहों के दान से हुई या सुबूत आदि से ॥

इस के उपरान्त ज्योतिषियों पर भी डिगरी होती है क्यों जप से डिसमिस नहीं करा देते, हाय अन्धेर! यही हाल प्रश्नों का है क्योंकि हम ने और हमारे मित्रों ने बहुधा निश्चय किया तो प्रश्न का उत्तर कभी ठीक नहीं आया हां वह प्रश्न कुछ २ ठीक होते हैं कि जिन के वृत्तान्त से वह कुछ जानकार होते हैं बहुधा देखा गया है कि जब बाहर के पण्डित किसी नगर में आते हैं तब वहां के पण्डित उन से मिल कर अनेक वृत्तान्त सेठ साहूकारों, नौकर, चाकरों का बता देते हैं वे ही पण्डित नगर में उन की ज्योतिष की प्रशंसा अपने यजमानों से करते हैं और उन को लेजाकर उन का मान कराते हैं और भेंट दिलाते हैं और प्राप्ति में अपनी चौथ ठहरा लेते हैं अनेकों को पण्डित जी जप के बहाने से अपने पास लगा लेते हैं और जयमानों से मुद्रा दिलाते हैं, और हमारे ज्योतिषी पण्डित प्रकट लक्षणों को देख कर जन्मपत्री का फल वर्णन करते हैं, जैसा कि किसी को दुबला पतला देख कर कहेंगे

कि तुम को धातु की कोई बीमारी है दूसरे वह बातें जो प्रत्येक को अच्छी जान पड़ती हैं जैसा कि तुम जिस किसी के साथ भलाई करते हो वह तुम्हारे साथ बुराई करता है तुम्हारी भलाई वृथा जाती, जितना रुपया पैदा करते हो तुम्हारे हाथ में नहीं ठहरता, तुम्हारा मन किसी से लगा है वह किसी उपाय से मिल सक्ता है, इस पर तुर्रा यह वहां नगर के दो चार पण्डित भी होते ही हैं जो ज्योतिषी जी के मुंह से यह निकलते ही रजिस्टरी कर देते हैं चाहो यजमान के जी में कुछ ही हो, यथार्थ में हमारे ज्योतषी जी का कहना बहुत ही ठीक है क्योंकि वह समय की दशा देख कर धातु की बीमारी बतलाते हैं जो प्रत्यक्ष प्रकट है कि वर्तमान में न्यून अवस्था का विवाह प्रचलित है तिस पर गुदाभञ्जन, वेश्यागमन आदि की अधिक चर्चा है, इस कारण भारत में बहुत ही न्यून मनुष्य निकलेंगे जिन को धातुक्षीण की बीमारी न हो ॥

दूसरे हमारे देश में अविद्या के कारण लालच में आ कर बहुधा मित्र बन जाते हैं और प्रयोजन निकलने पर बात भी नहीं करते फिर उपकार मानना किस को कहते हैं क्या पण्डित साहिब प्रतिदिन अपने प्रयोजन के लिये ऐसी बातें नहीं मिलाते ? तीसरे हमारे देश में रुपया उत्पन्न करने का उपाय केवल नौकरी रह गई है तिस पर विवाह, मरण, आदि में मिथ्या व्यय, इस के उपरान्त नशा पीना, मांस खाना, लौंडेबाज़ी, रण्डीबाज़ी आदि नाना लीलाओं में धन व्यय होता है जिस को पण्डित साहिब आंखों से देखते हैं, यथार्थ में ज्योतिष इसी का नाम है ?

वर्तमान समय में जैसी इश्क़ हुसन की चर्चा है, ऐसे बहुत थोड़े मनुष्य हैं जो इस बला से बचे हों बरन कोई किसी स्त्री पर मरता है कोई लौंडे पर, यह बात बताना भी तो ज्योतिषी जी का ही काम है उपाय ग्रहों के जप और दान के पण्डित जी जानते ही होंगे ॥

सच पूछो तो हमारे भाइयों को ग्रहों में इन पण्डितों ने ऐसा फांसा है कि बिना सायत पूछे आना जाना भी नहीं होता चाहो कैसा ही काम क्यों न बिगड़े पर बिना मुहूर्त पूछे जाना कैसा!

हमारे पण्डित जी कहते हैं कि नीचे लिखे के प्रतिकूल जो कहीं को यात्रा करेगा वह अवश्य ही आपत्ति में पड़ेगा जैसा कि—

सोम शनिश्चर पूर्व काला, रवि शुकुर पश्चिममें वासा ।
मङ्गल बुध उत्तर में रहही, रहे बृहस्पति दक्षिण माही ॥

इसी भांति और २ बातों का भी विचार सुनाते हैं प्यारे भाइयो ! हज़ारों मनुष्य शनैश्चर और सोमवार को रेल की गाड़ी में पूर्व को जाते हैं इसी भांति शुक्र और इतवार को पश्चिम जाते हैं जिन पर दिशाशूल का कुछ भी प्रभाव नहीं होता, इस के उपरान्त ईसाई और मुसलमान तो इन ग्रहों को मानते ही नहीं ये ग्रह उन पर अपना कुछ प्रभाव क्यों नहीं करते यदि कहो कि वह म्लेच्छ हैं इसलिये उन पर कुछ प्रभाव नहीं होता तो कैसे आश्चर्य की बात है कि उत्तमों को दण्ड मिले और दुष्ट चैन करें क्या इसी का नाम न्याय है ? देखिये जब कोई धूप में खड़ा होता है तो सब को गर्मी एक सी जान पड़ती है यही दशा सर्दी की है, क्या यह ग्रह, आर्य जो अपने को हिन्दू बोलते हैं उन्हें दण्ड देते हैं ? यह सब मिथ्या है, सच पूछो तो इन्हीं ग्रहों के पूजने वालों की कृपा से यहां के राज्य के और ही मनुष्य राजा हो गये, कौन नहीं जानता कि जब महमूद ग़ज़नवी ने मन्दिर सोमनाथ पर चढ़ाई की थी उस समय इन ग्रहों की दूकान राजा के समीप खुली हुई थी और वह पण्डित लोग कहते थे कि लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि आप के फ़लां २ ग्रह बड़े अच्छे पड़े हैं और हम सब जप करते हैं तीसरे दिन शत्रु अपने आप आ के आप के चरणों में गिरेगा वा फिर कर चला जायगा, अन्त को ऐसा हुआ कि यह सब पण्डित अपने २ ग्रहों की शूर वीरता सुनाते ही रहे कि वह मन्दिर में घुस गया और मूर्त्ति को तोड़ दस करोड़ का माल लेकर चला गया, इस के उपरान्त जब ये लोग अपनी पुत्रियों का विवाह करते हैं तो सब प्रकार से विधि मिला लेते हैं परन्तु फिर भी इन्हीं लोगों में विधवा अधिक देखी जाती हैं यदि यह परापरीत ठीक होती तो पण्डितों अर्थात् ज्योतिषियों की पुत्रियां रांड न होतीं, इस पर भी तो आप को ज्ञात नहीं होता कि यह सब मिथ्या है इन का मुख्य प्रयोजन टका ही है बहुधा जन यह भी कहते हैं कि तुम ज्योतिषियों के फलित को ग़लत बताते हो देखो वह कितने दिन पहिले ग्रहण बता देते हैं कि फ़लां तिथि को ग्रहण होगा और वैसा ही होता है, प्यारे सुजनो ! हम प्रथम ही कह चुके हैं कि ज्योतिष में गणित बहुत ठीक है परन्तु फलित का फल

प्रत्यक्ष ठीक नहीं मिलता और ग्रहण का बताना हिसाब का काम है देखो *गोलप्रकाश में दो सौ वर्ष तक के ग्रहण निकाल कर रख दिये हैं, हां यदि कोई ज्योतिषी यह कहे कि फ़लां ग्रहण के होने का यह फल होगा तो मैं कह सकता हूं कि फल अवश्यमेव ग़लत पड़ता है और पड़ेगा ॥

इन्हीं कारणों से हमारे पुराने पुरुषे फलादेश को मानते न थे, इस में किसी को सन्देह नहीं कि प्राचीन समय में विद्या की बड़ी चर्चा थी और प्रत्येक विद्या के बड़े २ महात्मा, ऋषि, मुनि, विद्वान् विद्यमान थे परन्तु उस समय में किसी ने ग्रहों का जप दान करके किसी के दिल को नहीं फेर दिया वा आपस में क्यों नहीं मिला दिया वा एक को क्यों नहीं मारडाला वा अपने आधीन करलिया। यदि ऐसा होता तो अयोध्यापुरी के सुजन अवश्य कैकेयी के मन को फिरवा देते तो क्यों वनवास होता। इस के उपरान्त सीता हरजाने पर भी रामचद्र ने बहुत प्रकार के विचारांश किये और हनुमान् आदि को सुध लेने के लिये भेजा क्यों नहीं एकाध रुपया देकर ज्योतिषी ही से पूंछ लिया होता कि जिस से उन को ज्ञात होजाता कि रावण हर लेगया है। सुग्रीव ने अपने भाई बाली को जप कराकर क्यों नहीं प्रसन्न करलिया इसी प्रकार विभीषण को रावण ने क्यों नहीं मिलालिया कि जिस ने सम्पूर्ण वंश का खोज मार दिया। लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर श्रीमहाराज रामचन्द्र जी ने संजीवनी नाम बूटी को क्यों मंगवाया क्यों नहीं ग्रहों का जप करा-कर आराम करालिला ॥

इस के उपरान्त युधिष्ठिर और दुर्योधन कि जिन की लड़ाई होने से भा-रत का भारत होगया क्यों नहीं ग्रहों के जप से सम्मति करादी? इस के अतिरिक्त श्रीकृष्णजी महाराज ने कंस को क्यों मारा क्या उस समय वर्त्तमान समय के ज्योतिषी उपस्थित न थे जो आप से काम करदेते?

वर्त्तमान समय में जब कोई कहीं को चला जाता है तो हमारे ज्योतिषी जी बताते हैं कि वह पूर्व को गया है और अभी इतना अन्तर है यदि यह वार्त्ता सच होती तो क्यों दमयन्ती नल के मिलने को नाना प्रकार के उपाय करती झट ज्योतिषियों से पूछ कर ढूंढ लेती इत्यादि अनेक प्रकार की गप शप ज्ञात होती है ॥

* एक पुस्तक जिस को एक अङ्गरेज ने लिखा है ॥

रसायन मन्त्र और तन्त्र ॥

इस के उपरान्त रसायनियों के धोके में न आओ जो तुम्हारा माल मार अपनी रसायन बना लेते हैं उन को आती तो पहिले अपने भाई, बन्धु, लड़के आदि को करोड़ों रुपये बनाकर साहूकार करदेते, सो तो कुछ न हुआ वरन ऐसा गुण, और फिरें मारे २! यह सब मिथ्या है, वह भी एक प्रकार के ठग हैं सच पूंछो तो वह अपनी रसायन बना लेजाते हैं और तुम लालच में जो कुछ होता है देदेते हो, इसी धन को हर देश में जाकर दो तीन रुपये रोज़ खर्च करते हैं, रुपये को कुछ नहीं गिनते, हमारे भाई लोग उन को रसायनी जान उन की सेवा करते हैं किसी २ को वह हाथ की चालाकी से बता कर दिखला देते हैं फिर उन ही के हाथ से बिकवाते हैं, वह बिचारे सीधे साधे लोभी, अक़्ल के दुश्मन झट स्त्री तक का माल उतार कर देदेते हैं, फिर बाबा जी के पते तक नहीं मिलते सिर पीटते रह जाते हैं, भला अब बताओ किस की रसायन बनी ?

इस के उपरान्त भूत, शाकिनी, डाकिनी आदि जो भ्रमजाल हैं और नाना भांति के रोगों में आप औषधि नहीं कराते और उन धूर्त्त, महामूर्ख, कुकर्मी, भंगी, चमार आदि के भरोसे पर जो अनेक प्रकार से छल, कपट, डोरा धागा बांध, धन हरण करते हैं, उन में मिथ्या धन व्यय न करो, और इन सब बातों के सत्य २ जानने के अर्थ सत्य ग्रन्थों को देखो तो प्रत्यक्ष प्रकट हो जायगा कि यह सब ठगई के जाल है, क्योंकि जो उत्पन्न होकर वर्त्तमान समय में न रहे सो भूतस्थ होने से भूत कहाता है जैसा कि सृष्टि की आदि से लेकर आज तक लाखों करोड़ों मर गये और फिर कर्मानुसार जन्म लेते गये वह सब उन नामों से न रहने के कारण सब भूत हैं इसी भांति मृतक शरीर को प्रेत और दाह करने वाले को प्रेतहार कहते हैं और जैसा इस समय में गोलमाल हो रहा है यह सब महामिथ्या है, इस कारण इन मिथ्या विचारों को छोड़ कर सन्तानों को भी सत्योपदेश करते रहो, इस के अतिरिक्त मन्त्र यन्त्र इत्यादि प्रकट फैले हुए हैं कि जिस के कारण यह देश और भी अधोगति को पहुंच रहा है–(मन्त्र) शब्द का अर्थ गुप्त भाषण का है परन्तु वर्तमान काल में उस से यह प्रयोजन लेते हैं कि कोई मनुष्य मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण के अर्थ जप करे इसी भांति (यन्त्र) शब्द के अर्थ युक्त क्रियाओं के करने के अर्थ कोई कोष्ठ बना कर उन में कुछ संख्या वा शब्द वा वाक्य

लिखो इसी प्रकार (तन्त्र) शब्द के अर्थ यह लेते हैं कि ओषध्यादि के मेल से कुछ आश्चर्य्य जान कर क्रिया दिखलाना ॥

जिधर हम देखते हैं उधर ही पण्डित ब्रह्मचारी जती (यति) काज़ी, पीरज़ादे इत्यादि सभी मन्त्रादिक के सहारे से शिकार मारते दृष्टि आते हैं, विद्वान् से तो यह मनुष्य दृष्टि तक नहीं मिलाते, परन्तु मूर्ख पुरुषों की सभा वा इस देश की अनपढ़ी स्त्रियों में पांय फैलाते हैं, जब वहां से कुछ मिल जाता तब उसका पीछा छोड़ते हैं और जो स्त्री पुरुष उनको कुछ नहीं देते तो यह कह के कि देखना हम तो जाते हैं परन्तु भगवती, हनूमान, भैरव, बैताल, नरसिंह, पीर ने जब कुछ न किया तो पछताओगी और फिर पैरों पड़ोगी, इसी प्रकार की बहुत बातें बनाते हैं कि जिन को वह भोले भाले मनुष्य सुन कर फिर कुछ दे दिला कर राज़ी करते हैं ॥

मन्त्र, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, ब्रजभाषा, पंजाबी, महाराष्ट्री इत्यादि भाषाओं में हैं और प्रतिदिन नवीन बनते जाते हैं। इस देश में यह बात प्रसिद्ध है कि कामरू देश में 'कामाक्षी' देवी और 'इस्माईल' योगी सिद्ध है, योगी के प्रताप से मन्त्र तत्काल सिद्ध होता है। और मूर्ख जन ऐसा निश्चय रखते हैं कि अन्य देश का मनुष्य कामरू देश में जाय तो वहां की स्त्रियां उसको मन्त्रों से बांध सदैव रात्रि को पुरुष और दिन में हल आदि में जोतने के लिये बैल बनालिया करती हैं। लाखों मन्त्रों में—'कामरू देश कामाक्षी देवी जहां अस्मायल, (इस्माईल) योगी यही पाया जाता है ! बड़े आश्चर्य्य की बात है कि कामरू प्रदेश में सहस्त्रों मनुष्य आते जाते हैं परन्तु तब भी हमारे भोले भाई वैसा ही निश्चय करे बैठे हैं ॥

इन मन्त्र बनाने वालों और जप करने वालों ने एक बड़ी आड़ यह भी बना रक्खी है कि इन के देवता ३३ करोड़ हैं, जब एक के नाम से काम नहीं होता तो दूसरे के आश्रय फिर तीसरे चौथे आदि के, मुख्य यह है कि सारी उमर जप करते २ मर जायं पर इन की कभी हार नहीं होती हैं, धन्य है इन पुरुषों को !

वेदों में तेंतीस देवता व्यवहार प्रयोजन के अर्थ माने हैं जिन में से उपासना के अर्थ एक सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ही है और वह तेंतीस देव यह हैं—आठ वसु, ११ रुद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र, एक प्रजापति, इन में से आठ वसु ये हैं—अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और

नक्षत्र इन का नाम वसु इसलिये है कि सब पदार्थ इन्हीं मे वसते हैं और यही सब के निवास करने के स्थान हैं। ११ रुद्र यह कहाते हैं—जो शरीर में दश प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, और ग्यारहवां जीवात्मा क्योंकि मरण होने के समय जब यह शरीर से निकलते हैं तब उस के सम्बन्धी लोग रोते हैं और वे निकलते हुए उन को रुलाते हैं इस से इन का नाम रुद्र है। इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते हैं, क्योंकि वे सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सब की आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं इसी से इन का नाम आदित्य है। ऐसे ही इन्द्र नाम बिजली का है क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख है और यज्ञ को प्रजापति इसलिये कहते हैं कि उस से वायु वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजापालन होता है तथा पशुओं की यज्ञ संज्ञा होने का कारण यह है कि उन से भी प्रजा का पालन होता है, यह सब मिला कर अपने २ दिव्य गुणों से तेंतीस देव कहाते हैं ॥

प्यारे सुजनो! यह सब व्यवहार के अर्थ हैं और उपासना के अर्थ केवल एक परमेश्वर ही है जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में लखा है—

योऽन्यां देवतामुपास्ते पशुरेवꣳस देवानाम् ।

अर्थात् जो मनुष्य ईश्वर को छोड़ कर अन्य की उपासना करता है वह पशु के समान है ॥

परन्तु अब तो लोगों को तेंतीसकोटि से भी तृप्ति न हुई तब मरे हुए गोर निवासी मुसलमान पीर, औलिया, मियां आदि को भी मानने लगे, हाय लज्जा भी नहीं आई! इसी कारण इन के पूजने वालों की कुगति होगई कि जिस से भारत के ऐश्वर्य को भी खोदिया ॥

इसलिये हे गृहस्थो! इन मिथ्या बातों में न फंसो और कृपाकर वेदादि सत्य शास्त्र पढ़ो व सुनो और पूर्ण विद्वान् और सत्य वक्ताओं का सत्सङ्ग करो तो यह मिथ्या पोल खुलजावे ॥

पाठकगणों के दिखलाने के अर्थ कुछ उदाहरण लिखता हूं—

[कृत्रिम सोना चांदी बनाने का मन्त्र]

ओं नमो हरिहराय रसायन सिद्धिं कुरु २ स्वाहा ।

इस मन्त्र को २१ दिन तक १०८ वार जपने से सोना चांदी बनजाता है।

[चौकी मुट्ठी पीर की]

बिस्मिल्ला अर्रहमान अर्रहीम सोहचक्र की बावडी गल मोतियन का हार लङ्का सी कोट समुद्र सी खाई जहां फिरै मुहम्मदा बीर की दुहाई कौन बीर आगे चले सुलेमान बीर चले दुर्रानी बीर चले नादरशाह बीर चले मुट्ठी चले नहीं चले तो हज़रत सुलेमान की सात दुहाई शब्द सांचा चलो मन्त्रों ईश्वर बाचा

इस मन्त्र को ४० दिन तक १००० मन्त्र जपे तो बीर हाज़िर होकर काम करे ॥

[मार्ग में बाघ (सिंह) के प्रबन्ध का मन्त्र]

वघ बांधु वधायन बांधु बघ के सातों बच्चे बांधु राह बाट मैदान बांधु दुहाई वासुदेव की दुहाई लोना चमारी की॥

इस को सात बार सात मङ्गल को जपे तो सिंह पर फूंक दो वा सोते समय अपने ऊपर फूंक लो तो सिंह आधीन होजावेगा ॥

[बवासीर दूर करने का मन्त्र]

सुम्मुन बुकमुन उमयुन फहुम लापर जठनी ॥

[यन्त्र]

५३	।	५९	।	२	।	७	तं ।	तं ।	तं । तं
६	।	३	।	५६	।	५३	पं ।	पं ।	पं । पं
५८	।	५३	।	८	।	१	दं ।	दं ।	दं । दं
४	।	५	।	५५	।	५७	लं ।	लं ।	लं । लं

इस यन्त्र के लिये लिखा है कि पीपल के पात में घर के पीछे लिखे तो दिन से रात दिखलाई देनेलगे ॥

इस के विषय में लिखा है कि सिरस के वृक्ष के नीचे बैठ के लिखे तो भूत प्रेत देवी यक्ष आदि सब प्रसन्न हों ॥

इसी प्रकार अनेक मन्त्र तन्त्र गपोल और मिथ्या फैल रहे हैं ॥

मैं पहिले लिखचुका हूं कि आधुनिक लोग औषधादिक के मेल से आश्चर्य जनक क्रिया कर दिखलाने को तन्त्र कहते हैं। अब मैं इस विषय में लिखता हूं—

हम स्वीकार करते हैं कि औषधादि ईश्वरकृत अनेक पदार्थ हैं उन को परस्पर मिलाने से बहुत आश्चर्यजनक क्रिया होसकती है। हम नित्य देखते हैं कि रोगों के निवारणार्थ सब लोग नाना प्रकार की औषधियों का सेवन करते हैं और उन के यथायोग्य सेवन से रोगों की निवृत्ति होती है। रेल तारादिक इन्हीं पदार्थों के सेवन से चलते हैं परन्तु इन को सदैव देखते हैं इस कारण से आश्चर्य्य नहीं होता। हां जो लोग प्रथम देखते हैं उन को आश्चर्य जानते हैं॥

इस वर्णन से यह सिद्ध हुआ कि पदार्थों के मिलाने से उन के गुणानुसार चमत्कारक बातें होसकती हैं परन्तु वे भी ऐसी होती हैं कि जिन को बुद्धिमान् लोग सम्भव जानते हैं। कुछ ऐसा ही नहीं है कि पदार्थों के नाम लिख कर उन के मेलनादि क्रियाओं से जो अण्ड बण्ड फल लिख दिये सो होजायं जैसा कि 'तन्त्रमहार्णव, नामक तन्त्र ग्रन्थ के वशीकरण प्रकरण में लिखा है—

तुलसीरसंगृहीत्वा धात्रीरससमन्वितं ।
तुलसीबीजसंयुक्तं हरतालमनःशिलम् ॥
देहान्ते तिलकं कृत्वा यमदूतो वशीभवेत् ।
पापी चैव महापापी वैकुण्ठं गच्छते नरः॥

अर्थ—तुलसी और आंवले का रस बरा बर लेकर उस में तुलसी के बीज हडताल और मैनसिल मिलाकर मरण समय में उसके तिलक करने से यमके दूत मृतक के वश में होजाते हैं इस कारण से पापी भी वैकुण्ठ को चला जाता है॥

प्यारे सुजनो! इन लेखों को ज्ञानदृष्टि से विचारो तो स्पष्ट प्रकट होगा कि इन मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि मिथ्या बातों ने ईश्वर की आज्ञा को भी तोड कर अपना दखल कर लिया भला यह आप की समझ में आता है कि परमेश्वर की आज्ञा को कोई भङ्ग करसके? यह सब इनके मिथ्याप्रपञ्च हैं सच पूछो तो वर्तमान समय में नाना प्रकार के ढंग ठगने के हैं। जैसा कि कोई २ इन मन्त्र यन्त्रादि के ताबीज़ बनाकर बाज़ारों में पैसे दो २ पैसे में बेंचते हैं और भूत पलीत बीमारी आदि खोते फ़िरते हैं। सो हे भारतवासियो! तुम कदापि इन मिथ्या प्रपञ्चों में न फंसो, सदा वेदादि में लिखे सत्य गुणों का अवलोकन करो तो आप को इन सब का भेद यथावत् प्रकाश होजावेगा॥

देखिये बीमारियों के अर्थ परमेश्वर ने वैद्यकविद्या को बनाया है यदि मारण मोहन वशीकरण उच्चाटनादि मन्त्र वेद में पाये जायं तो सच होसकते हैं सो इन का कहीं पता तक भी नहीं। इस के उपरान्त कुछ बुद्धि से विचारना भी योग्य है कि ऐसे मन्त्र वेदोक्त हैं या नहीं। यदि ऐसे मन्त्र वेद में हों कि जिन के पढ़ने आदि से मनुष्य मरजावें तो बताइये यह पाप परमेश्वर को होगा वा मारने वाले को? तो यही उत्तर होगा कि परमेश्वर को, तो इन मन्त्रादिक के मानने वालों ने परमेश्वर को भी पापी बना दिया! सो वह पापी नहीं होसकता। यथार्थ में पापी यही हैं क्योंकि कोई मन्त्र ऐसे नहीं कि जिन से मनुष्य मरजावें हां कई प्रकार की ओषधि ऐसी हैं कि जिन के खिलाने से मनुष्य मरजाते हैं सो यह पापी उन के नौकर आदि को लालच देकर खाने पीने आदि में ज़हर दिलवा देते हैं कि जिन से मनुष्य मरजाते हैं फिर अपनी सिद्धि प्रकट करते हैं यदि उन को ऐसे ही मन्त्र आते हैं तो क्यों नहीं महमूद ग़ज़नवी, नादिरशाह, तैमूरलङ्ग आदि को मारडाला कि जिन्होंने भारत के मनुष्यों को क़तल कराया। यदि ऐसा ही होता तो अंगरेज़ी राज्य न होता। यदि आप को इतने पर भी विश्वास न हो तो आप एक शीशी में कि जिस में वायु आती हो मक्खी बंद करके अपने पास रख लीजिये और उन से कहिये कि इस को मन्त्रों से मारिये यदि वह मरजावे तो सच, नहीं तो मिथ्या है ॥

प्यारे भाई बहनो! यदि इन को मारण आता होता तो स्वामीदयानन्दसरस्वती जी को कि जिन्हों ने भारत के मूर्ख पण्डित और वर्तमान धर्म्म की कलई खोलदी क्यों नही मार डाला, इस के अतिरिक्त समस्त आर्य्यों पर जो सम्पूर्ण देश में कोलाहल मचा रहे हैं जिस से नाममात्र के पण्डितों की प्रतिष्ठा भङ्ग हो रही है क्यों मारण मन्त्र नहीं चलाते वा मोहन मन्त्र से मोहित और वशीकरण से वश में नहीं करलेते जो इन मिथ्या मन्त्रों की पोल खोल मन्त्रादिक के करने वालों की आमदनी का नाश मार रहे हैं—सो कुछ भी न हुआ फिर मैं नहीं जानता कि इन गपोड़ों में पड़ कर क्यों अपने देश का सत्यानाश मारते चले जाते हो इसलिये अब विचार कर प्रत्येक कार्य्य का करना अभीष्ट है। प्यारे सुजनो! इन्हीं कार्य्यों के करने से हमारे देश का नाम आर्य्यवर्त्त से हिन्दुस्तान रख दिया आप विचार कीजिये ॥

—*—

आर्य्यशब्द ॥

देखिये (ऋ गतौ) धातु से ऋहलोर्ण्यत् इस सूत्र द्वारा (ण्यत्) प्रत्यय लगाने से आर्य्य शब्द बन जाता है इस के उपरान्त अमरकोश प्रथम काण्ड भूमिवर्गस्थ अष्टम पद्य में लिखा है (आर्य्यावर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमा-गयोः) अर्थात् उस पवित्र भूमि को आर्य्यावर्त्त कहते हैं जो हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में है ऐसा ही मनुस्मृति अ० २ श्लोक २२ में भी लिखा है और जैनकृत अमरकोश द्वितीय काण्ड के भीतर (ब्रह्मवर्गस्थ तृतीय श्लोक को देखिये—महाकुल, कुलीन, आर्य्य, सभ्य, सज्जन, साधु ये छः नाम श्रेष्ठ पुरुष के हैं इस के उपरान्त वसिष्ठस्मृति में वसिष्ठ जी महाराज ने लिखा है जो कर्त्तव्य कर्मों का सेवन करता है और अकर्त्तव्य कर्मों का परित्याग करता है वह आर्य्य कहलाता है जैसा कि—

कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनाचरन्।ति-
ष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य्य इति स्मृतः ॥

महाभारत उद्योग पर्व अ० ३१ श्लोक ११३ व ११४ में लिखा है कि जो शान्तचित्त रहते हैं वैर को नहीं बढ़ाते घमण्ड नहीं करते उद्योग से कार्य्यों को करते हैं जो गिरी दशा में भी चोरी आदि अकार्य्य नहीं करते और न अपने सुख में हर्ष और दूसरे के दुःख में आनन्दित नहीं होते वही आर्य्य हैं जैसा कि—

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥

ऐसा ही विदुर जी ने विदुरनीति में कहा है—इस के उपरान्त मनु जी ने अ० ४ श्लोक १७५ में अध्यापकों को उपदेश किया है कि आर्य्य पुरुषों की भांति सदाचार कर उसी प्रकार अपने शिष्यों को सिखलाओ—

सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्म्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥

इस के उपरान्त भीष्मपर्व अ० २५ और गीता अ० २ श्लोक २ में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है आर्य्य पुरुषों को मोहवश हो कर अनार्य की भांति कर्म न करने चाहियें—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थित-
म् । अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

हितोपदेश के संधिप्रकरण में राजा को विजय पाने के अर्थ आर्य्य और अनार्य से संधि कर लेनी चाहिये—

सत्यार्योऽधार्मिकोऽनार्यो० ॥

वेदों में भी मनुष्यमात्र की गणना आर्य्य और दास अर्थात् अनार्य नामों से की है। देखो ऋ० मं० १ सू० १५ मं० ८ में और अथर्व० कां० ५ अ० २ व० ११ में लिखा है—

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो वर्हिष्मते । रन्धया शासदव्रतान् ॥
सत्यमहं गम्भीरः काव्येन सत्यञ्जातेनरीष्म जातवेदाः। न मे
दासो न मे आर्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये॥३॥

इस के अतिरिक्त वाल्मीकीयरामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ३ श्लोक २५ सर्ग ११ श्लो० ८४ स० ७५ श्लो० २० स० ९२ श्लो० २६ स० ९९ श्लो० ३०। आरण्य-काण्ड सर्ग ४३ श्लो० ४। किष्किन्धाकाण्ड स० २९ श्लो० २८। सुन्दरकाण्ड स० २२ श्लो० १८ स० ३५ श्लो० ४४ और लङ्काकाण्ड सर्ग ७४ श्लो० १५ में श्रीराम, सीता, कौशल्या, वालि और विभीषण आदि के लिये आर्य्य और रावण के लिये अनार्य शब्द आया है। इसी भांति महाभारत आदिपर्व अ० १५४ व १५८ सभापर्व अ० ६४, ७३। वनपर्व अ० १७९ अ० २९७। शान्तिपर्व अ० ६३, ६४, ६५ १४०, २९२ इत्यादि स्थानों पर आर्य्य शब्द का प्रयोग किया गया है। विष्णु-पुराण तृतीय अं० अध्याय ७ में यमराज ने विष्णुभक्तों के लक्षण वर्णन किये वहां पर लिखा है कि जो मनुष्य अशुभमति असत्कार्य्यों और अनार्यों के साथ निरन्तर लगा रहता है वह विष्णु का भक्त नहीं है अर्थात् विष्णुभक्त वहीं हैं जो प्रतिदिन आर्य्य पुरुषों का सत्सङ्ग कर शुभ कार्य्यों को करते हैं इस के अनन्तर नया गुटका जो मिडलक्लास में पढ़ाया जाता है जिस में (मुद्रा राक्षस) नाम नाटक जिस को कवि विशाखदत्त जो महाराजा पृथ्व का बेटा

था बनाया है जिस का भाषा बाबू हरिश्चन्द्र जी ने बनाया है उस के सफ़े ६९, ७०, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ८४, ८६, ९०, ९१ में आर्य्य शब्द आया है और पण्डितगण भी प्रतिदिन संकल्प के समय इस देश का नाम आर्य्यावर्त्त पढ़कर अपने यजमानों को सुनाते हैं—

ओंविष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्येत्यादि परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलौयुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतखण्डे आर्य्यावर्त्ते पुण्यक्षेत्रे वर्त्तमाननामसंवत्सरः प्रवर्त्तते तत्र अमुकायने अमुकऋतौ मासानामुमासोत्तमे मासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरान्वितायाम् अमुकगोत्रोत्पन्नः ? अमुकनामधर्मार्थमहं करिष्ये ॥

इसी कारण इस देश की भाषा का नाम आर्य्यभाषा प्रसिद्ध है और बहुधा पुस्तकरचना करने वाले धर्मसमाजी पण्डित जन इस शब्द का प्रयोग करते हैं और महात्मा हंसस्वरूप जी वर्त्तमान समय में धर्मसभा के बड़े उपदेशक हैं उन्हों ने त्रिकुटीविलास नाम पुस्तक के सफ़े १४, १५ में इस देशवासियों को आर्य्य नाम से सूचित किया है ॥

फिर हम नहीं जानते कि क्यों कर हिन्दू कहलाते चले जाते हैं जिस के अर्थ गुलाम, काफ़िर, चोर, लुटेरे के हैं जो (ग़यासुल्लुग़ात) के सफ़े ५०० में लिखे हैं हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!! कि क्या समय आया जो जान बूझ कर भी हम कुए में गिरते चले जाते हैं और प्रसन्नता प्रकट करते हैं। प्यारे भाईयो! यह शब्द प्राचीन नहीं है यही कारण है कि हमारे किसी प्राचीन पुस्तक में नहीं लिखा हां मुसलमानों ने इस देश को विजय किया तो पक्षपात के कारण इस देश का नाम हिन्दुस्तान रख दिया जो हिन्दु+स्तान से बना है जिस के अर्थ काफ़िर आदि की जगह के हैं क्योंकि फ़ारसी में (स्तान) कलमाज़र्फ़ का अर्थात् स्थान का है जैसा गुलिस्तां, बोस्तां, अफ़ग़ानिस्तान। इसलिये प्यारे सुजनो! एक सम्मत हो शीघ्र इस अपवित्र नाम को त्याग दो और वेदानुकूल प्राचीन पुरुषों की भांति आर्य्य शब्द का प्रचार करो—अब विद्या का प्रकाश हो रहा है जिस से (हिन्दू) शब्द के अर्थ भी जानते हैं और फिर उसी क़ौम में जिस से हम प्रत्येक प्रकार से प्रधानता रखते हैं उन्हीं में बैठे हुए हिन्दू कहलाने पर प्रसन्न होते रहें? प्यारे! विचारो और इस कलंक को जहां तक हो सके शीघ्र मेट आर्य्य शब्द और इस की सनातन परिपाटी का प्रचार करो—जिस से तुम्हारा यश हो और सभ्यमण्डलियों में तुम्हारी सभ्यता का परचय हो ॥

व्रत और तपस्या ॥

मान्यवरो ! जब से इस देश से वेदरूप सूर्य्य छुप गया और ऋषि मुनि आदि ने धर्म्म की ध्वनि से अज्ञान में पड़े हुए मनुष्यों को चिताना त्याग दिया अधर्मरूप अन्धकार ने संसार को आघेरा, पुराण रूप नाना सितारे अपने धुंधले प्रकाश से चमकने लगे, काम लोभ अज्ञान रूप चोरों ने वरसाती मेंड़कों की भांति समय पाकर अपनी कमर बांधी और अधर्म की घोर निद्रा में सोते हुए मनुष्यों के गृह में घुस कर उन की धर्मरूप माया को यहां तक लूटा कि उन के पास कुछ भी न रहा और जैसे धनादि के जाने से मनुष्य निर्बुद्धि हो जाता है जिस से वह अंटसंट बकता है मार्ग अमार्ग को नहीं पहचानता इसी प्रकार धर्मरूप माया के जाने से मनुष्यमात्र अपने पुरुषों के उत्तम नियमों को यहां तक भूल गये कि उन के मुख्य अभिप्राय को भी नहीं जानते। एक परम देव परमात्मा के स्थान पर तेंतीस करोड़ देवता मानने लगे जो कि भारतवासियों की मनुष्यगणना से भी अधिक हैं नाना मत मतान्तर रूप मार्गों को इस घोर अन्धकार में उत्तम समझ स्वर्गरूप फल पाने की आशा से चलने लगे। व्रत के अभिप्राय ही को भूल गये इतने व्रत बढ़ा दिये कि साल के दिनों से भी दो चन्द होगये देखिये आदित्य पुराण के अनुसार रविवार को, शिवपुरण के अनुसार सोमवार और तेरस, चन्द्रखण्ड के अनुसार मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, और शनैश्चर को व्रत रहना आवश्यक है और यही सप्ताह में सात दिन होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण साल व्रती रहने की यही आज्ञा दे रहे हैं। और भी सुनिये कि विष्णु की एकादशी, वामन की द्वादशी, नृसिंह की अनन्त चौदस, चन्द्रमा की पूर्णमासी, दिक्पाल की दशमी, दुर्गा की नवमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कार्तिक स्वामी की छट, नाग की पञ्चमी, गणेश की चौथ, गौरी की तीज, अश्विनीकुमार की दोज, आद्या देवी की पड़वा, भैरव की अमावस और २६ एकादशियों को भी व्रत रहे। इस के अतिरिक्त प्रत्येक माह में भी दो चार ऐसे त्योहार माने हैं जिन में स्त्री पुरुष दोनों वा केवल स्त्रियां ही वा केवल पुरुष ही व्रती रहते हैं जैसे—

चैत्र के कृष्णपक्ष में—शीतला की अष्टमी और वारुणी स्नान ॥

चैत्र के शुक्लपक्ष में—पड़िवा से नवमी तक नवरात्रि का, अष्टमी को देवी का, तीज को (गनगोर) ॥

वैशाख के कृष्णपक्ष में—सप्तमी और अष्टमी ॥
वैशाख के शुक्लपक्ष में—तीज (अक्षयतृतीया) ॥
ज्येष्ठ में वरसायत (वटसावित्री), शीतला की अष्टमी, सप्तमी ॥
आषाढ में—सप्तमी और दहबैठोनी अष्टमी ॥
सावन—सलूनो ॥
भादों कृष्णपक्ष—चौथ (बहुला चौथ) छठ (हरछठ) अष्टमी (कन्हैया अष्टमी)
भादों शुक्लपक्ष—तीज (गौरी) चौथ (सिद्धविनायक) पञ्चमी (ऋषिपञ्चमी) और बड़ा इतवार ॥
कुआर शुक्लपक्ष—पड़िवा से नवमी तक नवरात्रि व्रत, दशहरा, चौदस (ढिढिया)
कार्त्तिक कृष्णपक्ष—चौथ (करवा चौथ) अष्टमी अहोई अष्टमी, दिवाली द्वादशी (बछबारस)
कार्त्तिक शुक्लपक्ष—दोज (भाईदोज) चिरयागौर नवमी से एकादशी तक, दशमी से पूर्णमासी तक (भीष्मपञ्चक) ॥
अगहन शुक्लपक्ष—पञ्चमी, छठ और अष्टमी ॥
माघ कृष्णपक्ष—चौथ (गणेश चौथ) पञ्चमी, एकादशी ॥
फाल्गुन कृष्णपक्ष—अष्टमी, तेरस (शिवतेरस) ॥
फाल्गुन शुक्लपक्ष—होली आदि दिन भी व्रत के हैं।

इन के अतिरिक्त और भी बहुत से व्रतों की आज्ञा धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धु में पाई जाती है। इन सब दिवसों में सम्पूर्ण दिन या किसी भाग तक सम्पूर्ण स्त्री पुरुष बालक भूखे रहते हैं और तत्पश्चात् अन्न को छोड़ कर घुइयां, सकरकन्दी, फाफला, सिंघाड़े आदि वस्तुएँ खाते हैं परन्तु इन सब में निर्जल रहना अर्थात् दिन और रात कुछ न खाना सब से उत्तम माना गया है क्योंकि अन्न में पाप एकादशी आदि को होता है। भूखे रहने से कहते हैं कि आत्मा को मारकर एकाग्र चित्त होकर परमेश्वर का भजन करते हैं। जब से इस देश में व्रतों का प्रचार हुआ, तभी से नाममात्र के पण्डितों ने बहुत सी कथाएं भी लिख मारीं जो इन ही व्रतों के दिन सुनाई जाती हैं जिन में बहुधा उत्तम भी हैं और बहुतों में केवल गपोड़पंथ ही भरा हुआ है और बतला दिया कि इन व्रतों के रहने से और इन कथाओं के सुनने से वही फल प्राप्त होता है जो सहस्र अश्वमेध, सहस्र वेददान, सौ कन्यादान

और सहस्र उपकारादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है और ऐसे पुरुषों को संसार में धन धान्य सन्तानादि से सर्व प्रकार के आनन्द मिलते हैं इन फलों को सुनकर वर्त्तमान समय में निर्धन धन के, बीमार आरोग्यता के, बे औलाद सन्तान के और स्त्रियां पतिव्रतधर्म पूर्ण करने के अर्थ, भेड़चाल की भांति विना सोचे समझे व्रत रहती चली जाती हैं। बहुधा निमक और आग छोड़ देती हैं अर्थात् आग से बना हुआ भोजन नहीं करतीं और केवल ऋतु आदि के फलों पर निर्वाह करती हैं ॥

परन्तु जब हम धर्मशास्त्र पर दृष्टि डाल कर इन उपरोक्त व्रतों की जांच करते हैं तो कहीं विना अजीर्ण के भूखे रहने की आज्ञा नहीं पाई जाती क्योंकि भूख के मारने से मन्दाग्नि होजाती है मनुष्य निर्बल होजाते हैं किसी की बात अच्छी नहीं लगती, अच्छी को बुरी समझती हैं सूरत भयावनी होजाती है बहुत लिखने की क्या आवश्यकता है आप नित्य प्रति देख सक्ते हैं कि जो स्त्रियां अन्नादि छोड़ देती हैं उन की क्या दशा हो जाती है जिस के कारण वह गृहस्थी के कार्य्यों को नहीं कर सक्तीं गर्भाशय में अन्तर पड़ जाता है जिस से आने वाली सन्तानों में नाना प्रकार के दोष हो जाते हैं पुत्र पुत्री आदि को पूर्णरूप से लालन पालन नहीं कर सक्तीं ॥

अब रहा चित्त की एकाग्रता और ईश्वर का भजन। यदि यह दोनों कार्य्य भूखे रहने से होते तौ आज कल बहुधा जन विना अन्न के मारे फिरते हैं फिर उन का एकाग्र चित्त क्यों नहीं होता और वह ईश्वर के भजन में लिप्त क्यों नहीं रहते। आप जानते हैं कि एक दिन भोजन न मिलने से मनुष्य व्याकुल हो जाता है उस को दुनिया और दीन दोनों देख पड़ते हैं? बुद्धि में अन्तर आता है कुछ का कुछ सुनता और समझता है दिल झटकता रहता है फिर ईश्वर का भजन कैसा! यही कारण है कि बहुधा जन व्रती रह कर नाना कथाएँ बरसों तक सुनते रहते हैं परन्तु सौ में दो मनुष्य भी ऐसे न निकलेंगे जो उन कथाओं को आप को सुना सकें फिर उन कथाओं पर चलना कैसा!

यदि भूखे रहने से ही चित्त की एकाग्रता होती तो हमारे ऋषि मुनि क्यों इतना कष्ट उठाते, जङ्गलों में रहते, चौरासी आसन और नाना क्रियाओं को कर योग की शिक्षा करते। इन सब हानियों के अतिरिक्त एक बड़ी हानि इन व्रतों से यह हो रही है कि स्त्रियों ने इन को मुक्ति का द्वार समझ कर पतिसेवा का बिलकुल त्याग कर दिया, पति कुछ कहता है वह कुछ करती

है जिस से गृहस्थाश्रम में प्रेम नहीं आता दिन और रात झिगड़े पड़े रहते हैं हे प्यारी बहनो ! तुम कदापि इन व्रतों के रहने से स्वर्ग नहीं पा सक्तीं वरन नाना प्रकार के कष्ट उठाती हो तुम्हारा तो परमदेव पति है वही तुम्हारा तीर्थ है उसी की सेवा टहल से तुम आनन्द उठा सक्ती हो। जो फल यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है वह तुम को केवल पतिसेवा से ही मिल सकता है जैसा कि मनु० अ० ५ श्लो० १५५ और शङ्खस्मृति अ० ५ श्लो० ८ में लिखा है ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषि-
तम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥
न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च । ना-
रीस्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥ शंख

मार्कण्डेय जी महाराज ने युधिष्ठिर से कहा है कि स्त्रियों को केवल पति सेवा ही से स्वर्ग मिलता है । परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इन उक्त वचनों पर कोई ध्यान नहीं और अधर्म में पड़कर अपने पति की आयु को हरती हैं और आप नरक को जाती हैं । जैसा कि विष्णुस्मृति अ० २५ श्लो० १६ और अत्रिस्मृति श्लो० १३४, १३५ में लिखा है—

पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतश्चरेत् ।
आयुः सा हरते भर्त्तुर्नरकञ्चैव गच्छति ॥
जीवद्भर्त्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

मान्यवरो ! जब यह अन्धकार बहुत बढ़ा और सब को अत्यन्त दुःखदाई हुआ तो बहुत सज्जनों ने धर्मात्मा कोतवालों की भांति संसार के हितार्थ उद्योगरूपी घोड़े पर चढ़कर धर्मरूप तलवार अपने हाथ में लेकर जीवन के भय को छोड़कर काम लोभ और अज्ञानरूपी शत्रुओं के मारने को सारे संसार में फिरते डोले और भिन्न २ स्थानों पर ज्ञानरूप दियासलाई से बन्द शास्त्ररूप मसाले फिर जला गए उन्हीं के प्रकाश का आज यह प्रताप है कि हम जानते जाते हैं कि पूर्व समय में यह व्रत प्रचलित न थे वरन और ही थे और उन से

हम को नाना प्रकार के सुख मिलते थे जिन को मैं भी आप के हितार्थ वर्णन करता हूं देखिये व्रत के अर्थ नियम के हैं अर्थात् वेदादि सत्यविद्याओं का पालन करना जैसा कि य० अ० १९ मं० ३० में लिखा है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

दक्षस्मृति अ० १ श्लो० ७, हारीतस्मृति अ० ३ श्लो० ५ में लिखा है कि जब वेद आरम्भ करे तो उस की सिद्धि के लिये गुरुकुल में वेदोक्त व्रतों को करे जैसा कि—

स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदव्रतानि च । (दक्ष०)
तस्मात् वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥ हारीत

और ऐसा ही शङ्खस्मृति अ० ३ श्लो० १५ में लिखा है विष्णुस्मृति अ० १ श्लो० २१ में लिखा है कि यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् गायत्री मन्त्र से लेकर वेद तक जिस २ ग्रन्थ को पढ़े उस २ का व्रत करे अर्थात् ब्रह्मचर्य्य रह कर वेद विद्या पढ़ने का नाम व्रत है । अनुशासन पर्व अ० १४३ में महेश्वर ने उमा से कहा है कि वेदव्रतों का धारण करना अति उत्तम है । सब से उत्तम और शारीरक व आत्मिक बल का देने वाला व्रत ब्रह्मचर्य्य ही है जिस की प्रशंसा प्रथम हो चुकी इसी को परमोत्तम व्रत वेदादि सत्शास्त्रों में माना है जैसा कि अथर्व० कां ११ प्रप० २४ व० १६ मन्त्र २६

तानिकल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः । समुद्रसस्रोतोवभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहुरोचते ॥

जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य्य में निवास करता है वह महातप को करता हुआ वेद पठन वीर्य्य निग्रह आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर स्नानादि करके विद्याओं को धरता सुन्दर वर्णयुक्त होकर पृथ्वी में अनेक शुभ गुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान होता है वही धन्यवाद के योग्य है और याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ३ श्लो० ५१ में लिखा है—

गुरवे तु वरं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वाह्युभयमेव वा॥

गुरु को दक्षिणा देकर उस की आज्ञा से वा वेद समाप्त या व्रत को पूरा

कर वा दोनों को पूर्ण कर समावर्त्तनसंस्कार करे। व्यासस्मृति अ० १ श्लो० ४० में लिखा है कि जो ब्रह्मचर्य्यव्रत को पूरा करता है वह स्वर्ग को जाता है।

यस्तूपनयनादेतदातुमृत्योर्व्रतंचरेत् । स
नैष्ठिकोब्रह्मचारी ब्रह्म सायुज्यमाप्नुयात् ॥

शान्तिपर्व अ० १६० में भीष्मपितामह का वचन है कि चारों आश्रमों के लिये इन्द्रियनिग्रह ही उत्तम व्रत है। महाभारत उद्योगपर्व अ० ४४ में लिखा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्यव्रत को पूर्णरूप से पालन करता है वह इस लोक में शास्त्रकार होता है और अन्त को मोक्ष पाता है। इन्हीं कारण से मनु जी ने अ० ११ श्लो० १२१ में लिखा है कि जो द्विज अपनी इच्छा से अपने ब्रह्मचर्य्य को गिरा देता है उस का व्रत नष्ट होजाता है जैसा कि—

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च । च-
तुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मंतेजोऽवकीर्णिनः ॥

और श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मचारी गुरुकुल में रह कर विषय भोग से बच कर जब तक विद्या पूर्ण हो तब तक अखण्डित व्रत धारण करे जैसा कि—

एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः । विद्या-
समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥३०॥

मार्कण्डेयपुराण अ० ४१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य में स्थित रह कर चोरी, लोभ और हिंसा आदि का त्याग करे यह ब्रह्मचारी के व्रत हैं जैसा कि—

अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यञ्चत्यागोऽलोभस्तथैव च ।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमाणि वै ॥

ऐसा ही लिङ्गपुराण अध्याय ८९ श्लोक २४ में लिखा है जैसा कि—

अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यञ्च अलोभस्त्यागएव च ।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमा त्विह ॥२४॥

महाभारत उद्योगपर्व में सनत्सुजात मुनि का वचन है कि (१) अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म करना (२) सत्य बोलना (३) इन्द्रियों को

वश में रखना (४) किसी की उन्नति देख कर न जलना (५) निन्दा न करना (६) यज्ञ (७) दान (८) अर्थसमेत वेद को पढ़ना (९) क्रोध को रोकना (१०) आपत्ति के समय में भी सत्य को न त्यागना यही व्रत है जो इन व्रतों को धारण करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने आधीन कर सक्ता है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य रह कर विद्या को प्राप्त करता है और उपरोक्त गुणों को धारण करता है वह मनुष्य ऋषि देवता मुनि और महात्मा कहाता है और अकालमृत्यु को जीतता है यही मोक्ष का उपाय है ॥

इस के अतिरिक्त शान्तिपर्व अध्याय २२१ में युधिष्ठिर महाराज ने भीष्म-पितामह से प्रश्न किया है कि साधारण लोग जो देहपीड़ा कर उपवास को तपस्या कहा करते हैं यही तपस्या है क्या! तब भीष्म ने उत्तर दिया कि साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करने से तपस्या होती है सो यह आत्मविद्या की विघ्नस्वरूप तपस्या है। इस लिये यह व्रत अच्छे पुरुषों की सम्मति के विपरीत हैं। हां जो गृहस्थ होकर ऋतुगामी होते और संन्यासव्रत को धारण करते हैं, अतिथि की सेवा करते हैं, प्राणीमात्र पर दया करते हैं वह सच्चे व्रती हैं जो रात दिन में एक वार भोजन करते हैं सदा उपवासी होते हैं और ऐसा ही शान्तिपर्व अ० ७८ में कहा है और अत्रिस्मृति में भी यही उपदेश मिलता है कि आश्रमों के धर्मों को यथावत् करना परमव्रत है ॥

अनुशासनपर्व अ० १४३ में महेश्वर ने व्रत किया है। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० १८ में कश्यप जी ने दिति को पुंसवनव्रत बताया है उस में लिखा है—(१) अहिंसा। (२) दुर्जनों से वार्त्ता न करे (३) झूठ न बोले। (४) क्रोध न करे। (५) मांस न खाय। (६) सत्य और प्रिय भाषण करे। (७) दिन में न सोवे। (८) सदा पवित्र रहे। (९) पति का पूजन आदि नियम पालन की आज्ञा है। और १९ अ० में इस की विधि का विस्तार किया है वहां प्रतिदिन हवन करने की भी आज्ञा दी है और यह भी लिखा है कि जो इन व्रतों को धारण नहीं करते उन के व्रत नष्ट होजाते हैं और धारण करने वालों को सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं ॥

प्रियवर्गो! जैसी दुर्दशा वर्त्तमान समय में व्रतों की हो रही है उस से अधिक तपस्या की है कोई एक पैर से वा हाथ उठा कर खड़े रहने को तपस्या कहते हैं। कोई झूलना में पड़े रहने को उग्र तप कहते हैं और कोई अन्न

छोड़ने आदि को। परन्तु यह सब मिथ्यां है देखिये श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि तपस्या तीन प्रकार की हैं शारीरक वाचिक और मानस और जब यह तीनों प्रकार की तपस्या इकट्ठी हो जावें तब वह मनुष्य तपस्वी कहलाता है और इन तीनों की व्याख्या इस भांति की है-जो मनुष्य देव, ब्राह्मण, गुरु, तत्वज्ञानी इन की पूजा करे और बाहिर भीतर से पवित्र रहे और नम्रतापूर्वक रहे ब्रह्मचर्य्य का साधन करे और हिंसा न करे तो उस को शारीरक तप कहते हैं जैसा कि-

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तपउच्यते ॥

ऐसा वचन कहे जो किसी को किसी प्रकार का भय न हो सत्य प्रिय हो जो अन्त के विषय हितकारक हो ऐसे वचन वेद शास्त्र के अभ्यास से होते हैं यही वाचिक तप है जैसा कि-

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तपउच्यते ॥
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥

मन प्रसन्न और निर्मल रहे क्रूर न हो मन में ईश्वर के स्वरूप की भावना हो विषयन से निवृत्त होय और लोकव्यवहार कपट से रहित हो उस को मानस तप कहते हैं।

व्यास जी महाराज ने कहा है कि मन को एकाग्र कर के इन्द्रियों को वश में रखना यही तप कहाता है क्योंकि मन बड़ा चञ्चल है इस को आधीन कर लेना ही परमतप है और वनपर्व अ० २०० में मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा है कि अन्न न खाना सहज है परन्तु अन्न खा कर इन छः चञ्चल इन्द्रियों का रोकना कठिन है इसलिये इन्द्रियों का वश में रखना उग्र तप है। और मनु० अ० ११ श्लोक २३५ में ब्राह्मण का तप धर्मशास्त्र का पढ़ना, क्षत्री का तप प्रजा की रक्षा करना, वैश्य का तप नित्य व्यापार और शूद्र का तप नित्य सेवा करना। अर्थात् वर्णाश्रमधर्मों को करना यथार्थ में तप है जैसा कि-

ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥

और इसी अ० के २४६ श्लोक में नित्य वेद पढ़ना और यथाशक्ति यज्ञ करना और धैर्य्य रखना और श्लोक २४७ में वारंवार वेद पढ़ने को ही परम तप कहा है और याज्ञवल्क्य जी महाराज ने अ० ३ श्लो० १०९ में स्पष्ट कह दिया है कि सम्पूर्ण बातों को छोड कर आत्मा में लिप्त रहने ही को तप कहते हैं। इसलिये मान्यवरो आप इन मिथ्या व्रत और तप को छोड़ वेदानुकूल उपरोक्त व्रतों को वेद द्वारा जान उन के पूर्ण करने के अर्थ सत्यप्रतिज्ञा कीजिये जब ही आनन्द मिलेगा अन्यथा नहीं ॥

तीर्थ और मोक्ष ॥

मान्यवरो ! प्रत्येक ऋषिग्रन्थों में उन के जीवनचरित्र और उन के नियत किये हुए नियम प्रत्यक्ष प्रकट कर रहे हैं कि इस संसार में उन का मुख्य कर्तव्य क्या था—न वह धन के अभिलाषी थे और न अन्य सांसारिक वस्तुओं में अपने चित्त को लगने देते थे, उन का सच्चा प्रेम परमात्मा को प्राप्त करना ही था। इस अभिलाषा के सिद्ध करने के अर्थ उन्हों ने कठिन २ नियमों को भी अतिसुगम समझा इसलिये उन्हों ने अपनी आयु का अधिक भाग इसी अभिप्राय के सिद्ध करने के अर्थ नियत किया था और यह आयु के प्रथम अमूल्य भाग में सब से प्रथम नियमपूर्वक विद्याध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य्य को पूर्ण करते थे इस का समय ४८ वर्ष तक था। विद्या से आत्मिक और ब्रह्मचर्य्य से शारीरिक बल प्राप्त होता था। जिन की अतिआवश्यकता है। आत्मिकबल से सत्य और असत्य का निर्णय कर शारीरिक बल से उस के पूर्ण करने को कटिबद्ध रहते थे तत्पश्चात् गृहस्थ होते थे। यदि यह समय गृहस्थी के भोग विलास के और सन्तान उत्पादनार्थ था परन्तु इन आनन्दों में पड़ कर भी वह अपने पवित्र आशय को न भूलते थे वरन नाना प्रकार के तप व्रत और तीर्थ यज्ञादि नित्य करते रहते थे। परन्तु शोक कि वर्तमान समय में इन के मुख्य आशय को बहुधा जन नहीं जानते और नानाप्रकार के प्रपञ्च रचते हैं कि जिन को अन्यदेशीय जन जान कर नाना दोष बतलाते हैं। मान्यवरो ! यह परिपाटियां अति विचार और बुद्धिमानी से नियत की गईं थीं। क्या कोई जन ऐसा संसार में जान पड़ता है जो उन के मुख्य आशय को जान उन में शङ्का उत्पन्न कर सके ? व्रत और तपस्या का मुख्य अभिप्राय मैं आप को बतला चुका हूं अब आप को संक्षेप से ऋषितीर्थों का वृत्तान्त सुनाता हूं। देखिये तीर्थ शब्द "तॄ प्लवनसन्तरणयोः" इस धातु से औणादिक थक् प्रत्ययकरने पर

सिद्ध होता है "तरन्ति येन यस्मिन् वा तत्तीर्थम्" अर्थात् जिस से जन तरते हैं वा जिस में जन तरते हैं उस को तीर्थ कहते हैं ॥

यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ६१ में लिखा है मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं उन में पहले तो वह हैं जो ब्रह्मचर्य्य गुरु की सेवा वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना सत्सङ्ग ईश्वर की उपासना सत्यसम्भाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वह जिन से समुद्रादि जलाशयों के पार आने जाने में समर्थ होते हैं जैसा कि—

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्तानिषङ्गिणः।
तषाᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

किसी महात्मा का वचन है—

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया तीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्य्यं परं तीर्थं तीर्थञ्च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि सततं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

सत्य—जो कुछ देखा सुना हो और जानता हो वही विना कुछ अपनी ओर से मिलाये वर्णन करना तीर्थ है ॥

क्षमा—समर्थ होने पर भी क्षमा करना तीर्थ है ॥

इन्द्रयनिग्रह—पांच कर्मइन्द्रिय और पांच ज्ञानइन्द्रिय को अपने २ विषयों से रोकना तीर्थ है ॥

दया—अपनी आत्मा के सदृश औरों की आत्मा को जानना तीर्थ है ॥

दान—पुस्तकालय, विद्यालयादि का खोलना और विद्यार्थियों और अनाथों आदि भूखों की यथायोग्य सहायता करना तीर्थ है ॥

दम—पञ्च कर्मेन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोकना और दुःख सुख को समान जानना तीर्थ है ॥

सन्तोष—सत्य कार्यों के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो उस में जीवनाधार करना तीर्थ है ॥

ब्रह्मचर्य्य—सब प्रकार से वीर्य्य की यथावत् रक्षा करना परमतीर्थ है ॥
ज्ञान—सत् असत् वस्तुओं का जानना तीर्थ है ॥
धृतिः—सत्य प्रतिज्ञाओं का पालन करना तीर्थ है ॥
पुण्य—जो ब्राह्मणादि देश की उन्नति में बाधक नहीं हैं और न देश की उन्नति कर सक्ते हैं उन को अन्न जल से तृप्त करना तीर्थ है ॥
मनका शुद्ध करना—मन सत्य बोलने से शुद्ध होता है यह परमतीर्थ है ॥

और भी कहा है—

मनोविशुद्धं पुरतस्तु तीर्थं वाचा यमस्त्विन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिवेदयन्ति ॥

मन की पवित्रता, सत्य और विषयों को वश में रखना, मनुष्यों के तीर्थ हैं और यही सुख के दाता हैं । मनुस्मृति अ० १२ श्लोक १२३ में लिखा है—

एतमेके वदत्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरेप्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

उस परमेश्वर को कोई अग्नि कोई मनु कोई इन्द्र और कोई प्राण और कोई तीर्थ कहते हैं ॥

और वृद्ध गौतमसंहिता में भी कहा है कि "क्षमावांस्तीर्थमुच्यते" कि क्षमावान् ही तीर्थस्वरूप है । शान्तिपर्व अ० २३३ में, देवता, ऋषि, पितर, अतिथि आदि की पूजा करने को तीर्थ रूप वर्णन किया है । इन के अतिरिक्त हमारे पूज्य विद्वान् होने पर भी इस विषय को अच्छे प्रकार जानते थे कि संसार में रहना अतिदुर्लभ है गृहस्थी अतिअगाध समुद्र है इस में कभी मनुष्य लोभ के कारण ऐसा हो जाता है कि जिस से वह सत्य असत्य को कुछ नहीं जानता प्रतिसमय धन ही की लालसा में लगा रहता है न धर्म को जानता है न अधर्म को, बहुतों को कष्ट देता है, कभी मोह अपना प्रचण्ड बल दिखलाता है जिस से वह स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धियों के झूठे प्रेम में ऐसा फंस जाता है कि परमेश्वर को भी भूलने लगता है—अन्याय से बहुधा वस्तुऐं अपने कुटुम्ब के अर्थ सञ्चय करता रहता है, कभी काम में आकर अपना राज्य करता है कि जिस के कारण मनुष्य धन और धर्म को भूल कर नाना प्रकार के अत्याचार करता रहता है, कभी क्रोध में ऐसा लिप्त हो जाता है कि उस समय किसी का भी ध्यान नहीं करता, चाहे सर्वस्व नष्ट हो जावे। परन्तु

वह अच्छे प्रकार से जानते थे कि यह मनुष्य के महाशत्रु हैं और सदा धर्म से हटा कर अधर्म की ओर उन का ध्यान लगाया करते हैं इसलिये इन को सदा वश में करने का उद्योग करते रहते थे क्योंकि विना इन के वश किये आत्मज्ञान नहीं हो सक्ता—और यह वेदादि शास्त्रों के उपदेश से अपने आधीन हो जाता है। इस कारण कभी २ वह नियमपूर्वक उन ऋषि मुनियों के समीप जाया करते थे जो अतिविद्वान् थे, सांसारिक सुखों के त्यागी हो परमात्मा के भजन में लगे रहते थे और जो मनुष्यों को सत्योपदेश देने को उद्यत रहते थे, और जो उन की शङ्काओं को समाधान कर अनेक प्रकार के सुख का उपाय बतलाते थे।

इतिहासों से ज्ञात होता है कि यह ऋषि मुनि सदा ऐसे स्थानों पर कुटी बना कर रहा करते थे जहां का जल वायु आरोग्यदायक होता था, जहां बड़े २ वन उपवन होते थे और जहां उन के भोजनादि की सम्पूर्ण वस्तुऐं सुगमता से मिलती थीं, ऐसे स्थानों को वह तीर्थ कहा करते थे क्योंकि उन का सत्योपदेश उन के चित्त को सांसारिक विकारों से हटा कर परमात्मा की ओर लगा देता था जिस से वह सर्व प्रकार के आनन्द भोगते हुए मोक्ष को प्राप्त करते थे। देखिये मार्कण्डेय जी महाराज ने कहा है कि वेद के जानने वाले व्रत करने वाले ज्ञानी तपस्वी ऋषि मुनि ब्राह्मण जहां रहते हैं वह भी तीर्थ है चाहे गांव और जङ्गल क्यों न हो और श्रीमद्भागवतस्कन्ध ३ अ० १ श्लोक १६ में विदुर जी के चरणों और ऋषियों के निवासस्थान को तीर्थ कहा है जैसा कि—

सनिर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदःपदानि ॥

और एक स्थान पर श्रीकृष्ण के चरणों को तीर्थ बतलाया है क्योंकि वह ज्ञानमय मूर्त्ति और योगिराज थे। इस के अतिरिक्त जब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी महाराज रानियों समेत कुरुक्षेत्र को गये तब वेदव्यास, नारद, देवल, विश्वामित्र, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, भृगु, कश्यप, अत्रि, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य आदि अनेक ऋषि, मुनि वहां पधारे बहुत आदर सत्कार करने के पश्चात् श्रीकृष्ण महाराज जी बोले कि आज हम को इन ऋषियों के दर्शनों से अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ यही सच्चा तीर्थ और तप है॥

वनपर्व अ० ८५ में नारद मुनि ने बहुत से तीर्थों का वर्णन करके अन्त को कहा है कि तीर्थों के जाने का प्रधान फल यही है कि वहां पर वाल्मीकि देवल, गौतम, आदि अनेक ऋषियों मुनियों के दर्शन होते हैं। देखो श्रीरा-

मचन्द्र महाराज ने भी वनवास के समय उन्हीं स्थानों पर निवास किया था जहां ऋषि मुनि निवास करते थे। रामायण से प्रकट होता है कि श्रीराम ने सुगन्धित धुआं को देख प्रयाग तीर्थ की परीक्षा की थी जहां भारद्वाज मुनि रहते थे वहां उन की भेट की जिन्हों ने नाना प्रकार के उपदेश श्रीमान् को किये वहां से चलकर चित्रकूट पर जहां अनेक ऋषि रहते थे। तत्पश्चात् वाल्मीकि के आश्रम को सिधारे फिर वहां से अत्रि के आश्रम को गये जिन की स्त्री अनसूया जी ने महारानी सीता को अति उत्तम पतिव्रतधर्म का उपदेश किया था तत्पश्चात् शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त आदि महात्माओं से मिले और सत्योपदेश सुने जिस से उन को वन में बड़ा आनन्द प्राप्त होता था ॥

मान्यवरो! प्राचीन पुस्तकों से जाना जाता है कि विद्वान् से विद्वान् पुरुष भी इन तीर्थों में जाने से प्रथम बहुत प्रकार के नियमों का पालन करते तत्पश्चात् बहुत थोड़े मनुष्यों के साथ जाते थे क्योंकि उत्तम से उत्तम परीक्षित ओषधियां कुछ भी लाभ नहीं देतीं यदि उन के नियमों पर न चला जावे इसी भांति ऋषियों का उपदेश मोक्षसुख का देने वाला होता था परन्तु यदि कोई मनुष्य सावधान चित्त होकर न सुने तो किस प्रकार स्मरण रह सक्ता है फिर उस के अनुसार कार्य्य करना कैसा और सुख कहां? इसी लिये महाभारत में शौनक मुनि ने युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि तीर्थयात्रा का फल उन्हीं मनुष्यों को मिलता है जो अपने हाथ पांव और मन को आधीन करलेते हैं और निरभिमानी, युक्ताहार और शीलवान् होते हैं और लोमश मुनि ने महाभारत वनपर्व अ० ९२ में युधिष्ठिर जी से कहा है तीर्थों में बड़े २ ऋषि निवास करते हैं जो सब प्रकार के आनन्द देने वाले हैं परन्तु पापी अबुद्धि इन के फलों को नहीं पाते और तीर्थयात्रा सदा थोड़े मनुष्यों के साथ जाना चाहिये। जब युधिष्ठिर महाराज तीर्थयात्रा को जाने के लिये उपस्थित हुए तब व्यास जी ने उन को शिक्षा की कि हे पाण्डव मन को शुद्ध शान्तिसहित तीर्थों को जाइये मन के शुद्ध होने से बुद्धि पवित्र होती है जिस से आप शारीरिक नियमों और व्रतों को अच्छे प्रकार धारण कर सक्ते हैं और अगस्त मुनि ने कहा है कि जिन की सब इन्द्रियां वश में होती हैं जो सब प्राणियों को समान जान कर सत्य का आचरण करते हैं और किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते स्वल्पाहारी होते हैं उन्हीं को तीर्थों का फल मिलता है। और व्यासस्मृति अ० ८ श्लो० ८४ में लिखा है कि पराई स्त्री और पराये धन का

चुराने वाला मनुष्य तीर्थों को भी जावे तो भी उस का किया हुआ पाप नष्ट नहीं होता। जैसा कि—

परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने।
सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न मुच्यते॥

और शङ्खस्मृति अ० ८ श्लोक १५ में कहा है कि जिन के हाथ पैर मन विद्या तप कीर्ति अपने वश में हैं वही तीर्थ के फल को भोगते हैं। परन्तु शोक कि वर्तमान समय में हमारे अनपढ़ अज्ञानी भाइयों ने काशी, प्रयाग, मथुरा, बद्रीनाथ, केदारनाथ, जगन्नाथ, नैमिषारण्य और अनेक गङ्गातटों को तीर्थ मान रक्खा है कि जिन के माहात्म्य भी वर्तमान समय के नाममात्र के पण्डितों ने लोभवश हो कर किसी न किसी पुराण के अन्तर्गत कर दिये हैं, जिन को बहुधा जन अनेक अवसरों पर सुनते रहते हैं, प्रत्येक माहात्म्य बतला रहा है कि इसी एक तीर्थ विशेष वा गङ्गा स्नान से वह फल होगा जो संसार में किसी सत्क्रिया से नहीं हो सकता देखिये पद्मपुराण में यमुना माहात्म्य है उस में लिखा है कि यमुना जी सर्वसुखों की दाता है, श्रीयमुना जी के जल विना गति नहीं हो सकती, जो श्राद्धादि उत्तम कर्मफल देने वाले है वह यमुना के स्नान मात्र से ही प्राप्त होते हैं सतयुग में तप त्रेता में यज्ञ द्वापर में पूजा और कलियुग में यमुना स्नान सब सुखों का दाता है व्रत दान तप से हरि प्रसन्न नहीं होते श्रीयमुना जी के स्नान से प्रसन्न होते हैं। और गङ्गा के दर्शन करने से सौ जन्म के पीने से तीन सौ जन्म के और स्नान करने से हज़ारों जन्म के पाप कलियुग में नाश होते हैं जैसा कि—

दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वा जन्मशतत्रयम्।
स्नात्वा जन्मसहस्राणि हरति गङ्गा कलौयुगे॥

और भी लिखा है कि गङ्गा का नाम सौ योजन से भी लेले तो पाप का नाश हो जाता है और विष्णुलोक को पाता है जैसा कि:—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति॥

गया के माहात्म्य में कहते हैं कि जो गया न गया सो भया न भया और बद्रीनारायण के जाने वाले कहते हैं कि "जो जावे बद्री न आवे उद्री, जो

आवे उद्री कभी न होय दरिद्री" सुदामापुर में ८४ कुटरियों में फिरने से ८४ योनियों से छुटकारा होता है। इसी प्रकार अनेक श्लोक और कथायें लिखी हुई हैं जिन से प्रकट होता है महापापी मनुष्य भी एक २ वार गङ्गा यमुना वद्रीनारायण आदि के दर्शन करने से मुक्त हो जाते हैं ॥

मान्यवरो ! जहां तक मैं जानता हूं इस के दर्शन या स्नान से कदापि मोक्ष नहीं हो सक्ती और यदि हो सक्ती है तो अब तक जिन २ मनुष्यों ने स्नान दर्शनादि निरन्तर किये हैं और करते हैं उन की मुक्ति हो जानी चाहिये थी सो क्यों न हुई यदि कहो कि शरीर त्याग के पश्चात् मुक्ति होगी तो उन में जीवन्मुक्त के लक्षण राग, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध का त्याग; वैराग्य, ध्यान, समाधि के लक्षण होने चाहियें जिस से निश्चय होजाय कि इन की मुक्ति शरीरान्त समय होजायगी यदि कहो कि पापों से मुक्ति होने का अभिप्राय है तो विचारना चाहिये कि पाप क्या वस्तु हैं, क्या शरीर के ऊपर मैल के समान हैं जो गङ्गा में धोये जाएंगे सञ्चित पापों का अन्तःकरण स्थान है जिस में दुष्टवासना रूप से पाप रहते हैं उन का पूरा २ शोधन तप करने ही से हो सकता है जलादि से नहीं मनु० अ० ५ श्लो० १०९ में लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

जल से केवल शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य से शुद्ध होता है, आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होता है, बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है और भी लिखा है कि—

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापाजप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥

विद्वान् लोग शान्ति से शुद्ध होते, न करने योग्य कामों के करने वाले दान अर्थात् विद्यादि के देने वा अनाथ दीन वा सुपात्र विद्वानों को अन्नादि उत्तम पदार्थ देने से शुद्ध होते हैं, जिन के पाप छिपे हुए हैं वे गायत्री आदि वेदमन्त्रों को निरन्तर विधिपूर्वक जप करने से और वेद के ज्ञाता निरन्तर विधिपूर्वक तप करने से शुद्ध होते हैं ॥

हे पाठकगणो ! तनिक ध्यान दीजिये यदि जल में स्नान करने वा दर्शन या रेणुका के मुंह में डालने से ही मुक्ति और पापों की निवृत्ति होती तो

फिर वेदों के वह उपदेश कि वेदादि विद्या पढ़ो, ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करो, धर्मानुसार धन को उपार्जन करो, सत्पुरुषों का सङ्ग करो, सत्पुरुषों को दान दो, यम नियम का पालन करो, योग में चित्त लगाओ इत्यादि सब मिथ्या ही हो जायंगे ॥

इस के उपरान्त जब स्नान करने ही से मोक्ष मिलती है तो फिर यह कहना भी मिथ्या हुआ जाता है कि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" यदि स्नान ही मुक्ति का कारण है तो प्रयाग में भारद्वाज, हरिद्वार में मैत्रेय जी आदि ऋषि मुनि हवनादि, यम नियम, योगाभ्यास में नाना प्रकार के कष्ट निष्फल ही किया करते थे ?। वर्तमान समय में भी देखा जाता है कि जब दर्शन से ही मुक्ति होती है फिर स्नान करने की क्या आवश्यकता, यदि स्नान भी किये फिर नाना प्रकार दान करने की क्या आवश्यकता। इस से भी विदित हुआ कि स्नान होने के पीछे भी दानादि उत्तम कर्म करने की आवश्यकता है। हम देखते भी हैं कि कोई २ गङ्गा पर बैठ कर जपादि भी करते हैं यदि यही मुक्ति का कारण होता तो जपादि की क्या आवश्यकता है ॥

इस के उपरान्त श्रीरामचन्द्र महाराज ने रामायण में निज मुख से वर्णन किया है कि वेदोक्त कर्मों के करने से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होती है इस की क्या आवश्यकता थी। राजा दशरथ जी महाराज ने राजसूय यज्ञ किये थे, श्रीकृष्ण महाराज ने भी अर्जुन को गीता में वेदोक्त कर्मों के करने का माहात्म्य वर्णन किया है ॥

श्रीकृष्ण महाराज ने कुरुक्षेत्र में महर्षियों के बीच वर्णन किया है कि महात्माओं के दर्शन करने से मनुष्यों को नाना प्रकार के लाभ होते हैं। इस के उपरान्त जब गङ्गा स्नान ही से मुक्ति होती है तो फिर श्रीमद्भागवत में नाना कर्मों की व्याख्या व्यास जी महाराज ने संसार को भ्रम में डालने के लिये क्यों की। इन के अतिरिक्त देखिये पुराण भी पुकार २ कर कह रहे हैं कि चाहे पर्वत के बराबर मिट्टी मले और गङ्गा के सारे जल से मृत्यु पर्य्यन्त स्नान करता रहे तो भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचार वाला मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता जैसा कि—

गङ्गातोयेन कृत्स्नेन मृद्गारैश्च नगोपमैः ।
आमृत्योः स्नातकश्चैव भावदुष्टो न शुद्ध्यति ॥

और भागवतस्कन्ध १० अ० ५४ श्लो० ७ में लिखा है कि जलमय स्थान को तीर्थ नहीं कहते और न मृत्पाषाणमयी मूर्ति को देवता कहते हैं जैसा कि

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवामृच्छिलामयाः ॥

और लिङ्गपुराण अध्याय २५ में लिखा है कि जिस का अतःकरण शुद्ध न हो वह चाहे जितने जल से स्नान करे परन्तु शुद्ध नहीं होता अर्थात् दुष्ट-भाव पुरुष का किसी नदी वा सरोवर में स्नान करने से शुद्ध होना कठिन है। मनुष्यों का चित्त कमल अज्ञानरूपी रात्रि से सङ्कुचित हो रहा है इस को ज्ञानरूपी सूर्य्य के किरणों से विकसित करना उचित है जैसा—

भावदुष्टोऽम्भसि स्नात्वा भस्मना च न शुद्ध्यति ।
भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत् ॥ १० ॥
सरित्सरस्तडागेषु सर्व्वेष्वाप्रलयं नरः ।
स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुध्यति न संशयः ॥११॥
नृणां हि चित्तकमलम्प्रबुद्धमभवद्यदा ।
प्रसुप्तं तमसाज्ञानं भानोर्भासा तदा शुचिः ॥१२॥

यथार्थ वार्त्ता यह है जल के स्नान करने से मुक्ति नहीं होती वरन आत्मिकज्ञान ही मुक्ति का कारण है जैसा य० अ० ३१ मं० १८ में लिखा है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

उसी एक सर्वसाक्षी परमात्मा को जान कर जन्म मरण से छूट सकता है अन्य कोई भी मुक्ति का मार्ग नहीं है। और मनु० अ० १२ श्लोक ८३ में लिखा है कि वेद का पढ़ना और उस के लेखानुसार तप करना, आत्मज्ञान, इन्द्रियों को वश करना, किसी को दुःख न देना और गुरु की सेवा करना इन छः कर्मों से मोक्ष होती है—

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥

परन्तु इन में भी आत्मज्ञान को ही मुख्य माना है जैसा कि इसी अ० के ८५ श्लोक में लिखा है—

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यतेह्यमृतं ततः॥

और वशिष्ठस्मृति अ० ३० श्लो० ८ में लिखा है कि मानस यज्ञ करने से मोक्ष होती है जिस में ध्यान को यज्ञ की अग्नि और सत्य को यज्ञ का इन्धन, धैर्य्य को यज्ञ, अभिमान के त्याग को यज्ञ का स्रुव, अहिंसा को यज्ञ की सामग्री, सन्तोष को यज्ञस्थान और सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने की प्रतिज्ञा को जो बहुत कठिन है यज्ञ कराने वाले की दक्षिणा समझना माना है जैसा कि—

मानसिकयज्ञकरणान्मोक्षो भवति ।
मानसिकयज्ञे ध्यानं यज्ञोग्निः सत्यमिन्धनम् ॥
धैर्य्यं यज्ञः । अभिमानत्यागो यज्ञस्रुवः ॥
अहिंसायज्ञसामग्री । सन्तोषोयज्ञस्थानम् ।
सम्पूर्णजीवरक्षाकारकप्रतिज्ञादक्षिणा च उच्यते ॥

और ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र श्लोक ४८ और ४९ में भगवान् शङ्कर ने कहा है—

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसाजनाः ।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मोक्षो वरानने ॥

हे पार्वति ! तमोगुणयुक्त लोग मन को कहीं शिव को कहीं अन्यस्थान और शक्ति को कहीं अन्यत्र जानकर "यही तीर्थ है, यही तीर्थ है" ऐसे भ्रम में पड़कर सर्वत्र घूम रहे हैं। हे वरानने ! आत्मतीर्थ के ज्ञान विना जीव को किसी प्रकार मोक्ष प्राप्त नहीं हो सक्ती ॥

प्रियवर्गो हां यह सम्भव हो सक्ता है कि जिन तीर्थस्थानों को आप नाना प्रकार के कष्ट और धन व्यय कर के जाते हैं वही स्थान हों जहां पर आप के ऋषि मुनि पूर्व समय में रहते हों और जहां पर हमारे आप के पुरुषाओं ने जाकर सत्य उपदेश सुन के आनन्द उठाये हों परन्तु अब आप उन स्थानों को बुद्धि की दृष्टि से देखिये कि वहां की क्या व्यवस्थाएं हैं, क्या प्रयागराज में कोई ऋषि इस समय भरद्वाज के समान उपस्थित है कि जिन के आश्रम को श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने वेदोक्त चिह्न पाकर दूर से जान लिया था और जिन्हों ने उक्त महाराज को नाना प्रकार की शिक्षायें कीं। क्या

हरिद्वार पर मैत्रेय के सम तुल्य ऋषि है जिन से हमारे परमनीतिज्ञ विदुर जी ने अपनी शङ्काओं का निवारण किया था, क्या सोम तीर्थ पर कोई ऋषि उपस्थित है जहां पर हमारे ज्ञानपरिपूर्ण कण्वजी महाराज आनन्द उठाने के लिये गये थे, क्या अनुसूया के समान कहीं स्त्रियां हैं जिन्हों ने सीता जी को पतिव्रत धर्म पूर्ण करने के अर्थ शिक्षा दी, क्या हम को उन स्थानों में अत्रि, वशिष्ट, वाल्मीकि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त के समान ऋषि मिल सकते हैं ? कदापि नहीं, कदापि नहीं कदापि नहीं। सच तो यह है कि इस समय ही ने हम को बड़ा धक्का दिया इसने हमारे बने बनाये कार्य्य को बिगाड़ दिया उन ऋषि मुनियों को कि जिन्हों ने सारे संसार को अपने ज्ञान से प्रकाश कर रक्खा था ऐसा खा गया कि कहीं पता नहीं चला, इस भारत को जो कि एक समय में उन्नति की ऊंची सीढ़ी पर चढ़ा हुआ था ऐसा गिराया कि कुछ भी ठीक न रहा हमारे पवित्र नियमों को ऐसा बिगाड़ा कि हम पर अन्य देशी जन हंसते हैं, तीर्थों की वह दुर्दशा की है कि जहां ऋषिगण यज्ञ करते थे वहां भंग, चरस उड़ता है। उन के वेदोक्त सत्योपदेश से आत्मिक उन्नति होती थी वहां खंड मुसण्डे नाना रूप धारण कर अनेक प्रकार से ठगते हैं। लड़कों के नाच देखलाये जाते हैं पण्डों की स्त्रियां भी यात्रियों की ख़बर लेती रहती हैं रंडियों के समूह के समूह वहां जाते हैं और तबला खड़कता है अर्थात् इसी प्रकार के अनेक उपाय मुक्ति के दर्शाये जाते हैं जिन का विस्तार भय से वर्णन नहीं करता आप प्रत्यक्ष विलोकन कर रहे हैं ॥

मान्यवरो ! संस्कृत विद्या के न जानने से या यों कहिये कि निज प्रयोजन के साधन के लिये लोभी गुरुओं ने वेदादि सत् शास्त्रों के शब्दों के मुख्य अर्थ को छोड़ उन शब्दों से मनगणित अर्थ निकाल कर संसार को भ्रमजाल में डाल दिया जो अब तक भेड़ियाधसान की भांति एक दूसरे के पीछे विना देख भाल किये चले जाते हैं। जैसा कि वेदों में तीर्थ, व्रत, श्राद्ध, तर्पण इत्यादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को हम ने वेदादि सत्शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध किया है, उड़ा कर निज प्रयोजन निकाला इस के अतिरिक्त और भी देखिये—"शन्नो देवी०, गणानां त्वा०" इत्यादि में देवी शब्द से कालिका की मृत्तिका की पूजा करवाते हैं द्वितीय में गण शब्द से मिट्टी के गणेश जी बना कर पुजवाते हैं ऐसी ही बृहत्सामब्राह्मण के गङ्गा और यमुनादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को न समझ कर पृथ्वी पर की बहती हुई गङ्गा और यमुनादि नदियों में नहाने से मुक्ति मानने लगे देखिये बृहत्सामब्राह्मण में लिखा है—

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी ।
तयोर्मध्ये प्रयागस्तु यस्तं वेद स वेदवित् ॥

..इडा नाड़ी गङ्गा के नाम से और पिंगला नाड़ी यमुना के नाम से प्रसिद्ध है इन दोनों के बीच में जो हृदय आकाश है उस को प्रयाग कहते हैं जो मनुष्य इन को जानता है वह वेद का जानने वाला है और 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' में लिखा है:—

कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती ।
क्रमेण कीर्त्तिता गङ्गा शम्भोर्वाणी तु नान्यथा ॥

अर्थात् कालिन्दी वेदसंहिता का नाम है और यदि वेदमन्त्रों के पदों को पृथक् २ पढ़ा जावे उस का नाम सरस्वती है और जो वेदमन्त्रों को क्रम से पढ़ा जाय उस को विद्वान् गङ्गा के नाम से निरूपण करते हैं, और यही शंभ अर्थात् महादेव जी की वाणी है और महाभारत नें लिखा है—

आत्मानदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा सिध्यति आत्मशुद्धिः ॥

यह रूपकालङ्कार है जो परमेश्वर सर्वव्यापक है वही एक नदी है उस नदी में अपने मन इन्द्रियों का लगाना वही पुण्य तीर्थ है अर्थात् तरना है उस नदी में जो सत्य है वही जल है उस नदी का किनारा शील और दया उस की लहरें हैं सो हे युधिष्ठिर ! तुम "आत्मरूप" ऐसी नदी में स्नान करो क्योंकि वारि अर्थात् धरती पर की नदियों के पानी में स्नान करने से आत्मा शुद्ध नहीं होता । इसलिये आओ सज्जन पुरुषो ! इन उपरोक्त प्रकार गङ्गा, यमुना, सरस्वती में योगाभ्यास द्वारा स्नान करने का उद्योग करें कि जिस के प्रताप से मोक्षरूपी अमृतफल मिलता है क्योंकि बाईं ओर पिङ्गला और दाहिनी ओर इड़ा और बीच में प्रयाग है और प्रयाग के अर्थ योग के हैं अर्थात् जिस स्थान पर जीव को सर्वव्यापक परमेश्वर के दर्शन होते हैं उसी को प्रयाग कहते हैं ॥

योग का वर्णन ॥

प्यारे सुजनो ! चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है जिस के विना जीवात्मा नाना क्लेशों को भोगता है और धर्म अर्थ मोक्ष पदार्थों को

खोता है इसलिये श्रेष्ठ पुरुषों को चित्त के निरोध करने के निमित्त योगरूपी मार्ग में पूर्ण सामर्थ्य से पग रखना योग्य है परन्तु वर्त्तमान समय में योग शब्द के अर्थ ऐसे समझ रक्खे हैं कि जो भिक्षुक गेरुये कपड़े पहनकर किसी विद्या के न जानने के कारण विना परिश्रम किये आलस्य में चूर होकर उदर पोषण के अर्थ घर २ भीख मांगते हैं उन को ही योगीजी कहते हैं कोई २ ऐसा भी सुनाते हैं कि जो परिवार छोड़ जङ्गल में चला जाय वही योगी है। हे भाइयो! यह सब मिथ्या बातें हैं योग के अर्थ जङ्गल जाना, कपड़े रंगना, कनफटे बनना कुछ आवश्यक नहीं क्योंकि योग का सम्बन्ध चित्त से है न कि जङ्गल वा कपड़ों से। हे बान्धवो! यदि कोई जङ्गल में जावे और उस की इन्द्रियां उस के आधीन न हों तो वह वन में जाकर क्या ख़ाक़ न छानेगा? इस लिये यह सब मिथ्या बातें हैं क्योंकि चित्त की स्थिर वृत्तियों का नाम योग है इस कारण योगसाधन के अर्थ जङ्गल ही में रहना वा कपड़े रंगना आदि की कुछ आवश्यकता नहीं सच तो यह है कि यह एक प्रकार की दिखावट और दूकानदारी है इस के उपरान्त जब हम प्रतिदिन देखते हैं कि बहुधा औरतें शिर पर घड़े पर घड़ा लेजाती हैं, नट रस्से पर डोल आता है, निशानची निशान मार देता है तो फिर संसार में योग न होने का क्या कारण है, प्यारे बन्धुवर्गो! यह भी तो योग ही के लक्षण हैं अर्थात् विना चित्त को स्थिर किये कभी ऐसा नहीं कर सकते तो फिर योग से डरने और जंगल ही में जाने की कौन आवश्यकता है?।

प्यारे सुजनो! प्राचीन काल में इसी भारतवर्ष में अनेक जन इस विद्या में पूरी योग्यता रखते थे, क्या राजा जनक का नाम जो मिथिलापुरी में राज्य करते थे नहीं जानते जिन्होंने योग विद्या में ऐसी योग्यता प्राप्त की थी कि उस समय के ऋषि लोग उन की प्रतिष्ठा करते थे। और श्रीकृष्ण महाराज योगविद्या में पूर्ण निपुणता रखते थे। इन के उपरान्त अनेक सुजनों ने इस विद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी और उन्हों ने उसी योग बल से नाना भांति की युक्तें और गुण निकाले थे जिन को इस समय में नाम मात्र भी नहीं जानते, प्यारे सुजन पुरुषो इस समय में रेलतारादि को देख कर आश्चर्य करते हैं परन्तु प्राचीन समय में योगविद्या के जानने वाले ज्ञाता जन हज़ारों कोस बैठ कर आपस में बातें करते थे, इस की आठ सीढ़ी हैं जिन का वर्णन पतञ्जलि महर्षि ने अपने बनाये हुए योगशास्त्र में अच्छे प्रकार किया है।

यथार्थ में प्राणायाम करने से प्रतिदिन अज्ञान का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है इसलिये जब तक मुक्ति न हो तब तक इस क्रिया को सदा करता रहे जैसा कि योगशास्त्र में लिखा है—

प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।

इस विषय में मनु जी ने भी लिखा है—

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां च यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाःप्राणस्यनिग्रहात् ॥

अर्थात् जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसा ही प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण हो कर निर्मल हो जाते हैं अर्थात् मन एकाग्र हो जाता है जो उपासना के समय किसी संसारी कार्य में नहीं जाता जो उपासना का मुख्य काम है, इसलिये प्राणायाम प्रतिदिन करना चाहिये, ऐसा ही गीता में भी लिखा है—

अपानेजुह्वतिप्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगतीरुध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

अर्थात् अपान में प्राण को और प्राण में अपान को हवन करते वा लय करते वा मिलाते हैं, उन के प्राण की गति रुकने से मन उस के साथ रुक जाता है इसलिये प्राणायाम करना उचित है ।

मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि जब प्राणायाम के करने से प्राण अपने वश में हो जाता है, तो मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन हो जाती हैं, तब पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र हो जाती है जो कठिन से कठिन और सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण करलेती है, इसी से वीर्य्यवृद्धि हो कर शरीर बलपराक्रमयुक्त हो जाता है और भय का उस के चित्त में अंश भी नहीं रहता वही निर्भय हो कर संसार का सर्व प्रकार उपकार करता है, और उपासना के समय उस का मन इधर उधर को नहीं जाता, वरन परमेश्वर के ध्यान में मग्न होकर आनन्द को प्राप्त हो मोक्ष सुख को पाता है इसलिये अवश्यमेव थोड़ा २ अभ्यास करना परम आवश्यक है । परन्तु योग उन्हीं सज्जनों को सिद्ध होता है जो संयम नियम को यथावत् सेवन करते हैं । इस के उपरान्त इस वृत्त में शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं और प्रथम इस में कठिनता भी जान पड़ती है परन्तु जब अन्तःकरण की रजोगुणी और तमो-

गुणी वृत्ति कम होजाती है और मुक्ति की इच्छा विवेक वैराग्यादि वृत्ति जब प्रधान होती है तब यह सुगम जान पड़ती है और यथार्थ अन्तःकरण का रज तम दूर होजाता है तब वह सुख प्रकट होता है कि जिस सुख का पारावार नहीं और उस को कोई वर्णन नहीं कर सकता ॥

यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र ६७ में लिखा है—

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया॥

अर्थात् योगी पुरुष अपने ज्ञान के बढ़ाने में तन मन लगा कर लगातार पुरुषार्थ से ऐसे ज्ञान को प्राप्त होते हैं जहां किसी प्रकार का संशय और भ्रम नहीं रहता, उन के लिये सीधा और स्वच्छ मार्ग है, ऐसी दशा में पहुंचे हुए महात्माओं की वे ही मनुष्य प्रतिष्ठा करते हैं जो विद्वान् होते हैं, और अविद्वान् मनुष्य योगियों की बात और उन के मर्म समझ ही नहीं सकते उन के विचार ही में नहीं आते, क्योंकि उन के धर्मचक्षु नहीं, इसलिये वह योगियों के गुणों को देख नहीं सकते, हां विद्वान् मनुष्य जानते हैं कि योगी ने जिस ज्ञान की प्राप्ति की है वह अतिकठिन है, संसार भर की विद्या उस की समानता नहीं कर सकती, जो जड़ पदार्थों से सम्बन्ध नहीं रखती वरन उस का सम्बन्ध सूक्ष्म पदार्थ से है इसलिये विद्वान् मनुष्य योगियों का आदर सत्कार करते हैं और उन के चरणों के सेवक होते हैं॥

धन्य हैं वह सुजन जिन का विद्वान् आदर सत्कार करते हैं, परन्तु यह ब्रह्मज्ञान योगियों को सहज ही में नहीं मिलता वरन विद्वान् योगी महात्मा और धीर पुरुष योग विभाग से नाड़ियों द्वारा अपनी आत्मा में धारण करते हैं अर्थात् बड़े २ साधनों से यह अमूल्य रत्न मिलता है, जिन की व्याख्या पतञ्जलि महर्षि ने की है जिस का हम आगे संक्षेप से वर्णन करेंगे।

इसलिये सज्जन पुरुषों को आलस्य त्याग प्रतिदिन आठों अङ्गों का सेवन युक्तिपूर्वक करना चाहिये, क्योंकि यह यज्ञ सब यज्ञों से श्रेष्ठ है, इस बात को श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने गीता में बारह प्रकार के यज्ञों में प्राणायाम अर्थात् प्राणनिरोध करना सब से श्रेष्ठ कहा है॥

[अष्टाङ्ग योग के आठों अङ्गों का वर्णन]

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-
ध्यानधारणासमाधयोष्टावङ्गानि ॥

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के आठ अङ्ग हैं।

[यम का वर्णन]

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः। योगसूत्र ॥

अर्थात्(१) अहिंसा,(२) सत्य, (३) अस्तेय,(४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह

१–अहिंसा=किसी से वैरभाव मन से न करना, अर्थात् सुख सम्भोगयुक्त प्राणियों में मैत्री और दुःखियों पर दया पुण्यात्माओं में मुदितता और पापियों में उपेक्षा करना चाहिये।

२– सत्य=जैसा अपनी आत्मा में हो वैसा कहे और माने, जो मनुष्य ऐसा करते हैं उन की वाणी से जो निकलता है वैसा ही होता है।

३–अस्तेय=किसी प्रकार की चोरी न करना, जो इस को यथावत् सेवन करता है उस को सब पदार्थ मिल जाते हैं।

४–ब्रह्मचर्य =२५,३०,४०,४८ वर्ष वा इस से आगे वीर्य को स्खलित न होने देना, अर्थात् जो वीर्य की पूर्ण रक्षा करता है वह पूर्णज्ञानी और महात्मा होने के योग्य होता है।

५–अपरिग्रह=जब मनुष्य यथावत् इन्द्रियों को अपने वश में करलेता है तब उसके मन में यह विचार आता है कि मैं कौन हूं और कहां से आया हूं और क्या करता हूं, मुझको क्या करना चाहिये और मेरी किस बात में भलाई है इत्यादि ऐसी बातों के विचार का नाम अपरिग्रह है।

[नियम]

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(१) शौच, (२) संतोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वरप्रणिधान–यह पांच प्रकार के नियम हैं।

१–शौच=यह दो प्रकार का है, एक शारीरक दूसरा आत्मिक। शारीरकशुद्धि जल और खान पान आदि से होती है, और आत्मिक–वेदादि विद्या पढ़ने और धर्म पर चलने और सत्संग से होती है।

२–सन्तोष=उस को कहते हैं जो सदा धर्मानुकूल कार्यों को करता हुआ नाना प्रकार के क्लेश होने पर भी धैर्य को नहीं छोडना, आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है।

३– तप=जैसे सोना चांदी आदि को अग्नि में तपाने से स्वच्छ हो जाते हैं वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरणरूपी शुभगुणों में तपाकर निर्मल करने का नाम तप है। तप के मुख्य तीन भेद हैं–मनसा, वाचा, कर्मणा, इन तीनों को धर्माचरण में लगाना ही तप कहाता है, अग्नि जलाकर बीच में बैठने का नाम तप नहीं है।

५–ईश्वरप्रणिधान=सब सामर्थ्य, सर्व गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेमभाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों का ईश्वर के लिये समर्पण करने को कहते हैं।

[आसन]

आसन उस को कहते हैं कि जिसमें शरीर और आत्मा सुखपूर्वक स्थिर हों इस लिये जैसी रुचि हो वैसा आसन करे, जब आसन दृढ़ हो जाता है तब उपासना करने में परिश्रम जान नहीं पड़ता और सरदी गरमी आदि नहीं व्यापती, यह उपासना का तीसरा अङ्ग अर्थात् सीढ़ी है।

प्रकट हो कि आसनों के भेद अनन्त हैं और वे आसन सम्पूर्ण योग विषय मनुष्य को उपकारी होते हैं इसलिये कुछ आसनों का संक्षेप से वर्णन करते हैं–

योग शास्त्र में ८४ आसन लिखे हैं उनमें से––स्वस्तिक, गोमुख, वीर, पद्म, कुक्कुट, उत्तान, कूर्मक, धनुष, मत्स्य, मयूर, सर्प, सिंह, भद्र, सिद्ध, दण्डासन–पंद्रह के नाम यह हैं, इन में से बहुधा आसनों से शरीर का रोग निवृत्त होता है और कई एक ब्रह्मानन्द समाधि में उपयोगी हैं, इन उपरोक्त लिखे आसनों में सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध, यह चार ही मुख्य ठहराये गये हैं और इन में से भी पद्म और सिद्ध विशेष हैं और सिद्ध आसन को वृत्तासन, मुक्तासन, और गुप्त आसन भी कहते हैं। इस विषय में गीता में भी लिखा है–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

अर्थात् आसन पवित्र भूमि में अचल लगाकर अभ्यास करे, आसन न बहुत ऊंचा हो न बहुत नीचा, वस्त्र और मृगछाला पर आसन न लगाना चाहिये जो मनुष्य आसन सिद्ध नहीं करता उसको द्वन्द्व दुःख देते हैं और आसन सिद्ध होने से यह उस को दुःख नहीं देते, इसलिये आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिये॥

[पद्मासन]

चौपाई

पहिले बामा पैर उठावे । दहनी जंघा ऊपर लावे ॥
विधि इमि दक्षिण पैर उठाना । बामी जंघा परि धरि आना ॥
बामा कर पीछे पुनि लावे । बाम अंगूठा गहि तनु तावे ॥
यों ही दक्षिण कर को लावे । दहना दृढ़ अङ्गुष्ठ करावे ॥
ग्रीवा लटकि चिबुक हिय करिये । नासा आगे दृष्टि सुधरिये ॥

[सिंहासन]

दोहा

गुदामध्य धरि बाम पद, दक्षिण लिंग दबाय ।
दृष्टि धर भृकुटी विषे, चिदानन्द चित्तलाय ॥

इन आसनों के अभ्यास से सम्पूर्ण नाड़ियों के मल नष्ट होजाते हैं, यह चौरासी आसनों में श्रेष्ठ है ।

[प्राणायाम]

आसन स्थिर होने से जो प्राण की गति का अवरोध होता है उसे प्राणायाम कहते हैं, यही चौथो अंग अर्थात् सीढ़ी है ।

आसन सिद्ध होने पर जो बाहर से वायु भीतर को जाता है उस को श्वास कहते हैं, और जो भीतर से बाहर जाता उसे प्रश्वास कहते हैं, और इन दोनों की गति के अवरोध को प्राणायाम कहते हैं, वह चार प्रकार का है-
(१) बाह्य, (२) आभ्यन्तर, (३) स्तम्भवृत्ति, (५) बाह्याभ्यन्तराक्षेपी ।

(१) बाह्य वह है कि जब भीतर से वायु बाहर को निकले उस को बाहर ही रोक दे ।

(२) आभ्यन्तर उसे कहते हैं कि जब बाहर की वायु भीतर जावे तब जितना हो सके भीतर ही रोके ।

(३) स्तम्भवृत्ति उसको कहते हैं न प्राण को बाहर निकाले न बाहर से भीतर ले, बरन जितनी देर हो सके सुखपूर्वक जहां का तहां ज्यों का त्यों रोकदे ॥

(४) बाह्याभ्यन्तराक्षेपी—जब श्वास भीतर से बाहर को आवे तब बाहर ही थोड़ा २ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर को जावे तब उसको भीतर ही थोड़ा २ रोके ।

[प्राणायाम करने की विधि]

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य

जिस प्रकार की होती है जिस को लौटा वा वमन कहते हैं जिस के होने से भीतर पेट के अन्न और जल बाहर निकल आते हैं। उसी प्रकार प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे, और जब बाहर निकालना चाहे तो मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे जब तक प्राण बाहर निकले, और जब घबराहट हो तब धीरे २ भीतर लेजाय और जितना होसके रोके, इसी प्रकार जितनी सामर्थ्य हो धीरे २ बढ़ावे ॥

प्रकट हो कि उदरस्थ प्राण वायु को नासिका के नथुनों से प्रयत्नपूर्वक निकालने को 'प्रच्छर्दन' और खींचने को 'विधारण' कहते हैं।

[प्रत्याहार]

'प्रत्याहार' उस को कहते हैं जब मनुष्य अपने मन को जीत लेता है तब सब इन्द्रियां अपने आधीन कर लेता है क्योंकि मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है जैसा कि य० अ० ३४ मन्त्र १ में लिखा है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमंज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

अर्थात् जो जागता हुवा दूर २ जाता है और सुषुप्ति में भी उस के दूर जाने का स्वभाव है जो प्रकाशित पदार्थों का भी प्रकाश करने वाला है वह मेरा मन, हे परमात्मन्! बड़ा शीघ्रगामी है आप की कृपा से मुझे कल्याणकारी हो।

सचमुच मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है, इन्द्रियां कभी काम नहीं करतीं जब तक कि मन इन्हें प्रेरणा नहीं करता, निश्चय जानों कि जितने विकार और दुष्टभाव इन्द्रियों के द्वारा प्रकट होते हैं सब मन के ही उत्पन्न किये हुवे होते हैं, महात्माओं ने मनुष्य के शरीर की बनावट को एक रथ के समान माना है, बुद्धि रूपी रथवान् मन की राशियों से इन्द्रियों के घोड़ों को अपने आधीन रख सक्ता है पस जिस प्रकार रासों के घुमाने से जिधर को चाहो घोड़ों को फेर सक्ते हो उसी प्रकार मन जिधर चाहता है उधर इन्द्रियों को घुमाता है इस कारण कर्म ठीक करने के अर्थ मन को निर्दोष किया जावे, यह मन बड़ी २ दूर जाता है, जो देश और काल की रुकावट में

भी नहीं आता, इस से अधिक प्रबल चाल वाला कोई नहीं, सो यह मन जीवात्मा के आधीन है परन्तु जीवात्मा उस को अपने आधीन न रख कर किन्तु उसके आधीन होकर नाना प्रकार के दुःखों को झेलता है, इसलिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि इस मन को हमारे आधीन सदा बनाये रहें नकि हमको उसके, सो मन की चंचलता प्राणायाम साधन से जाती रहती है, इस लिये शांति ढूंढने वालो ! इस क्रिया को कर मन को आधीन कर आनन्द को भोगो ।

[धारणा]

धारणा उस को कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ा कर जिस स्थान पर जिस विषय में चित्त को लगावें वहीं चित्त ठहर जावे अर्थात् जिस विषय में चित्त लगाना हो उसको छोड़ कर कहीं न जावे।

प्रकट हो कि इस समय मन में 'ओं' का जप करता जाय क्योंकि 'ओं' परमेश्वर के सब नामों में उत्तम है कि जिस में परमेश्वर के सब नामों के अर्थ आजाते हैं जैसा हमने गायत्री के अर्थों में लिखा है, और ऐसा ही गीताके अ० ८ श्लोक १३ में लिखा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमां गतिम् ॥

अर्थात् ध्यान समय ओं के अर्थों को विचार कर उस के अनुकूल आचरण होने से परम गति मिलती है, क्योंकि—

ओंकारः सर्ववेदानां सारस्तत्वप्रकाशकः ।
तेन चित्तसमाधानं मुमुक्षूणां प्रकाश्यते ॥

[ध्यान]

ध्यान—धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करे, आश्रय देने के योग्य जो अंतर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसी के प्रकाश आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है, उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना उसी परमेश्वर के ज्ञान में मग्न होने को 'ध्यान' कहते हैं ।

[समाधि]

समाधि—जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि होजाता है उसी प्रकार

परमेश्वर के साथ में प्रकाशमय हो के अपने शरीर को भूले हुए के समान जान के आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परि पूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं।

ध्यान और समाधि में इतना अन्तर है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला और मन और जिसका ध्यान करता है ये तीनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्द स्वरूप ज्ञान में मग्न हो जाता है वहां तीनों का भेद भाव नहीं रहता, जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होकर फिर बाहर को आजाता है, और जिस देश में धारणा की जाय उसी में ध्यान और उसी में समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मग्न होजाने को 'संयम' कहते हैं, जो एक ही काल में तीनों का मेल होता है अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है, उन में बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है परन्तु जब समाधि होती है तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है, उस काल के आनन्द की महिमा अकथनीय है। ऐसा ही अन्य शास्त्रकारों ने भी लिखा है—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा, स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

अर्थात् समाधि रूप नदी में गोता लगाने से जिस का मैल धोया गया ऐसा चित्त जब आत्मा में लगाया जाता है तब जो सुख होता है उसका वर्णन वाणी से नहीं हो सक्ता किन्तु उसका स्वयमेव अन्तःकरण से ग्रहण होता है और भगवद्गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी ने भी कहा है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

अर्थात् समाधि अवस्था का जो अनन्त सुख है उस का इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होता किन्तु उसी उपासक को इन्द्रिय द्वारा पहुंचने वाले विषयों की चञ्चलता से रहित अर्थात् वायु विषयों से उठने वाली वृत्ति रूपी जलतरङ्गों से रहित अविकारिणी सूक्ष्म बुद्धि से ही ग्राह्य है, उस समाधिअवस्था में न कुछ बाह्य विषय जानता और न विषयादि के साथ अपने स्वरूप को डिगाता है, जितने देखे हुए और सुने हुए विषयों में से जो आनन्द के देने वाले हैं

किसी की चाहना न करना वैराग्य कहाता है ॥

प्यारे सुजनो ! जो मनुष्य धर्माचरण परमेश्वर और उस की आज्ञा में अत्यन्त प्रेम करके आचरण अर्थात् शुद्ध हृदय रूपी बन में स्थिरता के साथ निर्वास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं, और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य विद्याओं में विद्वान् हैं जो भिक्षाचर्य आदि कर्म कर के संन्यास वा किसी अन्य आश्रम में हैं, इस प्रकार के गुण वाले मनुष्य प्राण द्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश कर के सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जहां कि पूर्ण पुरुष सब में भरपूर सब से सूक्ष्म अविनाशी जिस में हानि लाभ कभी नहीं होता ऐसे परमेश्वर को प्राप्त हो के सदा आनन्द में रहता हैं, जिस समय इन उपरोक्त साधनों से परमेश्वर की उपासना कर के उस में प्रवेश किया चाहे उस समय इस रीति से करे—

कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और हृदय के ऊपर जो हृदय देश है कि जिस को ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं उस के बीच में जो गर्त्त है उस में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एकरस हो कर भर रहा है वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है, दूसरा उस के मिलने का और कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं, क्योंकि इस हृदय आकाश में सूर्य आदि प्रकाशक तथा पृथ्वीलोक अग्नि वायु सूर्य चन्द्र बिजुली और सब नक्षत्र लोक भी ठहरे हैं, जितने देखने वाले और न देखने वाले पदार्थ हैं वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं और इस ब्रह्मपुर में जो परिपूर्ण परमेश्वर है उस को न तो कभी वृद्धावस्था होती है और न कभी नाश होता है। उसी का नाम सत्य ब्रह्मपुर है कि जिस में सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं, वह सब पापों से रहित शुद्धस्वभाव जराअवस्थारहित शोकरहित जो खाने पीने की कभी इच्छा नहीं करता जिस के सब काम सत्य हैं जिस के सब सङ्कल्प भी सत्य हैं उसी प्रकाश में प्रलय होने के समय सब प्रजा समा जाती है और उसी के रचने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाश होती है।

इस उपरोक्त उपासना से उपासक लोग जिस २ काम जिस २ देश जिस २ क्षेत्र भाग अर्थात् सावकाश की इच्छा करते हैं उन सब को वे सब यथार्थ प्राप्त होते हैं ॥

इसलिये उपासको ! मोक्ष की इच्छा रखने वालो ! शुद्धाचरण से योग द्वारा परमात्मा के जानने की इच्छा करो तब ही मुक्ति मिल सक्ती है अन्यथा कदापि नहीं—हे परमात्मन् ! आप त्रिकाल दर्शी, सब सामर्थ्यवान् हैं आप से हमारी दुर्दशा छिपी नहीं है। अपने सामर्थ्य के कोष से कुछ हम भारतवासियों को प्रदान कीजिये, हम को आप उद्योगी बनायें, अब हम सब आप की शरण हैं इस विपदा के समय में शुद्ध बुद्धि का हम को दान कीजिये इस अपार दुःख के बीच साहस प्रदान कर हमारी रक्षा कीजिये। हे तेजः स्वरूप परमात्मन् ! हम को शान्ति अर्पण कीजिये आप हमारे पिता बन्धु सहोदर स्वामी आप ही हैं, बल वीर्य्य तेज का प्रसाद देकर हमारे सब संकट निवारण कर दीजिये। ओं शान्तिः ओं शान्तिः ओं शान्तिः ॥

——*०*——

॥ विज्ञापन ॥

सत्यनारायण की प्राचीन कथा—जिसको श्रीमान् पं० वर घनश्यामाचारी मिर्ज़ापुर निवासी ने खोजकर निकाला है उस को संसार के उपकार के लिये संस्कृत मूल भाषा टीका सहित मैंने छपवाया है अवश्य देखिये पढ़िये अपने इष्ट मित्रों को भी सुनाइये मूल्य -)॥

शिष्टाचार—वृद्ध अर्थात् बड़ों की आज्ञा सनातन धर्मानुसार किस प्रकार माननी चाहिये—जिस के न जानने के कारण आजकल भारतवर्ष में अतिदुःख छाया हुआ है मूल्य)॥

भरतोपदेश—इसमें वह भरतोपदेश है जो श्रीमान् परमतेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने अपने भ्राता भरतजी महाराज को चित्रकूट पर किया था जिस के पाठ से मन को आनन्द प्राप्त होता है मूल्य)॥

रत्नजोड़ी—इसमें हकीम लुक़मान और मिस्टर इस्टेफन एलन की उत्तम शिक्षायें हैं कि जिन पर चलने से मनुष्य को इस संसार में सुख और अन्त को स्वर्ग प्राप्त होता है मूल्य)॥

रत्नप्रकाश—इस में बड़े २ ऋषियों के सत्योपदेश हैं मूल्य)॥

ऋषिप्रसाद—यह वह महोपदेश है जो महात्मा शौनक जी ने धर्मराज श्रीमान् युधिष्ठिर महाराज को वन में किया था जिसमें पूर्णरूप से बतला दिया है कि मनुष्य को सच्चा सुख किस प्रकार मिल सकता है मूल्य)॥

बुद्धि और अज्ञान के प्रश्नोत्तर—उन मनुष्यों को जो अपने अनेक कष्टों से प्राप्त किये हुये धन को ब्याह आदि अवसरों पर वृथा व्यय कर देते हैं एक सच्चा उपदेशक है—इस के पाठ से अति आनन्द आता है मूल्य)॥

अनमोलरत्न—इस में समय की महिमा दिखलाई है कि हम यथोचित समय से क्या २ फल प्राप्त करसकते हैं मूल्य)॥

प्रेमपुष्पावली—इस के देखने से अमूल्यफल हाथ आते हैं—क्योंकि—जहां सुमति तहं संपति नाना। जहां कुमति तहां विपत निधाना—यह वह लेक्चर है जो श्रीमान् बाबू शिवलाल उपदेशक वैश्य सभा में तिलहर ज़िला शाहजहांपुर (कोठी भाईरामचरण मन्नीलाल साहब साहूकार) में दिया था मूल्य)॥

ब्रह्मविचार—दोहे चौपाइयों में ब्रह्म की महिमा है मूल्य)॥

ईसाईशिक्षा—जिसमें बतलाया गया है कि हम ईसाइयों के धोखे से किस प्रकार बच सक्ते हैं मूल्य)।

वर्णप्रकाश--अर्थात् नागरी की पहली पुस्तक)॥

श्रीमान् पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी के जीवन पर एक दृष्टि इसके पाठ करने से पण्डित जी की धार्मिकशक्ति और उनके शान्ति स्वभाव और संस्कृत फिलासफी का महत्त्व, मृत्यु क्या है--वर्तमान शिक्षा प्रणाली का दोष युक्त होना और योग का माहात्म्य--आरोग्य रहने के उत्तम २ उपाय प्रकट होते हैं सर्व साधारण के सुबीते के लिये मूल्य)॥

मूर्त्तिपूजाविचार--यदि आप को वर्त्तमान काल की भांति मूर्त्तिपूजा करने का शौक है तो प्रथम)। खर्च कर इसको विलोकन कर पूजा कीजिये--

ता० २१ सितम्बर सन् १८९७ ई० स्थान कोठी भाई रामचरण मन्नीलाल साहिब--

आपका शुभचिन्तक
चिम्मनलाल वैश्य
तिलहर ज़िला शाहजहांपुर

श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ॥

तुलसीराम स्वामिकृत, ।≡)

प्रायः टीकाकार लोग मूल के पदों का अर्थ अपनी व्याख्या में मिला देते हैं जिस से उस पद का कितना अर्थ है यह जानना कठिन हो जाता है। इस लिये हम ने इस भाष्य में यह क्रम रक्खा है कि १--मूल २--पदच्छेद और उस के साथ ही प्रथमाद्वितीयादि विभक्ति के अङ्क, क्रियापद का क्रि० अव्यय का अ० इत्यादि संकेत हैं ३--अन्वित पदार्थ, इस में मूल के पद कोष्ठक में रख कर उन का पदार्थ, समास, व्यत्ययादि, किसी विलक्षण पद की व्याकरणादि से निरुक्ति भी है--४--विशेष व्याख्यान, भावार्थ, यदि वह मन्त्र वेद का है तो उस का पता और वेद में तथा उपनिषद् में पाठभेद है तो क्या है। और उस मन्त्र पर मूल में उदात्तादि स्वर भी छाप दिये गये हैं ५--इतना संस्कृत में करके फिर भाषा में--उत्थानिका, ६--भाषा में पद २ का एक ही शब्द में सरल अर्थ, ७--भाषा में विशेष व्याख्यान, भावार्थ, अन्य टीकाओं के कहीं २ खेंचातानी के दोष, (यह संस्कृत में भी) अपने अर्थ की विशेषता ८--भाषा में भी यदि वह उपनिषद्वाक्य वेद में भी आया हो तो उस का पता, पाठभेद इत्यादि अनुत्तम रीति से वर्णित है। तिस पर भी मूल्य केवल ।≡) केवल ७०० छपा है शीघ्र मंगावें ॥

स्वामि प्रेस मेरठ में छपा २५।९।९७

पता--पं० तुलसीराम स्वामी
सम्पादक वेदप्रकाश--मेरठ